डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान

खण्ड : तीन

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

खण्ड 1 : राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास

खण्ड 2 : महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

खण्ड 3 : धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान

मानव प्रबोधन प्रन्यास

शिवमठ, शिवबाड़ी, बीकानेर 334003

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान

खण्ड : तीन

सम्पादक एवं संकलनकर्ता

स्वामी संवित् सुबोधगिरि

संकलन में सहयोगी

श्री वृजभूषण ओबराय

अंग्रेजी लेखों के हिन्दी अनुवादक

श्री चन्द्रप्रकाश ओबराय

आशीर्वचन

परम पूज्य गुरुदेव श्रीमत् स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज

परामर्श मण्डल

श्री नरेन्द्र कोहली • श्री इन्द्रेश कुमार

श्री बालकृष्ण नायक • श्री बालमुकुन्द

श्री रामेश्वर मिश्र 'पंकज' • डा. कुसुमलता केडिया

श्री आनन्द मिश्र 'अभय' • डा. मदनलाल ओबराय

श्री जुगलकिशोर जैथलिया • डा. बद्री प्रसाद पंचोली

श्री सीताराम महर्षि • श्री तोलाराम लाठ

प्रकाशक एवं मुख्य वितरक :
शिवार्चन प्रकाशन
मानव प्रबोधन प्रन्यास
श्रीलालेश्वर महादेव मन्दिर
शिवमठ, शिवबाड़ी, बीकानेर 334003
दूरभाष : 0151-2230982

अन्य प्राप्ति स्थान :
श्री बड़ा बाजार कुमार सभा पुस्तकालय
1-सी, मदनमोहन बर्मन स्ट्रीट (1 तल्ला)
कोलकाता 700007
टेलीफेक्स : 033-22688215
e-mail : kumarsabha@vsnl.net

प्रथम संस्करण : 2010 ई.

प्रतियाँ : 1100

मूल्य : चार सौ रुपये मात्र

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स
विनायक शिखर, शिवबाड़ी रोड
बीकानेर 334003

Dr. Harbans Lal Oberai Samagra : Khand-3
Edited by Swami Samvit Subodhgiri

₹ 400



परम पूज्य परम गुरुदेव
श्रीमत् स्वामी ईश्वरानन्दगिरिजी महाराज

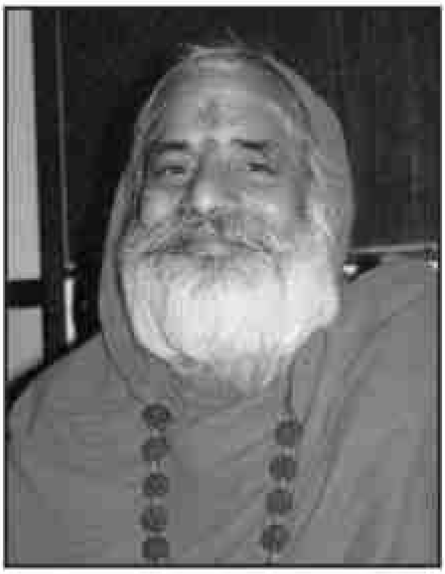
यह कृति पूज्यश्री के चरणों में सादर समर्पित है।

चरणानुरागी :
स्वामी संवित् सुबोधगिरि
प्रस्तुतकर्ता

ॐ श्रीदक्षिणामूर्तये नमः

आशीर्वचन

भारतीय संस्कृति का आधार सनातन धर्म है। सनातन का अर्थ है जो आदि और अन्त रहित है। अतः यह धर्म अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक रहेगा। इस धर्म को अपनाने वाले को भी यह धर्म 'सनातन' की प्राप्ति करा देता है। ब्रह्म को ही वेदों में सत्य या सनातन कहा है। सनातन धर्म पर आधारित होने के कारण भारतीय संस्कृति भी सनातन संस्कृति है। भारतीय संस्कृति ओंकार-मूलक है। ओंकार ही ब्रह्म है, ओंकार ही आत्मा है, ओंकार ही जगत् है, ओंकार से भिन्न और परे किसी अन्य की सत्ता ही नहीं है। ओंकार से ही सारे वेद प्रकट हुए हैं। वेद अपौरुषेय हैं, अनन्त हैं, सनातन हैं।



संस्कृति का विस्तार वेदों में प्रतिपादित कर्मकाण्ड, उपासना-काण्ड और ज्ञानकाण्ड के अनुसार हुआ। संस्कृति के संवाहक ऋषियों ने मानव मात्र के अभ्युदय और निःश्रेयस को प्रदान करने वाले जीवन-दर्शन और जीवन-विज्ञान को सारे विश्व में फैलाया। भारत-भूमि को इस संस्कृति-प्राकट्य और प्रसार के मूल-स्थान होने का गौरव प्राप्त है। इस संस्कृति-वीणा की दिव्य झंकार तो 14 भुवनों के आरपार होकर वैकुण्ठ, कैलास और मणिपूर व्यापिनी है।

असंख्य महाप्रलयों को, ब्रह्माओं को, कल्पों-मन्वन्तरों और युगों के रूप में प्रवाहित यह अनादि सृष्टि हर कालखण्ड में अपनी विशिष्ट साज-सज्जा को अनावृत करती है। जिस कालखण्ड में तम की शक्तियाँ प्रकाश की शक्तियों को पराजित कर अट्टहास करती हैं उसी कालखण्ड में तब अवतारों और महापुरुषों के रूप में परम-तत्त्व की मुक्त मुस्कान मानव को प्रेम, शान्ति और सुख का अनुभव कराती है—दिव्य-प्रकाश को फैलाती है।

अवतारों की लीलास्थली एवं ऋषियों की तपोभूमि भारत में संस्कृति का प्रवाह कभी अवरुद्ध नहीं हुआ। संकट के समय में जब इसका बाह्य रूप प्रक्षीण हुआ तब भी यह अन्तःपयस्विनी होकर सतत प्रवाहित होती रही।

प्रस्तुत ग्रंथ में संस्कृति की इस अमरता और इसके वैश्विक रूप का सम्यक् दर्शन होता है। प्रखर मनीषी और उद्भट विद्वान् प्रो. हरवंशलाल ओबराय एक चल-विश्वविद्यालय व चल-पुस्तकालय होने के साथ-साथ ब्रह्मविद्या के श्रेष्ठ विद्यार्थी भी थे। एक स्थान पर स्थिर होकर लेखन कार्य में संलग्न रहना उनके स्वभाव में नहीं था। उन्होंने स्वयं लिखने से अधिक लिखवाया और उससे भी अधिक प्रवचनों में अभिव्यक्त किया। उनके द्वारा अभिव्यक्त बहुमूल्य सामग्री को स्वामी श्री सुबोधगिरिजी ने वर्षों तक संभाल कर रखा। संन्यास के पूर्व वे अनेक वर्षों तक प्रो. ओबराय के शिष्य बन कर रहे। उन्होंने सत्-शिष्य बन कर प्रो. ओबराय की सेवा की, उपासना की और उनसे अध्यात्म, धर्म, संस्कृति, इतिहास आदि अनेक विषयों का प्रामाणिक एवं दुर्लभ ज्ञान प्राप्त किया। प्रो. ओबराय ने अपनी प्रखर प्रतिभा, अनुसंधानात्मक वृत्ति तथा संश्लेषक व विश्लेषक प्रज्ञा द्वारा भारतीय संस्कृति के अनेक अज्ञात पक्षों का पता लगाया था। उनकी बहुत कुछ सामग्री तो उनके पश्चात् बचाई नहीं जा सकी। किन्तु सुबोधगिरिजी ने अपने पास की सामग्री को तथा कई अन्य स्रोतों से भी उनकी रचनाओं को एकत्र करके उन्हें लोक कल्याण के लिये प्रकाशित करने के संकल्प को जीवित रखा। प्रभुकृपा से अब उनका संकल्प पूर्ण होने जा रहा है। यह प्रकाशन प्रो. ओबराय के प्रति उनकी सच्ची श्रद्धांजलि है। प्रभु से प्रार्थना है कि वे निरन्तर ज्ञानार्जन करते हुए ब्रह्मविद्या के आलोक को प्राप्त करें।

स्व. डा. हरवंशलाल ओबराय की रचनाओं को इन ग्रंथों के रूप में प्रस्तुत करने में उनके भ्रातात्रय (डॉ. मदनलाल ओबराय, श्री वृजभूषण ओबराय, श्री चन्द्रप्रकाश ओबराय) का सब प्रकार से श्लाघनीय सहयोग रहा है। उनके इस भावपूर्ण सहयोग के अभाव में ग्रंथों का प्रकाशन असंभव हो जाता। एतदर्थ वे साधुवाद के पात्र हैं। उन पर तथा उनके समूचे कुल पर प्रभु की कृपा बरसती रहे—यह शुभ कामना है।

—स्वामी संवित् सोमगिरि

विषय-वस्तु

जहाँ विश्व के अन्य देशों के धर्म-दर्शन-संस्कृति विज्ञान के सामने नतमस्तक हैं, हतप्रभ हैं, भयभीत हैं; वहाँ एकमात्र भारतीय धर्म-दर्शन एवं संस्कृति ही आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के लिये चुनौती बनकर ऊंचा मस्तिष्क कर खड़ी है।

18वीं शताब्दी तक धर्म-दर्शन-संस्कृति के क्षेत्र में भारत जगद्गुरु रहा है। कुछ काल से दिशा भ्रमित होने से अपने आदर्शों से च्युत प्रतीत होता है। इस काल में भी स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, ऋषि अरविन्द घोष, साधु वास्वानी, महर्षि रमण, रवीन्द्रनाथ टैगोर, डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती, माधवराव सदाशिवराव गोलवलकरजी, स्वामी अखण्डानन्दजी, भारती कृष्णतीर्थजी के कारण भारत का जगद्गुरुत्व बार-बार प्रमाणित हुआ है और आज भी भावी विश्व की आशा का केन्द्र भारत है।

प्रो. ओबराय को प्राचीन व अर्वाचीन भारतीय धर्म-दर्शन परम्परा का तथा पाश्चात्य परम्परा का प्रारम्भ से लेकर आज तक का विधिवत अध्ययन और आज की आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की परम्परा का सम्यक् ज्ञान था। फलतः आज के संदर्भ में हिन्दू धर्म-दर्शन-संस्कृति को प्रस्तुत किया है, व्याख्या की है।

प्रो. ओबराय का स्पष्ट अभिमत था कि दर्शन के क्षेत्र में भारत विश्व का शिरोमणि देश है। वास्तव में भारत ने अन्तर्जगत में डुबकी लगाकर जिन अमूल्य विचार रत्नों की उपलब्धि की है उसके सम्मुख शेष विश्व की समस्त सम्पदा फीकी पड़ जाती है। यह दुर्भाग्य की बात है कि पश्चिम में लिखित अधिकांश दर्शन के इतिहास अपनी कथा यूनान से प्रारम्भ करते हैं। यूनान में छठी शताब्दी ई.पू. से दार्शनिक चिन्तन प्रारम्भ होता है। जबकि भारत में यह काल प्रखर दार्शनिक वाद-विवाद का भास्वर मध्याह्न काल है। पश्चिम में जब प्रथम दार्शनिक थेल्स अनुमान लगा रहा है कि सम्भवतः जल ही सृष्टि का परम सत्य है। उस समय तक भारत में वैदिक दर्शन, उपनिषदों का महानतम वेदान्त दर्शन, कल्पसूत्र, जैन एवं बौद्ध दर्शन सभी पूर्णतः विकसित एवं प्रतिष्ठित हो चुके थे। अतः संसार में दर्शनशास्त्र का इतिहास भारत से प्रारम्भ होना चाहिये न कि यूनान से।

विषय-वस्तु को पहले खण्ड के सम्पादकीय में विस्तार से देखें।

शिव-गणेश-राम-कृष्ण हमारे देव-विग्रह ही नहीं अवतार विग्रह, कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड नायक परब्रह्म परात्पर ही नहीं, हमारे राष्ट्रीय महापुरुष के साथ-साथ अन्तरराष्ट्रीय मैत्री व सौहार्द के आधार भी हैं। इसलिये राममनोहर लोहिया जो स्वयं नास्तिक होते हुए भी राम, कृष्ण, शिव की चर्चा करते हैं, उन्होंने ही अन्तरराष्ट्रीय रामायण मेला की योजना प्रस्तुत की और उसको प्रारम्भ कराया। गीता का विश्वव्यापी महत्ता को ध्यान में रखते हुए ही इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्रीशम्भूनाथ श्रीवास्तव ने अपने एक महत्त्वपूर्ण निर्णय 'श्यामल रंजन मुखर्जी बनाम निर्मल रंजन मुखर्जी, ए.आई.आर. 2007' में केन्द्र सरकार से कहा है कि वह संविधान के अनुच्छेद 51 (क) मूल कर्तव्य के अन्तर्गत भगवद्गीता को राष्ट्रीय धर्मशास्त्र घोषित करे।

अतः रामायण केवल हिन्दुओं का धर्मग्रंथ ही नहीं भारत का राष्ट्रीय महाकाव्य है, साथ ही विश्व मानवता के मंगल का महाकाव्य भी। इसमें इतने ऊंचे नैतिक आदर्श और पारिवारिक मूल्यों का उपदेश है कि उसके बिना परिवार उजड़ जायेंगे और हमारा समाज नष्ट हो जाएगा।

सम्राट औरंगजेब के बड़े भाई दाराशिकोह भी अपने गुरु सरमद के पास बैठकर रामायण, गीता और उपनिषद् पढ़ा करते थे। गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन अब्दुर्रहीम खानखाना तथा पठान कवि रसखान भी रामायण के दीवाने थे। रहीम ने लिखा है—

रामचरित मानस विमल संतन जीवन प्राण,
हिन्दूआन को वेद सम यवनन प्रकट कुरान।

मलाया, इंडोनिजीया आदि देशों के मुसलमान आज तक बड़े चाव से रामायण पढ़ते हैं और बड़े उत्साह से रामलीला खेलते हैं। खुद मुहम्मद अली जिन्ना साहब ने जब वे कांग्रेस के मंत्री थे तब अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में भाषण करते हुए मुसलमान छात्रों से कहा था कि 'रामायण, महाभारत' हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय महाकाव्य हैं। इसको पढ़े-समझे बिना कोई हिन्दुस्तान को नहीं समझ सकता और न ही भारत राष्ट्र के साथ एकात्म हो सकता है। अगर मुस्लिम बंधु इस नसीहत को मानते तो देश विभाजन की कल्पना भी नहीं उठ सकती थी।

प्रसिद्ध क्रांतिकारी रामप्रसाद बिस्मिल की दूसरे क्रांतिकारी अश्फाक उल्ला से बड़ी दोस्ती थी, वे उसे अपना छोटा भाई मानते थे। उसे अपने घर साथ ले जाते और उसे लक्ष्मण कहकर पुकारते। सबकी नजर में वह राम-लखन की जोड़ी बहुत प्यारी थी। वे घर में साथ-साथ खाना खाते, साथ-साथ खेलते और साथ-साथ देशभक्ति का तराना गाते और अन्त में दोनों साथ-साथ फांसी चढ़ गये। एक बार अश्फाकउल्ला के पेट में भीषण दर्द हुआ। वे बेहोश हो गये, राम-राम चिल्लाने

लगे। घरवालों ने कहा, अल्लाह-अल्लाह बोलो। किन्तु वे राम-राम चिल्लाते रहे। जब रामप्रसाद बिस्मिल पहुँचे तो वे उठकर उनके गले से लिपट गये और कहा, अब मेरा राम आ गया है। इस दृश्य को देखकर लोगों को रामायण में वर्णित लक्ष्मण की बेहोशी के बाद राम से पुनः मिलने की याद आ गई। तो यह संस्कृति का चमत्कार है जो हमारी नस-नस में है। इसने सबके दिल को जोड़ा है। अश्फाक और बिस्मिल के दिल को एक बना दिया है। इस राह पर चलने से देश पुनः एक हो सकता है।

आज प्रश्न उठता है कि भारत में मुसलमानों की समस्या का हल क्या है? क्या दाराशिकोह, रहीम, रसखान, अश्फाक उल्ला ने मार्गदर्शन नहीं किया? यदि भारत के मुसलमान मुसलमान रहते हुए भी रहीम, रसखान के समान भारत एवं भारतीयता के भक्त रहते तो क्या भारतमाता खण्डित हो पाती! जो स्वयं को भारतीय तो कहे पर भारतीयता को अस्वीकारे तो वह कैसे भारतीय हो सकता है? वह कैसे राष्ट्रीय नागरिक हो सकता है? प्रो. ओबराय कहते थे—भारत के मुसलमानो! भारतीयता को स्वीकार करो। भारतीयता को स्वीकारते ही खण्डित देश के पुनः अखण्ड होने की उज्ज्वल आशा भारत के क्षितिज पर मुस्कराने लगेगी।

संसार के सभी निष्पक्ष विचारकों एवं द्रष्टाओं का यही मत है कि धर्म तो केवल हिन्दू धर्म ही है, शेष सब पंथ, सम्प्रदाय और मजहब मात्र हैं जो नश्वर मानवों द्वारा धरती के भिन्न-भिन्न भूखण्डों में काल-सरिता की नश्वर तिथियों पर किसी सीमित लौकिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये स्थापित किये गये, न वे अनादि हैं और न शाश्वत। हिन्दू धर्म ही मानव धर्म है, भावी विश्व का धर्म है। शाश्वत और सनातन है। ऐसा प्रो. ओबराय का भी स्पष्ट अभिमत था।

संस्कृति राष्ट्र की आत्मा है, भूखण्ड राष्ट्र का देह है, साहित्य उसकी दृष्टि है, भाषा उसकी वाणी है, सभ्यता उसका शृंगार है, कलायें उसका सौंदर्य है, विज्ञान उसका वैश्विक शोध है, अर्थ उसका भंडार है, संस्कृति उसका प्राण है। संस्कृति के बिना सब निष्प्राण हो जाएगा।

इकबाल का कथन है—

यूनानो मिस्र रोमां मिट गये जहाँ से

इसमें उन देशों के भूखण्ड अभी तक वर्तमान है किंतु उनकी संस्कृतियाँ मिट गयी।

भारत में राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है जबकि पश्चिमी राष्ट्र राजनीतिक इकाई से बनता है। पूरे यूरोप का भू-खण्ड भारत जितना ही है। यूरोप के रूस से लेकर आयरलैण्ड तक संस्कृति लगभग समान किन्तु बीसियों राष्ट्र। भारत में सन्

1947 तक ब्रिटिश शासन में साढ़े पांच सौ रियासतें थी। उससे पूर्व देश में हजारों छोटे-छोटे राज्य रहे होंगे। मारवाड़-मेवाड़, चोल-चालुक्य आपस में लड़ते रहते थे। राज्य अनेक थे। किन्तु संस्कृति एक होने के कारण राष्ट्र एक था।

भारत की राजनीतिक एकता चाहे अनेक बार खंडित होती रही है, किन्तु हमारी सांस्कृतिक एकता सनातन काल से अभेद्य रही है। वास्तव में उत्थान-पतन के अनेक झंझावातों में तथा विदेशी आक्रमण के प्रचण्ड बवण्डरों में भारत को सदा भारत रखने वाली यही सांस्कृतिक एकता ही उसकी संजीवनी शक्ति थी।

भाषायें बांटती है, संस्कृति जोड़ती है। राजनीति तोड़ती है, संस्कृति जोड़ती है। जातियाँ बांटती है, संस्कृति जोड़ती है। वर्ण, आश्रम, जाति-उपजाति, प्रदेश, वेश-भूषा, आर्थिक स्तर आदि को संस्कृति ने जोड़ रखा है।

भारतीय समाज नगरवासी, ग्रामवासी तथा वनवासी—तीन स्तरों पर विकसित हुआ है। किन्तु सभी स्तरों पर एक ही महान् संस्कृति का स्वर्णिम सूत्र पूरे समाज को एकात्मता में बांधने में सहायक सिद्ध हुआ है। अतः राष्ट्र की एकता का स्वर्णिम सूत्र संस्कृति ही है। यह सूत्र टूटते ही भारत खण्ड-खण्ड हो जायेगा।

जो संस्कृति अपने देश में समन्वय का स्वर्णिम सूत्र है, वही संस्कृति भारत के सांस्कृतिक दिग्विजय एवं अन्तरराष्ट्रीय-सम्बन्धों की प्राणधारा है। संस्कृति के स्वर्णिम सूत्र ने भारत को जगत्गुरु के सिंहासन पर बिठाया है। यदि समस्त दक्षिण-पूर्व-उत्तर एशिया के पचासों देश भारत को पुण्यभूमि मानकर भारत की कपिलवस्तु, गया, हरिद्वार की धूलि को मस्तक पर चढ़ाते हैं, यदि फिजी, गियाना, मारीशस, सूरीनाम, ट्रिनिडाड के लोग गंगा स्नान के लिये हजारों मील दूर से भारत यात्रा पर आते हैं तो केवल सांस्कृतिक-सम्बन्धों के कारण।

इंडोनेशिया के मुसलमान रामलीला-कृष्णलीला को राष्ट्रीय महोत्सव के रूप में मानते हैं। अपने देश में सबसे पहले अन्तरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन आयोजित करते हैं तो केवल सांस्कृतिक सम्बन्धों के कारण।

भारतीय समाज उत्सवप्रिय समाज है। उत्सव की प्रियता और अधिकता भारत की समृद्धि को उसके ऊँचे सांस्कृतिक स्तर को सिद्ध करती है। भारत सचमुच रत्नगर्भा शस्य श्यामला देश है जो थोड़े से प्रयास से ही हमारी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर देता है। जिस देश के वासियों का सारा समय दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति में लग जाता है उनके पास उत्सव पालन के लिए समय कहाँ? धन कहाँ? हमारे देश का सांस्कृतिक स्तर ऊंचा होने के कारण हमारे उत्सव मन को संस्कारित करने वाले, मन को ऊर्ध्वदिशा देने वाले, सत्य के प्रति निष्ठा जगाने वाले, देव विग्रह में, परब्रह्म परमात्मा में, आत्मा में निमज्जित करने वाले होते हैं। पर जिन देशों का सांस्कृतिक स्तर निम्न होता है उनके उत्सव मन को

कुपथ-गामी, अधोगामी, विषयी बनाने वाले होते हैं। जैसे रोम गुलामों की सबसे बड़ी मण्डी थी। जहाँ गुलामों को नग्न-अर्धनग्न रखा जाता था, उन्हें घर के दरवाजे या गली-कूचो में सोना पड़ता था। उनके जीवन में यदि कोई अपराध बन जाता था तो उनको जीवित समुद्र में मगरमच्छ के आगे डाल दिया जाता था, और निरपराध होने पर अपने मालिकों के मनोरंजनार्थ हिंस्र पशुओं से लड़ना पड़ता था। उनके हार जाने पर उनको मार कर उनके शव को रथ में बांध कर घसीटा जाता था। यही स्थिति इस्लाम-ईसाइयत आदि की है। रमजान के माह का पालन करने के पश्चात् काफिरों के घात का आदेश देते हैं उनके शास्त्र। पर हमारे देश का सांस्कृतिक स्तर ऊंचा होने के कारण हमारे मन में सत्य के प्रति अविचल निष्ठा को जगाती है, हमारे मन को अध्यात्मिक बनाने का प्रभुमय बनाने का प्रयास करती है, हमारे मन को सात्त्विक आनन्द से भर देती है। अतः भारतीय उत्सव हमारे राष्ट्रजीवन का प्राण है जो जन-जीवन में पुनः-पुनः प्राण संचार करता है और हमारे पूर्वजों की पुण्य परम्परा से, उसके कर्तृत्व-व्यक्तित्व से जोड़े रखता है।

विज्ञान का जनक पश्चिम नहीं भारत है। तीसरी शती ईसा-पूर्व के यूनानी वैज्ञानिक आर्कमिडीज से 17वीं सदी के ब्रिटिश वैज्ञानिक न्यूटन तक पश्चिम में लगभग 2000 वर्षों तक जब विज्ञान मर चुका था तब भी भारत में वैज्ञानिक प्रगति जारी थी। आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, श्रीधर, लीलावती आदि अनेक वैज्ञानिक हुए। जहाँ पश्चिम में 17वीं शती में धरती को गोल कहने पर गैलिलियो को कारागार में सता-सता कर मारा गया वहीं भारत की वैदिक परम्परा में ही 'भूगोल' (भूमि गोल), खगोल, ब्रह्माण्ड, अखण्डमण्डलाकारम् शब्द ही भारत को विज्ञान का जनक घोषित कर रहा है।

मनुष्य अपने जीवन काल में पूर्णता लाभ कर सके, परमलक्ष्य तक पहुँच सके इसके लिए मन का स्वस्थ, सबल और चिंतामुक्त होना अति आवश्यक है। अतः चिंता के क्या कारण है, चिंता के क्या दुष्प्रभाव हैं और चिंता से कैसे मुक्त होकर मन को स्वस्थ-सबल बना सकते हैं। चिंता सबके जीवन में आती है। पर यदि मन सबल होता है तो वह उसे विचलित नहीं कर पाती और वह छोटी मालूम पड़ती है और उससे वह उबर जाता है। पर यदि मन दुर्बल है तो चिन्तायें बड़ी प्रबल लगती हैं और वह उसे लक्ष्यच्युत कर विपथगामी बना सकती है। इसलिये कहा गया है मन के जीते जीत है, मन के हारे हार। मन के भी कई स्तर हैं जिस पर अनेक शोध कार्य व विशेष अध्ययन हो रहे हैं मनोविज्ञान-परामनोविज्ञान के अन्तर्गत।

दर्शन, शिव, गणेश, रामायण, गीता, धर्म, संस्कृति, उत्सव, विज्ञान, मनोविज्ञान सम्बन्धी लेख तीसरे खण्ड में संकलित किये गये हैं।

—स्वामी संवित् सुबोधगिरि

परामर्श मण्डल

खण्ड 1 : राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास

खण्ड 2 : महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

खण्ड 3 : धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान

मूल्य : 1200 रु. (तीनों खण्ड) प्रत्येक 400 रु.

अनुक्रम

दर्शन

शिव-गणेश

रामायण

गीता-भगवान् कृष्ण

हिन्दू धर्म-संस्कृति

उत्सव

विज्ञान

मनोविज्ञान

भारतीय दर्शन की पूर्णता

दर्शन का इतिहास भारत से न कि यूनान से

दर्शन के क्षेत्र में भारत विश्व का शिरोमणि देश है। वास्तव में भारत ने अन्तर्जगत् में डुबकी लगा कर जिन अमूल्य विचार-रत्नों की उपलब्धि प्राप्त की है उसके सम्मुख शेष विश्व की समस्त सम्पदा फीकी पड़ जाती है। यह दुर्भाग्य की बात है कि पश्चिम में लिखित अधिकांश दर्शन के इतिहास अपनी कथा यूनान से प्रारम्भ करते हैं। यूनान में छठी शताब्दी ई. पू. से दार्शनिक चिन्तन प्रारम्भ होता है, जबकि भारत में यह काल प्रखर दार्शनिक वाद-विवाद का भास्वर मध्याह्न काल है। पश्चिम में जब प्रथम दार्शनिक थेल्स अनुमान लगा रहा है कि सम्भवतः जल ही सृष्टि का परम सत्य है। उस समय तक भारत में वैदिक दर्शन, उपनिषदों का महानतम वेदांत दर्शन, कल्पसूत्र, जैन एवं बौद्ध आचार्य दर्शन—सभी पूर्णतः विकसित एवं प्रतिष्ठित हो चुके थे। अतः संसार में दर्शनशास्त्र का इतिहास भारत से प्रारम्भ होना चाहिए न कि यूनान से।

संसार में श्रेष्ठतम आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि एवं बौद्धिक दर्शन

डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में—'संसार भर में सम्भवतः आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि अथवा बौद्धिक दर्शन की ऐसी कोई भी ऊँचाई नहीं है कि जिसका सममूल्य वैदिक ऋषियों और अर्वाचीन नैयायिकों के मध्यवर्ती विस्तृत ऐतिहासिक-काल में न पाया जाता हो।'

भारतीय दर्शन की पाश्चात्य दर्शन की तुलना में श्रेष्ठता

सर डब्ल्यू हंटर के शब्दों में—'भारतीय दर्शन ने उन समस्त दार्शनिक गुत्थियों के संभावित समाधान खोज लिए थे, जो गुत्थियाँ प्रारम्भ से यूनानियों, रोमनों और मध्यकालीन यूरोपीय चिन्तकों को परेशान करती रहीं और आज तक वैज्ञानिकों को भी उलझन में डाले हुए हैं।'

मिसेज़ मैनिंग़ के शब्दों में—'हिंदुओं के मन एवं चिन्तन का उतना अधिकतम विस्तार हो चुका था जितना मानव के लिए कभी भी सम्भव हो सकता है।'

प्रो. श्लेगल (जर्मनी) कहते हैं—'यूरोप का सर्वोच्च दर्शन, बौद्धिक अध्यात्मवाद, जो यूनानी दार्शनिकों से प्रारम्भ हुआ, प्राच्य अध्यात्मवाद के अनंत प्रकाश एवं प्रखर तेज के सम्मुख ऐसा प्रतीत होता है जैसे मध्याह्न के प्रखर सूर्य के दिव्य प्रकाश के भरपूर वेग के सम्मुख एक मन्द-सी चिनगारी हो जो धीरे-धीरे टिमटिमा रही हो और किसी भी समय बुझ सकती है।'

काउंट जॉर्न्स जेर्ना का कथन है—'यूनान और रोम के दार्शनिकों की तुलना में हिंदू दार्शनिक बहुत-बहुत आगे थे।'

प्रो. वेबर का मूल्यांकन है—'दर्शन के ही क्षेत्र में भारतीय मनीषा ने चमत्कारी प्रतिभा के सर्वोच्च शिखर को प्राप्त किया था।'

दर्शन मात्र बौद्धिक वाणी-विलास नहीं वरन् जीवन की सर्वोच्च साधना

भारत में पश्चिम की तरह दर्शन केवल बुद्धि व्यायाम अथवा वाणी का विलास मात्र नहीं था वरन् वह तो जीवन की सर्वोच्च साधना ही थी। जीवन का परम लक्ष्य है पूर्णत्व, अमरत्व अथवा मोक्ष को प्राप्त करना। तदर्थ सत्य का साक्षात्कार अनिवार्य है। सत्य की उपेक्षा करके केवल दिमागी उछल-कूद या बुद्धि के बन्दर-नाच से कोई पूर्ण पुरुष या मुक्त पुरुष नहीं बन सकता। गुरुग्रंथ साहिब में लिखा है—

चतुराई न चतुर्मुख पाया।
भोले भाव मिले रघुराया।। (रविदास)

पश्चिम ने आर्मचेयर फ़िलॉसफ़र (आरामकुर्सी दार्शनिक) अधिक पैदा किए हैं। उदाहरण के रूप में इंग्लैण्ड के बर्ट्रेण्ड रसेल पश्चिम के महानतम विचारक माने जाते थे, किन्तु 80 वर्ष की अवस्था में 16 वर्ष की सुन्दरी से जीवन का 16वाँ विवाह रचाते हैं, आराम से कुर्सी में पड़े हुए, मुख में सिगार लिए, एक ओर सुरा दूसरी ओर सुन्दरी को थामे हुए दार्शनिक समस्याओं पर लिखने या बोलने वाले विलासी व्यक्ति के दर्शन को खोपड़ी के खेल से अधिक और क्या कहा जा सकता है?

भारत में दर्शन को जीवन की परम साधना एवं सर्वोच्च सिद्धि माना गया है।

गीता के दार्शनिक भगवान् कृष्ण, भगवान् बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य आदि क्रियात्मक दार्शनिक थे, जिनकी कथनी-करनी में खाई नहीं थी। इसलिए भारत में दर्शन केवल मनोरंजन या बुद्धिरंजन का विषय न होकर जीवन की जीवन्त साधना का अंग रहा है।

वेद

भगवान् मनु ने कहा—**वेदोऽखिलो धर्ममूलम् ।**

अर्थात् वेद समस्त धर्मों का मूल है। वेद की सर्वोच्च महत्ता इसी बात में है कि वह विश्व का प्राचीनतम ग्रंथ है। वेद का काल निर्णय करना विद्वानों के लिये अभी तक चुनौती बना हुआ है।

(क) प्राचीन भारतीय आस्तिक विद्वानों का मत है कि वेद अनादि हैं। अर्थात् किसी काल विशेष में इनका आरंभ या प्रणयन नहीं हुआ।

(ख) यूरोप के विद्वानों को जब वैदिक साहित्य का परिचय हुआ तो वे इस प्राचीनतम साहित्य की ओर कहीं श्रद्धा से कहीं जिज्ञासा से आकर्षित होने लगे। मैक्समूलर ने कहा, ऋग्वेद Rgveda is the oldest book in the human library of man. प्रारम्भ में उन्होंने वेद के प्रति ध्यान देने का अनुमोदन इसी आधार पर किया कि यह मानव जाति की शैशवावस्था का परिचय है। अर्थात् जैसे बच्चे की तोतली बोली में न ऊँचा ज्ञान होता है और न मधुर संगीत फिर भी उसमें शिशु की निर्दोष वाणी का कुतूहल प्राप्त होता है। इनके अनुसार वेद मानवता के बचपन की कहानी है। मानवता या मनुष्य अपने शैशवकाल में क्या सोचती थी? उसकी जिज्ञासा या बौद्धिक विकास कहाँ से प्रारम्भ हुआ है? Vedas are the story of childhood of humanity इसलिए मानव के शैशवकाल को जानने के लिये वेद का अध्ययन किया जाना चाहिये।

(ग) मैक्समूलर के इस मत का भारतीय विद्वानों ने विरोध किया। क्योंकि वेद का अर्थ ही ज्ञान है और स्वामी दयानन्द के मत में वेद सब सत् विद्याओं का मूल है और पूर्णज्ञान का परिपूर्ण भण्डार है। बाद में मैक्समूलर ने जीवन के 20-25 वर्ष लगाकर ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद किया तथा अन्त में श्रद्धापूर्वक यह श्लोक लिखा—

श्रमण्य देश जातेन श्री गौ तीर्थ वासिना
मोक्षमूलर भट्टेन वेदोऽयं सम्पादितः ।

अर्थात् जो श्रमण्य देश में पैदा हुआ और आजकल गो तीर्थ में रहता है, उस मोक्षमूलर भट्ट के द्वारा यह वेद सम्पादित किया गया है।

इससे मोक्षमूलर की भारत भक्ति झलकती है। वे जिज्ञासुओं के पूछने पर बताते थे—श्रमण्य देश का अर्थ जर्मन देश है और गो तीर्थ का अर्थ आक्सफोर्ड है। अंग्रेजी का cow और oxe दोनों के लिये गो शब्द का प्रयोग होता है। फोर्ड का अर्थ होता है नदी को पार करना (This river is fordable), Ford का दूसरा अर्थ होता है पार जाना, पार पाना, तर जाना aford का अर्थ है पार पाना, वहन करना, सहन करना। अतः इंग्लैण्ड और यूरोप के नदी तीरों पर बसे हुए अनेक नगरों के नाम में Ford शब्द का प्रयोग होता है जैसे Oxford, Badford, State Ford आदि। क्योंकि Ford का अर्थ भीतर जाना है और तीर्थ का अर्थ भी तरने वाला और तारनेवाला होता है तथा भारत में नदी तीर पर बसे हुए नगरों को तीर्थ कहा जाता है। अतः मैक्समूलर ने जो (ऑक्सफोर्ड University के प्रोफेसर थे) श्रद्धापूर्वक ऑक्सफोर्ड को गोतीर्थ लिखकर अपनी भारत भक्ति का परिचय दिया। इसी प्रकार उन्होंने अपने नाम को मैक्समूलर के स्थान पर मोक्षमूलर (अर्थात् मोक्ष के मूल वाला तथा अपनी उपाधि वेदोद्धारक कुमारिल भट्ट के समान भट्ट लिखा।

(घ) जर्मनी में वेद की सब शाखाओं को संग्रह करने का इतना चाव बढ़ गया कि हस्तलिखित संस्कृत ग्रंथों का सम्भवतः भारत से भी अधिक बड़ा भण्डार जर्मनी ने संग्रह कर लिया। आज तक जर्मनी अपने को वेदों का दूसरा धाम Second home of Vedas कहकर प्रचारित करता है।

(ङ) भारत में ब्रिटिश साम्राज्य आने के उपरान्त अंग्रेजों ने कूटनीतिक विचार किया कि यदि वेद संसार का प्रथम ग्रंथ माना जाता रहा तो भारत संसार का प्राचीनतम राष्ट्र सिद्ध हो जायेगा। जिससे भारत की राष्ट्र भावना एवं स्वतंत्रता की तड़प को बल मिलेगा। सेमेटिक धर्म (यहूदी, ईसाई, मुसलमान) यह परम्परागत विश्वास रखते आये हैं कि यहूदियों की पुस्तक old testament पुरानी बाईबिल जो ईसा से चार हजार वर्ष पूर्व की मानी जाती है, संसार की प्राचीनतम पुस्तक है। यदि वेद उससे अधिक प्राचीन सिद्ध हो जावे तो उनकी धार्मिक श्रद्धा को ठेस पहुँचती थी और भारतीयों का आत्मगौरव जागृत हो जाने पर उन्हें गुलाम बनाये रखना असम्भव था। अतः सन् 1857 की क्रांति के बाद जब मैकाले की अंग्रेजी शिक्षा लागू की गई तो शिक्षा को अंग्रेजी बना दिया गया और विदेशी इतिहासकारों ने भारतीयों का मनोबल तोड़ने तथा आत्मगौरव को चोट पहुँचाने के लिए इतिहास के ग्रंथों में ऐसी अनर्गल एवं निन्दापूर्ण बातें लिखनी प्रारम्भ की जिससे वेद की प्राचीनता एवं महत्ता, दोनों कम हो जाय। उन्होंने लिखा, आर्यलोग भारत के मूल

निवासी न होकर मध्य एशिया के मैदानों से भारत में आक्रान्ता के रूप में आये। वैदिक ऋषि गडेरिये थे और वेद मंत्र गडेरियों के गीत हैं।

वेद के काल का समय भी ईसा से 1200 वर्षों से पूर्व से लेकर 2000 वर्ष के पूर्व के बीच का बताया। इतिहास की धोखाधड़ी में अंग्रेजों का कूटनीतिक उद्देश्य था old testament को संसार का प्राचीनतम ग्रंथ सिद्ध करना।

पश्चिमी देशों में गीता के बढ़ते हुए महत्त्व को देखकर पादरी लोरंसर जैसे धर्मोन्मादी लेखकों ने गीता के काल को भी ईसाइयों की बाईबिल के बाद का बताया और कहा कि गीता बाइबिल के sermon on the mount से प्रभावित है।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने जहाँ एक ओर राजनीतिक स्वाधीनता के लिये 'स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है' का मंत्र दिया वहाँ भारत की सांस्कृतिक श्रेष्ठता के प्रतिपादन के लिए विदेशियों के सभी मिथ्या कुप्रचारों का प्रबल तर्कयुक्त उत्तर दिया। उन्होंने 'ओरायन' नामक ग्रंथ में सिद्ध किया कि वेद अन्तर्साक्ष्य के आधार पर वेद में वर्णित अग्राहयण नक्षत्र का काल ज्योतिष गणना के आधार पर ही ईसा से कम से कम सात हजार वर्ष पूर्व सिद्ध होता है और प्रति दस हजार वर्ष के चक्र के पश्चात् पुनः वही स्थिति आ जाती है। अतः वेद के उन मंत्रों का काल आज से कम से कम 9 हजार वर्ष पूर्व तो सिद्ध हो ही जाता है। उससे पहले कितने 10-10 हजार वर्ष के कालचक्र बीते होंगे, इस पर और शोध की आवश्यकता है। लोकमान्य की ओरायन नामक पुस्तक से मैक्समूलर तथा यूरोप के बड़े-बड़े प्राच्य विद्या विशारद अत्यन्त प्रभावित हुए। लोकमान्य ने सिद्ध किया कि आर्यलोग मध्य एशिया से नहीं आये थे। क्योंकि उनके साहित्य में (वेद में) जहाँ सप्त सिंधव का वर्णन है, जिन-जिन नदी तीरों पर ऋषियों को मंत्रों का दर्शन हुआ, उनका वर्णन है। वहाँ मध्य एशिया की किसी नदी, पर्वत अथवा प्राकृतिक वातावरण का कहीं उल्लेख तक नहीं है। उधर मध्य एशिया में भी आर्य जाति के मूल निवास का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

लोकमान्य तिलक ने गीता रहस्य में लोरंसर जैसे धर्मान्ध पादरियों को करारा उत्तर देते हुए सिद्ध किया कि गीता के बाइबिल से प्रभावित होने का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि गीता का काल ईसा से तीन हजार वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। उलटे गीता से ही बाइबिल में अनेक विचार एवं सिद्धांत चुराये गये हैं।

(छ) डा. ज्वालाप्रसाद सिंहल ने अपने ग्रंथ The Sphink speaks में यह स्थापित किया कि वेद का काल कम से कम 25 लाख वर्ष पूर्व का है। उन्होंने महाप्रलय की पौराणिक तिथि को अपनी गणना का आधार माना है।

(ज) भारत की प्राचीन परम्परा एवं आधुनिक आर्य समाज की मान्यता यह है कि वेद अनादि एवं अपौरुषेय हैं। इसके प्रारम्भिक लेखन की कोई तिथि है ही

नहीं। तिथि के ज्ञात या अज्ञात होने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। यह किसी पुरुष की रचना है ही नहीं अतः अपौरुषेय हैं। ये साक्षात् परमेश्वर की वाणी अथवा ईश्वर का निःश्वास है। अतः वेद भगवान् उतना ही प्राचीन है जितना परब्रह्म परमेश्वर। हर बार महाप्रलय के पश्चात् जब नयी सृष्टि होती है तब भगवान् कुछ ऋषियों के अन्तर में वेद ज्ञान का प्रकाश करते हैं। आर्य समाज की मान्यता है कि यही वेद अक्षरशः यही संहितायें हर बार महाप्रलय के पश्चात् मानवता के मार्गदर्शन के लिए ईश्वर की कृपा से प्रकट होती हैं।

पाणिनि एवं महामुनि यास्क का मत—ऋषयो मन्त्र द्रष्टारः। अर्थात् ऋषि मंत्र द्रष्टा हैं सृष्टा नहीं। इस प्रकार ऋषि मंत्रों के रचयिता नहीं वरन् संवाददाता या सम्पादक के समान हैं।

इसके विपरीत पश्चिमी विद्वान ऋषियों को ही मंत्रों के कवि और रचयिता मानते हैं। इससे वेद अपौरुषेय न होकर पौरुषेय बन जाते हैं। यही पूर्व और पश्चिम के दृष्टिकोण में भेद है।

क्या वेद में इतिहास है ?

इस विषय में विद्वानों में तीव्र मतभेद हैं। कट्टर आर्य समाजी विद्वानों का मत है कि वेद में इतिहास नहीं है। इतिहास पहले घटी हुई मानवीय घटनाओं का वृत्तांत है। यदि वेद से पहले मानव का जन्म एवं क्रिया-कलाप घट चुका है, तभी वेद में इतिहास का विवरण आ सकता है अन्यथा नहीं। यदि वेद ही सृष्टि का ज्ञान प्रकाश है और वह ईश्वरीय ज्ञान है तो उसमें मानवीय इतिहास का कोई स्थान अथवा सम्भावना नहीं। वेद में इतिहास मान लेने से वेद का अपौरुषेय रूप नष्ट हो जाता है। इसलिए आर्यसमाजी विचारकों की खुली घोषणा है कि वेद में इतिहास नहीं है। समझने के लिए—इतिहास का अर्थ है पहले घटनाएं घटती हैं, उसके बाद उसका इतिहास लिखा जाता है। जैसे शिवाजी के होने के पश्चात् शिवाजी का इतिहास लिखा गया। अगर वेद में इतिहास माना जाय तो वेद बाद का ज्ञान सिद्ध होता है। यानी वेद में जिनका-जिनका इतिहास है उनके पश्चात् वेद प्रकाशित हुआ है, ऐसा मानना पड़ेगा।

दूसरी ओर देशी और विदेशी अनेक विद्वान हैं जो वेद में इतिहास मानते हैं और वेद में वर्णित सुपरिचित मानवीय नामों को ऐतिहासिक पात्र बताकर उनकी बोध कथाओं की विवेचना करते हैं।

आर्यसमाजी विचारक वेद में आये हुए मानवीय नामों की अध्यात्मिक व्याख्या करके काम निकाल लेते हैं। कई प्रसंगों की प्रतीकात्मक व्याख्या बड़ी सुन्दर बन पड़ी है।

तो आर्य समाजियों का मत है वेद में इतिहास नहीं है। और जहाँ-जहाँ इतिहास है वहाँ-वहाँ वे उसका नक्षत्र वैज्ञानिक अर्थ और अध्यात्मिक अर्थ निकालते हैं। जैसे वेद में अहल्या का वर्णन है। इसका अध्यात्मिक अर्थ इस प्रकार लगाते हैं—अहल्या का अर्थ है जिस भूमि पर हल नहीं चलाया गया है। हल नहीं चलाने से भूमि कठोर हो जाती है यानी पत्थर के समान हो जाती है। सीतापति का अर्थ होता है हल या हल में जो फल लगा होता है जिससे धरती चीरी जाती है उसको सीता कहते हैं और हल चलने पर भूमि नरम मुलायम हो जाती है।

(अपूर्ण)

हम वेदों तक पहुँचे वह सभी पूर्व शताब्दियों की तुलना में इस शताब्दी का सर्वश्रेष्ठ सद्‌भाग्य कहा जा सकता है।

उपनिषदों में पाये जाने वाले अद्‌भूत सिद्धान्तों का उल्लेख करते हुए शोपेनहावर ने फिर कहा है—ये सिद्धान्त ऐसा ही है जो एक प्रकार से अपौरुषेय ही है। ये जिनके मस्तिक की उपज है, उन्हें निरे मनुष्य कहना कठिन है।

अमरीकन महिला ह्वीलर विल्लाक्स कहती है—भारत वेदों की भूमि है, जिसके अन्दर न केवल पूर्ण जीवन के पूर्णत्व के लिए धार्मिक तत्त्वों का निरूपण है, वरन् उन तथ्यों का भी निर्देश है जिनको आज विज्ञान शास्त्र ने सत्य प्रमाणित किया है। वैदिक ऋषियों को विद्युत शक्ति, रेडियम, इलेक्ट्रोन तथा वायुयान आदि सब बातों का ज्ञान था, ऐसा प्रतीत होता है।

× × ×

यह एक बड़ी आश्चर्यजनक बात है। ईश्वरीय धर्मग्रंथों में एकमात्र वेद ही ऐसा है जिसके विचार वर्तमान विज्ञान के साथ पूर्ण साम्य रखते हैं क्योंकि वेद में भी विज्ञान के अनुसार विश्व की क्रमिक रचना का प्रतिपादन है।

—श्री जकोलियट

उपनिषद् की शिक्षा प्रणाली

भारत विश्व-दर्शन का आदिस्रोत है। पश्चिम में दर्शन का प्रथम उन्मेष सुकरात, अफलातून तथा अरस्तू के काल में माना जाता है, जो यूनानी दर्शन के जनक कहे जा सकते हैं। उनसे पहले के यूनानी दार्शनिक थेलीज़ एवं अनेक्ज़ीमीनर आदि में से कोई तो जल, कोई अग्नि को ही परम सत्य मान कर सन्तोष करने वाले विचारक थे, जिनका विचारों के संसार में कोई विशेष महत्त्व नहीं है। फिर भी जिस समय यूनानी दर्शन अपना प्रथम नेत्र खोल रहा था उस समय भारतीय दर्शन अपनी पूर्ण परिपक्वता की पराकाष्ठा पर था। उस समय भारत में न्याय, वैशेषिक, सांख्य-योग, वेदान्त, जैन, बौद्ध आदि दर्शनों पर गंभीर शास्त्रार्थ, भाष्य एवं शोध चल रहे थे। अतः विश्व में दर्शन का इतिहास यूनान से प्रारम्भ न होकर भारत से ही प्रारम्भ माना जाना चाहिए। विश्व में दर्शन की आदि-जननी भारतभूमि ही है तथा विश्व में धर्म एवं दर्शन के आदिस्रोत वेद ही हैं।

वेद में मानव के मौलिक, दार्शनिक प्रश्न मुखरित हुए हैं तथा उनके गहनतम उत्तर भी दिये गए हैं। वेद में ज्ञान-भक्ति-कर्म तीनों की त्रिपथगा गंगा प्रवाहित हो रही है। वैदिक वाङ्मय के ज्ञान खण्ड का नाम ही उपनिषद् है। उपनिषद् शब्द संस्कृत के दो शब्दों के संयोग से बना है। उप + निषद्, उप का अर्थ है निकट और निषद् का अर्थ है बैठना। अतः शिष्य द्वारा गुरु के निकट बैठकर आध्यात्मिक जिज्ञासा की पूर्ति हेतु किये गए पारस्परिक वार्तालाप को उपनिषद् कहा जाता है।

उपनिषद् शैली—सर्वोत्तम शिक्षा प्रणाली

विश्व में आज तक जितनी प्रकार की शिक्षा प्रणालियाँ विकसित हुई हैं उनमें सर्वोत्तम शिक्षा प्रणाली उपनिषद् की प्रणाली ही है। इसमें गुरु तथा शिष्य आमने-सामने बैठकर सत्य के प्रति अनन्य निष्ठा का व्रत ले कर विश्व के महानतम ज्ञान का आदान-प्रदान करते हैं। शिष्य के मन में जब-जब जो-जो शंकायें प्रकट होती हैं वह तुरंत उन्हें गुरु के सम्मुख प्रस्तुत कर उनका समाधान पाता जाता है। आजकल की कक्षा-शिक्षण प्रणाली की शिक्षा में यह सम्भव नहीं। कक्षा में शिक्षक एक लेक्चरर के रूप में होता है जो चालीस-पचास छात्रों की कक्षा में एक कृत्रिम एवं

अवांछनीय दूरी से अपना भाषण झाड़ कर चला जाता है, उसे छात्रों के वास्तविक ज्ञानवर्धन, उनकी आन्तरिक जिज्ञासाओं की परितृप्ति की कोई चिन्ता नहीं होती। यदि किसी छात्र के मन में कोई बहुत ही गम्भीर एवं जीवन का निर्णायक प्रश्न चुभन दे रहा हो तब भी वह सामाजिक संकोच, अध्यापक की दूरी तथा कक्षा के कृत्रिम अनुशासन के भय से अपनी जिज्ञासा का गला घोंट कर ही रह जाता है। इस प्रकार ज्ञान की जननी जिज्ञासा की हत्या हो जाती है। इससे ज्ञान की क्या दुर्दशा होगी इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का मूल मंत्र है—

ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु, सह वीर्यम् करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

इसमें गुरु एवं शिष्य आमने-सामने बैठकर प्रतिज्ञा करते हैं—'ईश्वर हम गुरु शिष्य दोनों की साथ-साथ रक्षा करें, हम ज्ञान के फलों को साथ-साथ भोगें, हम दोनों की शक्ति सांझी हो, हमारा पढ़ा और पढ़ाया हुआ तेजस्वी हो। हम परस्पर द्वेष कभी न करें। ईश्वर हमें त्रिविध शान्ति प्रदान करें।'

उपनिषदों की इस वार्तालाप शैली की शिक्षा से जो गुरु-शिष्य सम्बन्ध निर्माण होता था वह पूरे जीवन में एक नैतिक तथा आध्यात्मिक क्रान्ति ला देता था। आजकल की शिक्षा प्रणाली में गुरु-शिष्य का सजीव सम्पर्क लुप्त हो चुका है, इसी कारण शिक्षा क्षेत्र में भयंकर अशान्ति व्याप्त है जिसकी चोट गुरु एवं शिष्य दोनों भुगत रहे हैं। उपनिषद् का शिष्य अपने प्रश्नों में बड़ा निर्भीक है तथा उपनिषद् का गुरु अपने ज्ञान में उदार होते हुए भी पात्रता का विचार करके ही ज्ञान का अमूल्य रत्न बांटता है। कठोपनिषद् में भारत का एक छोटा सा बालक 'नचिकेता' सत्य की प्राप्ति के लिए साक्षात यमराज से वार्तालाप करता है तथा हजारों प्रलोभन मिलने पर भी सत्य-ज्ञान प्राप्ति के पथ से विचलित नहीं होता। इसी प्रकार ब्रह्माजी ब्रह्म-ज्ञान उपदेश से पूर्व इन्द्र एवं विरोचन दोनों की पात्रता का परीक्षण करते हैं। याज्ञवल्क्य एवं मैत्रेयी संवाद तथा याज्ञवल्क्य-गार्गी संवाद विश्व के अमूल्य दार्शनिक वार्तालाप हैं।

मानव जीवन का सबसे प्रथम एवं आधारभूत प्रश्न है—कोऽहम? अर्थात् 'मैं कौन हूँ?' उपनिषद् के ऋषि इसी आत्मतत्त्व की विस्तृत एवं पूरी व्याख्या करके उत्तर देते हैं—

'सोऽहम' मैं वही हूँ जो परब्रह्म परमेश्वर है। आत्मा तथा परमात्मा की इस अन्तर्भूत एकता का दर्शन ही उपनिषद् विद्या है। इसे ही अध्यात्म विद्या, आत्मविद्या, ब्रह्मविद्या कहते हैं। यही सच्ची विद्या या पराविद्या है। इसके अतिरिक्त शेष सब विद्याओं को अपराविद्या ही माना गया है।

वृहदारण्यक उपनिषद् में देवर्षि नारदजी बाल ब्रह्मज्ञानी सनतकुमार जी से कहते हैं कि 'मैं धरती से आकाश तक की समस्त विद्याएं जानता हूँ। किन्तु फिर भी मुझे शान्ति नहीं मिली, इस पर सनतकुमार जी पूछते हैं, 'हे नारदजी, क्या आपने जानने वाले को भी जान लिया है? क्या आपने द्रष्टा को भी देख लिया है?' इस पर नारदजी के मौन हो जाने पर सनतकुमार जी कहते हैं कि बिना ज्ञाता को जाने सब ज्ञान अज्ञान बन जाता है।' वही बात आज तक आधुनिक मानव की अशान्ति का कारण बनी हुई है। मानव बहिर्मुखी दृष्टि से विश्व की हर वस्तु को जानने के लिए व्याकुल है। किन्तु स्वयं अपने आप के प्रति अन्धा बना हुआ है। उपनिषद् मानव की इसी आधारभूत भूल का सुधार करता है तथा उसे विश्व के महानतम रहस्यों के रहस्य का बोध स्वयं अपने भीतर करा देता है। यह महान् आश्चर्य है कि मानव का ही समस्त जीवन नहीं, वरन् सृष्टि के आदि से अन्त तक सभी जीवों की जीवन साधना स्वयं आत्मा द्वारा अपने भीतर ही अपने आत्म तत्त्व को ही खोजने की सतत साधना है। कवि इकबाल के शब्दों में—

ढूँढ़ता फिरता हूँ मैं, इकबाल अपने आपको।
आप ही गोया मुसाफिर, आप ही मंजिल हूँ मैं।।

'उप', और 'नि' ये दो उपसर्ग और 'सद्' धातु से यह शब्द बना है। उपनिषदों ने ही स्वयं इस शब्द की व्याख्या इस तरह सूचित की है—'यदा वै बली भवति, अथा उत्थाता भवति, उपसीदन द्रष्टा भवति, श्रोता भवति, मन्ता भवति, बौद्धा भवति, कर्ता भवति, विज्ञाता भवति।' (छां. 7/8/1) जब मनुष्य बलवान होता है तब वह उठकर खड़ा होता है और उठकर खड़ा होने पर गुरु की सेवा करता है। फिर वह गुरु के पास (उप) जाकर बैठता है (सद्), पास में जाकर बैठने पर वह गुरु का जीवन ध्यान से देखता है, उनका व्याख्यान सुनता है, उसे मनन करता है, समझ लेता है, और उसके अनुसार आचरण करता है। उसमें से अन्त में उसे विज्ञान यानी अपरोक्षानुभूति का लाभ होता है। वही उपनिषद् है। 'नि' अर्थात् 'नितराम्' निष्ठा से—यह उपसर्ग इस व्याख्या में छूट गया सा दीखता है। परन्तु सेवा में निष्ठा आ ही जाती है।

किन्तु 'नि' उपसर्ग का यह सूचित अर्थ स्पष्ट करने वाली और 'सद्' धातु का दूसरा अर्थ लेकर मानों और एक व्याख्या उपनिषद् में एक दूसरी जगह सुझाई गई है—'ब्रह्मचारी आचार्यकुलवासी, अत्यन्तम् आत्मानम् आचार्य कुले अवसादयन्' (छां. 2/23/1)। ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरु के पास रहकर (उप.), गुरु-सेवा में अपने-आपको अत्यन्त यानी विशेष रूप से (नि.) खपाने वाला (सद्) जो रहस्यभूत विद्या प्राप्त करता है, वह है उपनिषद्।

दोनों पर्यायों को एकत्र करके अर्थ इस प्रकार निष्पन्न होगा—1. आत्मबल 2. उत्थान 3. ब्रह्मचर्य, 4. गुरु सेवा में शरीर को निःशेष खपा देना, 5. गुरु (हृदय) सान्निध्य, 6. जीवन-निरीक्षण 7. श्रवण, 8. मनन, 9. अवबोधन, 10. आचरण और 11. अनुभूति—इतना सारा भाव इस छोटे-से शब्द में अंतर्निहित है। इस तरह 'उपनिषद्' शब्द से समग्र ज्ञानसाधना और उससे फलित होने वाला ज्ञान दोनों ही सूचित होते हैं। 'अमानित्वम्' अदम्भित्वम्, आचार्योपासनम्, आदि प्राथमिक सद्गुणों से लेकर 'अध्यात्मज्ञान-नित्यत्वम् तत्वज्ञानार्थ दर्शनम्' तक सारा साध्य-साधन गीता ने 'ज्ञान' शब्द से भर दिया है। ठीक वैसे ही व्यापक अर्थ का यह 'उपनिषद्' शब्द है। उपनिषद् के विषय विवेचन का विस्तार इस व्यापक व्याख्या के अनुरूप ही है।

जर्मन दार्शनिक शोपनहावर जब मृत्यु-शय्या पर पड़ा था उस समय उसे उपनिषद् का अनुवाद प्राप्त हुआ, जिसे पढ़कर वह विस्मय विमुग्ध होकर कहता है 'यह अनुपम ग्रंथ आत्मा की गहराइयों को हिलकोर डालता है। इसके प्रत्येक वाक्य से मौलिक, गम्भीर और बड़े ही ज्योतिष्मान विचार ऊपर उठते हैं। हमारे चारों ओर भारतीयता का वातावरण आप से आप खड़ा हो जाता है तथा ऐसा प्रतीत होता है मानो यह विचार हमारे आत्मिक बन्धु के विचार हो। हमारे मनों पर यहूदी संस्कार की जो रूढ़ियाँ और अंधविश्वास छाये हुए हैं वे उनके स्पर्श मात्र से एकबारगी धुल जाते हैं। सारे संसार में इसके जोड़ का कोई ग्रंथ नहीं हो सकता। जीवन भर में मुझे यही एक आश्वासन प्राप्त हुआ है तथा मृत्यु पर्यन्त यह आश्वासन मेरे साथ रहेगा।

भारतीय दर्शन की छः विचारधाराएं

श्री ए. एल. बशरम (A. L. Bashram) ने इन 6 विचारधाराओं को 'षड्दर्शन' नाम दिया है। इस संस्कृत शब्द का अर्थ ही दर्शन है। दर्शन का शाब्दिक अर्थ एक झलक या सत्य का दर्शन है। भारत में वेदों पर आधारित 6 पुरातन विचारधाराएं हैं—न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, सांख्य दर्शन, योग दर्शन, मीमांसा दर्शन और वेदान्त दर्शन।

इसके अतिरिक्त तीन अन्य विचारधाराएं हैं :

चार्वाक, बौद्ध धर्म और जैन धर्म

Schools are different but not divergent विचारधाराएं भिन्न हैं किन्तु उनमें अलगाव नहीं। इन 6 विचारधाराओं में कहीं भी विरोध नहीं है। यह सब परम सत्य को देखने के अलग-अलग दृष्टिकोण हैं। इस प्रकार पूर्णता को पाने के 6 अलग अध्ययन हैं। न्याय दर्शन तर्क-वितर्क की प्रणाली है। वैशेषिक ब्रह्मांड की वैज्ञानिक व्याख्या है। यह ब्रह्माण्ड का सबसे पुरातन अणु सिद्धान्त (Atomic Theory) है। सांख्य इस क्षेत्र में और अधिक प्रवेश करता है और प्रकृति और पुरुष का भेद समझाता है। यह द्वैतवाद से ऊपर उठकर शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक रूप से, अनुशासित ढंग से ब्रह्म-आत्मा से मिलने का प्रयास है।

मीमांसा कर्म पर एवं वेदान्त ज्ञान पर अधिक ध्यान देता है। वेदान्त मानव की विचारधारा का शिखर है और ज्ञान पर विशेष जोर देता है। इस प्रकार ये 6 विचारधाराएं शनैः-शनैः साधक को भौतिकवाद से उठा कर सार्वभौमिक शक्ति की स्वाधीनता में ले जाती है। यह परम पूर्णता तक पहुँचने की सीढ़ी है।

वेदान्त एवं भक्ति

श्री बशरम का विचार है कि वेदान्त सर्वोत्तम सिद्धान्त है। वास्तव में यह मनुष्य के विचारों की ऊँचाई है। केवल ज्ञानी ही इसे ठीक से समझ सकते हैं। इसलिये यह जनसाधारण का धर्म नहीं बन पाया। भारत में जनसाधारण भक्तियोग में विश्वास करता है। किन्तु सभी विश्वास करते हैं कि भक्ति का अन्तिम लक्ष्य

ब्रह्म चेतना का आभास अथवा साक्षात्कार करना है। अतः जनसाधारण का भी लक्ष्य वेदान्त है किन्तु बहुत थोड़े ही वेदान्त योग का सही पालन कर पाते हैं। No Regional Idolatry in Philosophy वेदान्त में क्षेत्रीय मूर्तिपूजा का स्थान नहीं। भारतीय दर्शन की 6 धाराओं का किसी इष्टदेव या भारत के किसी प्रान्त से कोई सम्बन्ध नहीं है। वेदान्त बंगाल का एकाधिकार नहीं है। शंकराचार्य जो वेदान्त के सर्वोच्च व्याख्याकार थे, दक्षिण भारत (केरल) में पैदा हुए थे। आधुनिककाल में स्वामी रामकृष्ण के शिष्य स्वामी विवेकानन्द जिन्होंने वेदान्त की आभा विश्व में फैलाई, का जन्म बंगाल में हुआ था। ऐसे ही वेदान्त के एक और महान् विद्वान् स्वामी रामतीर्थ पंजाब से थे। Vedant Transcend all deities वेदान्त मूर्तिपूजा से बाहर है। वेदान्त शिव पूजा, विष्णु पूजा, काली पूजा या ईसा मसीह की पूजा के साथ भी पालन किया जा सकता है। क्योंकि सभी का लक्ष्य परमसत्ता का ज्ञान पाना है और सभी मूर्तियाँ उस परम सत्य के अलग-अलग रूप ही हैं, तो केवल बाह्य नाम रूप पर मतभेद हो ही नहीं सकता।

क्षेत्र या धर्म के नाम पर मतभेद नहीं

मुझे लगता है कि आपको विभिन्न धर्म-परम्पराओं में क्षेत्रीय या बौद्धिक मतभेद के विषय में सही सूचना नहीं मिली। हर राष्ट्र के इतिहास में कुछ ही ऐसे दृष्टान्त मिलते हैं जब लोग धर्म के वास्तविक तत्त्व को भूलकर नाम और रूप के तुच्छ मामलों में मतभेद पर आ जाते हैं। भारत की वास्तविक स्थिति यह है कि एक परिवार में पति वैष्णव है, पत्नी शिव पूजक है और पुत्र काली का पूजक हो सकता है, पुत्री हनुमान्जी की पूजा करती है। हर मन्दिर में अनेक देवी-देवताओं की प्रतिमाएं होती हैं और प्रत्येक व्यक्ति अपने इष्टदेव को माध्यम बना कर परम सत्ता की उपासना कर सकता है।

यूरोप के इतिहास में एक ही धर्म की अलग-अलग पूजा प्रथा के लोगों में रक्तपात एवं युद्ध हुए हैं। भारत में पूजा पद्धति को लेकर किसी को दंडित या तंग नहीं किया जाता। इसीलिये भारत में आध्यात्मिक सहिष्णुता एवं वैचारिक परिपक्वता मिलती है। डॉ. एनी बीसेंट जो धर्म दर्शन अभियान में अग्रणी रही हैं, उन्होंने भारत को विश्व का सर्वश्रेष्ठ आध्यात्मिक केन्द्र कहा है।

संसार के देशों में भारत के प्रति लोगों का प्रेम एवं आदर उनकी बौद्धिक, नैतिक एवं अध्यात्मिक सम्पदा के कारण है।

—**प्रो. लूई रिनाऊ** (पेरिस विश्वविद्यालय)

वेदान्त की विज्ञान को चुनौती

जो आंख सारे संसार को देखती है, वह अपने आपको साक्षात नहीं देख सकती। जो मानव निखिल विश्व के रहस्य की खोज में तत्पर है, जो चांद, सूर्य, सितारों का भेद जानने के लिए भी चिन्तातुर है, वह यदि स्वयं अपने आपको न जान सके तो कितना बड़ा दुर्भाग्य होगा?

द्रष्टा के बिना दृश्य सम्भव नहीं, ज्ञाता के बिना ज्ञेय सम्भव नहीं। आज का समूचा विज्ञान हमें दृश्य को दिखाता है, प्रकृति में एक तारतम्य अथवा सिद्धान्त की ओर भी संकेत करता है, किंतु उस द्रष्टा की सत्ता पर विचार नहीं करता जिसके कारण दृश्य सम्भव हुआ है। विज्ञान भौतिक जगत् के कुछ पहलुओं का ज्ञान अवश्य देता है, किन्तु किस ज्ञाता को वह ज्ञान प्राप्त हुआ, इस मौलिक प्रश्न को टाल जाता है, किन्तु यह प्रश्न टलने वाला नहीं है, क्योंकि ज्ञाता का निश्चय किये बिना ज्ञान की सत्यता पर भरोसा कैसे किया जा सकता है। यदि ज्ञाता अंधा है, तो उसके लिये दूध भी टेढ़ी खीर है, हाथी की सूंड एक अजगर सांप है, सौंदर्य एवं कौरूप्य समान है, प्रकाश एवं अंधकार में अंतर नहीं। अतः वेदांत की घोषणा है— 'जब तक ज्ञाता स्वयं अज्ञात है तब तक सब ज्ञात अज्ञान है।' सारा ज्ञान किसी न किसी ज्ञाता का ही साक्ष्य है। ज्ञाता विश्वसनीय नहीं तो उसका जाना हुआ सारा ज्ञान अज्ञान ही है। यदि तापमापक (थर्मामीटर) ही गलत है तो उसके द्वारा जाना हुआ सारा तापमान गलत है। अतः वेदांत सारे ज्ञान के मूल 'ज्ञाता' की खोज करता है। सारे ज्ञान की कुंजी ज्ञाता में ही है। इसीलिये जब तक ज्ञाता का ही ठीक से पता नहीं, तब तक जो कुछ जाना वह मिथ्या ही जानो, जिसके अपने चक्षुओं में प्रकाश नहीं, उसके लिये सब प्रकाश अंधकार ही है।

विश्व के अनादि साहित्य वेद में उसी साक्षी, चैतन्य आत्मदेव से प्रार्थना की गई है—

ॐ असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतं गमय।

यह विज्ञान का युग है। विज्ञान के चमत्कारों की चकाचौंध से हर छोटा-बड़ा प्रभावित है। विज्ञान के अद्‌भुत आविष्कारों ने मानव हृदय पर अपनी विजय की छाप अंकित कर दी है। विज्ञान ने प्रकृति पर विजय पा ली है। उसने अन्तरिक्ष की विद्युत् को छोटे-छोटे बिजली के लट्टुओं में कैद कर लिया है, अन्तरिक्ष की ध्वनि-तरंगों को एक छोटी-सी पेटिका में बन्द कर लिया है, उसने कृत्रिम प्रकाश से रात को दिन में बदल दिया है, कृत्रिम वायु चलाकर तप्त भवनों को ठण्डा किया है, कृत्रिम वर्षा द्वारा वन्ध्या धरती को शस्य-श्यामला बना दिया है तथा कृत्रिम ग्रह, उपग्रह, छोड़ कर नई सृष्टियाँ रचने का अभूतपूर्व उपक्रम किया है। एक सफल विजेता के समान विज्ञान ने अपनी विभूतियों के अतिरिक्त, अपना आतंक जमाए रखने के लिये अणुबम तथा परमाणु बम जैसे लोक-विध्वंसकारी अस्त्र भी बना लिये हैं। जनसाधारण यही मानने लगा है कि विज्ञान ही सर्वशक्तिमान परमेश्वर है। आज तो एटम ही अल्लाह है, भूत ही भगवान् बन गया है, किन्तु विज्ञान के सभी चमत्कारों को चुनौती देता हुआ भारत का एक काषाय वस्त्रधारी तरुण संन्यासी, विश्वविजेता स्वामी विवेकानन्द, भौतिकवाद के गढ़ के भीतर घुस कर उद्‌घोषणा करता है—'**तुम सब प्रभु की सन्तान हो, अमर आनन्द के हिस्सेदार, पवित्र और पूर्ण आत्मा।.....अरे शेरो! जागो, उठो और यह भ्रम उखाड़ कर परे फेंक दो कि तुम भेड़-बकरी हो। तुम अजर-अमर-अविनाशी, स्वतंत्र एवं आनन्द-निकेतन आत्मा हो। तुम भूत या पदार्थ नहीं हो, तुम केवल देहमात्र नहीं हो। पदार्थ तो तुम्हारा दास है, तुम पदार्थ के गुलाम कभी नहीं हो।**' वास्तव में देखा जाय तो विज्ञान के सारे आविष्कार मनुष्य ने ही किये हैं। स्वयमेव पदार्थ ने कोई चमत्कार नहीं किया। पदार्थ तो जड़ है, मानव में ही चैतन्य है। मानव के भीतर का चैतन्य एक स्वयंसिद्ध सत्य है। न उससे इन्कार किया जा सकता है और न उसे प्रमाणित करने की कोई आवश्यकता है। वह स्वयं प्रमाणित है। फ्रेंच दार्शनिक देकार्त कहता है कि जितना मैं अपनी ही हस्ती पर सन्देह करता हूँ, उतना ही अधिक यह प्रमाणित होता है, क्योंकि सन्देह, बिना सन्देह करने वाले व्यक्ति के नहीं हो सकता। अतः मेरा सन्देह प्रमाणित करता है कि मैं अवश्य हूँ। अब मानव के भीतर का चैतन्य कहाँ से आया? जड़ तथा चेतन में बड़ा अन्तर है। मैं जानता हूँ कि एटम क्या है तथा एटम बम कितना विध्वंसकारी है, किन्तु एटम को स्वयं नहीं पता कि मुझे एटम कहते हैं तथा मुझमें कितनी शक्ति निहित है। मैं जंगल में वृक्षों को गिनता हूँ, वृक्ष मुझे नहीं गिनते। माली उद्यान को पहचानता है, उद्यान माली को नहीं पहचानता। बेचारी ऑक्सीजन गैस को स्वयं नहीं पता कि वह ऑक्सीजन है। अतः महिमा पदार्थ की नहीं, पदार्थ के ज्ञाता की है।

अब विश्व भर के वैज्ञानिक लाखों प्रयत्न करने के पश्चात् भी जड़ पदार्थ से चैतन्य जीवन पैदा नहीं कर सके हैं। पत्थर से दूध नहीं निचोड़ा जा सकता क्योंकि

उसमें वह तत्त्व है ही नहीं। हर ईमानदार व्यक्ति की चेतना विज्ञान के जड़वाद को चुनौती देती हुई प्रश्न करती है कि यदि पदार्थ ही अन्तिम सत्य है तो उसमें चेतन जीवों को उत्पन्न करने की शक्ति होनी चाहिए? पर मुर्दा जो स्वयं चैतन्यहीन है वह दूसरों को चैतन्य कैसे प्रदान कर सकता है?

आज कुछ महान् वैज्ञानिक ही विज्ञान में विश्वास खो बैठे हैं। सर जेम्स जीन्स, एडिंगटन, आईंस्टीन, श्रोडिंजर तथा प्लक प्रभृति महान् वैज्ञानिक पदार्थ से परे किसी चैतन्य की सत्ता में विश्वास करने लगे हैं। सर जेम्स जीन्स ने प्लेटो के 'रिपब्लिक' का निम्न रूपक देकर कहा है कि भौतिक विज्ञान का ज्ञान केवल सांकेतिक है, सत्य नहीं। कुछ कैदी एक ही पंक्ति में इस प्रकार शृंखलाबद्ध है कि वे केवल सामने ही देख सकते हैं। उनके पीछे अग्नि जल रही है। उनके और अग्नि के बीच में एक मंच पर कुछ व्यक्ति आ-जा रहे हैं। कैदियों को सामने की दीवार पर केवल उनकी छाया ही दिखाई देती है, असली व्यक्ति दिखाई नहीं देते। इस उपमा में जीन्स ने भौतिक वैज्ञानिकों को उन शृंखलाबद्ध कैदियों के समान कहा है जो सत्य को तो नहीं देखते पर उसकी अस्थिर छाया मात्र को ही सत्य मान लेते हैं।

उस के पीछे सत्य की ओर जाने का प्रयत्न प्रसिद्ध भौतिक विज्ञानवेत्ता श्रोडिंजर ने किया। उसने एटम का विश्लेषण करते हुए देखा कि अन्त में इलैक्ट्रोन, प्रोटोन सब समाप्त होकर केवल एक 'रेडियोएक्टिव एनर्जी' एक अपदार्थमयी शक्ति ही बचती है, जो न जगह घेरती है और न वजन रखती है। अतः वह 'पदार्थ' नहीं है। भौतिकवाद के ऊँचे दुर्ग के मूल में यह प्रबलतम प्रहार हुआ है। या तो भूत की परिभाषा बदलनी पड़ेगी या यह मानना पड़ेगा कि विश्व की अन्तिम सत्ता भौतिक नहीं है।

महानतम वैज्ञानिक आईंस्टीन ने तो स्पष्ट कर दिया कि विज्ञान का सारा ज्ञान सापेक्ष एवं सीमित है, अनन्त ज्ञान इससे परे है। भौतिक ज्ञान को सीमित कह कर भगवान् शंकराचार्य ने भी यही बात कही थी। आईंस्टीन के मत में निरपेक्ष गति तथा निरपेक्ष स्थिरता एक ही तत्त्व के दो नाम हैं। यजुर्वेदान्तर्गत ईशा-वास्योपनिषद् में इसी आत्म तत्त्व के विषय में कहा गया है—

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वंतिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।।

अर्थात् यह आत्मा निरन्तर गतिमान है तथा नितान्त स्थिर है, यह दूर से भी दूर है तथा निकट से भी निकट है। यह सब के भीतर भी है तथा सबके बाहर भी है।

विज्ञान कहता है पदार्थ ही चरम सत्य है और पदार्थ वह है जो जगह घेरता है और भार रखता है। भौतिकवाद इन्द्रियगम्य बाहरी जगत् को ही सत्य मानता है, किन्तु इन्द्रियों पर भरोसा करना कहाँ की बुद्धिमानी है। यदि आत्मा अथवा

परमात्मा को इसलिये असत्य माना जाये कि वे दिखाई नहीं देते तो हमें स्वयं, हमारी रीढ़ की हड्डी दिखाई नहीं देती, क्या वह नहीं है? निगोड़ी आँख का भरोसा ही क्या? वह एक सीमा के परे देख ही नहीं सकती। सूर्य आँख को चलता हुआ भासता है, पर वास्तव में वह चलता नहीं, धरती स्थिर दिखाई देती है, पर वस्तुतः वह बड़ी भारी गति से निरन्तर अपने अक्ष पर भी घूम रही है तथा सूर्य की प्रदक्षिणा भी कर रही है। इन्द्रियाँ स्वयं भी क्षणभंगुर हैं। वे शरीर के साथ पैदा होती है, उसी के संग क्षीण होती और मर जाती है। वे बेचारी चरम सत्य को कैसे जान सकती है। अनादि और अनन्त को शान्त एवं मरणधर्मा इन्द्रियाँ कैसे जान सकती हैं। यदि किसी द्रव्य का तापमान परखना हो तो तापमापक उस द्रव्य के तापमान से भी बड़े तापमान को सह सकने योग्य होना चाहिए। यदि 1000 अंश के ताप वाले द्रव्य को 100 दर्जे ताप मापने वाले थर्मामीटर से मापा जायेगा तो मापक यन्त्र तुरंत खण्ड-खण्ड हो जायेगा। यदि 10 मील लम्बी दौड़ का निर्णायक दो-चार मील दौड़ने के पश्चात् ही हांफकर गिर जाता है तो वह दौड़ में प्रथम स्थान पाने वाले का निर्णय कैसे कर सकता है। हम जानना चाहते हैं विश्व की अनादि, अनन्त सत्ता को और वह भी क्षणभंगुर, सीमित, मर्त्य इन्द्रियों के द्वारा। कबीरजी के शब्दों में—

गई पूतरी लौन की, थाह सिन्धु की लेन।
गल बल वह सिन्धु भई, कहे कौन अब बैन।।

इन्द्रियों से ऊपर मन है। पाश्चात्य दर्शन तथा मनोविज्ञान मन को ही चरम सत्ता मान बैठा है। देकार्त, बर्कले, हेगल, काण्ट जैसे विद्वान भी मन को ही आत्मा कह डालते हैं, किन्तु मन तो चंचल बन्दर की नाई है। यह मानव को खूब नचाता है, स्वयं क्षण-क्षण में बदलता रहता है, मर्त्य शरीर पर अवलम्बित है, इसे चरम सत्य मानने से तो अनर्थ हो जायेगा। मन से परे बुद्धि है। पाश्चात्य विचारक अपनी ऊँची से ऊँची उड़ान में बुद्धि के वैभव तक ही पहुँचते हैं, किन्तु यदि बुद्धि ही चरम सत्ता होती तो बुद्धि कभी भूल न करती, स्वयं सीमित न होती तथा हमें कभी पछता कर यह न कहना पड़ता—हाय ! उस समय मेरी अक्ल मारी गई थी। इसका अर्थ है हम बुद्धि की भी त्रुटियों के साक्षी, बुद्धि से भी ऊपर और कुछ हैं। हम अजर-अमर, अविनाशी, स्वयं ज्योति, प्रकाशमान, आत्मा हैं। गीता-गायक श्रीकृष्ण के शब्दों में—

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्य परं मनः।
मनसस्तु परां बुद्धियों बुद्धेः परतस्तु सः।। 3/42

इन्द्रियाँ शरीर से परे हैं, इन्द्रियों से भी परे मन है, मन से भी परे बुद्धि है और जो बुद्धि से परे है वह हमारा स्वयं ज्योति ज्ञानस्वरूप आत्मा है।

यह आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप है, स्वयं ज्ञेय है तथा स्वयं ज्ञाता है। ज्ञाता, ज्ञान,

ज्ञेय की त्रिपुटी आत्मज्ञान हो जाने पर एक अखण्ड चैतन्य में विलीन हो जाती है। इसीलिये उपनिषद् कहते हैं—'**आत्मानं विद्धि**' हे मनुष्य, अपने आपको जान। ब्रह्मसूत्र गाते हैं—

अयं आत्मा ब्रह्मं—यह आत्मा ही ब्रह्म है।

पुनः **तत्त्वमसि**, वह तू ही है।

इसी भाव को महाकवि इकबाल ने प्रकट किया है—

ढूंढ़ता फिरता हूँ मैं, इकबाल अपने आपको।
आप ही गोया मुसाफिर, आप ही मन्जिल हूँ मैं।।

अपने आपको पाना ही सब कुछ पाना है। किसी दूसरे की उपासना किसी न किसी अंश में गुलामी की ही सूचक है चाहे वह स्वयं ईश्वर की ही उपासना क्यों न हो। वेदान्त कहता है, तू आत्मोपासक बन। वही अन्तर्यामी ब्रह्म तेरे भीतर है, तू स्वयं वह है। यही पूर्ण मोक्ष है, पूर्ण स्वातंत्र्य है, पूर्ण स्वराज्य है। जर्मनी के विचारक काण्ट का कथन है—'मानव, तू अपने आपके लिये स्वयं ही विधि बन जा।' वेदान्त की घोषणा है—हे मानव, बनने बनाने का कोई प्रश्न नहीं, तू विधि नहीं स्वयं विधानों का विधाता है, तू स्वयं ईश्वर है, केवल अपनी चर्म दृष्टि को त्याग दे, स्वयमेव आत्मालोक प्रकाशित हो उठेगा।'

नोबल पुरस्कार विजेता प्रसिद्ध जीव शास्त्री एलेक्सिस कैरल अपनी पुस्तक 'मैन दी अननोन' में कहती है, 'हमें बाह्यजगत् में जैसी सफलता मिली है वैसी अन्तर्जगत् में नहीं मिली वरन् प्रारम्भिक स्थिति में है। और जिस चेतन के सामर्थ्य से न्यूटन और आइस्टीन द्वारा महत्त कार्यों का निर्माण हुआ है, उसका महत्त्व हम नहीं समझ सके यह हमारा दुर्भाग्य ही है।'

× × ×

बी.बी.सी. के उद्घोषकर्ता, पत्रकार व लेखक मार्क टूली ने देहरादून के वेल्हम स्कूल के विद्यार्थियों को 69वें स्थापना दिवस पर मुख्य अतिथि के रूप में कहा—जब पश्चिम स्वयं अपने जीवनमूल्यों पर पुनर्विचार कर रहा है, तब आपका अपनी संस्कृति को बचाते हुए असली भारत बनना ज्यादा सातत्यपूर्ण है, नकली अमरीका बनने की अपेक्षा।

भारतीय दर्शन द्वारा आधुनिक समस्याग्रस्त समाज का मार्गदर्शन

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हमारे संस्थान के एक शोधकर्ता छात्र श्री पारसनाथ प्रसाद सिंह ने गोरखपुर विश्वविद्यालय से एम. ए. दर्शन परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अन्तर्गत भारतीय दर्शन में शोधकार्य करने के लिए उक्त विश्वविद्यालय की स्वीकृति प्राप्त कर ली है।

मैंने यह अनुभव किया है कि अधिकांश विश्वविद्यालयों में दर्शन तथा अन्य विषयों पर भी जो शोधकार्य होते हैं, उनमें देश की सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा, सर्वाधिक अर्थसाधन, उच्च मार्गदर्शक विद्वत्ता, सर्वाधिक परिश्रम एवं जीवन का सर्वाधिक मूल्यवान काल-खण्ड लगने के उपरान्त भी उनसे प्राप्त होने वाली सामाजिक उपयोगिता, मानवीय शक्ति के व्यय की तुलना में प्रायः नगण्य ही होती है। बड़े-बड़े विद्वानों के शोध-प्रबन्ध भी अधिकांशतः शोध-पुस्तकालयों की अलमारी की शोभा मात्र ही बढ़ाते हैं तथा उनसे लाभ लेने वाले विद्यार्थी एवं सुधीजन बहुत ही कम मात्र में मिलते हैं।

विगत अनेक वर्षों के शैक्षणिक तथा समाजसेवी जीवन के अनुभव के आधार पर मैंने यह देखा है कि विशेष रूप से दर्शन के क्षेत्र में शोध-प्रबन्धों के विषय इतने शास्त्रीय (Academic) तथा सैद्धान्तिक (Theoretical) चुने जाते हैं कि प्रत्यक्ष क्रियात्मक जीवन में उनकी उपयोगिता प्रायः नगण्य ही होती है। इसका एक दुष्परिणाम तो यह होता है कि समाज को दर्शन द्वारा मार्गदर्शन नहीं मिलता तथा दूसरी ओर दर्शन की विधिवत् शिक्षा न पाने वाले सामान्य बुद्धिजीवियों को उक्त शोध-प्रबन्ध पढ़ने की रुचि ही पैदा नहीं होती। फलतः समाज पथ-प्रदर्शन विहीन होकर गिरता जाता है तथा दर्शन का विषय प्रतिष्ठाविहीन होकर अलोकप्रिय होता जाता है।

एक ओर हम विश्वभर में डिंडिम (डुगडुगी) बजाते रहते हैं कि हमारा देश भारत दर्शन की जन्मभूमि है, भारतीय दर्शन सर्वश्रेष्ठ है; वेदान्त में मानवीय मनीषा

अपने सर्वोच्च शिखरों पर पहुँची इत्यादि-इत्यादि। किन्तु दूसरी ओर इस दार्शनिकों के देश की वर्तमान स्थिति इतनी पतित एवं आदर्शभ्रष्ट हो चुकी है कि हमारे सहित सारा संसार विस्मित है कि क्या उच्च दर्शन का तार्किक परिणाम पतित-जीवन ही हो सकता है?

आज समाज अनास्था के कीड़ों से ग्रस्त है, आध्यात्मिक दृष्टि से मानव दिवालिया हो चुका है, नैतिक मूल्य लगभग पूर्णतया मूल्यहीन से हो गये हैं, देश में चारित्रिक पतन अपनी पराकाष्ठा पर है। नास्तिकता, कामुकता, हिंसा, घूसखोरी, अविनय, अवज्ञा, विद्रोह, संवेगात्मक अस्थिरता आदि आत्मघाती प्रवृत्तियाँ समाज में सर्वत्र दृष्टिगोचर होती हैं। व्यक्ति, परिवार, समाज, संस्थाएँ सभी भ्रष्टाचार के पिशाच से पीड़ित है। पतन का चित्र कितना हृदय विदारक है।

आज आश्रम व्यवस्था विश्रृंखलित हो चुकी है। ब्रह्मचर्य तो प्रायः भोगचर्य ही बन चुका है। गृहस्थाश्रम जो ऋण-चतुष्टय को चुकाने हेतु पंच महायज्ञ का धर्म-मंच था वह आज कामोपभोग एवं अर्थ लिप्सा का खुला लीला-मंच बना हुआ है। वानप्रस्थ परम्परा लुप्त हो चुकी है। संन्यासाश्रम में भी अधिकांशतः लोकसंग्रह के स्थान पर धन संग्रह की प्रवृत्ति दिखलाई देती है। जीवन की कुण्ठा की प्रतिक्रिया में संसार छोड़ने वाले 56 लाख साधुओं द्वारा भी अधिकांशतः कोई समाजोपयोगी कार्य नहीं हो रहा है। भगवे वेश की आड़ में अनेक रावण भी क्रियाशील हैं। समाज का गुरु ब्राह्मण वर्ग अपना कुलधर्म त्याग कर नौकरी या व्यवसाय के लिये भाग-दौड़ कर रहा है। क्षत्रिय जो समाज की ढाल था, वह या तो शक्ति के मद में आततायी हो गया है या परकीय आततायी (चीन, पाकिस्तान) के भय से भीरु। देश की 16000 (सोलह हजार) वर्गमील भूमि चीन के पंजे में पड़ी हुई है और लगभग 30000 (तीस हजार) वर्गमील भूमि (काश्मीर में) पाकिस्तान ने हथिया रखी है। वैश्य समाज जो समाज-भण्डारी था, वह आज अधिकांशतः समाज-लुंठक बन रहा है। शूद्र सेवापरायण न होकर अधिकार-लिप्सु बन गया है।

आज धर्म तो व्यवसाय बन गया है। समाज-धर्म का तो प्रायः पूर्ण लोप ही हो चुका है। परकीय धर्म एवं समाजों के आक्रमणों से स्वकीय समाज का संख्याबल क्षीण हो रहा है तथा इस प्रकार देश में विभाजन के विषबीज बोये जा रहे हैं।

अर्थ, जो धर्म की सेवा का साधन था, आज धर्म के बिना अनर्थ का कारण बन रहा है। अर्थ शुचिता के अभाव में लोग आज भ्रष्ट विधि से अर्थ संचय में लगे हुए हैं। इसी कारण चोर बाजारी, घूसखोरी, शोषण, चोरी, डकैती, छल-छद्म, जुआ एवं मुनाफाखोरी का राज्य है। अर्थार्जन के लिये उचित तप एवं धैर्य के अभाव में बेकारी, भिक्षावृत्ति, परावलम्बन आदि पापाचार उत्पन्न हो रहे हैं।

काम पर धर्म का अंकुश लुप्त हो जाने से व्यभिचार, पापाचार, दुराचार, यौन-भ्रष्टाचार का बोलबाला है।

अधिकांश मुमुक्षुजनों की मोक्षसाधना भी समाज की भीषण उपेक्षा पर आधारित है तथा जीवन्मुक्त पुरुषों के लोकसंग्रह आदर्श की विस्मृति हो चुकी है।

आज व्यक्ति एक ओर परम स्वार्थी बन रहा है, दूसरी ओर समाजवाद के अभारतीय ढाँचे में व्यक्तित्व-विहीन हो रहा है। स्वार्थी होने पर वह समाजद्वेषी बनता है और व्यक्तित्व विहीन होने पर समाज (शासन) का गुलाम बन जाता है।

आज परिवार की मर्यादा की दीवारें डगमगा गयी हैं। रामायण में प्रतिपादित पारिवारिक आदर्श पूर्णतया विस्मृत हो रहे हैं। परिवार जो सभी नैतिक एवं सामाजिक जीवनमूल्यों का सुन्दरतम पालना माना जाता था, आज स्वयं ही महत्त्व विहीन माना जा रहा है।

विद्या-मन्दिरों के पवित्र वातावरण में आज सर्वत्र अविनय, अवज्ञा, राजनीतिक स्पर्द्धा एवं युवा विद्रोह व्याप्त है।

कार्यालयों में कार्यशीलता के वातावरण का पूर्णतया अभाव है।

कर्मशालाओं में कर्म की वृत्ति का अभाव तथा आन्दोलन वृत्ति का प्रभाव है।

सामाजिक संस्थाओं में दानराशि का दुरुपयोग तथा असामाजिक तत्त्वों का नेतृत्व है।

समाज अनास्था के कीड़ों से ग्रस्त है। मानव को न अपने पर विश्वास रहा है न समाज पर और न परमसत्ता पर ही।

राजनीति में सर्वत्र पदलोलुपता, दलसंघर्ष व्याप्त हैं तथा समाजसेवा की भावना का लोप है।

नारी जो विश्व की सर्जक मातृशक्ति है, आज भोग का उपकरण मात्र बन कर यौन व्यभिचार का शिकार बन रही है।

दो वर्ष पूर्व विदेशी पादरियों द्वारा भारत की हजारों पुत्रियों को यूरोपीय देशों में पापाचार एवं दासवृत्ति में बेचना तथा केरल, मैसूर, आन्ध्र, तमिलनाडु की सहस्रों-बालाओं को नौकरी के प्रलोभन में अरब देशों में बेचा जाना मानवता के माथे का घोरतम कलंक है। समाज में नारी की नग्नता तथा चलचित्रों की अश्लीलता आधुनिक भौतिकवादी सभ्यता का दारुण अभिशाप है, बालक, जो राष्ट्रवाटिका के नन्हे पादप हैं, विदेशी सभ्यता की भद्दी नकल करने वाली कृत्रिम शिक्षा पद्धति से कुसंस्कारित हो रहे हैं।

ऐसी परिस्थिति में प्रामाणिकता से यह विचार करने की आवश्यकता है कि हमारा दर्शन इस परिस्थिति में हमारा क्या मार्गदर्शन कर सकता है और वह किस प्रकार सम्भव है?

उक्त सब समाजोपयोगी प्रश्नों को दृष्टि में रख कर मैंने शोधकर्ता छात्र श्री पारसनाथ प्रसादसिंह को यह सुझाव दिया है कि वे अपने शोध का विषय रखें—

'भारतीय दर्शन द्वारा आधुनिक समस्याग्रस्त समाज का मार्गदर्शन।'

क्योंकि इस विषय पर गम्भीरता से विचार करके बहुत कम साहित्य लिखा गया है, इसलिए इस महान् ऐतिहासिक कार्य के लिए हमने विचार किया है कि देश के प्रबुद्ध मनीषियों एवं बुद्धिजीवियों से प्रत्यक्ष मार्गदर्शन प्राप्त किया जाय। इसी हेतु आपकी सेवा में यह पत्र प्रेषित किया जा रहा है, ताकि आप जैसे भारतीय संस्कृति के उद्भट विद्वान तथा महान् चिन्तक के विचारों को हम उक्त शोध प्रबन्ध में उचित महत्त्व देकर प्रस्तुत कर सकें तथा इस प्रकार आपकी मनीषा द्वारा आज के पतित समाज के पुनरुत्थान हेतु मार्गदर्शन मिल सके। मैं आपका बहुत बड़ा आभार मानूँगा यदि आप लगभग दो सप्ताह के भीतर अनुमानतः आठ पृष्ठ का एक मन्तव्य लिख भेजने की अनुकम्पा करेंगे जिसमें निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार किया गया हो—

(1) भारतीय दर्शन की जीवनोपयोगी महत्ता।

(2) आधुनिक भारतीय समाज के पतन का नग्न-चित्र।

(3) समाज के पतन के कारणों का विश्लेषण।

(4) भारतीय दर्शन द्वारा समाज के पुनरुत्थान के लिए क्रियात्मक मार्गदर्शन।

1. भारतीय दर्शन की जीवनोपयोगी महत्ता

क. दर्शन जीवन-दृष्टि है।

ख. दृष्टि का प्रकाश तथा पथ का आलोक।

ग. मानवता को सत्यम् एवं ऋतम् का आलोक देने वाला दीप-स्तम्भ।

घ. इहलोक तथा परलोक का सुधार। आत्म-मोक्षार्थ जगत हिताय।

ङ. विचार द्वारा आचार का नियन्त्रण।

च. मानवीय जीवनमूल्यों के विकास में धर्म-दर्शन की देन।

2. आधुनिक भारतीय समाज के पतन का नग्नचित्र

क. ब्रह्मचर्य भोगचर्य।

ख. गृहस्थ, काम एवं अर्थ का लीला-मंच।

ग. वानप्रस्थ, परम्परा लुप्त।

घ. संन्यास, में लोकसंग्रह का अभाव।

ङ. ब्राह्मण, नौकरी के पीछे।

च. क्षत्रिय, आततायी या भीरु।

छ. वैश्य, समाज-लुंठक।

ज. शूद्र, अधिकारलिप्सु।

झ. धर्म, व्यवसाय मात्र।

ञ. अर्थ-अनर्थ का कारण।

ट. धर्म विहीन काम, व्यभिचार का कारण।

ठ. मुमुक्षुजनों द्वारा समाज की उपेक्षा।

ड. व्यक्ति, स्वार्थी या समाज का गुलाम।

ढ. परिवार, मर्यादाविहीन।

ण. कार्यालय तथा कर्मशालाओं में कर्म का अभाव, आंदोलन का प्रभाव।

त. संस्थाओं द्वारा दानराशि का दुरुपयोग।

थ. अनास्था के कीटाणु।

द. राजनीति में पदलोलुपता।

ध. नारी, भोग का उपकरण।

न. बालक, विदेशी शिक्षा पद्धति से कुसंस्कारित।

3. समाज के पतन के कारणों का विश्लेषण।

क. सिद्धांत और व्यवहार के बीच की खाई (The gulf between theory and practical)।

ख. संस्कृति (Culture) और संस्कार (conduct) के बीच की खाई।

ग. समाज धर्म और व्यक्ति धर्म के बीच की खाई।

घ. इहलोक तथा परलोक में भेद।

ङ. अति पारलौकिकता का कुप्रभाव।

च. शंकराचार्य के जगन्मिथ्या सिद्धान्त की भ्रांत व्याख्याएं।

छ. बौद्धों-जैनों का सर्व क्षणिकं-क्षणिकं सिद्धान्त का कुप्रभाव।

ज. मृत चार्वाक दर्शन का भूत सारे समाज को ग्रस रहा है।

झ. कार्ल मार्क्स का प्रभाव।

ञ. पाश्चात्य भौतिकता का प्रभाव।

ट. पाश्चात्य अर्थवाद का प्रभाव।

ठ. पाश्चात्य नग्नतावाद का प्रभाव।

ड. पाश्चात्य धर्मों का प्रभाव।

ढ. आवारा (Nomadic) सभ्यताओं का भारतीय समाज पर आक्रमण।

ण. जीवन्मुक्ति के स्थान पर परामुक्ति का मोह।

त. लोक संग्रह आदर्श की उपेक्षा।

थ. ज्ञान तथा कर्म की भ्रांत व्याख्या (कर्म, अकर्म, विकर्म, नैष्कर्म्य)।

द. बौद्ध-जैनों की अव्यावहारिक अहिंसा का प्रभाव।

ध. सम्प्रदायों का धर्म-द्वेष तथा पारस्परिक विद्वेष।

न. दार्शनिक दुराग्रह (दर्शन की अति तार्किकता का धर्मनिष्ठा पर प्रभाव)।

प. सद्गुण विकृति।

(i) उदारता (ii) क्षमा (iii) अहिंसा (iv) दान

फ. अव्यवस्थित दान बनाम व्यवस्थित दान।

ब. आत्मगौरव शून्यता तथा परमुखापेक्षिता।

4. भारतीय दर्शन द्वारा समाज के पुनरुत्थान के लिए क्रियात्मक मार्गदर्शन

1. क. ब्रह्मचर्य द्वारा जीवन विकास।

   ख. ब्रह्मचर्य द्वारा मनःशक्तियों का विकास।

   ग. ब्रह्मचर्य तेज तथा ओज का विकास।

   घ. यम-नियम (योग दर्शन)।

   ङ. वेदान्त की पात्रता।

   च. प्राचीन गुरुकुलों में ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा।

   छ. आज के शिक्षा-मन्दिरों में ब्रह्मचर्य की पुनर्प्रतिष्ठा की आवश्यकता।

   ज. ब्रह्मचर्य से यौन भ्रष्टाचार का अन्त तथा मातृशक्ति की पुनर्प्रतिष्ठा।

   झ. आधुनिक मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण तथा ब्रह्मचर्य।

2. गृहस्थ के सामाजिक आदर्श : ऋण चतुष्टय, पंच महायज्ञ, नैतिक एवं सामाजिक जीवनमूल्यों की सुन्दरतम पालना, रामायण के पारिवारिक

आदर्शों का आज के युग में मूल्यांकन, मार्क्स के विचारों का आलोचन, मातृ-पितृ-गुरु वंदना का महत्त्व।

3. वानप्रस्थ एवं संन्यास का सामाजिक आदर्श।
4. आज के युग में वर्ण-व्यवस्था का वैज्ञानिक पुनर्मूल्यांकन।
5. शिक्षा पद्धति का भारतीयकरण।
6. समाज धर्म का स्वरूप।
7. सेवा धर्मो परम् गहनो।
8. व्यावहारिक वेदान्त।
9. यथार्थ एवं आदर्श का समन्वय।
10. ब्रह्मतेज एवं क्षात्र तेज का समन्वय।
11. विचार को आचार में साकार करना होगा।
12. भारतीय नीति धर्म का क्रियान्वयन।
13. सिद्धान्त की कसौटी कृति।
14. दर्शन समाज का मार्गदर्शन करे तभी सार्थक।

कृपया कुछ ऐसे ग्रन्थों एवं लेखकों की सूची भी प्रेषित करें जो इस समस्या के समुचित निदान एवं उपचार के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकें। आशा है कि इतनी महान् दर्शनधारा वाले, अतीतकाल के जगद्गुरु देश को वर्तमानकाल की विपन्नावस्था से निकाल कर पुनः एक गौरवशाली भविष्य की ओर ले जाने के महान् कार्य में आप भी उचित मार्गदर्शन अवश्य देंगे।

भारत शाश्वत व अमर है। इसकी कई सभ्यतायें इतनी प्राचीन हैं कि इतिहास के दो राहों पर लुप्तप्रायः प्रतीत होती हैं। इसके पास चिर-युवा रहने का उपहार है।

—नानी पालखीवाला

जैन दर्शन

जैन—जिन-जीत धातु से बना है।

जिसका अर्थ है जीतना

जिसने मन और इन्द्रिय को जीत लिया है उसे जिन कहते हैं। और जो जिन के सिद्धांतों को मानने वाले हैं उसे जैन कहते हैं।

हिन्दू धर्म की पांच शाखायें हैं—

सनातनीयाः समाजाः सिक्खाः जैनाश्च सोगताः।
स्वे-स्वे कर्मण्यभिरताः भावयेयुः परस्परम्।। —मालवीयजी

हिन्दू धर्म के सभी पंथ-संप्रदायों के चार समान दार्शनिक सिद्धांत हैं—

1. आत्मा की अमरता,
2. जीवन का अंतिम लक्ष्य-मोक्ष,
3. जब तक मोक्ष नहीं मिला तब तक पुनर्जन्म,
4. कर्म का सिद्धांत।

पहले दोनों सिद्धांत शाश्वत सिद्धांत हैं बाद के दोनों सिद्धांत पुनर्जन्म और कर्म सिद्धांत अंतरिम सिद्धांत हैं। मोक्ष में पुनर्जन्म और कर्म का सिद्धांत लय हो जाता है। आत्म तत्त्व और मोक्ष तत्त्व एकाकार हो जाता है क्योंकि मोक्ष का अर्थ ही है आत्मदर्शन या आत्मोपलब्धि।

24 तीर्थंकरों में प्रथम ऋषभ देवजी हैं जो हिन्दू धर्म में भगवान् विष्णु के 24 अवतारों में से एक माने जाते हैं। इनकी कथा सनातन धर्मग्रंथों में खूब मिलती है। इनका पुत्र भरत चक्रवर्ती सम्राट था। इन्हीं के नाम पर इस आर्यावर्त्त का नाम भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ।

भारत के सांस्कृतिक इतिहास में चार भरतों की महिमा गूंज रही है—

1. ऋषभदेव के पुत्र चक्रवर्ती सम्राट् भरत
2. राजा दुष्यन्त एवं शुकन्तला के पुत्र वीर भरत

3. रामायण के काल के राम के भाई भरत

4. संस्कृत के नाट्य शास्त्र के विद्वान लेखक भरत

1. भारत भूमि जिनके नाम पर भरतनाट्यम अभी तक प्रचलित है। पहले भरत चक्रवर्ती सम्राट पद से उपराम होने के पश्चात् एक आदर्श अवधूत बन गये।

2. दूसरे भरत वीर एवं कुशल शासक थे।

3. रामायण काल के भरत अनन्य निष्काम भक्त थे।

4. साहित्य के महान द्रष्टा थे।

23 वें तीर्थंकर पारसनाथजी थे जिन्हें हजारीबाग जिला में पारसनाथ पहाड़ी पर निर्वाण प्राप्त हुआ।

20 वें तीर्थंकर भगवान् नैमिनाथ भगवान् कृष्ण के चचेरे भाई थे। इस तरह जैन समाज हिन्दू समाज का एक अभिन्न अंग ही बना रहा है।

जैन धर्म आत्मा को अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन और अनन्त आनंदस्वरूप मानता है।

जैन दर्शन सृष्टिकर्ता ईश्वर को नहीं मानता किन्तु वे यह मानते हैं कि हर आत्मा मुक्त होने पर परमात्मा बन जाती है अतः उसके लिये परमात्मा एक अंतिम आदर्श तो है पर सृष्टि के खेल का जन्मदाता नहीं है। वह सृष्टि का उद्‌घाटनकर्ता नहीं है वरन् समापनकर्ता अध्यक्ष है।

प्रश्न उत्पन्न होता है सृष्टि बनायी किसने?

उत्तर—स्वतः प्रकृति से बनी है। यहाँ वे आधुनिक विज्ञान से आधी सहमति मानते हैं।

जब हर आत्मा मुक्त होने पर परमात्मा बनता है तो परमात्मा अनेक होते जाते हैं। इसलिये अनेकात्मवाद मानता है। सनातन धर्म एकांतवाद या वेदान्तवाद को मानता है।

क्या परमात्माओं की कोई संख्या जैनधर्म कहता है। अभी तक 24 तीर्थंकर ही 24 भगवान् बने हैं। उनके अतिरिक्त कोई अन्य मुक्त नहीं हुआ और इस कल्प के अंत तक कोई मुक्त नहीं होगा।

मुक्त आत्माओं को तीर्थंकर कहते हैं। इसका अर्थ तैरने वाले या तारने वाले हैं।

पुनर्जन्म—जैनधर्म की मान्यता है छोटे जीव हमारे ही छोटे भाई हैं। उन सब योनियों से होकर ही मनुष्य बने हैं। अतः हमें छोटे-छोटे जीवों पर दया करनी चाहिये। उनको सताना नहीं चाहिये।

कर्मफल भी जैनधर्म अटल मानता है। पर कर्मफल देता कौन है? इस विषय में उनका मत वैदिक धर्म से भिन्न है। वैदिक धर्म में कर्मफलदाता ईश्वर को माना गया है। पर जैनमत में कर्मफल अपने आप कर्म से ही उत्पन्न होता है जैसे कारण से कार्य, आग से वस्तु जलती है यहाँ भी वे जड़ विज्ञान की मान्यता के समान भूल जाते हैं कि जब एसिड नीले लिटमस को लाल करता है या फासफोरस कागज को जलाता है। वह दोनों वस्तुएं जड़ हैं वहाँ जो कार्यकारण का सिद्धांत लागू होता है वह चेतन मनुष्य पर लागू नहीं हो सकता। जैसे भूखे को रसगुल्ला देने पर और प्रतिक्रिया, दुःखी होने पर और प्रतिक्रिया, चिंतित होने पर और प्रतिक्रिया, चिढ़ाने की भावना से देने पर और प्रतिक्रिया। डूबने वाले व्यक्ति को 6 व्यक्ति भिन्न-भिन्न भावनाओं से बचाते हैं। कोई ऋण चुकता करने के लिये, पुलिस अफसर फांसी देने के लिये, कोई गवाही पेश करने के लिये, कोई सरकारी कागजातों पर हस्ताक्षर करवाने के लिये, भाई ममत्व के कारण, मित्र ममत्व भाव के कारण और कोई निःस्वार्थ भाव से। वह न भाई है, न मित्र है, न पुलिस अफसर है, न कर्जदाता है। अतः कर्म का निर्णायक और कर्मफल प्रदाता, सर्वान्तरयामी, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान होना चाहिये।

पंच महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।

तीन रत्न—जैन धर्म में गीता के ज्ञान योग, कर्म योग, भक्तियोग के साधन तीन रत्न माने गये हैं। जिन तत्त्वों के समन्वय से मनुष्य सदाचारी बनता है।

क. सम्यक् दर्शन, ख. सम्यक् ज्ञान, ग. सम्यक् चरित्र।

बंधन का कारण—जब आत्मा संसार में बाहर के कर्म करता है तो उन जड़ पदार्थों का संस्कार आत्मा को मैला कर देता है। इसे आश्रव कहते हैं। जैसे गांव का मैला पानी स्वच्छ सरोवर में पहुँचकर उसे गंदला कर देता है या भीगे वस्त्र पर धूल पड़ जाती है उसी प्रकार जड़ वस्तुओं के मैले संस्कार बहकर आत्मा में आश्रव कर गंदला कर देती है।

चार कषाय—चार प्रकार का मैल जो आत्मा की ओर बहता है। वह है—क्रोध, अभिमान, कपट, लोभ।

वैदिक धर्म और बौद्ध धर्म में मन के पांच महाशत्रु गिनाये गये हैं—

काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार। इसे ही पंच क्लेश भी कहते हैं।

संवर—जैन मत में आत्मा के मैल को हटाने का एक उपाय संवर है। इसका अर्थ है प्रवाह को रोक देना। अर्थात् जो गंदगी का प्रवाह जड़-पदार्थों से आत्मा को गंदा करने आ रहा था उसे रोक देना। इसलिये इन्द्रिय निग्रह एवं संयम आवश्यक है।

निर्जरा—जो विषयों के मैल पहले से आत्मा में प्रवेश कर चुके हैं उसे नष्ट करने के लिये तपस्या, व्रत, उपवास आदि आवश्यक है। इस तरह आश्रव रोकने के लिये संवर और पहले घुस चुके मैल को निकालने के लिये निर्जरा उपाय है। निष्काम कर्म द्वारा बहुत उत्तम निर्जरा हो जाता है। और चित्त शुद्ध हो जाता है।

दो प्रकार का बंध

आश्रव के कारण जो आत्मा को बंधन आता है वह दो स्तर का है—

1. द्रव्य बंध—जब मनुष्य वस्तुओं के लिये लालायित होता है तब द्रव्य बंध कहलाता है। जैसे शराबी शराब का।

2. भाव बंध—जब विषय-वस्तु न मिलने पर व्यक्ति उस विषय की प्रकट मांग तो नहीं करता किन्तु मन ही मन उस विषय की वासना करता रहता है जैसे किसी शराबी के अति निर्धन हो जाने पर वह कई वर्षों तक शराब तो नहीं पी सकता किन्तु उस विषय का रस उसके मन में बना रहता है। वह शराबियों की बातों में रुचि लेता है और वैसा ही साहित्य पढ़ता है। उसी प्रकार गीत सुनकर झूमने लगता है।

द्रव्य बंध संवर के द्वारा रोका जाता है और भाव बंध निर्जरा द्वारा।

स्याद्‌वाद—एक वस्तु के बहुत से पहलू होते हैं। यह आवश्यक नहीं कि एक ही बात पूर्ण रूप से सटीक हो। दूसरी बात भी ठीक हो सकती है, तीसरी बात भी ठीक हो सकती है। यह सिद्धांत सहिष्णुता सिखलाता है। जो अहिंसा के लिये उपयोगी है।

मेरे विचार से हिन्दू धर्म का सौंदर्य समस्त को एक साथ आलिंगन करने में है...दूसरे में जो सारतत्त्व पाए जाते हैं वे सभी हिन्दू धर्म में एक साथ अनवरत वर्तमान हैं। जो इसमें नहीं पाए जाते हैं वे असार एवं अनावश्यक हैं।

—महात्मा गांधी

भारतीय नीति शास्त्र के मूल सिद्धान्त

भारत में नीति शास्त्र के लिये पर्यायवाची शब्द धर्म शास्त्र, आचार शास्त्र, कर्तव्य शास्त्र, नियम शास्त्र, व्यवहार शास्त्र, जीवन कला, व्यवहार दर्शन आदि है.।

(2) नीति शब्द का अर्थ—नीति शब्द 'नी', 'नय' धातु से बना है जिसका अर्थ है ले जाना। नीति का अर्थ है वह नियम जो हमें किसी उदिष्ट द्वारा लक्ष्य तक ले जाते हैं। धर्म नीति का अर्थ है वह नियम जिन पर चलने से मनुष्य का ऐहिक और पारलौकिक कल्याण हो। समाज में स्थिरता और संतुलन रहे। विश्व में शांति रहे अर्थात् इन नियमों का पालन करने से व्यक्ति और समाज, दोनों का श्रेय है।

(3) शास्त्र शब्द का अर्थ—किसी विषय के स्वरूप, सम्बन्ध, प्रयोजन, मौलिक आधार और उसके नियमों के विशेष और सर्वाङ्गीण ज्ञान हो अथवा उस ज्ञान वाले ग्रंथ को शास्त्र कहते हैं। नीति शास्त्र को नीति-विज्ञान भी कहते हैं क्योंकि विज्ञान भी विशेष ज्ञान है।

(4) भारतीय नीति शास्त्र के प्रति ऐतिहासिक दृष्टिकोण—वेदकाल से लेकर आज तक वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण, कल्पसूत्र, गृहसूत्र, षड्दर्शन, रामायण, महाभारत, इतिहास, पुराण, सदाचार-नीति, व्यवहार-नीति, संतों के नैतिक उपदेश और आधुनिक भवोदय के नेताओं तक भारतीय नीति शास्त्र का एक-एक सूत्रबद्ध इतिहास प्राप्त होता है। इसमें व्यक्ति और समाज, जगत् और जीवन, कर्म और धर्म के प्रति जो विशेष दृष्टिकोण रहा है उसे भारतीय नीति शास्त्र के मूल सिद्धान्तों के अन्तर्गत गिना जाता है।

(5) भारतीय नीति शास्त्र और आधुनिक पाश्चात्य नीति शास्त्र में तुलना

- भारतीय शास्त्र अत्यन्त प्राचीन है। भारत में वेद काल से नीति और धर्म का उपदेश निरन्तर चला आ रहा है।

- पाश्चात्य नीति शास्त्र केवल आधुनिक काल का विकास है। प्राचीन काल में उसका कोई अस्तित्व ही नहीं मिलता। पिछले 100-150 वर्षों में पश्चिम के लोगों ने नीति शास्त्र का विकास किया है।

- भारतीय नीति शास्त्र उपदेशात्मक है। इसमें ऋषियों, मुनियों, सिद्धों, सुधारकों के जीवन के सिद्धान्तों तथा उनके उपदेशों का संकलन है।
- पाश्चात्य नीति शास्त्र सिद्धों, महात्माओं के उपदेशों का संग्रह नहीं वरन् उपदेश और श्रद्धा से बाहर होकर मनुष्य की सीमित बुद्धि के आधार पर ही मनुष्य के व्यवहार की समस्याओं की तर्कसम्मत व्याख्या है। इसे वे Rational scientific attitude मानते हैं।
- भारतीय नीति शास्त्र अनुभूतियों पर एवं धर्म को जीवन में उतारने पर बल देता है। Indian ethics is based on human practice.
- पाश्चात्य नीति शास्त्र केवल वाणी का विलास एवं बुद्धि का खेल मात्र है। इसलिये पश्चिम में अनेक Arm Chair philosophers हुए हैं। जो आराम कुर्सी में बैठकर दार्शनिक चर्चा करने में ही सबकुछ मानते हैं, चाहे उनकी नीति चर्चा का उसके प्रत्यक्ष जीवन से कोई सम्बन्ध न हो।
- भारत में भगवान् कृष्ण, राम, बुद्ध, महावीर या शंकर ने अपने नीति दर्शन के सिद्धान्तों को अपने प्रत्यक्ष जीवन में उतार कर नीति की शिक्षा दी। केवल उपदेश करके या पुस्तक लिखकर नहीं।
- भारतीय नीति शास्त्र लोक और परलोक, दोनों का विचार करता है।
- पाश्चात्य नीति शास्त्र केवल ऐतिहासिक व्यवहार की व्याख्या करता है।

नीति शास्त्र की व्याख्या शुक्र नीति में कहा गया है—नीति शास्त्र समस्त जगत् का उपकार कारक तथा मर्यादा पालक है। पुरुषार्थ चतुष्टय का दाता है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में कहा गया है कि नीति शास्त्र सत्य, हित और परिणाम में सुख देने वाली बातों की चर्चा करता है।

(6) भारतीय नीति शास्त्र के मुख्यतया दो विभाग हैं—सामान्य नीतिशास्त्र जो मनुष्य मात्र के लिये उपदेश करता है। दूसरा राजनीति शास्त्र जो राज्य करने वाले के लिये है।

सामान्य नीति शास्त्र के विशेष विषय—पुरुषार्थ चतुष्टय, प्रारब्ध और पुरुषार्थ, सामान्य धर्म, वर्ण धर्म, आश्रम धर्म, नारी धर्म, आपद धर्म, प्रायश्चित्त, मोक्ष साधना आदि-आदि हैं।

(7) धार्मिक और दार्शनिक आधार—संसार की नश्वरता, आत्मा की अमरता, संसार का दुःख चक्र, भोगों में शांति की कमी, ईश्वर में विश्वास आदि-आदि।

(8) भारतीय नीति शास्त्र के मनोवैज्ञानिक आधार—(क) मनुष्य के व्यक्तित्व में आत्मा, चित्त और तीन शरीर (स्थूल, सूक्ष्म, कारण) है।

(ख) मनुष्य के अनुभव की चार अवस्थायें—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, समाधि (तुरीयावस्था)—इनके बिना मनुष्य अपने स्वरूप को नहीं पहचान सकता।

(ग) मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र, फल भोगने में परतंत्र है।

(घ) सत्संगति और साधना से व्यक्तित्व का विकास होता है।

(ड) देह भावना समाप्त होने पर जब आत्मभावना दृढ़ हो जाती है तब निजानंद का अनुभव अधिकाधिक होने लगता है।

(9) भारतीय नीति शास्त्र के सामाजिक आधार—जीव अकेला कर्म करता है तथा अकेला ही कर्मफल भोगता है। इस वचन से कुछ लोग समझते हैं कि भारतीय नीति अधिकांशतः वैयक्तिक है किन्तु कर्म सिद्धांत का यह कठोर नियम है कि प्रत्येक कर्म का कर्ता या भोक्ता व्यक्ति ही हो सकता है।

(10) प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी समाज में जन्म लेता है इसलिए व्यक्ति को समाज के कल्याण का विचार करके व्यवहार करना चाहिए। भारत के मनीषियों ने जाना कि समाज व्यक्ति से बनता है, चेतना व्यक्ति में है, समाज में नहीं, संकल्प शक्ति व्यक्ति में है, समाज में नहीं, अतः अच्छे व्यक्तियों से ही अच्छे समाज की रचना होगी। A good society is formed only by good man.

(11) वर्णाश्रम धर्म की रचना भारत की सुन्दर सामाजिक रचना है। विदेशियों के निरन्तर आक्रमणों के उपरान्त भी वर्णाश्रम धर्म ने भारतीय समाज की रक्षा की है। सामाजिक जीवन से एक परम्परा का निर्माण होता है। दुनिया के सब देशों में से भारत ही एक ऐसा देश है जो हजारों वर्षों से अपनी परम्परा को अविच्छिन्न रूप से कायम रख सका है। भारतीय नीति ग्रंथों में व्यक्ति समाज के प्रति ऋण को पहचानता है किन्तु समाज को सुधारने से पहले स्वयं अपने को भी सुधारने पर बल दिया है अन्यथा समाज को सुधारा नहीं जा सकता।

भारतीय धर्म-दर्शन का नीति शास्त्र

भारत एक धर्म प्रधान देश है। जहाँ धर्म दर्शन से व्यापक दृष्टि प्राप्त करता है और प्रत्यक्ष नीति में या नैतिक कर्मों में प्रतिफलित होता है। धर्म की मोक्ष साधना दर्शन है और कर्म साधना नीति। धर्म सत्य का दर्शन तत्त्वदर्शन द्वारा करता है और ऋतम् का पालन नीति द्वारा। अतः भारत में धर्म, दर्शन और नीति एक-दूसरे से सम्बद्ध और एक-दूसरे से ओत-प्रोत हैं। ज्ञान मार्गी या ज्ञान योगी धर्म का पालन दर्शन द्वारा करते हैं और कर्म योगी धर्म का पालन नैतिक आचरण द्वारा।

नैतिक जीवन के लिये कुछ धार्मिक विश्वास अनिवार्य हैं। जर्मनी के नीति-द्रष्टा कांट ने नीतिशास्त्र के निम्नलिखित धार्मिक आधार आवश्यक माने हैं—

(1) Freedom of will अर्थात् कर्म में संकल्प की स्वतंत्रता। यदि मनुष्य कर्म करने के लिये स्वतंत्र नहीं होगा तो उसे अच्छे या बुरे कर्मों के लिये उत्तरदायी नहीं माना जा सकता।

(2) आत्मा की अमरता—कांट का कथन है कि यदि मनुष्य अमर न हो तो मरने से पूर्व किये जाने वाले अच्छे-बुरे कर्मों का फल उसे नहीं दिया जा सकता। यह कर्म सिद्धांत का उल्लंघन होगा।

(3) God is the governor of the universe—सृष्टि का नैतिक शासन ईश्वर के हाथ में हुए बिना नीतिशास्त्र या नीति दर्शन चल नहीं सकता।

भारतीय नीति दर्शन के धार्मिक आधार—

(1) आत्मा में विश्वास—चार्वाक के मत को छोड़कर बाकी सभी भारतीय नीतिकार आत्मा को अजर-अमर मानते हैं।

(2) कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन—प्रत्येक जीवात्मा कर्म करने में स्वाधीन है किन्तु कर्मफल निर्धारित करने एवं भोगने में पराधीन है। भगवान् ने अर्जुन को यही कहा—कर्म करने का तुम्हें अधिकार है, फल भोगने का नहीं। अतः भारतीय नीतिकारों ने Freedom of will का स्थान रखा है, किन्तु कर्म के फल को जैसा चाहे बना ले, ऐसी आजादी मनुष्य को नहीं दी। जिस प्रकार अपने घर के

भीतर ताला लगाकर हम से चाबी खो जाने पर स्वयं बंदी हो जाते हैं इसी प्रकार कर्मों का ताला लगाने के लिये हम स्वाधीन हैं किन्तु उसके बाद चाबी हमारे हाथ में नहीं रहती। कर्म के फल का निर्धारण उस लोकोत्तर शक्ति द्वारा होता है जिसे हम कर्माध्यक्ष कहते हैं। कर्माध्यक्ष साक्षी निर्गुणस्य।

(3) भवसागर, भवाटवी भव महाग्नि या भवचक्र।

भारतीय नीतिकारों ने संसार को एक समुद्र या दावानल या जंगल या दुःखचक्र माना है। उसका कारण है जन्म-मरण का चक्र। भगवान् शंकराचार्य ने कहा है—

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनम्।
इह संसारे खलु दुस्तारे कृपयापारे पाहि मुरारे।।

अर्थात् पुनः जन्म लेना, पुनः मरना, पुनः जननी की कोख में सोना यह संसार सागर निश्चय ही बड़ा दुस्तर है अर्थात् इससे तरना बड़ा दुष्कर है इसलिये हे मुरारी! कृपा करके इस संसार सागर से मुझे पार करके मेरी रक्षा करें। जो इस संसार सागर से पार होने की इच्छा है उसे मुमुक्षा कहते हैं। अर्थात् मुक्त होने की इच्छा वाले जीव को मुमुक्षु कहते हैं। यह मुमुक्षा सबसे मूल्यवान धन है। इसलिये परमार्थ या परमधन कहा गया है।

(4) कर्मफल का नियम और उससे छुटकारा—सभी प्राणियों को अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है। संसार में रहते हुए कर्म-फल से छुटने का कोई मार्ग नहीं—

कर्म प्रधान बिस्व करि राखा
जो जस करइ तस फल, चाखा।
कर्म की गति टारे नहीं टरे।

कर्मफल का चक्र ही पुनर्जन्म बन जाता है और पुनर्जन्म का चक्र ही दुःख चक्र बन जाता है। इससे मुक्ति का एकमात्र उपाय मोक्ष साधना है। पहले मनुष्य अच्छे कर्मों को करे, बुरे कर्मों को त्याग देवे, फिर अच्छे कर्मों को एवं उसके फल को भी भगवान् को समर्पित कर दे।

सूत्र Do good for the sake of good, ईश्वर को समर्पित करने के लिये अच्छे कर्म करो। Good for God.

जब कोई आदमी किसी से अच्छे कर्म की आशा रखता है और कहता है कि खुदा के वास्ते ऐसा मत करो। अर्थात् बुरा कर्म मत करो। क्योंकि सब कर्म अन्त में ईश्वर को समर्पित करना है। इसलिये अच्छे कर्म करो, निष्काम कर्मयोग, कर्म करते हुए कर्मों के चक्र से छुटने का राजमार्ग है।

ईश्वर की सत्ता

भारतीय नीति शास्त्र ईश्वर की सत्ता पर आधारित है। ईश्वर ही कर्मों का फल देता है और वही अपनी कृपा से कर्म चक्र से मुक्ति भी प्रदान करता है।

परलोक और लोक-लोकान्तर

हमारी पृथ्वी तक मर्त्यलोक है। इसके अतिरिक्त इस ब्रह्माण्ड में अनेक और लोक हैं। मनुष्य संसार से मरकर अपने अच्छे या बुरे कर्मों के अनुसार सुखमय या दुखमय लोकों में जाता है।

मनुष्य ही कर्म योनि है अन्य सब योनियाँ भोग योनियाँ हैं। देवता लोग स्वर्ग में सुख भोग रहे हैं। वे कोई कर्म की कमाई नहीं कर सकते। इसी प्रकार पापी लोग नरक में दुःख भोग रहे हैं। वे भी कर्म नहीं कमा सकते। पशु-पक्षी, कीट योनि सभी भोग योनि हैं। केवल मनुष्य पिछला कर्म भोगते हुए नया कर्म कमाने के योग्य है इसलिये मनुष्य योनि को कर्म योनि कहा गया है। इसलिए कहा है—

सबते दुर्लभ मनुज शरीरा, बड़े भाग मानुष तन पावा।
मानुष तन पावा सुर दुर्लभ सब ग्रंथन गावा।।

(8) वेदों का महत्त्व और प्रमाणिकता—भारत के सभी आस्तिक दर्शन एवं नीतिशास्त्र श्रुति को अंतिम प्रमाण मानते हैं। बौद्ध और जैन नीति शास्त्र वेद की प्रमाणिकता में चाहे विश्वास न रखते हों पर उनका अहिंसा का नीति उपदेश तथा नैतिक आचरण पर बल सर्वथा वेद सम्मत है।

(9) चारों युगों में विश्वास—सभी भारतीय नीतिकारों का धार्मिक विश्वास है कि आज का मानव नैतिक उन्नति नहीं, नैतिक अवनति कर रहा है क्योंकि यह युग कलियुग है। सतयुग में धर्म के चार चरण थे। त्रेता में तीन, द्वापर में दो, कलियुग में केवल एक चरण बचा है।

पश्चिम के लोग आधुनिक युग को उन्नति का युग समझते हैं किन्तु भारत का विश्वास है कि सत्यवादी हरिश्चन्द्र और रामचन्द्र के काल की अपेक्षा हम आज बहुत अधिक पतित हो रहे हैं।

प्राचीन काल के महत्त्व में विश्वास

भारतीय नीतिकारों का विश्वास है कि मनुष्य उन दिनों अधिक सदाचारी एवं तपस्वी होते थे। वे देवताओं के निकट रहते थे। इसलिये उनको नीति का ज्ञान हस्तामलक था।

ये भारतीय नीतिशास्त्र के कुछ धार्मिक विश्वास हैं।

भारतीय नीति शास्त्र के दार्शनिक आधार

भारत में धर्म और दर्शन में भेद करना तनिक कठिन काम है। धर्म श्रद्धा के मार्ग से जिस सत्य की खोज करता है दर्शन बुद्धि-विचार, तर्क और युक्ति द्वारा उसी सत्य को खोजता है। भारत में जितनी दार्शनिक गवेषणा हुई है उतनी संसार के किसी धर्म में नहीं हुई। इसलिए हिन्दूधर्म सबसे अधिक तर्क-सम्मत धर्म है। नीति-शास्त्र के धार्मिक आधार और दार्शनिक आधार इसीलिए बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। क्योंकि धर्म स्वयं दर्शन के युक्तिवाद की कसौटी पर कसा हुआ है। भारतीय नीति शास्त्र के कुछ प्रमुख दार्शनिक आधार निम्नलिखित हैं—

1. आत्मा की अमरता

2. पुनर्जन्म का सिद्धान्त—जब तक आत्मा अमरपद को नहीं पा लेता तब तक जीव नये-नये शरीरों में जन्म लेता है।

3. कर्मफल सिद्धान्त—मनुष्य को अपने किए हुए अच्छे-बुरे कर्मों का फल अवश्य मिलता है। **अवश्मेव लभते फलं कृतम् कर्म शुभाशुभम्।**

4. लोक-लोकान्तर का सिद्धान्त—जीवों के अच्छे-बुरे कर्मों के अनुसार अनेक योनियाँ हैं और अनेक लोक हैं जहाँ वह अच्छे या बुरे कर्मों का सुख या दुःख भोगने के लिये जन्म ग्रहण करते हैं।

5. जन्म-मरण का दुःख चक्र—संसार चक्र में (जन्म-मरण चक्र में) कभी स्थायी सुख-शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती है।

6. सांसारिक भोग—भोग-विलास से स्थायी सुख-शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती।

7. दुःखों से निवृत्ति का उपाय मोक्ष—तृष्णा से मुक्ति ही संसार एवं संसार की चिन्ताओं से मुक्ति है।

8. ज्ञान का महत्त्व—मोक्ष में जितने साधन हैं ज्ञान योग, भक्ति योग, कर्म योग, ध्यान योग इत्यादि उन सब में ज्ञान का महत्त्व सर्वोपरि है। ज्ञान के क्रमानुसार निम्नलिखित दर्जे हैं—

(i) इन्द्रिय ज्ञान—यह ज्ञान बहुत सीमित और संकुचित होता है।

(ii) मानसिक ज्ञान : यह अधिकांश मन की कल्पना पर आधारित होता है।

जिस प्रकार एक कवि या कलाकार अपने मन में कल्पना करके उसका अंकन करते हैं।

(iii) बौद्धिक ज्ञान : बुद्धि से मनुष्य तर्क-वितर्क करता है और दर्शन की गुत्थियों को विचार से सुलझाना चाहता है किन्तु बुद्धि की पहुँच भी सीमित ही है।

(iv) प्रज्ञा का ज्ञान : बुद्धि से बढ़ कर ज्ञान का साधन प्रज्ञा है। प्रज्ञा संयम, ध्यान, धारणा और समाधि के अभ्यास से उदय होती है। उसकी पहुँच बुद्धि से कहीं अधिक होती है।

(v) ऋतम्भरा प्रज्ञा : यह सत्य और ऋत के ज्ञान से परिपूर्ण होती है। इसलिए वह सत्य और ऋत का दर्शन सीधे ही कर लेती है। गायत्री मंत्र में इस के लिये प्रार्थना की गई है। वैदिक ऋषियों को ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त थी।

(vi) दार्शनिक आधार का लक्ष्य बिन्दु है मोक्ष : मोक्ष का आभास इसी जीवन में हो सकता है। जब मनुष्य के हृदय की वासनाएँ शेष हो जाती हैं और मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद-मत्सर पर विजय प्राप्त कर लेता है। जब वह राग और द्वेष से ऊपर उठ जाता है। तब वह संसार में रहते हुए भी मोक्ष का आनन्द लेने लगता है। इसे जीवन्मुक्त अवस्था कहते हैं। मरण के बाद मिलने वाली मुक्ति परामुक्ति कहलाती है।

(vii) ईश्वर की सत्ता और महत्ता : भारतीय नीतिशास्त्र ईश्वर की सत्ता और महत्ता को स्वीकार करता है। बिना ईश्वर के न कर्म सिद्धान्त चलेगा और न नीति सिद्धान्त—तब अनैतिक अराजकता ही रहेगी।

(viii) मानव के सर्वांगीण जीवन के मूल्यों में तारतम्य : भारतीय नीतिशास्त्र व्यवहार और परमार्थ में, प्रवृत्ति और निवृत्ति में, इहलोक और परलोक में तारतम्य और समन्वय मानता है। इहलोक में उन्नति प्रारम्भिक आदर्श है और परलोक में शान्ति अन्तिम आदर्श। इसलिए काम और अर्थ, धर्म और मोक्ष के लिए होने चाहिये।

(ix) योगियों, संतों और सिद्धों के आन्तरिक अनुभव का महत्त्व : भारतीय नीतिशास्त्र सिद्ध पुरुषों के अनुभवों को विशेष महत्त्व देता है। उनका अनुभव हमारे लिए मार्गदर्शक ज्योति बन जाता है।

(x) गुरु का महत्त्व : भारतीय नीतिशास्त्र में गुरु का स्थान सर्वोपरि है। भारत में गुरु आचार्य कहलाते थे जिसका अर्थ है कि वे स्वयं आचार, सदाचार, शिष्टाचार के जीवन्त आदर्श होते हैं। भारत में स्वयं आचार का पालन किये बिना कोई किसी दूसरे को आचार सिखाने का अधिकार नहीं रखता। इसलिए नीतिशास्त्र के वास्तविक द्रष्टा भारत के महान् गुरुजन थे जो अपनी शिष्य-परम्परा में नीतिशास्त्र के महान् आदर्शों को साकार करने में ही अपने जीवन को धन्य मानते थे। मानवता उस ऋषि परम्परा, सन्त परम्परा अथवा गुरु की चिरकृतज्ञ रहेगी।

बौद्ध आचरण शास्त्र

परिचय

1. पिछले लगभग 3000 वर्षों में भगवान् बुद्ध एक महान् आत्मा, महामानव थे। मानवता के उद्यान में वे सर्वश्रेष्ठ पुष्प थे। वे राजघराने में जन्मे एक राजकुमार थे, उन्होंने सब राजसी ठाट बाट, सुख ऐश्वर्य को त्याग कर, संन्यासी बनकर वन में प्रस्थान किया। उनका संन्यास किसी कुंठा या आशाभंग के कारण नहीं था। उन्होंने मानवता के विशाल गृह की सेवा हेतु अपना पैतृक गृह त्याग दिया।

2. बुद्ध महान् नैतिक विचारक थे। वे पहले तो नैतिकतावादी थे फिर रहस्यवादी थे। उन्होंने उस समय की रहस्यवादी विचारधारा को आचरणवाद की दिशा दी। बुद्ध कहते थे, 'जब घर जल रहा है तो आग के विषय में व्यर्थ तर्क-वितर्क का कुछ लाभ नहीं। जल्दी से अग्नि पर जल डालना चाहिए। हमारा समाज अब जल रहा है, इस समय नैतिकता की आवश्यकता है ना कि रहस्यवाद पर चर्चाएं।'

3. धर्म और ईश्वर प्रायः नैतिकता के पथ पर बाधा बन सकते हैं। बुद्ध ने इनसे परे हट कर मानव नैतिकता का एक अच्छा क्षेत्र तैयार किया।

4. बुद्ध की रहस्यवादी मान्यताएं ये हैं—

(i) सब परिवर्तनशील है, स्थाई कुछ भी नहीं।

(ii) ईश्वर के अस्तित्व एवं स्वभाव के विषय में मौन हैं।

(iii) हम सब परिवर्तन की शृंखला के एक भाग हैं।

बुद्ध के दर्शन में परमेश्वर या अमर आत्मा का कोई स्थान नहीं है। बुद्ध ऐसी मान्यताओं को नैतिक उत्थान के लिए जरूरी नहीं मानते हैं।

5. बुद्ध का आचरणवाद बौद्ध मनोविज्ञान पर आधारित है। कोई स्थाई आत्मा नहीं है। व्यक्ति परिवर्तनशील शृंखला का भाग है, इस शृंखला की कड़ियाँ स्मृति से जुड़ी हुई हैं।

6. जीवन की परिभाषा—क्योंकि सभी परिवर्तनशील है, जीवन एक नये, अनदेखे क्षेत्र की यात्रा सी है। सच्चा ज्ञान-पिपासु इस धरती पर अधिक समय तक नहीं रहना चाहता।

7. बुद्ध मानव के उद्धार के प्रतीक हैं। वे विश्व के प्रथम मनुष्यतावादी हैं जो मानव को ईश्वर से पहले रखते हैं। उन्होंने मनुष्य को अमानव शक्तियों से स्वतन्त्र कराया और मानव के गौरव को उच्च स्थान दिया। वे ईश्वर या राक्षस—दोनों में विश्वास नहीं रखते थे। उन्होंने मूर्ति पूजा के स्थान पर उच्च आदर्शों की पूजा का उपदेश दिया।

8. बुद्ध ने चार उच्च आदर्शों की खोज की।

(i) संसार में बहुत दुःख है।

(ii) दुःख का कारण है।

(iii) दुःख से बाहर आने का उपाय है।

(iv) यह उपाय मैं दिखा सकता हूँ।

9. प्रथम आर्य सत्य—हर सुख के अन्त में दुःख होता है, प्रेम का अन्त हानि-द्वेष, जवानी का अन्त बुढ़ापा, जन्म का अन्त मृत्यु और मृत्यु के बाद पीड़ादायी जन्म होते हैं। जन्म, मृत्यु फिर जन्म, कई बार।

10. द्वितीय आर्य सत्य—बुद्ध कारण या निमित्त को सिद्धान्त मानते थे। दुःख को कोई कारण अवश्य होता है। दुःखों की श्रृंखला की 12 कड़ियाँ हैं। दुःख, जन्म-लालसा या इच्छा, ममता (किसी वस्तु के साथ चिपक जाना), प्यास-तृष्णा, इन्द्रियों का ज्ञान, बाह्य पदार्थों से सम्पर्क, इन्द्रियाँ, गर्भ का अनुभव (embryonic-organism), प्राथमिक चेतना, पूर्व जन्म के भाव या धारणा, सत्य के प्रति अज्ञान। दुःख का मुख्य कारण तृष्णा और अविद्या है।

11. अनैतिकता के चार चरण हैं—

अहंकार—स्व या आत्मा के विषय में भ्रान्ति।

काम—दैहिक सुखों की इच्छा।

संशय—नैतिक जीवन मूल्यों पर अविश्वास।

स्पष्ट ज्ञान के अभाव में पाप की ओर प्रवृत्ति।

दुष्चेष्टा—पापसंकल्प।

12. मानव को भ्रमित करने वाले पाँच विकार-(मानस रोग)

(i) काम—Passion (ii) क्रोध—Anger

(iii) लोभ—Greed (iv) मोह—Conceit

(v) अहंकार—Egoism

13. तीसरा आर्य सत्य—दुःखों से निवारण के उपाय हैं। बुद्ध के उपदेशों में दुःखों से निवृत्ति के उपाय बताए गए हैं। सबसे उच्च आदर्श निर्वाण है—जन्म-मरण के बंधन से छुटकारा पाना।

जो मानव जीवन के 10 बन्धन तोड़ देता है, 5 इन्द्रियों को अनुशासित कर सकता है और नैतिक आचरण पर चलता है—वह निर्वाण को प्राप्त करता है।

काम को अनुशासित कर पवित्रता लाभ करता है।

क्रोध को अनुशासित कर सज्जनता लाभ करता है।

लोभ को अनुशासित कर दान में प्रवृत्त होता है।

मोह को अनुशासित कर स्वतंत्रता लाभ करता है।

अहंकार को नियंत्रित कर सत्य को उपलब्ध करता है।

14. निर्वाण के विषय में कुछ भ्रान्तियाँ हैं जो अवश्य मिटा देनी चाहिये।

(i) निर्वाण अकर्मण्यता नहीं है। बुद्ध का जीवन पूर्ण सक्रिय रहा। वे निर्वाण के बाद भी क्रियाशील रहे। निर्वाण साक्षात जीवन मुक्ति ही है।

(ii) निर्वाण अस्तित्व का अन्त नहीं है।

(iii) निर्वाण ज्ञान की प्राप्ति है।

(iv) निर्वाण दुःख-क्लेश का अन्त एवं परम शान्ति का पाना है।

15. चौथा आर्य सत्य—बुद्ध कष्ट के निवारण और निर्वाण प्राप्ति के आठ उपाय बताते हैं।

(1) सम्यक् दृष्टि (2) सम्यक् संकल्प (3) सम्यक् वाणी (4) सम्यक् कर्म (5) सम्यक् आजीविका (6) सम्यक् प्रयत्न (7) सम्यक् स्मृति (8) सम्यक् समाधि।

16. भारतीय आनन्दवाद—पश्चिमी आनन्दवाद के अनुसार केवल सुख ऐश्वर्य ही वांछनीय है, अभीष्ट है—भारतीय आनन्दवादी (बुद्ध) के अनुसार सुख यथार्थ सत्य नहीं है और अप्राप्य है। दुःख ही यथार्थ सत्य है। दुःखों से छुटकारा ही निर्वाण पाना है। इसके विपरीत वेदान्त के अनुसार ईश्वर ही आनन्दस्वरूप है। परम सत्य है। कष्ट और दुःख यथार्थ सत्य नहीं है। परम आनन्द की प्राप्ति ही जीवन का मुख्य लक्ष्य है।

17. नैतिक आदर्श—नैतिक आदर्श सार्वभौमिक भला और चेतन ज्ञानवान सौहार्द ही नैतिक आदर्श हैं।

(i) बुद्ध ने पूरे विश्व के प्रति निष्काम सेवा का उपदेश दिया। जब 'स्व' या अहम् नहीं रहता तो स्वार्थ हो ही नहीं सकता।

(ii) सार्वभौमिक बंधुत्व—हम सब समान कारणों के कारण समान रूप से दुःखी हैं, संतप्त हैं। हम दुःखों के नाटक में समान रूप से अभिनेता हैं। इसलिये हम सभी बंधु और सहयोगी हैं।

(iii) चेतनशील-ज्ञानवान बंधुत्व—हम अज्ञानी अंधे-बंधु नहीं, बल्कि पूर्णतः ज्ञानवान बंधु हैं। बुद्ध ने ज्ञानशील बंधुत्व का उपदेश दिया था। मानव अपने दुःखों को शुद्ध ज्ञान या बुद्धत्व द्वारा समाप्त कर सकता है।

बुद्ध शब्द का अर्थ ज्ञान या प्रकाशित होना है। बौद्ध धर्म ज्ञान पाने या प्रबुद्ध होने का मार्ग है। इनका आदर्श वाक्य है—

बुद्धं सरणं गच्छामि
धम्मं सरणं गच्छामि
संघं सरणं गच्छामि

18. नैतिक ज्ञान का स्रोत—बुद्ध संसार के श्रेष्ठतम विवेकी विद्वान रहे हैं। उनके अनुसार तर्क नैतिक ज्ञान के लिए सबसे अच्छा स्रोत है। भावना, सहजबुद्धि और अन्धविश्वास का कोई स्थान नहीं है।

19. नैतिक चेतना—बुद्ध नैतिक चेतना को बहुत महत्त्व देते हैं। वे विश्व के प्रथम नैतिक दर्शनशास्त्री थे जिन्होंने मानवता को नैतिकता की दिशा दी।

20. मुख्य नैतिकता—सार्वभौमिक अहिंसा एक मुख्य नैतिकता है। हर जीव को अपने समान अमूल्य समझो।

21. नैतिकता का मापदण्ड—मानवता का गौरव सर्वोपरि है। कोई भी कार्य करते समय स्वयं से पूछें कि इस कार्य से मानवता की प्रतिष्ठा कम तो नहीं हो रही।

22. स्वेच्छा—इच्छाशक्ति मनुष्य का अद्भुत उपहार है। मानव में इच्छा करने की शक्ति है, अतः वह अपने कर्मों और परिणाम के लिये उत्तरदायी भी है। इच्छाशक्ति से मनुष्य स्वयं को 5 विकारों से छुड़ा सकता है।

23. विचारशील नैतिकता—बुद्ध पुरातन ग्रन्थों एवं धार्मिक पुस्तकों-वेदों पर विश्वास नहीं करते थे। वे रूढ़िवादी प्रथाओं को हतोत्साहित करते थे। उन्होंने मानवता को अन्धविश्वासों की निद्रा से जगाया और विचारशील नैतिकता का समर्थन किया।

24. कर्म का सिद्धान्त—बुद्ध कर्म के सिद्धान्त पर विश्वास रखते थे। उनके लिये कर्म आन्तरिक प्रेरणा है न कि बाहरी क्रिया।

25. नैतिक न्याय—नैतिक न्याय का उद्देश्य आन्तरिक होता है ना कि बाह्य क्रिया कलाप।

26. अच्छा और शुद्ध आचरण—निर्वाण ही सभी मानवों को नैतिकता की ओर प्रेरित करता है। बुद्ध का आचरणवाद सर्वहिताय की ओर ले जाता है। किन्तु जब बुद्ध कहते हैं कि आन्तरिक उद्देश्य अधिक महत्त्वपूर्ण है, बाह्य कर्म की तुलना में तो यह शुद्ध आचरण, पवित्रता का आचरणवाद है। यह मुख्यतया उचित या शुद्ध व्यवहार का ही आचरणवाद है। निर्वाण इसका अन्तिम लक्ष्य है।

27. व्यक्ति विशेष और समाज—निर्वाण व्यक्ति के उत्थान के लिये और सार्वभौमिक बंधुत्व समाज की भलाई के लिए होता है। बुद्ध ने इन दोनों तत्त्वों का अच्छा सामंजस्य किया। उनका आचरणशास्त्र समाज की भलाई पर अधिक महत्त्व देता है।

28. अन्य गुण—बुद्ध योग और ध्यान को अधिक महत्त्व देते हैं जिसके लिये व्रत, शरीर का शुद्धीकरण और इन्द्रियों का शुद्धीकरण आवश्यक है।

29. मध्यम मार्ग—बुद्ध ने आत्म बलिदान या सुख ऐश्वर्य में लिप्त हो जाना—दोनों को ही बुरा माना था। ये दोनों गलत है। आत्मघात मत करो—इन्द्रियों में अधिक बह मत जाओ। मध्यम मार्ग ही ज्ञान दिलाता है—निर्वाण दिलाता है। इच्छाओं को विवेक पूर्ण ढंग से पूरा करना चाहिए।

30. सादा जीवन : उच्च विचार—इसके तीन मुख्य बिन्दु हैं—निर्धनता, शुद्धता और सेवा।

संघ या सामाजिक बंधुत्व प्राप्त करने के लिये सांसारिक विषय छोड़ दें। संघ में धर्म, लिंग या जाति का भेदभाव नहीं रहता।

आलोचना

1. कर्म के सिद्धान्त के अन्तर्गत व्यक्ति की क्या भूमिका है। यदि व्यक्ति ही नहीं तो कर्म का क्या महत्त्व?

2. निर्वाण प्राप्त करने पर आत्म या स्व की सत्ता नहीं रहती। परिवर्तनों की शृंखला में ऐसी स्थिति कैसे आ सकती है?

3. निर्वाण को समझना दुष्कर है। यह क्या पूर्ण लुप्त हो जाना है? इस स्थिति में 'स्व' का क्या होता है? यदि यह लुप्त हो जाना ही है तो मुक्ति कैसे प्राप्त होती है?

4. कर्म का सिद्धान्त न्याय को नियन्त्रित करने वाली किसी अन्य शक्ति के बिना स्पष्ट नहीं होता।

5. जब स्व या व्यक्ति विशेष नहीं तो नैतिक उत्तरदायित्व कौन लेगा?

भारतीय संस्कृति में शिव तत्त्व

पुण्य सलिला भागीरथी के अविछिन्न प्रवाह में जो स्थान भगवान् शंकर की नगरी काशी-अघनाशी का है, हमारी संस्कृति-सुरसरी में वही स्थान भगवान् शंकर की मंगलमय पर्व-रात्रि, शिवरात्रि का है। भारतीय संस्कृति की अमृतधारा में अध्यात्मतत्त्व प्राणरस के समान प्रवाहित हो रहा है। इसी अध्यात्म की भित्ति पर स्थिर रहने के कारण ही भारतीय संस्कृति मृत्यु को भी पराजित करती हुई मृत्युंजय पद को प्राप्त कर सकी है। भारत का आध्यात्मिक-ज्ञान नश्वर संसार के पीछे एक अविनश्वर सत्ता को खोजने की अमर जिज्ञासा से उत्स्फूर्त हुआ है। जब संसार के अधिकांश देशों में मानव का और पशुओं का कच्चा मांस खाने वाले, अधनंगे लोग बर्बरता के युग की कहानी को दोहरा रहे थे, जब अमरीका अन्धकार में डूबा हुआ था और यूरोप के लोगों ने अपनी बन्दर की पूंछ काट कर अभी इन्सान बनना नहीं सीखा था, उस समय भारत के महान् ऋषि हाथ में वेदज्ञान की मशाल लेकर सारे संसार को आलोकपथ दिखा रहे थे। वेदों के ऋषियों ने अपने हृदय का मंथन करके उसके भीतर के अजर-अमर, अविनाशी आत्मतत्त्व को पहचाना था। फिर उन्होंने सकल सृष्टि के सभी जीवों के भीतर उसी ज्योति को अनुस्यूत देखकर निखिल विश्व को अनुप्राणित करने वाली महाशक्ति के दर्शन किए। इसी सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान, सर्वसर्वेश्वरी शक्ति को 'परमेश्वर' कह कर उसकी अर्चना की गई। ऋषियों ने अपने हृदय मन्दिर में उस चिन्मय शक्ति के दर्शन किए थे जो शब्दों में वर्णित नहीं की जा सकती थी। किन्तु भाषा की लाचारी के कारण अन्तर की नस-नस को अनुप्राणित करने वाली चेतन शक्ति से इनकार नहीं किया जा सकता था। अपने उस महान् अनुभव की प्रसादी का आस्वाद शेष संसार को भी देने के लिए वह मौन आराधना वाले मुनि अब बोले बिना न रह सके और सप्त-सिन्धु के पवित्र तटों पर उन्होंने उस विराट को सम्बोधन कर वेद की अमृत ऋचाएं गानी आरम्भ की। इस तरह वे मौन अनुभव करने वाले 'मुनि' मानवता को आदि ज्ञान देने वाले 'ऋषि' बने।

ब्रह्मा, विष्णु और शिव

जनसाधारण को दार्शनिकों की वह उलझी हुई गुत्थियाँ समझ नहीं आती थी।

इसलिए ऋषियों ने उसी निराकार, निर्विकार, निर्गुण और निरुपाधि ब्रह्म को कुछ गुणों तथा उपाधियों से विभूषित करके समझाना प्रारम्भ किया। इस कार्य में भी गम्भीर चिन्तन के परिणामस्वरूप उस अनादि शक्ति के तीन महान् गुण ढूंढ़े गए। वह शक्ति सृजनात्मक है, पालन-पोषण करने वाली है तथा संहारात्मक है। इन तीन महान् गुणों के प्रतिनिधि के रूप में तीन महादेवों की परिकल्पना का उदय उन भावनाशील भक्तों के हृदय-मन्दिरों में हुआ। इन तीन देवों के नाम हैं, 'सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, पालनकर्ता विष्णु तथा संहारकर्ता शंकर।' ब्रह्मा, विष्णु और महेश की इस त्रिपुटी में सकल विश्व समा जाता है। ये तीन देव अलग-अलग विभागों के स्वामी तीन परमाध्यक्ष प्रभु नहीं है अपितु एक ही ब्रह्म की उस अनन्तरूपा शक्ति के तीन प्रमुख रूप हैं। अतः कुछ ग्रन्थों में गाया है—'शिवस्य परमो विष्णु विष्णोश्च परमः शिवः।' अर्थात् शिव का इष्टदेव विष्णु है और विष्णु का इष्टदेव शिव। इसी प्रकार शिव और ब्रह्मा की, ब्रह्मा और विष्णु की मूलभूत एकता के कई प्रमाण मिलते हैं।

चैतन्य के तीन मौलिक रूप

मानव की आधारभूत चेतना तीन माध्यमों से प्रकट होती है। ज्ञानात्मक कार्यों से, भावनात्मक कार्यों से तथा संकल्पात्मक कार्यों से। चेतना के इन तीन पहलुओं से उस विश्व चेतना को पहचानने के लिए तीन मार्गों का जन्म होता है। वे तीन मार्ग हैं ज्ञान-योग, भक्तियोग तथा कर्मयोग। इन्हीं तीन मार्गों के अनुरूप यह तीन वेद हैं ज्ञान के प्रतीक वेदों के गाने वाले ब्रह्मा जी, भक्तों के आराध्य और श्रद्धा एवं निष्ठा से सुलभ भगवान् विष्णु तथा निरन्तर संहार कार्य में प्रवृत्त, अनवरत कर्म के प्रतीक भगवान् शिव। इन तीन महादेवों की तीन शक्तियाँ भी चेतना के तीन पहलुओं के अनुरूप हैं। सरस्वती ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी, लक्ष्मी सुख एवं सौभाग्य की पोषणा शक्ति और पार्वती दुर्गा के रूप में दुर्जनों का संहार करने वाली प्रलयंकारी शक्ति है।

सत्यं, शिवं और सुन्दरम्

भगवान् शिव वही परम ब्रह्म तत्त्व है जो शिव की सनातन शक्ति के रूप में वेद मन्त्रों में पूजित है। ब्रह्म का रूप होते हुए भी रूपी रूप से भिन्न हो ही नहीं सकता। परब्रह्म परमेश्वर तो नाम और रूप से परे ही हैं इसलिये ब्रह्मा, विष्णु, महेश में से किसी रूप और किसी नाम से अर्चना करने पर पूजा उसी अरूपी और अनामी तत्त्व को पहुँचती है। तीन रूप ब्रह्मा, विष्णु और महेश सत्यं, शिवं और सुन्दरम् के प्रतीक हैं। रमावस्था में सत्यं ही शिवं और शिवं ही सुन्दरं है।

शंकर एवं प्रलयंकर

शिवरात्रि का पावन पर्व इस अनन्त ब्रह्म का शिव के रूप में पूजन करने का

दिवस है। भगवान् शिव को शंकर तथा प्रलयंकर, दोनों माना जाता है। शंकर के अर्थ में वे राम अर्थात् शान्ति को प्रदान करने वाले हैं। भक्तों के लिए वे परम कारुणिक, परम मंगलकारी हैं। किन्तु वही शंकर दुष्ट हृदयों को प्रलयंकर भासते हैं। तुलसीदासजी के शब्दों में—'जा की रही भावना जैसी। प्रभू मूरत तिन देखी तैसी।। वैसे भी मृत्यु के देवता से कल्याण की आशा विरोधाभास प्रतीत होती है। किन्तु इन में विरोध फिर भी नहीं है। सन्त कबीर के शब्दों में—

जिस मरने से जग डरे, मेरे मन आनन्द,
बिन मरने क्यों पाइए, पूर्ण परमानन्द।

एक तत्त्वदर्शी के लिये मृत्यु का क्षण ही मोक्ष का मंगलमय पर्व है। भगवान् शिव सन्तों को मोक्ष एवं दुष्टों को मृत्यु प्रदान करने वाले हैं।

शिवशक्ति लीला

शिव एवं उसकी शक्ति भी प्रकृति एवं पुरुष के समान एक होते हुए भी दो भासमान होते हैं। माया तथा महेश्वर की मूलभूत एकता का स्तवन करते हुए महाकवि कालिदास ने रघुवंश के प्रथम श्लोक में शिव तथा शक्ति को वाणी तथा अर्थ के समान भिन्न-2 प्रतीत होते हुए भी, अभिन्न माना है। गोस्वामी तुलसीदासजी मानस के प्रारम्भ में शिव तथा शक्ति की वन्दना श्रद्धा तथा विश्वास के रूप में करते हैं जिसमें दृश्यमात्र के उपरान्त भी अभिन्न सुन्दर रूपक से समूचे भारत की विराट कल्पना की गई है। भारत के चरणों में 'कन्याकुमारी' है जो वहाँ से ऊपर उठकर भारत के शीर्षस्थान पर स्थित कैलासधाम वासी भगवान् शिव से मिलना चाहती है। इसी मिलन को रहस्यवादी साधकों ने आध्यात्मिक विवाह माना है। योग की परिभाषा में शिव एवं शक्ति नाद एवं बिन्दु है। इन दोनों के संयोग से ही सारी सृष्टि सम्भव होती है। 'यथा पिंडे तथा ब्रह्मांडे' न्याय से जो ब्रह्मांड में सत्य है वह शरीर में भी सत्य है। मानव देह में उसका शीर्ष ही कैलासधाम है जहाँ ब्रह्मरंध्र तथा सहस्रदल कमल है वहीं शंकर का निवास है। शरीर के मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) की पर्वत से उपमा दी जाती है, जिसके सहारे हमारी कुण्डलित (सुप्त) शक्ति, (पर्वत की पुत्री पार्वती) धीरे-धीरे तपस्या के बल से ऊपर कैलास की ओर उठती जाती है, अष्टकमल को पार कर, काम-क्रोधादि को पराजित कर वह कैलासवासी शिव से मिल जाती है। हठयोग तथा अष्टांग योग के अनुसार यही शिव और शक्ति का दिव्य मिलन है।

आत्मा-परमात्मा का पुनर्मिलन

सांकेतिक अर्थ में आत्मा एक सती के समान भगवान् की पूजा में संलग्न थी। बुद्धि ने तर्क-वितर्क करना आरम्भ किया। बौद्धिक क्षमता का प्रतीक 'दक्ष'

भगवान् शिव को भूल गया। आत्मा अपमान से आग-बबूला हो उठी। दक्ष का यज्ञ विध्वंस हुआ। आत्मा ने पुनः तप किया। अब कामदेव ने विघ्न डालना चाहा। वह ईश्वरीय कोप से जल गया। अन्त में आत्मा-परमात्मा का आध्यात्मिक विवाह ही शिव-पार्वती के पावन परिणय के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

स्वरूप की व्याख्या

भगवान् शिव त्रिशूलधारी हैं। वे एक ही प्रहार से तीन प्रकार के शूलों को नष्ट करने वाले हैं। उनके त्रिशूल पर तीन लोक अवस्थित हैं। त्रिकों में तो सारी सृष्टि बंटी हुई है। 3 वेद, 3 देव, 3 योग, 3 गुण, 3 ताप इत्यादि। त्रिपुरासुर के तीनों पुरों को एक ही प्रहार से ध्वस्त करने वाले भगवान् शिव त्रिपुरारि हैं। वे तीन राक्षस काम, क्रोध तथा लोभ हैं अथवा योग की भाषा में वे स्थूल शरीर, सूक्ष्मशरीर और कारण शरीर हैं। तीनों के एकसाथ नष्ट हुए बिना मुक्ति सम्भव नहीं। शंकर त्रि-नेत्रधारी हैं—सूर्य, चन्द्र, अग्नि—पृथ्वी, आकाश, पाताल भू, भुवः, स्वः के सूचक हैं। उनके डमरु की ध्वनियों से सारे संस्कृत स्वरों एवं व्यंजनों की उत्पत्ति हुई है। उनके मस्तक पर सुशोभित शशिरेखा ब्रह्मज्योति की प्रतीक है। शीश पर भागीरथी मुक्ति की सुधाधारा की परिचायक है। व्याघ्रचर्म पशुता पर विजय की परिचायक है। सर्प भूषण कालविजय का प्रतीक है। क्रोध रूपी विष को पचाने के कारण वे नीलकण्ठ हैं। उन्हें त्रिलोचन, त्र्यंबक, शंकर, हर, शंभु, सदाशिव, विश्वनाथ, अर्धनारीश्वर, दिगंबर व दक्षिणामूर्ति इत्यादि कई नामों से पूजा जाता है।

ऐतिहासिक महापुरुष शिव

पं.भगदत्त रिसर्च स्कालर के मतानुसार वेदों में शिव, शंकर, शर्व आदि शब्द परब्रह्म के विशेषण हैं किन्तु इतिहास पुराण में ये नाम एक ऐतिहासिक महापुरुष के हैं। ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार माता सुरभि और कश्यप प्रजापति के ग्यारह पुत्र थे। इन्हें एकादश रुद्र कहा जाता है। इनमें से एक शिव थे। शिव के एक भाई नाग थे। उनसे नाग जाति का आरम्भ हुआ। यही नाग जाति, नागा जाति के नाम से कैलास की बायीं ओर असम के पर्वतों में बसी हुई है, नागपुर भी नागों का पुर है। डॉ. कालिदास नाग जैसे विद्वान मनुष्य ही हैं सर्प नहीं। शिवजी सारे भाइयों से अधिक तपस्वी, तेजस्वी, ज्ञानवान, समर्थ एवं दीर्घजीवी हुए। उनके तप की आश्चर्यजनक घटनाएं संस्कृत ग्रन्थों में भरी पड़ी हैं।

माता सुरभि का देश अफ़गानिस्तान से परे और फारस के नीचे था। शिवजी का जन्म वहीं का माना जाता है। कैलास उनके तप का स्थान था। वे भारत के अनेक स्थानों में घूमते रहे। उनकी बहुत लम्बी आयु के कारण लोगों का विश्वास है कि शिवजी आज भी जीवित हैं तथा कैलास में विचरते हैं।

पुराणों के अनुसार ब्रह्माजी के दिए हुए ज्ञान का सार-संक्षेप भगवान् शिव ने मानवता को दिया। अतः वे ज्ञान के गुरु हुए। उनका शास्त्र राजनीति के तत्त्वों से परिपूर्ण है। उसे 'विशालाक्ष शास्त्र' कहते हैं। साधारण मनुष्य के दो आंखें होती हैं। उनकी तीसरी विशाल आंख थी, जिससे वह राजनीति के गहरे तत्त्वों को देखते थे। कौटिल्य ने भी विशालाक्ष शास्त्र का उल्लेख किया है।

शिवजी के गण नन्दी उनके प्रिय शिष्य थे तथा महान् विद्वान मनुष्य थे। उन्होंने कामशास्त्र का सम्पादन किया जो बाद में वात्स्यायन के हाथों जनता को मिला।

शिवजी ने लोक को पारद विद्या दी। पारद का अर्थ पार ले जाने वाला है इससे आयु लम्बी होती है। यह एक रस विद्या है। रसार्णव तन्त्र में इसका वर्णन है। गुरु गोरखनाथ ने भी शिव की तरह इसके प्रयोग से लम्बी आयु प्राप्त की। शिवजी पाशुपतास्त्र जैसे उस युग के एटम बम के भी आविष्कर्ता थे। अर्जुन ने शिवजी से वह अस्त्र प्राप्त कर जयद्रथ वध के समय उसका प्रयोग किया था। शिवजी ताण्डव नृत्य के आविष्कर्ता थे। अतः वे नटराज कहलाए। अमृत मन्थन के समय शिवजी ने पारद के योग से विष का प्रभाव गले से नीचे नहीं उतरने दिया, विष से कण्ठ नीला हो जाने से वे नीलकण्ठ कहलाये।

सारस्वत, मण्ड, दैत्य, कैवर्त, किरात, नाग, भूत-पिशाच आदि जातियों में शिव की पूजा प्रचलित थी अतः शिव के नाम भी इन्हीं के सम्बन्ध से दैत्य नाथ, किरात, नागपति, भूतनाथ इत्यादि पड़ गए। पिशाच जाति की पिशाची भाषा का रूपान्तर पश्तो भाषा है। पं. भगवद दत्तजी के मतानुसार महाभारत के युद्धकाल में मोहंजोदरो में शिवोपासक असुर जाति रहती थी। पुरातत्त्व विभाग दिल्ली के अध्यक्ष श्री रामचन्द्र के मतानुसार मोहंजोदारो की सिन्धुघाटी सभ्यता शुद्ध रूप से वैदिक सभ्यता थी तथा वहाँ के पशुपति का चित्र वैदिक आधार पर है।

काश्मीर में अभिनव गुप्ताचार्य ने शैवधर्म का बड़ा प्रचार किया। मद्रास तथा श्रीलंका में शिव पूजा प्रचलित हुई। सारे इंडोनेशिया में शिव तथा बुद्ध की मूर्तियाँ साथ-साथ हैं।

वेदों में शिव

वेद में शिव रुद्र नाम से प्रतिष्ठित हैं किन्तु शिव नाम भी बहुत बार आया है। ब्रह्म की वन्दना में कहा है 'शांतं शिवम् अद्वैतम।' यजुर्वेद 12/17 में गाया है—

शिवोभूत्वामह्यमग्ने अथोसीद
शिस्त्वम शिवाः कृत्वाः
दिशः सर्वाः स्च योनिमिहासदः ।

पुनः 11/45 में कहा है। शिवो भव प्रजाभ्यो अर्थात् अपनी प्रजाओं के लिए कल्याणकारी बने। वेद में प्रयुक्त रुद्र शब्द कहीं शिव के लिए, कहीं अग्नि के लिए, कहीं तेज और वायु के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। वैदिक वाङ्मय में प्राप्त होने वाले दो शब्द 'व्रात्य' एवं 'शिश्नदेव' पर अभी तक विद्वानों में पर्याप्त विवाद है। किन्तु विश्व की सर्वप्राचीन पुस्तक ऋग्वेद में जिस मंगलमय शिव की वन्दना की गई है उसी भगवान् शंकर के चरणों में शीश नवाकर हम विश्व भर के मंगल की कामना से वैदिक ऋषि के कण्ठ मे कण्ठ मिलाकर ही गाते हैं—

नमः शम्भवाय च, मयोभवाय च,
नमः शंकराय च, मयस्कराय च,
नमः शिवाय च, शिवतराय च।।

हे प्राचीन भारत भूमि! हे मानव जाति का पालन करने वाली! हे पूजनीया! हे पोषणदात्री! तुझे नमस्कार है। शताब्दियों से लगातार चलने वाले पाशविक अत्याचार आज तक तुझे नष्ट नहीं कर सके, तेरा स्वागत है। हे श्रद्धा, प्रेम, कला और विज्ञान की जन्मदात्री, तुझे नमस्कार है।

—एम. लुई जेकोलियट

कल्याणकारी शिव का विश्वव्यापी रूप

'शैव धर्म का अध्ययन भारतीय सभ्यता का अध्ययन है।' यह शब्द डॉ. यदुवंशी ने साधु आश्रम, होशियारपुर द्वारा प्रकाशित एक ग्रन्थ में संकलित लेख 'शैवधर्म के ऐतिहासिक आधार', में लिखे हैं। श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार ने लिखा है, विभिन्न जातियों की एकता और सम्मिश्रण को 'शिव' के समान और कोई देवता व्यक्त नहीं करता।' वे पुनः कहते हैं, 'जावा, बाली, चम्पा आदि देशों में भी शिव का यही रूप पहुँचा और पूजा गया। तेरहवीं शती के बाद सम्भवतः महादेव की पूजा विधि और उसके स्वरूप में कोई अन्तर नहीं आया। इस सदी तक के सांस्कृतिक और दैशिक-इतिहास को यदि एक शब्द में कहना हो तो हम 'शिव' कह सकते हैं। यह है इस देवता का महत्त्व और इसी कारण इसको देवाधिदेव और महादेव कहा गया। भारत और वृहत्तर भारत को जोड़ने वाला दृढ़ और स्थायी पुल भी यही है। इसकी पूजा करना भारतीय संस्कृति और अपने राष्ट्र-निर्माता पूर्वजों की पुण्य स्मृति का आदर और उनको श्रद्धांजलि अर्पित करना है।'

वेद में भगवान् के कल्याणकारी स्वरूप को शिव, शंकर, शंभु नाम से स्मरण कर वन्दना गाई गई है—

नमः शम्भवाय च, मयोभवाय च,
नमः शंकराय च, मयस्कराय च,
नमः शिवाय च, शिवतराय च।।

जगत्गुरु भारत ने विश्वकल्याण का सन्देश सारे संसार को देने हेतु अनेकानेक देशों में शिवसंकल्प धारण करने वाले वीरव्रत, ज्योतिर्धर देवदूतों को भेजा तथा सारे विश्व में भारतीय संस्कृति के अन्य आदर्शों एवं मूल्यों के प्रचार के साथ-साथ शिवत्व का भी प्रचार हुआ। आजतक दुनिया भर के देशों में शिवपूजा के प्रचलन के जीवंत प्रमाण अपनी मौन-मुखर भाषा में भारत एवं भारतीयता का यश गा रहे हैं।

उत्तरी अफ्रीका—फ्रांस देश के विद्वान् लुइस साहब ने लिखा है कि अफ्रीका

के मिस्र देश में मेफिस और अशीरस नामक क्षेत्रों में नन्दी पर विराजमान, त्रिशूलहस्त एवं व्याघ्र चर्मधारी शिव, की अनेक मूर्तियाँ हैं, जिनका वहाँ के लोग बेल पत्र से पूजन और दुग्ध से अभिषेक करते हैं।

हिस्टोरिकल हिस्ट्री ऑफ दी वर्ल्ड में लिखा है 'इजिप्टवासी पणिकों की ही शाखा हैं। वे लोग पर्शियन गल्फ से होते हुए लाल समुद्र के दक्षिण में पांत नामक प्रदेश से गए। ये पांत शब्द भारतीय 'पांडय' शब्द का ही अपभ्रंश है।' भविष्य पुराण के अनुसार कण्व ऋषि सरस्वती की आज्ञा से मिस्र देश में गए। मिस्र में कई सूर्य मन्दिर मिले हैं और पवित्र नगर में 'महांकाल म्यो' नामक एक मन्दिर भी है। मन्दिर के एक भाग में मच्छिन्दरनाथ की मूर्ति है और दूसरे भाग में दत्तात्रेय के पदचिह्न हैं। मिस्री देवता 'हर' शिव का ही नाम है तथा 'सुर' सूर्य का रूपान्तर है।

तुर्किस्तान—तुर्किस्तान के बाबीलान के नगर में एक हजार दो सौ फुट का एक महालिंग है। पृथ्वी पर इतना बड़ा शिवलिंग अन्यत्र नहीं है।

इसी प्रकार हेड्रापोलिस नगर में एक विशाल शिवालय है, जिसमें 300 फुट का एक शिवलिंग है।

अरब—अरब देश में भी हजरत मुहम्मद के जन्म से पूर्व हिन्दू तथा बौद्ध-धर्म का प्रचार था। मक्का के पवित्र मन्दिर में 360 मूर्तियाँ धरी थीं और एक काले रंग का बड़ा पत्थर था जिसे 'संगे असवद' कहते थे। लोगों में इस पत्थर की पूजा का बड़ा प्रचलन था। हजरत मुहम्मद जब मक्का के प्राचीन धर्मावलम्बियों से लड़ाई लड़ रहे थे तो उन्होंने दुआ मांगी कि या संगे असवद ! अगर मैं यह लड़ाई जीत गया तो तुझे खाना काबा से न हटाऊंगा। हजरत ने लड़ाई जीतने के बाद बाकी मूर्तियों को तुड़वा दिया किन्तु संगे असवद को आकर बोसा दिया (चूमा)। तब से यह काला पत्थर वहीं रखा है और हाजी मुसलमान इसे चूमते चले आ रहे हैं। वेदमूर्ति श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजी ने अपने एक गवेषणा पूर्ण लेख में लिखा है कि वह काला पत्थर एक महान् शिवलिंग है जो कम से कम 20 बैलगाड़ियों पर उठाया जा सकता है। उसे भारतीय ग्रन्थों में मक्केश्वर महादेव कहा जाता है। वहाँ के जमजम नामक कुएं में भी एक शिवलिंग है जिसकी पूजा खजूर की पत्तियों से होती है। हजरत मुहम्मद के चाचा 'अब्दुलहिक्म' ने महादेव की स्तुति में लिखा था—

बअहलोलहा अजहू अरमीमन महादेव औ।
मनाजेल इल मुद्दीनें मिनहुम व सयत्तरू।।

अर्थात् एक बार भी यदि मनुष्य सच्चे हृदय से महादेवजी की पूजा करे तो धर्म मार्ग में उच्च से उच्च पद पा सकता है।

अमरीका—भिक्षु चमनलाल ने 'हिन्दू अमरीका' में लिखा है कि कोलम्बस के अमरीका खोजने से हजार वर्ष पहले अमरीका विशेषकर पेरू, बोलिविया तथा मैक्सिको में हिन्दू धर्म का प्रचलन था। उन्होंने अपनी ऐतिहासिक पुस्तक में मैक्सिको के महान् शिव मन्दिर, बोलिविया के कैलास मन्दिर तथा पेरू की शिव एवं गणेश मूर्तियों के चित्र भी दिए हैं। ब्राजील में अभी तक अनेक शिव मन्दिर तथा शिवलिंग मिलते हैं।

यूरोप—कारिन्थ नगर में तो पार्वती मन्दिर भी पाया जाता है।

इटली के अनेक ईसाई अभी तक शिव पूजा करते हैं।

श्री काशीनाथ शास्त्री (मैसूर) ने लिखा है कि स्काटलैण्ड (ग्लासगो) में एक सुवर्णाच्छादित शिवलिंग है जिसकी पूजा यहाँ के लोग बड़ी भक्ति से करते हैं।

मध्यपूर्व—'फिजियन' के 'एटिस' या 'निनिवा' नगर में 'एषीर' नामक शिवलिंग है।

इसी प्रकार यहूदियों के देश में भी अनेक शिवलिंग मिले हैं।

मोहंजोदरो तथा हड़प्पा से प्राप्त पशुपति शिव की मूर्ति तथा लिंग और उन्हीं की अनुकृति की सभ्यता का सुमेरिया, बेबिलोनिया में पाया जाना भी वृहत्तर भारत का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है।

अफगानिस्तान और ईरान—'अफरीदिस्तान, चित्राल, काबुल-बलख, बुखारा आदि स्थानों पर शिवलिंग मिले हैं। भगवद रिसर्च स्कालर ने वेदों के कल्याणकारी शिव के अतिरिक्त एक ऐतिहासिक पुरुष शिव का भी वर्णन किया है। ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार माता सुरभि और कश्यप प्रजापति के ग्यारह पुत्र थे। इनमें से एक शिव थे। उनसे नाग जाति का आरम्भ हुआ। शिवजी सभी भाइयों से अधिक तपस्वी, ज्ञानवान, समर्थ एवं दीर्घजीवी हुए। माता सुरभि का देश अफगानिस्तान से परे और फारस के नीचे था। शिवजी का जन्म वहीं का माना जाता है, कैलास उनके तप का स्थान है। वे अनेक स्थानों पर घूमते रहे। पुराणों के अनुसार ब्रह्माजी के दिए हुए ज्ञान का सार-संक्षेप शिवजी ने मानवता को दिया।

ईरान के सासानी राजाओं के सिक्के में शिवमूर्ति होती थी। वहाँ शिव त्रिशूल हाथ में लिये, ईरानी पोशाक में वृषभ के साथ दिखाए गये हैं। कल्याण गोरखपुर के शिवांक में उक्त सिक्के का वृहताकार छायाचित्र दिया है।

चम्पा (अनाम)—हिन्द-चीन का प्राचीन नाम चम्पा है। श्री आर. सी. मजूमदार ने अपने 'सुदूरपूर्व में प्राचीन भारतीय उपनिवेश' (आंग्ल भाषा) नामक ग्रन्थ में बताया है कि अनाम में 92 शिलालेखों में भगवान् शिवशंकर का स्तवन किया गया है। 'ओम नमः शिवाय' नामक भारत का 'कल्याण को नमस्कार' करने

वाला मन्त्र सभी ओर बहुतायत से प्रयोग हुआ है। वहाँ के सभी राजा शिवभक्त थे। उस देश का 'मीसोनखेड़ा' नामक स्थान शिवालयों की अधिकता के कारण काशी की समानता करता था। एक शिलालेख के अनुसार राजा मप्रवर्मा ने भद्रेश्वर महादेव की स्थापना की। शिलालेख के एक श्लोक में शिव-स्तुति के साथ उक्त घटना को अंकित किया गया है—

सृष्टं येन त्रितय मग्विलं भू र्भुवः स्वः स्वशक्तया।
येनोत्खातं भुवन दुरित वन्हिने बान्धकारम्।
यस्याचिन्त्यो जगति महिमा यस्य नादिर्नचान्त-
चम्पादेशे जनयतु सुखं शंभु भद्रेश्वरोयम्।।

अर्थात्—जिसने निज शक्ति से भू, भुवः स्वः तथा अखिल त्रिलोक की सर्जना की है, जिसने अपनी ज्ञानाग्नि से निखिल भुवन के पाप अन्धकार को नष्ट कर दिया है, जगत में जिसकी महिमा अचिन्त्य है तथा जिसका आदि और अन्त नहीं है वह शंभु भद्रेश्वर महादेव चम्पादेश में सुख की वर्षा करे।

16वें लेख में एक अन्य बड़ी अनूठी स्तुति है—

यं सर्व देवाः ससुरेशमुख्या, ध्यायान्ति तत्तत्वविदश्च सन्तः।
स्वस्थः सुशुद्धः परमो वरेण्यो, ईशान नाथः स जयत्य जस्रम्।।

अथवा—

जिसे देवता-इन्द्रादिक सब, और तत्त्वदर्शी हैं ध्याते। स्वस्थ शुद्ध परमोवरेण्य जो, उस ईशान नाथ की जय हो।

उस महान् शिवालय की सेवा का खर्च चलाने के लिए महाराजा ने एक कोष की स्थापना की। तद्विषयक शिलालेख है—

श्री ज्ञानेश्वर कोशं संस्थाप्य यथा विधि स्वभक्ति वशात्।
श्रीमान् प्रकाश धर्मो मुकुटं भद्रेश्वरायादात्।।

राजा नरवाहन वर्मा ने मन्दिर की वेदी को सोने का बनवाया। शिलालेख प्रमाण है—

नरवाहन वर्म श्रीररोतां शिल्प।
मयीम, रुक्म रौप्य बर्बिद्धां ब्रह्मा मेरु शिखामिवां
स्वर्ण राप्यमयी लक्ष्मी विभ्रात वैदिका पुन।
विद्युत ज्योति प्रभा भांति हिमगिरेरिव।।

42वें श्लोक में भगवान् शंकर की हृदय हारी वन्दना गाई गई है—

यो भस्मराश्यां बहुसंचायायां, दिव्यः रूखासान उरु प्रभाव।
देदीप्यते सूर्य इवांशुमाला, प्रद्योतितः रवे विनतांबुदेये।।

शंकर एवं नारायण की संयुक्त मूर्ति जो भारत में हरिहर के नाम से प्रसिद्ध है। हिन्द-चीन में भी मिलती है। इस देश का रक्षक देवता ही शिव माना जाता था।

कम्बुज (कम्बोडिया) की विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भारतीय संस्कृति के एक पूर्ण प्रफुल्ल पुष्प से उपमा की है। अनुकूल पवन से उस सुगन्धित फूल के बीज संसार के अनेकानेक देशों में फैल गए तथा उन देशों को भी संस्कृति की सुवास से भर दिया। कौंडिन्य नाम के भारतीय पण्डित ने ईसा की शती में कम्बोडिया में चरण रखे तथा वहाँ भारतीय संस्कृति का बिरवा आरोपित किया। वहाँ के अन्कारथाम के महान् ऐतिहासिक स्थल पर बायोन मन्दिर में शिव की मूर्ति स्थापित है। हरिहर संयुक्त मूर्ति का दर्शन भी कम्बुज में बहुत है। कम्बुज के 'स्काद काक थाम' का शिलालेख 60 इंच ऊँचा है तथा शिव-महिमा से भरा हुआ है। शैवधर्म 600 वर्षों तक कम्बोडिया का राजधर्म बना रहा।

जैसे गया में विष्णुपाद तीर्थ है, श्रीलंका में बुद्धपाद तीर्थ है, शिवपाद तीर्थ कम्बोडिया में ही है, किन्तु जगत् में अन्यत्र कहीं नहीं। भारतीयता के प्रभाव से पूर्व के जो खमेर देवता थे वे सब भी शिव के रूप में लीन हो गए तथा शिव के लिए अनेक नाम खमेर भाषा में दिए गए।

जावा (यव द्वीप)—जावा में भारतीय प्रभाव का श्रीगणेश महर्षि अगस्त्य के समुद्र लंघन कर वहाँ पहुँचने की घटना से प्रारम्भ होता है। आज तक भी जावा के मन्दिरों में शिव एवं अगस्त्य की संयुक्त मूर्तियों के दर्शन होते हैं। कहीं अगस्त्य रूपी शिव हैं कहीं शिव रूपी अगस्त्य। एक शिव मूर्ति 1 फुट 1 इंच ऊँची है, जिसकी जटाओं पर ऊँचा ताज शोभित है तथा बालचन्द्र से विभूषित हैं। मूर्ति की चार भुजाएं हैं, एक में कमंडलु है। इसी प्रकार त्रैलोक्य विजयी शिव की मूर्ति चतुर्मुखी है। हर के शीश पर मुकुट है। जोग्जाकार्ता (योग्यकर्ता) नगर के मुसलमान सुलतान अभी तक अपने नाम के साथ 'भुवन सेनापति' लिखते हैं। 'प्रम्बनन' में एक अनूठा मन्दिर है। वहाँ चंडी शिव का मन्दिर 60 फुट ऊँचा है। उस मन्दिर की मूर्ति का छायाचित्र कल्याण ने प्रकाशित किया है।

बाली—बाली द्वीप तो आज तक भी पूर्णतया भारतीय (हिन्दू) है, शिव प्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य मानते हैं कपूर और शिवशंकर की अर्चना में नृत्य करते हैं। सूर्य को भी वे शिव का ही रूप मानते हैं। मन्दिर के प्रवेशद्वार को विभूषित करने के लिए गणेश तथा नन्दी की प्रतिमाएँ हैं। शिव पूजा का सर्वाधिक प्रचलन है। वहाँ लिंग पूजा नहीं, शिव के विग्रह की मूर्तियाँ हैं। त्रिशूल के स्थान पर शिव के हाथ में

चक्र दिखाया गया है जो कि सती के मृत शरीर को कई भागों में काटने के लिए प्रयोग किया गया था। घंटियाँ, तिलक, धूप-दीप, आरती, चरणामृत—सभी कुछ भारतीय हैं।

विश्व भर में भारतीय संस्कृति के कल्याण सन्देश को प्रसारित करने वाले विश्व के अनादि शिवतत्त्व की वन्दना में हम वेदों की वाणी में गाते हैं—

एकोहि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य, इमांल्लोकान ईशत ईशनीभिः।
प्रत्डजनांस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले, संसृज्य विश्वाः भुवनानि गोपाः।।

'हिन्दुत्व एक प्रवाह है, कोई स्थिर स्थिति नहीं, यह प्रक्रिया है परिणाम नहीं। यह एक परम्परा है कोई स्थिर प्रकटीकरण नहीं। इसका पिछला इतिहास हमें इस बात का विश्वास दिलाता है कि भविष्य में किसी भी वैचारिक या ऐतिहासिक आपात परिस्थिति में ऐसी ही खरी उतरेगी।'

—डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

भगवान् गणपति के स्वरूप का विवेचन

गणपति गणेश के पौराणिक रूपक के आधार पर निर्मित भगवान् गणेश की मूर्ति को देखकर आज का बुद्धिवादी मानव सम्भवतः बड़ा विस्मय करेगा। क्योंकि मानव के शरीर तथा गज के मस्तक वाला जीव आज तक जीव विज्ञान की प्रयोगशाला में नहीं देखा गया है। इसलिए तर्क के आधार पर आज का शिक्षित मानव गणेश को केवल मानवीय कल्पना से प्रसूत एक खिलौना मात्र मान कर उसका उपहास भी करने लगता है। जिस देवता को मानव अपनी कल्पना मात्र से स्वयं पैदा करता है वह मानव की प्रार्थना सुन कर उसके विघ्नों का निवारण कैसे करेगा। विदेशियों तथा विधर्मियों ने भी भारतीयों को धर्मच्युत करने के लिए हमारे गणपति पर तीक्ष्ण व्यंग्य किए।

कुछ विद्वानों ने आर्य एवं द्रविड़ संस्कृतियों के परस्पर संघर्ष की भूमिका में गणेश को द्रविड़-देवता माना। श्री दिनकर तथा बाबू सम्पूर्णानन्द ने भी गणेश को आर्येतर देवता माना जो बाद में आर्यों द्वारा भी पूजा जाने लगा। किन्तु शुक्ल यजुर्वेद में गणपति की स्तुति बड़ी अद्‌भुत है—

गणानांत्वा गणपतिं हवामहे,
प्रियाणांत्वा प्रियपतिं हवामहे।
निधिनांत्वा निधिपतिं हवामहे वसोमम्,
आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम्।।

जिस गणों के गणपति, प्रियों के प्रियपति, निधियों के निधिपति गणेश की अर्चना करते हुए वैदिक ऋषि हवि समर्पित कर रहे हैं, वह गणेश आर्य देवता ही है।

अलंकारिक रूपक

गणेशजी की कथा एवं स्वरूप में रूपक अलंकार का प्रयोग किया गया है। सारी कथा बड़े काव्यात्मक ढंग से गाई गई है। काव्यमय रूपक को जैसे का तैसा तथ्य मान लेने से पुराणकार का अभिप्राय हमें कभी प्राप्त नहीं हो सकेगा। परमतत्त्व का सीधे वर्णन नहीं किया जा सकता, अलंकार का सहारा लेना आवश्यक है।

अलंकार से बात वैसे भी सुन्दर बन जाती है, चमत्कारपूर्ण हो जाने से हमें आनन्दपूर्ण विस्मय होता है जनसाधारण की जिज्ञासा को भी तृप्ति मिलती रहती है, बाल बुद्धि वाले लोगों के लिए वह एक रुचिकर कहानी बन जाती है, और विचारवान लोग रूपक के भेष के पीछे छिपे हुए तत्त्व के भी दर्शन कर लेते हैं।

सामाजिक तत्त्व दर्शन

पुण्यश्लोक डॉ. भगवानदास ने गणेशजी की कथा का सामाजिक अर्थ लगाया है। पुराणकथा के अनुसार एक बार शिव कहीं बाहर घूमने गए। पीछे पार्वती ने स्नान करते समय अपने शरीर पर उबटन मली। उस मैल भरी उबटन का उसने एक पुतला बना दिया। वह पुतला उसे भला लगा। उसने उसमें प्राण फूंक दिया और उसे बाहर द्वार पर रक्षा करने के लिए खड़ा कर दिया। बाहर से शिव आए। गणेशजी ने उन्हें रोका। इस पर क्रुद्ध होकर शिवजी ने अपने त्रिशूल के प्रहार से उसका शीर्ष काट दिया। बाद में पार्वती के विलाप पर भगवान् विष्णु आए, नारदजी भी बीच-बचाव के लिए आए। तब विष्णु ने एक गज का मस्तक काट कर उस पुतले के ऊपर लगा दिया तथा उसे आशीर्वाद दिया कि सब देवताओं में सबसे पहले तुम्हारी पूजा होगी।

डाक्टर भगवानदास का मत है कि शिव और पार्वती सम्भवतः दो जातियों के नाम है। शिव जाति मैदानी तथा सभ्य जाति थी और पार्वती जाति पहाड़ी तथा अर्ध-सभ्य जाति थी। प्रायः मैदानी जातियों का पिछड़ी हुई पहाड़ी जातियों पर प्रभुत्व रहता है। एक बार पार्वती जाति ने विचार किया कि हमें अब शिव जाति का आधिपत्य स्वीकार न करके, अपना नेता आप चुन लेना चाहिए। उन्होंने अपने ही ग्रामीण पहाड़ी समाज शरीर के भीतर से ही जैसा-तैसा एक मैलयुक्त नेता चुन कर खड़ा कर दिया। उसे कोई गणेश नहीं कहता था। वह तो पार्वती जाति का ही पुत्र, पहाड़ी जाति का नेता बन गया। पर वह था असभ्य, उद्दंड और गर्वीला। घमण्ड में भर कर उसने बड़ी अशिष्टता से शिव का मार्ग भी रोक दिया। जिस का अभी तक शासन चलता था एकाएक उसके शासन को चुनौती मिलने पर वह तिलमिला उठता है। शिव ने क्रोध में उसका शीर्ष काट दिया। यह मैदानी जाति द्वारा पहाड़ी जाति की उद्दण्डता का उचित दंड था। वैसे भी शिव (कल्याण) का मार्ग रोकने वाले का शीर्ष कट ही जायेगा चाहे वह स्वयं गणपति ही क्यों न हो। किन्तु विचारने की बात यह है कि तब तक वह केवल मल का पुतला था उसे गणेश या गणपति नहीं माना गया था। अतः शीर्ष गणेश का नहीं, गणेश बनने से पूर्व जो मैल का पुतला, नेतागिरी का घमण्ड कर रहा था, उसका कटा। अतः आज के घासलेटी नेताओं के लिए भी एक चेतावनी है कि यदि वे जिस जाति ने उन्हें नेता का सिंहासन दिया है उस जाति के पूज्य आदर्श, पार्वती के पति (शिव अथवा

जनकल्याण) का ही तिरस्कार करने लगेंगे, तो उन मैल के पुतलों का घमण्ड से अकड़ रहा शीर्ष कट जाएगा। ऋषियों ने अत्याचारी राजा वेन को गद्दी से उतार कर तथा घमण्डी राजा ययाति को स्वर्ग से भी नीचे गिरा कर इसी मर्यादा का पालन किया है। पुतले का शीश कटने से पश्चात् पार्वती जाति का मोह के कारण विलाप भी स्वाभाविक है, किन्तु अपने ही आदर्श (शिव) का स्मरण होने से मोह दूर हुआ। नारद जी दोनों पक्षों को उकसाने वाले तथा अन्त में जनहित की रक्षा के लिए समझौता कराने वाले प्रसिद्ध पौराणिक चरित्र हैं। डॉ. भगवानदास ने उन्हें आजकल के पत्र-प्रतिनिधियों का तत्कालीन प्रतीक माना है जो अपने समाचार पत्र के लिए गर्मागर्म खबरें एकत्र करने के लिए सर्वत्र घूमते रहते थे। शिव का शासन तो पार्वत्य प्रदेश में (नागदेश, गन्धर्वदेश, भूटान देश, असम देश, किन्नर देश, गांधारदेश इत्यादि में) था, किन्तु विष्णु त्रिलोकी के स्वामी थे। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर के मत में प्राचीनकाल में तिब्बत ही स्वर्ग था, हिमालय के अंचल के प्रदेश गन्धर्व, यक्ष, किन्नरों के देश थे, आर्यावर्त्त भूलोक था तथा दक्षिण भारत पाताल था। अतः स्वर्ग (तिब्बत) का राजा (उस काल का दलाईलामा) इन्द्र कहलाता था तथा भारत भर का स्वामी विष्णु था। किसी प्रदेश या छोटे गणराज्य में झगड़ा हो जाने पर राष्ट्रपति ही निबटाते हैं। अतः विष्णु ने यह समझौता कराया कि पार्वती जाति को स्वतन्त्रता प्रदान की जाय। पर, वह शिव के आशीर्वाद से ही स्वतन्त्र रहे, शिव का तिरस्कार करके नहीं। कहा जाता है कि उस पुतले पर गज का मस्तक लगा कर पार्वती गणराज्य के एक आदर्श नेता गणपति का स्वरूप निश्चित किया गया। मैल का पुतला नष्ट होकर अब गणेश सच्चे नेता बने, पर उन्होंने अस्तित्व में आते ही प्रथम नमस्कार शिव और पार्वती के चरणों में किया। शिव ने स्वयं उन्हें सब गणों का अधिपति, गणों का ईश, विनायक बनाया तथा स्वयं घोषणा की कि समस्त देवताओं में सर्वप्रथम पूजा उन्हीं की होगी।

सेनापति का स्वरूप

हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् श्री गोपालचन्द्र देव से बातचीत के मध्य में यह विचार खुला कि पार्वती का नाम गिरिजा केवल गिरि (पर्वत) से उत्पन्न होने के कारण नहीं, उसका गिरा (गिरि) वाणी से भी है। अतः 'पार्वती' सेना को मिलने वाले आदेशों का नाम है जो पहाड़ की तरह गड़गड़ाने वाले हैं। स्वधा, स्वाहा एवं वौषट ऐसे ही आदेश हैं जो ओजपूर्ण वाणी में उच्चारे जा सकते थे। वौ.....षट, जैसे आजकल एटेन.....शन। गणपति सेना के भिन्न-भिन्न गणों के नायक हैं। अतः वे सब गणों में सब से पहले पूजा के पात्र हैं। वे आदर्श सेनापति हैं।

गणराज्य के प्रमुख : गणपति

गणेशजी के सभी नाम उनके गुणों को प्रदर्शित करते हैं। गणों का ईश, गणों

का पति, गणनायक, विनायक, नायक सभी नाम गणपति के सर्वोच्च नेता, गणपति या राष्ट्रपति के हो सकते हैं। प्राचीन काल में भी भारत में अनेक गणराज्य थे। जनहित के लिए जनता का शासन ही गणराज्य (रिपब्लिकन) कहलाता है। उसके नेता को सदा दूरदर्शी, विशाल मति, सुदृढ़ शासक, विनयी तथा वीर होना चाहिए। गणेशजी में ये सभी गुण हैं। इसीलिए वे ऋद्धि और सिद्धि नामक दो पत्नियों के स्वामी बने।

श्री गणेशाय नमः

प्रत्येक शुभ कार्य के प्रारम्भ में गणेशजी की वन्दना की जाती है। महाभारत के लेखक श्री गणेशजी ही हैं। कुछ भी लिखने से पहले ऊपर श्री गणेशाय नमः लिखा जाता है। प्रत्येक शुभ कार्य के प्रारम्भ को ही श्रीगणेश कहते हैं। श्री काका कालेलकर का मत है कि सम्भवतः 'लिपि' के आविष्कारक कोई गणेश नामधारी महापुरुष हुए होंगे। इसीलिए कुछ भी लिखते समय पहले उन्हें श्रद्धांजलि दी जाती है।

आदर्श नेता का स्वरूप

गणेशजी का गज मस्तक (बड़े से बड़े जीव का मस्तक) बुद्धिमानी का सूचक है। सूप जैसे बड़े-बड़े कान संदेश देते हैं—'सुनो सब की करो अपनी।' एकदन्त निश्चयात्मिका बुद्धि का सूचक है। लम्बोदर होने से बड़े-बड़े भेदों को पेट में ही पचा लेता है। हाथी की सूक्ष्म आंखें दूरदर्शिता की शिक्षा देती है। मानव शरीर होने से नेता का हृदय मानव का होना चाहिए। उनका वाहन चूहा तर्क-कुतर्क करने वाला है। ऐसे तत्त्वों को नेता शरण भी दे पर वाहन बना कर वश में रखे। उन के चार हाथ चार पदार्थों के दाता हैं। गणपति के चार हाथों में शासन के चार प्रमुख भाग हैं। जिन के बिना कोई राज्य नहीं चल सकता। अंकुश सेना सुरक्षा विभाग का द्योतक है। कमल में वित्त मंत्रालय (कमला, लक्ष्मी) प्रतिबिम्बित है। रज्जु न्याय का प्रतीक है और मोदक के मिष्टान्न में खाद्य मन्त्रालय की सुन्दर व्यवस्था का संदेश है। गणपति की सूण्ड मुड़ कर उनके अपने ही कान के पास जा रही है। नेता दूसरों को उपदेश करने से पूर्व अपने आपको उपदेश देवें। ऐसा नेता ही आदर्श नेता है। उन्हीं पूर्ण नेता तथा आदर्श गणपति के निमित्त हमारी प्रथम वन्दना समर्पित हो—श्री गणेशाय नमः।

भारत मानव जाति की उत्पत्ति का झूला है। मानवीय भाषा की जननी है, इतिहास की जननी, पुराणों की पुरा-जननी तथा प्रथाओं की दादीमाँ है।

—मार्क ट्वैन

भगवान् गणपति

काल के अनन्त प्रवाह में वर्ष के निरन्तर गतिमान तटों के बीच में मासों, पक्षों और दिनों के अस्थिर घाटो पर उत्सवरूपी जंगमतीर्थ तैरते हुए आते हैं और अपना रहस्यमय सन्देश दे कर शीघ्र ही चले जाते हैं। भाद्रपद मास की शुक्ला चतुर्थी आई है। हिमालय से कन्याकुमारी तक भारत के कोटि-कोटि नर-नारी इस दिन विघ्नहारी, विनायक-गणपति, गणेश का पावन स्मरण, पूजन-अर्चन इत्यादि करते हैं। महाराष्ट्र में जब से लोकमान्य तिलक ने इस महान् पर्व का पुनरुद्धार किया तब से लगभग दो सप्ताह भर का लम्बा उत्सव मनाया जाता है। दक्षिण भारत में तो गणेशजी की बड़ी-बड़ी विशालकाय प्रतिमाएं बना कर उनका पूजन होता है। भारत के शेष प्रान्तों में भी सर्वत्र गणेशजी के पूजन का पर्व मनाया जाता है।

लाखों, करोड़ों लोग जिस कार्य को श्रद्धा से करते हों उस में क्या कोई रहस्य भी है अथवा केवल अन्धविश्वास का चमत्कार है।

हर सुपठित भारतीय की प्रज्ञा को यह एक चुनौती है। उत्तर बड़ा सोच-विचार कर देना होगा।

श्री पी. वी. रामचन्द्रराव का कथन है कि विनायक कोई वैदिक देवता नहीं है। ये सर्वप्रथम द्रविड़ों के देवता थे और पिल्लैयर नाम से प्रसिद्ध थे। जब आर्य अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सफल हुए तब विनायक को भी उन्होंने अपना देवता बना लिया और इस प्रकार ये समस्त हिन्दू जाति के देवता बन गये। वे पुनः लिखते हैं कि 'हजारों वर्षों तक ये खेतों की फसल के देवता माने जाते थे और विशाल अश्वत्थ वृक्ष की छाया में रखी प्रस्तर प्रतिमा के रूप में इनकी पूजा होती थी। फिर ये गण हुए और अन्त में गणों के नायक गणपति हुए।' श्री रामधारीसिंह दिनकर ने अपने ग्रन्थ संस्कृति के चार अध्याय में कहा है कि 'गणेश की कल्पना शुद्ध भारतीय मालूम होती है (किन्तु शुद्ध आर्य नहीं)। क्योंकि आर्य जिस देश से यहाँ आए थे; उस देश में हाथी होते ही नहीं हैं।' सम्भवतः श्री दिनकर अभी तक इसी युग में है उनके पूर्वज आर्य मध्यएशिया से भारत में आए थे। बाबू सम्पूर्णानन्द आर्यों का आदि स्थान तो सप्त-सिन्धु प्रदेश (वर्तमान पंजाब तथा सिन्धु प्रान्त) को ही मानते हैं किन्तु गणपति (गणेश) के विषय में उनका मत भी भ्रम से मुक्त नहीं

है। उनका कहना है—'वेदों में तो गणेशजी हमें नहीं मिले परन्तु पुराणों में उनकी सर्वत्र चर्चा है। आर्य लोग गणेश का अस्तित्व नहीं जानते थे। जब वे पूर्व की ओर बढ़े तो उनका अनार्यों से सम्पर्क बढ़ा तो बहुत से अनार्य आर्य बस्तियों में बस गये। विजित पर तो विजेता की संस्कृति का रंग चढ़ा ही परन्तु विजेता भी अछूता नहीं बच सका।

उपरोक्त मतों के मुकाबले में शुक्ल यजुर्वेद में गुंजरित निम्नलिखित मन्त्रों में की गई गणपति-स्तुति विचारणीय है—

गणानांत्वा गणपतिं हवामहे, प्रियाणांत्वा प्रियपतिं हवामहे।
निधिनांत्वा निधिपतिं हवामहे वसोमम्, आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम्।।

इससे निर्भ्रान्त सिद्ध होता है कि कम से कम 'गणपति नाम' तो वेद-मूलक है। गणेशजी के सारे नाम गणेश, गणपति, गजानन, विनायक, विघ्नेश, विघ्नहर, हेरम्भ इत्यादि वेद-मूलक आर्य एवं संस्कृत भाषा के हैं, द्रविड़ भाषाओं के नहीं। यदि गणेश आर्य एवं द्रविड़ संस्कृतियों के समन्वय के प्रतीक हैं तो भी वे भारत की एकता के सजीव अवतार हैं। आज का हिन्दू धर्म भी अनेक द्रविड़ एवं आग्नेय प्रभावों को आत्मसात् किए हुए है। तिलक, कुंकुम, शंख, ध्वनि, आरती, कर्मकाण्ड आर्येतर होते हुए भी आर्य धर्म की सहस्र धारावाहिनी भागीरथी में लीन हो चुके हैं। फिर ज्ञान तथा आलोक के क्षेत्र पर किस का एकाधिकार है। जिस भी प्रतीक से श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त हो तथा मानव सिद्धि के मार्ग पर कुछ पग आगे बढ़ सके, वही ग्राह्य है।

सामाजिक अर्थ

गणेश कथा का एक महान् सामाजिक सन्देश है 'शिव' (कल्याण)। प्रतिरोध करने वाले का शीर्ष अवश्य कटेगा चाहे वह स्वयं गणपति ही हो। गणेश पार्वती जाति के नेता बने थे। उस पहाड़ी जाति के गणराज्य के नेता, गणपति जब गर्व में भर गए तो उन्होंने कल्याण का मार्ग रोक रखा। शीर्ष-छेदन के पश्चात् समझौता कराने को नारदजी पहुँचे, जो उस काल में आज के पत्र-प्रतिनिधियों के प्रतीक थे। हर झगड़े में पत्र के लिए गर्मागर्म खबरें मिल सकें इस भाव से सर्वत्र विचरते थे। भगवान् विष्णु स्वयं मध्यस्थ बने। निश्चय हुआ कि एक हाथी का शीर्ष लगा कर उस नेता को सबसे पहले पूजा जाए।

आदर्श नेता

गजवदन बनने के पश्चात् गणपति सब से प्रथम पूजा के पात्र बने। गणेशजी के अधिकतर नाम उनके गुणों को प्रदर्शित करते हैं। गणों का ईश, गणों का पति, गणनायक, विनायक, नायक सभी नाम गणराज्य के सर्वोच्च नेता, गणपति या राष्ट्रपति के हो सकते हैं।

गणपति समस्त गुणों के प्रतिनिधि होने के कारण सर्वग्राही हैं। सारे समाज की श्रद्धा का केन्द्र वही है। वे विद्या एवं बुद्धि का भण्डार हैं। वह राष्ट्र के अनेक देवताओं (विभागों के मन्त्रियों इत्यादि) के सरदार हैं। वह प्राचीन गणराज्यों की लोकसभा के देवता (अध्यक्ष) के रूप में माने जा सकते हैं। वह समाज की आत्मा का प्रतीक हैं। अतः सर्वप्रथम पूज्य हैं।

गणपति का स्वरूप

गज मस्तक—(बड़े से बड़े जीव का मस्तक) बुद्धिमानी का सूचक है। बड़े-बड़े कान सन्देश देते हैं सुनो सब की करो अपनी।

एकदन्त—निश्चयात्मिका बुद्धि का द्योतक है।

लम्बोदर—यह प्रकट करता है कि नेता को बड़े-बड़े भेदों को अपने पेट में ही लील लेना चाहिए। सूक्ष्म आंखें दूरदर्शिता की शिक्षा देती है। मानव का शरीर यह प्रकट करता है कि नेता का हृदय मानव का होना चाहिए। कन्धे का जनेऊ ब्रह्मचर्यव्रत का परिचायक। उनका वाहन चूहा तर्क-कुतर्क करने वाला है ऐसे तत्त्वों को नेता शरण दे पर वाहन बना कर वश में रखे। उनके हाथ चार पदार्थों के दाता हैं। गणेशजी पूर्ण नेता एवं आदर्श गणपति हैं।

विदेशों में पूजा

भारतीय संस्कृति के प्रसार के साथ ही हमारे गणेशजी ने भी पृथ्वी की परिक्रमा की है। इण्डोनेशिया में गणेशजी के मन्दिर तो अनेक हैं ही। आज तक वहाँ के राजाओं के गले में गणेशजी की छोटी-सी सोने की मूर्ति लटकती हुई भारतीयता की विजय सूचित करती है। अमरीका में, मैक्सिको, बोलिविया इत्यादि प्रदेशों में हजारों मन्दिरों में गणपतिजी के चित्र मिले हैं। चीन में भी गणपति प्रतिष्ठित हैं। बौद्धधर्म की महायान शाखा में तो गणपति पूजा का खुला विधान किया है। बर्मा में महापियेन नाम से गणपति पूजा होती है। तुर्किस्तान में गणेशजी की दो प्रतिमाएं मिली हैं। तिब्बत के प्रायः सभी मठों में गणेश पूजन चलता है। बाली द्वीप में गणपति पूजन के बिना कोई शुभ कार्य नहीं होता। जर्मनी के राष्ट्रीय झण्डे पर स्वस्तिक का चिह्न अंकित था। स्वस्तिक को यूनान में यूनानी क्रास भी कहते हैं। ईसाइयों का क्रास भी स्वस्तिक का रूपान्तर है। स्वस्तिक चिह्न जैन धर्म में भी पवित्र माना गया है। इंडोनेशिया की जकार्ता के रेलवे स्टेशन के बाहर गणेशजी की एक विशाल मूर्ति बहुत ऊँचे मंच पर स्थापित है। विद्वानों का मत है कि प्राचीन मिस्र में गणेश कथा से मिलती-जुलती कथाएँ प्रचलित थी तथा गणेश पूजा चलती थी। आज गणेश चतुर्थी के दिन उन्हीं देश का नेतृत्व करने वाले तथा विश्व भर में भारतीयता का संदेश लेकर पृथ्वी की परिक्रमा करने वाले भगवान् गणपति (गणेश) को हमारी कोटि-कोटि वन्दनाएं समर्पित हों।

गणपति गणेश की भू-परिक्रमा

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपनी प्रख्यात रचना 'विनय पत्रिका' के प्रथमपद में ही गाया है—

गाइए गणपति जगवन्दन, शंकर सुवन भवानी नन्दन।

इसका व्यापक अर्थ होगा—'हम उन जग वन्दित गणेश की वंदना करते हैं जो शंकर (कल्याण) का पुत्र तथा भवानी (धरती-माता, प्रकृति माता) का आनन्द बढ़ाने वाला है। गणपति को भारत वन्दन न कह कर तुलसीदासजी ने जगवंदन कहा है सो क्यों? खोज करने पर मुझे असंदिग्ध रूप से ज्ञात हुआ कि गणपति (गणेश) न केवल भारत वरन् विश्व भर के आराध्य देवता हैं।

पुराण गाथाओं के अनुसार कहा जाता है कि एक बार सभी देवताओं में धरती की परिक्रमा करने की प्रतियोगिता तय हुई। यह निश्चित हुआ कि जो सर्वप्रथम धरती की परिक्रमा कर ले। उसे सर्व पूजा का पात्र माना जाए। कहा जाता है कि गणेशजी ने ओ3म् लिख कर जल्दी से अपने मूषक वाहन पर बैठकर उस ओंकार रूपी ब्रह्म की प्रदक्षिणा कर ली तथा यही धरती भर की परिक्रमा हो गई। और, विस्मय की बात यही है कि आज हम विश्व के अधिकांश देशों में गणपति पूजन के सुस्पष्ट चिह्न एवं प्रमाण पाते हैं।

गणेश पूजा का मूल स्रोत क्या है? इस विषय में पर्याप्त विवाद है किन्तु डा. सम्पूर्णानन्द के शब्दों में 'पृथ्वी भर में किसी दूसरे उपास्य के जीवन की गणेश चरित के साथ तुलना नहीं हो सकती। आज बुद्ध, ईसा और मुहम्मद के अनुयायी देश-विदेश में करोड़ों हैं परन्तु इन लोगों के स्वरूप और पद में कोई परिवर्तन, कोई वृद्धि नहीं हुई। विघ्नहर्ता का, ग्राम्य उपास्यदेव से उठकर सर्वदेव में अग्रगण्य बनना, फिर परमात्मा और ब्रह्मदृष्टि से मान्यता लाभ करना, विदेशों में पहुँच कर वैरोचन और अवलोकितेश्वर बोधिसत्वों से तादात्म्य प्राप्त करके योग के अनिर्वचनीय रहस्यों का प्रतीक बनना, गणेशजी की ही महिमा है। उनके अप्रतिम व्यक्तित्व के सामने सिर झुकाना ही पड़ता है।'

सम्भवतः गणपति किसी गणराज्य के राष्ट्रपति हुए हों। उनके नाम गणेश,

विनायक इत्यादि नेता अथवा सेनापति पद के द्योतक हैं। चाहे वे राजनीतिक विश्वविजय के लिए भारत से बाहर न निकले हों पर वे हमारी सांस्कृतिक दिग्विजय के अप्रतिम नेता अवश्य बन गए हैं। डा. सम्पूर्णानन्द पुनः कहते हैं, 'गणेशजी आर्यों की देव पार्षद में चाहे जहाँ से आ मिले हों, पर अब तो वह सर्वथा हमारे ही हो गए हैं। उनके अनार्य मूल के ऊपर आर्य संस्कारों का इतना गम्भीर वेष्टन पड़ गया है और पिछले दो सहस्र वर्षों में आर्य संस्कृति के विकास में उन्होंने ऐसा भाग लिया है कि अब उनको पराया नहीं माना जा सकता। उनके स्वभाव की परिशुद्धि हमारे विद्वानों की बुद्धिमत्ता का चमत्कारिक उदाहरण है। उनकी दिग्विजय यात्रा भारतीय संस्कृति की विजययात्रा थी। हमको उन पर गर्व है।

ब्रह्मदेश (म्यांमार)

जब अपने छोटे से वाहन मूषक पर बैठकर गणपति (गणेशजी) ने अपनी भू-परिक्रमा प्रारम्भ की तो पहले-पहल वे ब्रह्मदेश (बर्मा) पहुँचे होंगे। बर्मा में आज भी गणेशजी की अनेक मूर्तियाँ मिलती हैं। उत्तरी ब्रह्मदेश में, बाद में जब महायान बौद्ध सम्प्रदाय का प्रचार बढ़ा तो गणेशजी की मूर्तियाँ बहुत बढ़ गईं तथा उनका 'महापियेन' नाम से पूजन होने लगा। सम्भवतः 'पियेन' शब्द विनायक का ही विकृत रूप है।

कम्बुज

उसके पश्चात् गणेशजी कम्बोडिया (कम्बुज) पहुँचे होंगे। यह देश आज भी अपनी मूर्तिराशि के लिए प्रख्यात है। आज कम्बोडिया हिन्द-चीन का भाग है। उसकी प्राचीन राजधानी 'अंकुरवट' को तो प्रतिमाओं की खान कहा जा सकता है। वहाँ अनेक हिन्दू रीति-रिवाजों के साथ गणेशजी की प्रतिमाएं भी हैं। फ्रेंच आधिपत्य के कारण गणेशजी का नाम गणेश से बदल कर केनेस हो गया है।

श्याम

प्राचीन श्यामदेश आज थाईलैण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। इस देश में भी मूषक-वाहन गणपति (गणेश) के दर्शन होते हैं। हीरे-मोतियों से जड़ी हुई मूर्तियाँ श्याम की मूर्तिकला का बेजोड़ नमूना है। इस मूर्तिशैली को श्याम की प्राचीन राजधानी अयोध्या (अयूथिया) के नाम पर अयूथियन शैली कहते हैं। यहाँ विघ्न विनायक के रूप में गणपति की प्रतिष्ठा है। 17वीं शती तक वहाँ के राजाओं के गले में सोने के गणेश की छोटी मूर्ति कण्ठी के रूप में लटकती रहती थी।

नेपाल

'नयपाल' देश तो पूर्णतः हिंदू प्रदेश है, किन्तु वहाँ के बौद्ध तथा जैन साधु भी विनायक और हेरम्ब नामों से गणपति की पूजा करते हैं।

चम्पा

चम्पा (वर्तमान अनाम) के मन्दिरों में भी शिव-परिवार के साथ गणेशजी की सुन्दर मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। गजमस्तक, यज्ञोपवीत धारण किये हुए गणपति प्रतिष्ठित हैं। कुछ मूर्तियों में शिव के समान गणेश के भी तीसरा नेत्र तथा गले में सर्पमाला है।

जकार्ता

इन्डोनेशिया (भारत द्वीप समूह) की राजधानी जकार्ता के मुख्य रेलवे स्टेशन से उतरते ही सामने एक सुन्दर बगीचे के केन्द्र में काफी ऊँचाई पर गणपति (गणेश) की सोने की वृद्ध मूर्ति प्रस्थापित है। मानो गणेशजी वहाँ बैठ कर आने-जाने वाले समस्त यात्रियों को शुभ एवं मंगलमय आशिष् दे रहे हैं।

जावा

यव द्वीप (जावा) में भारतीय सांस्कृतिक अभियान के विशेष नायक, श्री विनायक गणेश भी पहुँचे। जावा के मन्दिरों की मूर्तियों में गणेश जी इस प्रकार पालथी मार कर बैठे हैं कि दोनों पांव समान रूप से धरती पर पड़ते हैं और तलवे मिलते हैं। उनकी सूंड नीचे जाकर केवल सिरे पर मिष्टान्न पात्र की ओर थोड़ी सी मुड़ी है। मूर्तियाँ अधिकांश चतुर्भुजी है। डा. सम्पूर्णानन्द के अनुसार जावा की नदियों के घाटों और दूसरे स्थानों पर गणेशजी की मूर्तियाँ मिलती हैं। जावा की एक मूर्ति जो अब हालैंड उठ गई है बड़ी विलक्षण है। इसमें योनि के बीच में शिवलिंग के स्थान पर गणेशजी बने हुए हैं। जावा की एक और मूर्ति की बहुत प्रशंसा है। कहा जाता है कि वैसी सुन्दर मूर्ति भारत में भी नहीं है। इसमें दो आंखें और चार हाथ हैं। एक हाथ में टूटा दांत दूसरे में भोजनपात्र। तीसरे में परशु और चौथे में माला है। सूंड सीधे लटकती है, फिर भोजनपात्र के बायीं ओर घूम गई है।

तिब्बत

तिब्बत (त्रिविष्टय) के प्रायः प्रत्येक मठ में अधिरक्षक के रूप में गणेश पूजा प्रचलित थी। चीनी आक्रमण के पश्चात् न जाने पूजा के प्रचलन का क्या रूप हो गया है। गणपति की देवयुगल मूर्ति (अपनी शक्ति के साथ) तिब्बत तथा जापान में मिली है। तिब्बत में इन्हें यवयुम कहते हैं तथा जापान में कांगितेन।

चीन

चीन से होती हुई भारतीय संस्कृति मंगोलिया, मंचूरिया, तुर्किस्तान तथा दक्षिणी साइबेरिया तक पहुँची। साइबेरिया के अर्ध जंगली जादूगर (पुरोहित) आज तक समन (श्रमण) कहलाते हैं।

चीन की तुनहुआंग की गुफा पर सूर्य, चन्द्र, कामदेव तथा गणेश की सुन्दर मूर्तियाँ भारत की अजन्ता शैली पर बनी हुई है। विचित्रता यह है कि गणेशजी को वहाँ सिर पर पगड़ी तथा नीचे सलवार पहना रखी है। कुंगहिसएन के गुफा मंदिर में विनायक की मूर्ति सं. 588 की बनी हुई है तथा चीनी अक्षरों में लिखा है, 'हाथियों के अमानुष राजा की मूर्ति।' क्योंकि भगवान् बुद्ध के जन्म से पूर्व उनकी माता को हाथी का स्वप्न आया था इसलिए चीन में हाथी भगवान् बुद्ध का प्रतीक माना जाता है। इसी कारण वहाँ हस्तिमुख गणपति तथा भगवान् बुद्ध का समन्वय कर दिया गया।

तान्त्रिकों के वज्र धातु सम्प्रदाय में गणेश की मूर्ति इस प्रकार बनी है : चार विनायक चारों दिशाओं में रक्षक के रूप में हैं और पांचवें उत्तर वाले विनायक के नीचे हैं। वहाँ विनायक के एक हाथ में हस्तिदन्त के स्थान पर मूली है। सं. 1074 में सम्राट् चेनासुंग ने आदेश निकाला कि बौद्ध त्रिपिटक के साथ विनायक पूजा का चतुर्ग्रन्थीय सूत्र न जोड़ा जाय। इस प्रकार राजशक्ति के प्रभाव से चीन में विनायक सम्प्रदाय का लोप कर दिया गया।

अमरीका

भिक्षु चमनलाल ने अपनी महान् कृति 'हिन्दू अमरीका' में दर्शाया है कि कोलम्बस के अमरीका खोजने से 1000 वर्ष पूर्व अमरीका (मैक्सिको, बोलिविया) में हिन्दू साम्राज्य था। मैक्सिको के कोपन मन्दिर में आज भी गणपति (गणेश) भगवान् के भव्य दर्शन होते हैं।

मलय, बाली, बोर्नियों, जापान, तुर्किस्तान, मिस्र, रोम आदि देशों में भी गणपति की पूजा अपने-अपने ढंग से होती है।

इस प्रकार सारे संसार की विजय यात्रा करने वाले, भारतीय संस्कृति की विश्वविजय के प्रतीक गणपति (गणेश) की स्तुति में हम वेद की शाश्वत वाणी में ही गाते हैं—

गणानांत्वा गणपतिं हवामहे,
प्रियाणांत्वा प्रियपतिं हवामहे।
निधिनांत्वा निधिपतिं हवामहे वसोमम्,
आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्।।

स्वर्ग से भी आज भूतल बढ़ गया

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तजी के पवित्र ग्रन्थ 'साकेत' में, भरत के राम को अयोध्या वापस लौटा लाने के लिए किए हुए अनुनय-विनय के पश्चात् प्रभु रामचन्द्र कहते हैं—

मैं राज्य भोगने नहीं भुगाने आया।
मैं आर्यों का आर्यत्व दिखाने आया।।
संदेश नहीं मैं यहाँ स्वर्ग का लाया।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।।

इन शब्दों में एक आदर्श ध्वनित होता है जो किसी अन्य प्रचलित धार्मिक आदर्श से किसी भांति भी छोटा नहीं है। यदि धार्मिक दृष्टि से हमें यह गौरव है कि स्वयं परब्रह्म परमेश्वर ने हमारे देश में अवतार लिया तो ऐतिहासिक दृष्टि से यह भी कम गौरव की बात नहीं है कि एक भारतवासी अपने चरित्र से इतनी ऊँची मर्यादा स्थापित कर गया कि न केवल भावी मानवता के लिए अपितु स्वर्ग के देवताओं के लिए भी सदा वन्दनीय बन गया।

महापापी रावण सब को दुःख देने के कारण, सब को सताने के कारण ही 'रावण' कहलाता था। उस का नाश करने के लिए एक मानव की आवश्यकता थी। पर क्या उस समय कोई मानव नहीं था जो उसे नष्ट कर सकता ! सम्भवतः नहीं था। दो टांग वाले बिना पूंछ के पशु तो अनेक थे पर सच्चा मानव, पूर्ण मानव कोई नहीं था। इसीलिए स्वयं ईश्वरीय शक्ति को एक पूर्ण मानव के रूप में प्रकट होना पड़ा। देवता रावण के बन्दी थे, वे भयंकर दैत्य के पंजे के नीचे दबे हुए उस दैत्यराज का क्या बिगाड़ सकते थे? इन्द्र भी शक्तिहीन था, अग्नि और वायु भी बलहीन हो चुके थे, सबको अपने अनन्त पेट में लीलने वाला काल भी रावण की खाट से बंधा सिसक रहा था। इसलिए स्वर्ग की सम्पूर्ण शक्तियाँ भी उस दुर्दमनीय दैत्य का पराभव नहीं कर सकती थी। ऐसे समय में जब स्वर्ग हार गया था, धरती धर्म की रक्षा के लिए उठी, जहाँ देवता हार गऐ थे, वहाँ मानव ने विजय प्राप्त की। इसीलिए मानव रूप पाने वाले भगवान् रामचन्द्र सब देवताओं के भी देवता बन

कर पूजित हुए और इसीलिए भूतल स्वर्ग से भी बढ़ कर हो गया। मैथिलीशरण गुप्तजी ने रामजन्म की पावन घड़ी की महिमा गाते हुए लिखा—

स्वर्ग से भी आज भूतल बढ़ गया।
भाग्यभास्कर उदयगिरि पर चढ़ गया।।
हो गया निर्गुण सगुण साकार है।
ले लिया अखिलेश ने अवतार है।।
भक्त-वत्सलता इसी का नाम है।
और वह लोकेश लीलाधाम है।।

प्रभु रामचन्द्र हमारे अतीत के गौरव, वर्तमान के आश्रय तथा भविष्य की उज्ज्वल आशा हैं। उन्हीं के सुधावर्षी नाम तथा लोक पावनकारी चरित्र ने हमारी इस प्राचीनतम जाति को युग-युग तक जीवन प्रदान किया है। राम के नाम स्मरण मात्र से ही हृदय की क्यारियाँ हरी-भरी हो जाती हैं। सताने वाले, रुलाने वाले, रावण का नाश करके वे शांति प्रदान करने वाले, आनन्द प्रदान करने वाले होने के कारण ही 'राम' हैं। लोग विस्मय करते हैं कि रामायणकाल में राम का नाम लिखने मात्र से ही समुद्र पर पत्थर कैसे तैरे होंगे। पर पत्थर तैरने की बात तो दूर हमने राम नाम के प्रताप से इन्सान तैरते देखे हैं। एक दस्यु का निन्दनीय जीवन बिताने वाला डाकू रत्नाकर रोकर नारद मुनि से पूछता था, 'महाराज, मैंने अनेकों का धन तथा अनेकों का प्राण हरण किया है, अनेक ब्रह्म-हत्या का पाप मुझे लगा हुआ है। क्या मेरे उद्धार का भी कोई मार्ग है?'

नारदजी ने कहा—'हाँ, है। राम नाम सकल पापों का नाश करने वाला है।' उसी राम नाम के प्रताप से ही उस पापपंक में लिप्त रत्नाकर डाकू ऋषि वाल्मीकि बन कर लोक में पूजित हुए। अपनी नवविवाहिता पत्नी के प्रेम में अन्धे हुए एक कामांध युवक को किसी ने जनगण-पूजित गोस्वामी तुलसीदास बनाया तो वह पवित्र राम नाम ही था। आधुनिककाल में एक आचार-भ्रष्ट बनिए का लड़का यदि महात्मा गांधी बन कर विश्व में विख्यात हुआ तो राम नाम के बल से ही। स्वयं उसी लंगोटी वाले महात्मा की स्वीकारोक्ति है, 'राम नाम में वह शक्ति है जो बड़ी से बड़ी सेना में नहीं, भयंकर अस्त्र-शस्त्रों में नहीं।' इसी राम नाम के प्रताप से उन महात्मा ने अपने मरते हुए बच्चे रामदास को मृत्यु के मुख से बचा लिया। अपने आचार पर राम नाम का प्रभाव बखान करते हुए वे सत्यसेवी संत कहते हैं—

'यदि मेरे पास राम नाम का आश्रय न होता तो सम्भवतः मैं अपने जीवन में दो महिलाओं को अपनी बहिन कहने के योग्य न रहता।'

यह सत्य है कि राम नाम ने इन्सान तारे हैं जो सब से अधिक चरित्र भ्रष्ट थे उन्हें सर्वथा पूज्य पुरुष बनाया है। यह राम नाम का अद्‌भुत प्रताप है। इसी महान्

नाम के जादू ने हमें हजारों वर्षों तक जीवन एवं जागृति, शक्ति एवं शील, कर्म तथा धर्म का आलोकपथ दिखाया है।

राम नाम के प्रताप को समझने के लिए महर्षि वाल्मीकि, गोस्वामी तुलसीदास एवं महात्मा गांधी के प्रत्यक्ष जीवन की साक्षी बहुत पर्याप्त है।

हमारा यह दावा है कि ऐसे लोकोत्तर महामानव स्वयं स्वर्ग में भी कभी नहीं हुए होंगे। ऐसे पुण्यश्लोक महापुरुषों के कारण यह भारत भूमि केवल स्वर्ग तुल्य ही नहीं अपितु स्वर्ग से भी ऊँची बन गई है। विश्वविश्रुत कीर्ति, लोकाभिराम भगवान् राम का नाम इतना पुण्य पावन है कि सन्त कबीर कह उठे—

सपने में घबराय के, जित मुख निकसत राम।
तिनके पग की पाहिनी, मेरे तन की चाम।।

ये ब्रह्मज्ञानी सन्त चौराहे पर खड़े होकर घोषणा करते हैं कि जिसके मुख से सपने में भी घबरा कर कभी राम का नाम निकल जाये उसके पांवों के जूतों के लिये मैं अपने तन की चमड़ी देने के लिये तैयार हूँ। कबीर के ये बोल सुन कर सन्तप्रवर तुलसीदासजी भी चुप न रह सके। उन्होंने भी अपने आपको बोली पर लगाते हुए कह दिया—

तुलसी जिनके मुखन ते, धोखेऊँ निकसत राम।
तिन के पग की पगतरी, मेरे तन की चाम।।

जहाँ धोखे से भी मुख से राम का नाम लेने वालों के पांवों के जूतों के लिए 'मेरे तन की चाम' कह कर सन्त-श्रेष्ठ कबीर एवं सन्त-शिरोमणि तुलसीदास आपस में होड़ कर रहे हैं वहाँ राम नाम के अलौकिक प्रताप को सहज ही समझा जा सकता है। इस महान् प्रताप का कारण यह है कि इक्ष्वाकु कुलकुमुद-चन्द्र, सर्वनयनाभिराम मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी साक्षात धर्म विग्रह ही थे। उन्होंने भारतीय संस्कृति के सभी समुज्ज्वल आदर्शों को अपने सर्व गुणसम्पन्न चरित्र में सत्य-साकार करके दिखाया था। जहाँ संसार के अनेकानेक नेताओं की कथनी और करनी में अन्तर दिखाई देता है वहाँ मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम ज्ञान एवं कर्म के अद्‌भुत समन्वय थे। जहाँ बाकी धर्मगुरुओं के बारे में कहा जाता है कि जो कुछ उन्होंने कहा उस का अनुसरण करो पर उन्होंने जो कुछ किया उसका अनुकरण मत करो, वहाँ भगवान् रामचन्द्र ही एकमात्र अलौकिक विभूति हैं, जिनकी कथनी और करनी, आचार-विचार दोनों सर्वथा अनुकरणीय हैं।

श्रीराम जन्म का मंगलमय पर्व एक महान् आनन्द का दिवस है क्योंकि अखिलार्यनिषेवितपादपद्म, साकेताधीश्वर, महाराजाधिराज भगवान् रामचन्द्र का जन्म भारत के ही नहीं वरन् विश्व के सांस्कृतिक इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना

है। जब संसार के अधिकांश भाग में अज्ञान का अन्धकार छाया हुआ था, जब अमरीका अन्धकार के गर्त में खोया हुआ था और यूरोप के लोग मनुष्यों एवं पशुओं का कच्चा मांस खाने वाले, अर्ध-बर्बर लोगों ने अपनी बन्दर की पूंछ काट कर इन्सान बनना नहीं सीखा था उस समय भारत में सत्यसंध, धर्म-प्राण, गौरव सर्वस्व महाराजा रामचन्द्रजी के समुज्ज्वल चरित्र का विमल आलोक फैला हुआ था। भगवान् राम समूचे संसार को भारत की सबसे बड़ी चुनौती (देन) है। क्या कोई माई का लाल आज तक उनकी महिमा के सहस्रांश को भी पहुँच पाया है? आज यदि भारतीय अपना मस्तक समुन्नत जातियों के समक्ष ऊँचा उठा कर चल सकते हैं, तो इसका श्रेय भगवान् राम के उत्कृष्टतम एवं देव-दुर्लभ चरित्र को ही है।

पूर्व और पश्चिम, किसी भी दिशा के किसी भी देश में, किसी भी साहित्यकार को ऐसे नायक नहीं मिले हैं जैसे भारत के साहित्यकारों को राम और कृष्ण के रूप में मिले हैं।

× × ×

इसी प्रकार सीता के प्रति प्रेम और राधा तथा गोपियों के विशुद्ध एवं अनन्य प्रेम के सदृश, प्रेम का वर्णन भी मुझे तो अंग्रेजी द्वारा विदेशी साहित्य का निरंतर अध्ययन करते रहने पर भी किसी भी विदेशी साहित्य में पढ़ने को नहीं मिला।

—सेठ गोविन्ददास

कर्तव्य (पृष्ठ-ख)

भगवान् श्रीराम की विश्वमंगल महिमांजलि

रामायण जैसा विश्वविख्यात, अलौकिक महाकाव्य विश्व में दूसरा नहीं है। भगवान् श्रीराम के समान शील-शक्ति, सौन्दर्य-समन्वित, मर्यादामण्डित, विश्वविख्यात, उदात्त चरित्र विश्व वाङ्मय अथवा विश्व इतिहास में सम्भवतः दूसरा नहीं मिलेगा। श्रीराम सर्वांगीण सुविकसित, सर्वविध आदर्श महापुरुष एवं पूर्ण पुरुष हैं। श्रीराम रामायण के सजीव आदर्श हैं और रामायण राम की वाङ्मय-मूर्ति।

रामायण गृहस्थ आश्रम का सर्वश्रेष्ठ, सर्वादर्श महाकाव्य है। परिवार ही समस्त नैतिक एवं सामाजिक आदर्शों का सुन्दरतम पालना है। परिवार के झूले में झूलते हुए ही मानव सब नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों का प्रशिक्षण प्राप्त करता है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में—'हमारे देश में गार्हस्थ्य धर्म सबसे ऊँचा था, इस बात को यह काव्य प्रमाणित करता है। गृहस्थ आश्रम हमारी निज की सुख-सुविधा के लिए नहीं था, वह सारे समाज को धारण किये रखता था और मनुष्य को यथार्थतः मनुष्य बनाये रखता था। गृहस्थ आश्रम भारतीय आर्य समाज की भित्ति है और रामायण उसी का महाकाव्य है। रामायण ने उस गृहस्थ आश्रम को विसदृश अवस्था में डाल कर, वनवास के दुःख से गौरवान्वित किया है। मंथरा और कैकेयी के कुटिल-कुचक्रों के कठिन आघात से अयोध्या का राजगृह दुःखस्थापन्न हो गया था, तथापि गृह धर्म ज्यों का त्यों दृढ़ बना रहा, और इसी गृह धर्म की दुर्भेद्यता की घोषणा रामायण कर रही है।' विश्वकवि आगे लिखते हैं, 'रामायण ने बाहुबल को नहीं, विजिगीषा को नहीं, राष्ट्र के आक्रामक अभिमान को नहीं, केवल शांत रसास्पद गृह धर्म को ही करुणा के अश्रुजल से अभिषिक्त कर महान् शौर्य-वीर्य के ऊपर प्रतिष्ठित किया है।'

रावण के पास अजेय बाहुबल था, विशाल सेना थी, अक्षय स्वर्ण-भण्डार था, त्रैलोक्य विजय का सामर्थ्य एवं अभिमान था। इसकी तुलना में श्रीराम धन-जन हीन, पत्नी के वियोग में आँसू बहाते हुए, किन्तु सत्य पर डटे हुए थे। सीता एक अकेली अबला नारी, विदेश में शत्रु की कारा में बन्दिनी राम-स्मृति में

अश्रुपात करती अपने सतीत्व पर अटल थी। श्रीराम एवं सीता के अश्रुपात को कोटि-कोटि रामायण पाठकों ने भी युगों से अपने अश्रु-बिन्दुओं का अर्घ्य चढ़ाया है। रामायण ने इसी सत्य एवं सतीत्व का करुणा के अश्रु-बिन्दुओं से अभिषेक कर दुर्दान्त असुरशक्ति एवं पशुबल पर विजय की घोषणा की है।

रामायण नर के नारायणत्व का महाकाव्य

रावण ने तप करके ब्रह्माजी से वर मांगा था कि उसे कोई देव, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर न मार सके। मनुष्यों से उसे कोई भय ही नहीं था, क्योंकि नरभक्षी राक्षसों के लिए मनुष्य तो गाजर-मूली के समान सहज खाद्यवस्तु बने हुए थे। इसलिए भगवान् राम को एक आदर्श नर के रूप में प्रकट होना पड़ा। उस काल में देव, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर बहुत थे, किन्तु आदर्श नर का ही अभाव था। उसी अभाव की पूर्ति के लिए भगवान् राम मर्यादा पुरुषोत्तम बन कर आये। नारायण ही नर बन कर आये अथवा नर ही आदर्श चरित्र से नारायण बन गये। दोनों ही कथन दैवी एवं मानवीय महत्ता के परिचायक होने के कारण अपने-अपने स्थान पर ठीक हैं।

रामायण मुख्य रूप से देव-महिमा का महाकाव्य न होकर नर-महिमा का ही महाकाव्य है। नर अपने चरित्र द्वारा नारायणत्व भी पा लेता है। यह रामायण में बहुत सुन्दर रीति से दर्शाया गया है।

मैं राज्य भोगने नहीं भुगाने आया।
हंसों को मुक्ता-मुक्ति चुगाने आया।।
भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया।
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।।
संदेश नहीं मैं यहाँ स्वर्ग का लाया।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।।

जहाँ वेद अलौकिक एवं अपौरुषेय ग्रन्थ हैं वहाँ रामायण ही सबसे प्रथम लौकिक महाकाव्य है। इसकी रचना इसी लोक में नर की ही गौरव-गरिमा का आख्यान करने हेतु हुई है। इसका नायक नर-नरोत्तम बन कर प्रतिष्ठित हुआ है जो असुरों को पराजित कर सकता है, देवता जिस पर फूल बरसाते हैं और यक्ष-किन्नर जय-दुंदुभि बजाते हैं।

भारत का राष्ट्रीय महाकाव्य

रामायण भारत की आत्मा का महाकाव्य है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में, 'भारत में रामायण प्रतिष्ठित है और रामायण में भारत प्रतिष्ठित है।' रामायण समग्र भारत का प्रतिनिधि-ग्रन्थ है। रामायण उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ को

एकात्म सूत्र में बांधने वाला ऐक्य मंत्र है। रामायण भारतीय राष्ट्र की अंगीभूत अनेकानेक जातियों, उपजातियों को एक राष्ट्रात्मा में समन्वित करने वाला भावात्मक एकता का महानतम प्रयोग है। रामायण में भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम जीवनमूल्य मुखर हो उठे हैं। विश्वकवि के शब्दों में, 'रामायण में भारतवर्ष ने जो कुछ चाहा वही पाया है। रामायण के सरल अनुष्टुप् छन्दों में भारतवर्ष का हृदय हजारों वर्षों से उछल रहा है।....पाठक रामचरित को केवल कवि का काव्य मत समझिये, भारतवर्ष की रामायण समझकर उसका आदर कीजिए। ऐसा करने से ही आप भारतवर्ष को रामायण द्वारा और रामायण को भारतवर्ष द्वारा ठीक-ठीक समझ सकेंगे।'

विश्व का आदि महाकाव्य

रामायण विश्व का आदि-महाकाव्य है और महर्षि वाल्मीकि विश्व के आदि-कवि हैं। रामायण का रचना काल निश्चित करना अभी तक साहित्य के इतिहासकारों के लिए एक जटिल समस्या है। लोकमान्य तिलक ने महाभारत काल आज से 5000 वर्ष पूर्व निश्चित किया है। इसे अनेक विद्वानों ने मान्यता दी है। इसी आधार पर कुछ इतिहासकार रामायणकाल आज से 9000 वर्ष पूर्व निश्चित करते हैं। किन्तु युगों की गणना के अनुसार भारतीय चिन्तक एवं पुराणेतिहासकार रामायण का काल आज से सवा नौ लाख वर्ष पूर्व मानते हैं। आज जब विज्ञान ने धरती की आयु दो अरब वर्ष मान ली है तो नौ लाख वर्ष कोई बहुत प्राचीनकाल नहीं ठहरता। फिर भी विश्व के इतिहास में रामायण से अधिक प्राचीन काव्य या महाकाव्य किसी अन्य जाति या देश में उपलब्ध नहीं है। इसीलिए वाल्मीकि काव्य जगत् के आदिजनक तथा साहित्य के आदि सुर-स्रष्टा माने जाते हैं। अतः रामायण के महानायक राम समूची मानव-जाति के प्रथम महानतम आदर्श होने के कारण सबके पूज्य हैं।

रामायण वनवासियों के प्रेम एवं गौरव का महाकाव्य

महाराष्ट्र के वनवासी जन-गण, महर्षि वाल्मीकि को वनवासियों का आदिपुरुष मानते हैं। वास्तव में रामायण की सारी महिमा तो वनवासी-प्रसंगों में ही गूँज रही है। यदि रामायण के वनवासी प्रसंग निकाल दिये जावें तो रामायण में बालकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड के अतिरिक्त कुछ नहीं बचेगा। चाहे भगवान् राम ने सैकड़ों या हजारों वर्ष राज्य किया हो किन्तु वनवास के 14 वर्षों की दिव्य गाथा ही रामायण है। शेष गाथा को या तो कोई जानता ही नहीं या उसका कुछ महत्त्व ही नहीं है। मनु के काल में आर्यावर्त्त की सीमाएँ हिमालय से विंध्याचल तक सीमित थी। चित्रकूट से वनपर्वत-शृंखला शुरू हो जाती थी। विंध्यवासिनी मन्दिर, विंध्याचल की पर्वत चोटी पर खड़े होकर देखें तो उत्तरापथ-दक्षिणापथ

का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। गंगा-सिन्धु का मैदान वहाँ समाप्त होकर दक्षिणापथ की वनपर्वत-शृंखला प्रारम्भ होती दिखाई देती है। आरा का नाम, आरण्य, शारव का सारण्य, चम्पारण का चम्पारण्य, रोहतास का कर्क खण्डारण्य, छोटानागपुर का झार-खण्डारण्य, मध्यप्रदेश-उड़ीसा में दण्डकारण्य, आन्ध्र में किष्किंधारण्य, महाराष्ट्र में जनस्थानारण्य—ये सब नाम प्राचीनकाल से वनपर्वत अरण्य क्षेत्र के परिचायक हैं। भगवान् राम अयोध्या के कनक भवनों को त्याग कर वनवासी-जनों का हृदय जीतने हेतु असीम वात्सल्य लेकर, स्वयं वनवासी बन कर, दण्डक वन के कण्टक पथ पर उतरे, तब राष्ट्रीय एकता का महानतम चमत्कार प्रकट होने लगा। भगवान् के पधारने का समाचार सुन कर वनवासी दर्शनार्थ दौड़े—

यह सुधि कोल किरातन पाई।
मानहुँ कहूँ परी निधि पाई।।

भगवान् राम के स्वागत में वे वन्य कन्दमूल-फल आदि लाये।

कंद मूल फल भरि भरि दोना।
चले रंक जनु लूटन सोना।।
करहिं जुहार भेंट धरि आगे।
प्रभुहि सराहहिं अति अनुरागे।।

रामायण का सन्देश है—

कुल जाति-पांति का गर्व न हो, हम सत्य प्रेम का मान करें।
शबरी के मीठे बेर खाय, केवट के घर जल-पान करें।।
यों मानवता की शान रहे।
हे राम, तुम्हारा ध्यान रहे।।

भक्तराज हनुमान् का जन्मस्थान राँची जिले के गुमला अनुमण्डल के टोटो ग्राम में अभी तक प्रसिद्ध है। उरांव वनवासियों के बारह गौत्र ऐसे हैं जिनका अर्थ ही वानर है। यथा हनुमान्, बजरंग, गड़ी, रेछी, बरई, बसोर, भैना, तिग्गा, बानरा, खंगार, पवन और वंशज...। श्री शरतचन्द्र राय ने लिखा है कि 'उरांव वनवासी आर्यवीर रामचन्द्र की वानर सेना के अंग थे। इसकी पुष्टि कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के डॉ. ए. सी. हेडन ने भी की है। वानर शब्द वन से ही बना है, जिसका अर्थ है वनचर, वनवासी।

रामभक्त विरसा भगवान् ने चुटिया के राम-मन्दिर में विदेशियों एवं ईसाई पादरियों को निरस्त करने के लिए क्रांति का संकल्प किया।

रामगढ़ एवं राम रेखाधाम जैसे तीर्थ, पुरुलिया जिला में अयोध्या पहाड़ जैसे

ऐतिहासिक स्थल, नागपुर में रामगिरि पर्वत, सभी वनवासी राम के वनवासी-जनों पर प्रेम न्योछावर करने के ऐतिहासिक स्मारक हैं।

नैतिक मूल्यों का सुन्दरतम संग्रह

संसार के वाङ्मय में नैतिक जीवनमूल्यों को जीवन की प्रत्यक्ष परिस्थितियों में उतार कर इतनी सुन्दर रीति से कहीं अन्यत्र प्रस्तुत नहीं किया गया जितना कि रामायण के कथानक में। नैतिकता कर्तव्य की आन्तरिक पुकार है। जब H.G. Wells ने महात्मा गांधी को Charter of Human Rights (मानवाधिकारों का घोषणापत्र) के लिए प्रारूप भेजने को कहा तो उन्होंने लिखा कि मानव अधिकारों का घोषणापत्र बनाने से पूर्व संयुक्त राष्ट्रसंघ को मानव कर्तव्यों का घोषणापत्र (Charter of Human Duties) बनाना चाहिए। जब वेल्ज ने मानव कर्तव्यों का घोषणापत्र भेजने को कहा तो गांधीजी ने उन्हें रामचरितमानस की एक प्रति भेज दी तथा लिखा कि 'रामायण हम भारतीयों के कर्तव्यों का घोषणापत्र है।'

रामायण विश्वविख्यात एवं विश्व-प्रतिष्ठित महाकाव्य

रामकथा विश्व की सबसे अधिक सुपरिचित एवं सर्वप्रसिद्ध कथा है। श्रीलंका में सीता एलिया (अशोक वाटिका) है। ब्रह्मदेश की राजधानी का नाम था रामावती, जो बदल कर रम्मनवती, रंगनवती, रंगन होते हुए रंगून हो गया। थाई देश के सभी राजाओं का नाम राम उपाधि से विभूषित है। वहाँ की प्राचीन राजधानी का नाम अयोध्या था। इण्डोनेशिया की प्राचीन राजधानी का नाम था अयोध्याकर्त्ता जो बदलकर आजकल जकार्ता हो गया है। प्रम्बनम में संसार का विशालतम एवं सुन्दरतम रामायण मूर्ति शिल्पतीर्थ है। इण्डोनेशिया ने सर्वप्रथम अन्तर्राष्ट्रीय रामायण महोत्सव आयोजित किया। कम्बुज, लवदेश, चम्पा, चीन, जापान, तिब्बत, मंगोलिया, नेपाल सभी में रामायण प्रतिष्ठित है। ईरान, अरब, मध्यपूर्व, अफ्रीका तक में रामायण के अनुवाद हुए हैं। यूनानी महाकाव्य इलियड तो रामायण का ही रूपान्तर मात्र है। यूरोप एवं अमरीका के विद्वान् रामायण पर मुग्ध हैं। सूरीनाम, मॉरीशस, फिजी, गिआना में रामायण ही वहाँ के भारतवंशियों का जीवन-प्राण है।

सर्व धर्म-पंथों का पुण्य महाकाव्य

बौद्धों ने मुग्ध होकर दशरथ-जातक, अनामक जातक नामक रामायण पर आधारित ग्रन्थ लिखे। जैनों ने विमलसूरि के पउमचरिय और हेमचन्द्राचार्य की जैन रामायण के द्वारा राम के चरणों में अपना अर्घ्य चढ़ाया। सन् 1585 में अकबर के फरमान से रामायण का फारसी में अनुवाद हुआ। गुरुग्रन्थ साहब में लगभग 30

हजार बार राम का नाम गूँज रहा है। फिलिस्तीन का सूफ़ी फकीर सरमद शहीद भारत में आकर औरंगजेब के बड़े भाई दाराशिकोह के साथ बैठकर रामायण पढ़ता था। गुरु गोविन्दसिंह ने गोविन्द रामायण लिखी। संस्कृत और हिन्दी साहित्य पर रामायण की छाप तो अमिट ही है। तमिल में कम्ब रामायण, तेलुगु में श्रीपाद-रामायण, मलयालम रामचरित, कन्नड़ तोरवे रामायण, बंगाली कृतिवास रामायण, हिन्दी रामचरित मानस, उड़िया बलरामदास रामायण, असमिया रामायण, मराठी भावार्थ रामायण, गुजराती रामबालचरित तथा राजस्थानी रघुनाथ रूपक गीतां रो—ये रामायण की दिग्विजय के प्रमाण हैं।

संसार का विशालतम झण्डा-जुलूस

मैंने संसार के किसी देश में इतना बड़ा झण्डा-जुलूस नहीं देखा जैसा रामनवमी के अवसर पर राँची में निकलता है। राम के जन्म पर हनुमान् के झण्डे फहराने के पीछे भी वही प्रेरणा है जिसने भगवान् राम एवं भक्तराज हनुमान् को एक कर दिया था, जिसने आर्य-अनार्य, नगरवासी-ग्रामवासी-वनवासी सभी को एक ही भावात्मक एकता के सूत्र में बाँधकर एकात्म बना दिया था। यही रामायण की सबसे बड़ी देन है। जहाँ श्रीराम फहरते हुए—बजरंगी ध्वजों से पूजित होते हैं, वहाँ वे राष्ट्रपुरुष राम वनवासी बन्धुओं के हृदय में लहराते हुए राम प्रेम एवं राष्ट्र प्रेम से शतशः आनन्दित होंगे।

हिन्दू धर्म के प्रति मेरी भावना वैसी ही है जैसे अपनी पत्नी के प्रति है। अन्य स्त्री मेरे मन में वैसी भावनायें नहीं जगाती जैसी मेरी पत्नी के प्रति। उसमें कुछ दोष हो सकते हैं किन्तु उसका मेरा बंधन अटूट है। इसी प्रकार हिन्दू समाज में अनेक दोष हैं किन्तु तुलसी की रामायण और गीता के संगीत से मुझे जो आनन्द मिलता है वह कहीं ओर से नहीं मिलता। मैं आमूल चूल सुधार का हामी हूँ किन्तु सुधार के जोश में हिन्दू-धर्म की मूल मान्यताओं को ठुकरा नहीं सकता।

—महात्मा गांधी

रामायण पारिवारिक मूल्यों का आख्यान है

रामायण पारिवारिक मूल्यों का आख्यान है। समाज जीवन, राष्ट्र जीवन, विश्व जीवन की नींव परिवार जीवन है जहाँ मानव-निर्माण होता है। मानव निर्माण का प्रथम संस्कार है—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्।। —मनु स्मृति

अर्थ—अपने माता-पिता, गुरुजनों को नित्य नमस्कार करने वाले तथा बड़ों की सेवा करने वाले व्यक्ति के चार गुण सदा बढ़ते रहते हैं। आयु, विद्या, यश और बल। आज अत्यन्त दुःख के साथ कह रहा हूँ कि आज हम इस महान संस्कृति को भूल गये हैं। इस चरणवंदना में एक विराट रहस्य छिपा है। इससे आधा जीवन आशीर्वाद, वात्सल्य तथा आधा जीवन सेवा और सम्मान में बीत जाता है।

अर्थात् वृद्ध, गुरु-सदृश को अभिवादन एवं सेवा करने से आयु विद्या, यश व बल में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती है और घर व समाज स्वर्ग बन जाता है। पर जो यह नहीं करते उनकी आयु क्षय होती है, विद्या विस्मृत हो जाती है, यश भी नष्ट हो जाता है एवं बलहीन होकर रहता है। यह अद्‌भुत सत्य है। यह आप कर के भी देखें, नहीं करके भी देखें। और यह इतनी महान् मर्यादा है कि अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्रीरामचंद्र स्वयं प्रातःकाल में उठकर पिता-माता एवं गुरुजनों की चरण वंदना करते थे। तुलसीदासजी रामचरितमानस में लिखते हैं—

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु-पिता गुरु नावहिं माथा।।
आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा।।
धन्य जनम, जगतीतल तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासु।।
चार पदारथ करतल ताके। प्रिय पितु मातु प्रान सम जांके।।

गोस्वामी तुलसीदासजी लिखते हैं—माता-पिता एवं गुरुजनों की, नित्य नमस्कार के साथ सेवा करने से धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चारों पुरुषार्थ अनायास ही करतलगत होकर रहते हैं। यह शास्त्रवचन है।

पितर संतुष्ट होने से सारे देवता संतुष्ट होते हैं। इसलिये जो माता-पिता एवं गुरु सेवापरायण होते हैं उनके समस्त कर्म धर्ममय बन जाते हैं। वे समस्त धन का अर्जन कर लेते हैं, उनकी समस्त कामनाएं पूर्ण हो जाती हैं। भगवान् उनके हाथ की मुट्ठी में आ जाते हैं। माता-पिता-गुरु के चरणों में प्रणत व्यक्ति को इस जगत् में कुछ भी अप्राप्त नहीं रहता। यह एक महान् आदर्श है।

यह भारतीय संस्कृति का प्रथम संस्कार है। जो इसका पालन नहीं करता उसे वेदशास्त्र यानी आगे का पाठ नहीं पढ़ाना चाहिये। उसको और कुछ सिखाने की आवश्यकता नहीं है। कारण कि उसको कुछ रुचेगा नहीं, हजम नहीं होगा। वह मानव नहीं बनेगा। जिसने माता-पिता-गुरु के चरणों में नत होना नहीं सीखा, वह आगे नहीं बढ़ सकता। कम से कम आध्यात्मिक विकास तो नहीं ही कर सकता है।

प्रणत व्यक्ति पिता-माता, गुरुजनों की तपस्या एवं पुण्यफल के कुछ अंश को आकर्षित कर लेता है। उनके ओज-तेज, विद्या—सभी कुछ में से हमें लाभ मिलता है। वे प्रणत जन को आशीर्वाद देते हैं—वत्स! चिरंजीवी होओ, विजयी होओ, सुखी होओ। अपने भाग्यानुसार ब्रह्माजी ने जो हमें देना था सो तो दिया ही है। किन्तु आशीर्वाद द्वारा गुरुजन अपने निजी अंश से भी प्रणत को कुछ देते हैं। यह हुआ प्रणाम का चमत्कार। जिसने प्रणाम करना सीखा नहीं उसका मस्तिष्क धूल-लुण्ठित होने योग्य ही है। वह मस्तिष्क किसी कार्य का नहीं। इसलिये तुलसीदासजी जो कहते हैं वह भारतीय संस्कृति की मर्यादा के अनुसार ही कह रहे हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्र से आरंभ करके साधारण मनुष्य पर्यन्त सभी ने आज पर्यन्त इस परंपरा का निर्वाह किया, उसी मर्यादा का आज घर-घर में पालन करें।

इससे घर का वातावरण एकदम बदल जायेगा। किसी कारण से हमसे कुछ त्रुटि हो गयी, बड़ों में हमारे प्रति रोष है तो प्रणाम करने से धुल जाता है और आपके प्रणाम करते ही जो आत्मग्लानि का भाव है वह दूर हो जाता है इस प्रकार घर का वातावरण स्वस्थ बना रहता है। आधा जीवन आशीर्वाद और आधा जीवन सम्मान और सेवा सुलभ होती है। यह इसका प्रत्यक्ष फल है।

क्योंकि कल्याणकारी कर्मों का फल निश्चय ही शुभ, कल्याणजनक होता है। इसमें कोई संशय नहीं है। क्या कल्याणकारी फल होता है इसको सुनो—घर-घर में श्रीराम और लक्ष्मण-भरत के सदृश पुत्र एवं सीता, सावित्री, दमयन्ती की तरह कन्याएं होंगी। और जो ऐसा नहीं करते उनके घर में औरंगजेब की परंपरा की संतान होंगी। यह औरंगजेब पिता को कारागार में बंदी करके रखता है और सभी भाइयों की हत्या कर के दिल्ली के सिंहासन पर बैठा था। तो आज आपको निश्चय कर

लेना होगा कि श्रीरामचंद्र की परम्परा चाहिये या औरंगजेब की परम्परा चाहिए। श्री रामचन्द्र तो नित्य माता-पिता, गुरुजन की चरणवंदना करते थे। औरंगजेब की कथा तो सुनी ही है। अब जो चाहिये वही पथ चुन लो।

गुरु गोविन्दसिंह (दशम सिक्खगुरु) बोलते हैं—अरे पापी औरंगजेब! तुमने अपने पिता की अस्थि एवं भाइयों के रक्त का कादा देकर जिस साम्राज्य की नींव खड़ी की है, मैं इस भवानी तलवार के नाम से प्रतिज्ञा करके कहता हूँ तुम्हारा यह पाप का साम्राज्य खण्ड-विखण्ड करके फेंक दूंगा।

औरंगजेब के राज्यकाल में दक्षिण भारत में मराठा हिन्दूवीर छत्रपति शिवाजी का खूब पराक्रम था। औरंगजेब उनको युद्ध में परास्त करने में समर्थ न होकर, छल कर के बंदी बनाने का षड्यंत्र रचा। राजा जयसिंह ने मुगल दरबार में उपस्थित होने के लिए उन्हें आमंत्रित किया। कहा कि आप यदि राजदरबार में जायें तो औरंगजेब उत्तर भारत को लेकर खुश व संतुष्ट रहेगा और दक्षिण भारत का शासन आप करेंगे। शिवाजी ने कहा—औरंगजेब तो भीषण दुष्ट-पापी है। उसने तो अपने बाप-भाई किसी को नहीं छोड़ा, सारा जीवन मैंने उनका विरोध किया है। अब राजदरबार में जाने से क्या वह मुझे छोड़ेगा। जयसिंह ने कहा—मैं आपके ऊपर किसी प्रकार का कोई संकट आने नहीं दूंगा। मैं एवं मेरा पुत्र राजसिंह आपकी रक्षा करेंगे। आप एक बार चलें। झगड़ा मिट जाये। शिवाजी महाराज ने सोचा, सभी तो फंदी है। अच्छा देखा जाय औरंगजेब का चेहरा कैसा है और किस शक्ति का अधिकारी है। इसलिये शिवाजी महाराज उसके दरबार में गये।

औरंगजेब ने शिवाजी महाराज को प्रथम में ही अपमान करने के लिये पांच हजारी मनसबदार के मध्य में बैठाया। शिवाजी महाराज थे सारे महाराष्ट्र के अधिकारी। उनको पांच-दस हजार सेनाधारियों में बैठाना अमर्यादाकर बात थी। शिवाजी महाराज ने इस व्यवस्था को देखकर, क्रुद्ध होकर, तलवार म्यान से निकाल करके कहा—मूर्ख औरंगजेब! तुमने मेरा अपमान किया है, तिरस्कार कर रहे हो। जानते हो इसकी परिणति कहाँ है? औरंगजेब विषम स्थिति को देखकर दरबार से पलायन कर गया। किन्तु मुगल सैनिकगणों ने शिवाजी को घेरकर, बंदी बनाकर कारागार में डाल दिया।

इस समय मुगल दरबार में भूषण नामक कवि था। उन्होंने शिवाजी के पौरुष को अपने चक्षु से देखा था। उनको लगा कि शिवाजी के विषय में कुछ लिखना चाहिये। भूषण कवि की कविता अतुलनीय थी। जब वे एक युवक थे तब बेकार व अड्डाबाज थे। एक दिन घर में खाना खाने बैठे थे। भोजन में नमक थोड़ा कम पड़ा था। उन्होंने बड़ी भाभी से लवण मांगा। भाभी ने ताना मारा—लवण जो चाहते हो, कभी लवण कमा कर लाये हो क्या? भूषण मुख का ग्रास वहीं फेंककर चल

दिये। उसके पश्चात् काशी जाकर, विद्वान् गुरु के चरणों में बैठकर खूब आग्रह के साथ विद्याध्ययन किया। विद्वान् हुए। उसके पश्चात् शिवाजी महाराज का यशोगान करते हुए 52 कविताएं लिखी। शिवाजी महाराज के दरबार में जाकर उनको प्रतापगढ़ किले में कवितायें सुनाई। शिवाजी महाराज ने संतुष्ट होकर 52 गांव की जागीर भूषण कवि को दे दी। जिज्ञासा की कि और कुछ चाहिये क्या? भूषण ने कहा, महाराज! हाँ, मुझे कुछ और चाहिये। 52 हाथी एवं प्रत्येक हाथी पर जितना लवण के बोरा ढो सकते हैं उतना लवण लदवा देवें। महाराज बोले— यह क्या है? 52 हाथी पर लवण लदवाकर क्या होगा? भूषण ने कहा—होगा महाराज, कार्य होगा। इसमें कुछ रहस्य है बाद में कहूँगा। 52 हाथी पर लवण का बोझा लेकर भूषण ने घर पहुँचकर बड़ी भाभी को कहा—भाभी सम्हालो, लवण अर्जन करके लाया हूँ। ऐसे जिद्दी थे, मस्तराम भूषण कवि। भूषण कवि ने शिवाजी महाराज पर 52 कविताएं लिखी हैं औरंगजेब ने एक बार उनको कहा—भूषण! तुम आगरा में रहते हो, तुम मेरी प्रजा हो और कविता लिखते हो शिवाजी पर। हमारे विषय में कुछ लिखो। भूषण कवि ने कहा—जहांपनाह! हुकुम करने से अभी ही कविता सुना देता हूँ। किन्तु पहले वचन दीजिये कि जान से नहीं मारोगे। औरंगजेब ने कहा— ठीक है, ऐसा ही होगा। कारण, अभी तो यह एक इज्जत का प्रश्न बन गया। भूषण कविता कहने लगे—

ठोर बाप बादशा शाहजहां
ताको कैद किन्हो मानो मक्का में आग लगाई है,
बड़ो भाई दारा वाको आख में चुनाई लिन्हो
शरम नहीं आयो मां को जायो सगो भाई है,
विदे कुरान खुदा की कसम खाई है।
भूषण भनतरे सुन नवरंगजेब सच्ची बात है,
इतने पाप कीन्हें तेने पादशाही पाई है।

कविता सुनकर औरंगजेब को प्रचण्ड क्रोध होने पर भी पूर्व वचनानुसार चुप रहना पड़ा।

भारत को यदि गारद में परिणत करना है, नष्ट करना है तब तो औरंगजेब के रास्ते पर चलें। माता-पिता-गुरुजनों को प्रणाम करने की कोई आवश्यकता नहीं। भारत को यदि भारत रखना है तब श्रीराम का पथ ही एकमात्र पथ है। औरंगजेब ने अपने पिता शाहजहां को आगरा के किले में बंदी करके रखा था। वहाँ छोटी एक मस्जिद भी थी। बादशाह के लिये एक छोटा कमरा। हाथ में हथकड़ी और पैर में डण्डाबेड़ी। एक कटोरी भीगा चना पड़ा रहता था। बादशाह को पशु की तरह मुंह के पास लगाकर खाना पड़ता। अन्य एक कटोरी में पानी रहता था, उसको भी इसी

तरह पीना पड़ता था। एक दिन भयंकर गर्मी की दुपहरी में शाहजहां को भीषण प्यास लगी थी। डण्डाबेड़ी को खींच-खींच कर बहुत कष्ट से पानी की कटोरी के पास जाकर कुत्ते की तरह चुभक-चुभक कर जल पीने के लिये कटोरी में मुंह लगाया। ठीक उसी समय इधर-उधर से घूमते-फिरते, औरंगजेब वहाँ आकर उपस्थित हुआ। इस दृश्य को देखकर कौतुक हुआ उसने सोचा एक रूढ मजाक किया जाय। वह भीतर गया और जाकर उस पानी की कटोरी को लात मारकर तोड़ दिया। शाहजहां जो एक दिन सारे भारत का बादशाह, वह आज अपने पुत्र के हाथ बंदी, जल नहीं पी पाने के कारण बादशाह रो पड़ा और कहा—ऐ पिसर तू अजब मुसलमानी, ब पिदरे जिंदा आब तरसानी।

आफरीन बाद हिंदवान सद बार,
मैं देहंद पिदरे मुर्दारावा दार्यम आब।।

अरे बेटा, तू एक अद्‌भुत मुसलमान है जिंदा बाप को जल नहीं पीने देता। हिन्दूजन को शत बार धन्यवाद क्योंकि वे अपने मृत पितृपुरुष को भी तर्पण करके जल देते हैं—

हां, भारत को 'भारत' रखना है तो केवल राम का पथ ही पथ है। तुलसीदासजी हमें वही पथ दिखा गये हैं। जो इस पर चलेंगे वे ही भारत के वास्तविक रक्षक हैं और जो इस पथ में नहीं चलेंगे भारत को गारद बनायेंगे। किन्तु सुनो, हम भारत को किसी भी हालत में गारद नहीं बनने देंगे। रामपथ के विरोधी को भारत छोड़ना पड़ेगा।

एक बार प्रो. ओबराय जी इस्लामिया कॉलेज में इतिहास के विद्वान् प्रो. अब्दुल लतीफ से मिलने गये। वे मकान में थे। उनके बाहर आने तक उन्हें (प्रो. ओबराय) कुछ मिनट तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। उन्होंने विस्मित होकर सुना कि उनके घर के भीतर से रामायण की चौपाइयों के गाने की आवाज आ रही थी। उनके बाहर आने पर उन्होंने पूछा—लतीफ साहब! आप क्या गा रहे थे? उन्होंने हंसकर उत्तर दिया, अरे यार! तुम्हारी ही किताब पढ़ रहा था। ओबरायजी ने कहा— रामायण के ग्रंथ पर मेरा ही ठेका है क्या? वे बोले—मेरा मतलब है कि मैं हिंदुओं का पवित्र ग्रंथ पढ़ रहा था। उन्होंने पुनः पूछा—क्या रामायण हिन्दुओं का ही धर्मग्रंथ है या भारत का राष्ट्रीय महाकाव्य भी। वे बोले—आप सच कहते हैं, 'रामायण भारत का राष्ट्रीय महाकाव्य भी है और विश्व मानवता के मंगल का महाकाव्य भी। इसमें इतने ऊँचे नैतिक और पारिवारिक मूल्यों का उपदेश है कि उसके बिना परिवार उजड़ जायेंगे और हमारा समाज नष्ट हो जायेगा। इसलिये फुर्सत निकालकर कुछ समय के लिये परिवार के सब सदस्यों को बैठाकर रामायण

सुनाता हूँ। इससे मुझे बड़ा सुख मिलता है। ओबराय जी सुनकर बड़े आनंदित हुए।'

प्रो. ओबराय ने कहा—सम्राट औरंगजेब के बड़े भाई दाराशिकोह भी अपने गुरु के साथ बैठकर रामायण, गीता और उपनिषद् पढ़ा करते थे। गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन अब्दुर्रहीम खानखाना तथा पठान कवि रसखान भी रामायण के दीवाने थे। रहीम ने लिखा है—

रामचरितमानस विमल संतन जीवन प्राण,
हिन्दूवान को वेदसम यवनन प्रकट कुरान।

मलाया, इंदोनिजीया आदि देशों के मुसलमान आज तक चाव से रामायण पढ़ते हैं और बड़े उत्साह से रामलीला खेलते हैं।

इस पर प्रो. लतीफ ने कहा—यह सच बात है। यह हमारा हिन्दुस्तानी तमुददम है जिसे दुनिया के लोग भी इज्जत से सर पर चढ़ाते हैं। खुद मुहम्मद अली जिन्ना साहब ने जब वे कांग्रेस के मंत्री थे तब अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में भाषण करते हुए मुसलमान छात्रों से कहा था कि रामायण और महाभारत हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय महाकाव्य हैं। इनको पढ़े-समझे बिना कोई हिन्दुस्तान को नहीं समझ सकता और न ही भारत के साथ एकात्म हो सकता है। मैंने कहा—यदि सचमुच हिन्दुस्तान के बंधु इस नसीहत को मानते तो देश के विभाजन की मांग की कल्पना भी नहीं आ सकती थी। बेशक देश की संस्कृति ही देश की एकता का सबसे बड़ा आधार है।

तब प्रो. ओबरायजी ने बताया—प्रसिद्ध क्रान्तिकारी रामप्रसाद बिस्मिल की दूसरे क्रान्तिकारी अशफाक उल्ला से बड़ी दोस्ती थी वे उसे अपना छोटा भाई मानते थे उसे अपने घर ले जाते और उसे लक्ष्मण कहकर पुकारते। सबकी नजर में वह रामलखन की जोड़ी बड़ी प्यारी थी। वे घर पर साथ-साथ खाना खाते, साथ-साथ खेलते और साथ-साथ देशभक्ति के तराने गाते और अंत में दोनों साथ-साथ फांसी पर चढ़ गये। एक बार अशफाक उल्ला के पेट में भीषण दर्द हुआ, वे बेहोश हो गये, वे राम-राम चिल्लाने लगे। लोगों ने कहा—अल्लाह-अल्लाह बोलो। किन्तु वे राम-राम ही चिल्लाते रहे। रामप्रसाद बिस्मिल पहुँचे तो वे उठकर उनके गले से लिपट गये और कहा, अब मेरा राम आ गया है। इस दृश्य को देखकर लोगों को रामायण में वर्णित लक्ष्मण की बेहोशी के बाद राम से पुनः मिलने की याद आ गई। तो यह संस्कृति का चमत्कार है जो हमारे नस-नस में है इसने सबके दिल को जोड़ा है। अशफाक और बिस्मिल के दिलों को एक बना दिया है। इस राह पर चलने से सारा देश एक हो सकता है।

फिर उन्होंने थोड़ा विषय बदलकर पूछा—लतीफ साहब! इतिहास में आपका सम्राट औरंगजेब के बारे में क्या मत है? उन्होंने कहा—औरंगजेब ने हिन्दुओं में

इस्लाम फैलाने का सबसे बड़ा काम किया, लोग उसे जिन्दापीर कहते थे लेकिन व्यवहार में उसकी अतियों के कारण मुगलिया सल्तनत की इति हो गयी। मैंने पूछा—क्या आप खुदा से दुआ मांगोगे कि खुदा आपको औरंगजेब जैसा बेटा दे। वे कानों को छूकर बोले—लाहोलावल्लाह कुव्वत तोबा-तोबा। औरंगजेब ने अपने जिंदा बाप को कैद करके पानी तक के लिये तरसा-तरसा कर मारा। अगर मेरे घर औरंगजेब जैसा बेटा होगा तो मुझे भी मार डालेगा। मैंने पुनः कहा—औरंगजेब जैसा भाई मांग लीजिये। वे कानों को छूते हुए बोले—खुदा रहम करे, अपने तीन-तीन भाइयों का खून करने वाला औरंगजेब जैसा भाई कौन मांगेगा। मैंने हंसकर कहा—औरंगजेब जैसा दोस्त मांग लो? उन्होंने मजाक से कहा—औरंगजेब दोस्त हुआ ही किसका। अपने- पराये सबके साथ दगा ही किया है।

मैंने पूछा—लतीफ साहब! आप खुदा से क्या मांगते हैं कुछ भी तो मांगिये। वे बोले 'या खुदा या दो तो राम जैसा बेटा दो, राम जैसा भाई दो, राम जैसा दोस्त दो, राम जैसा दुश्मन भी दो, राम जैसा गुरु भी दो। राजा भी दो तो राम जैसा। वे मेरी ओर देखकर मुस्कराकर बोले—मैं इसलिये लीगियों की नजर से बचकर रामायण पढ़ा करता हूँ।

अतः भारत को भारत बनाये रखना है तो राम का पथ चुनना पड़ेगा और राम विरोधियों को भारत छोड़ना पड़ेगा।

आज संस्कारों की कमी एवं सही दिशा के अभाव में भारत के युवकगण भी विद्रोही मनोभावापन्न हो रहे हैं। पिता के साथ दुर्व्यवहार कर रहे हैं। एक पुत्र अपने पिता को कहता है—हमको जन्म देकर हमारे ऊपर कौन-सा उपकार किया है। तुम दोनों के आनंद-भोग के परिणाम से हमारा जन्म हुआ है। यह प्रकृति का नियम है। मेरा पालन-पोषण भी इसी एक ही नियम से हुआ है। उसके लिये आपके प्रति कृतज्ञ रहने का कोई कारण नहीं है।

पश्चिमी देशों में माता-पिता की क्या अवस्था है? वृद्धाश्रम ही शेष आश्रय है। शादी हुई कि गया। इस कारण उन सब देशों में कोई भी माता-पिता अपने पुत्र के विवाह से खुश नहीं होते। वे जानते हैं कि विवाह के दूसरे दिन से लड़का अब हमारा नहीं रहेगा।

उन देशों में कुत्ता-कुत्ती, शूकर-शूकरी की तरह नर-नारियों की भोग लीला खुले में (प्रत्यक्ष) दिखाई पड़ती है। जिनका चरित्र ही नहीं वे कैसे मनुष्य? चरित्र के द्वारा ही मनुष्य वर्चस्वी बनता है। चरित्रवान यदि होना है तो तुलसीदासजी का रामचरितमानस पढ़ो। मेरे साथ एक अमेरीकन सज्जन भारत आये थे। मुंबई में विमान से उतरकर भीषण आश्चर्यचकित होकर उन्होंने देखा कि एक भद्र महिला अपने विदेशगत पति का पैर छूकर प्रणाम करती है। यह

देखकर साहब ने कहा—What is it? Oh! India is really wonderful मैंने कहा, क्या हुआ? उन्होंने कहा—Here I see the hands of the wives are at the feet of their husbands. But in our countries (in the west), the hands of wives are in the pockets of the husbands. यानी यहाँ मैं देखता हूँ, पत्नियों के हाथ पतिदेव के चरण में रहते हैं। किन्तु हमारे पश्चिमी देशों में पत्नियों के हाथ रहते हैं पतिदेव की पॉकिट में। कारण यह है कि हमारे देश के पति नित्य नये रूप के शिकारी। जहाँ नवरूप दिखा वहीं उनका फंदा। क्लब में घूमो, नाचो-कूदो। नूतन रूप जहाँ देखा वहीं पुरानी पत्नी को तलाक यानी विवाह-विच्छेद, अब नयी पत्नी अतः नया रस। वहाँ पत्नी भी कम नहीं है। वे भी सदा सर्वदा पैसे की शिकारी। वे सोचती हैं कि पति कब छोड़ देंगे उनका क्या ठिकाना। इसलिये उसके पूर्व जो प्राप्त होता है संग्रह कर लो। पुनः वहाँ अनेक पुरुष ऐसा सोचते हैं। Where there is available milk in the market, who goes to bear the troubles of farming a cow. बाजार में जब प्रचुर मात्रा में दूध सुलभ है तब गाय पालन का कष्ट कौन उठाता है? यहाँ स्त्रियाँ पैसे का शिकार अच्छी प्रकार से करती है। इसलिये उनका हाथ पुरुषों के पॉकिट में रहता है। और अन्यों की क्या कथा कहें स्वयं प्रेसिडेन्ट कैनेडी की पत्नी तक ने शेष पर्यन्त इडनानेर के एक जहाज कंपनी के वृद्ध मालिक के साथ विवाह कर लिया। सिर्फ पैसे के लोभ से। तो पतिगण तो काम के कीट एवं पत्नी है अर्थ की यक्षिणी। उस देश में कोई पारिवारिक जीवन नहीं है। परिवार की संज्ञा क्या है? परिवार है 'सकल चारित्रिक और सामाजिक उत्तम गुणावली का पालना।' पारिवारिक मूल्यबोध का महानतम काव्य रामायण है। क्योंकि परिवार में किसके प्रति किसका क्या कर्तव्य एवं किसका क्या मूल्य है वह रामायण में जितने सुंदर ढंग से बताया गया वैसा और कहीं नहीं है। भारत युग-युग से दृढ़भाव से अपने स्वरूप में स्थित है। वह इस नैतिक मूल्य बोध की बुनियाद पर खड़ा है। इसलिये कहता हूँ भारत को बचाना है तो राम का पथ पकड़ो और भारत को यदि गारद बनाना है तो औरंगजेब का पथ है।

श्री राम ने सीता के लिये क्या किया? एवं स्वयं अपने भाई के प्रति क्या किया? इस पर विचार करना चाहिये। राजा दशरथ ने तो स्वयं अपने मुंह से राम को वनवास नहीं दिया। वे तो कुछ बोल ही नहीं पाये। कैसे अपने प्रिय आज्ञाकारी पुत्र को वनवास का आदेश देते? वे तो कैकेयी की बात सुनकर हतचेता होकर बेहोश पड़े हैं। कैकेयी ने कहा—महाराज ने मुझे दो वर देने का वचन दिया था। अब वे हार गये हैं। मैंने ये दो वर मांगे हैं। कैकेयी अत्यंत संकोच के साथ राम से पूछती है—राम! तुम क्या इस वचन को मानोगे? राम ने कहा—निश्चित मां! परम आनंद के साथ मैं मानूंगा। कैकेयी को तो आशा ही नहीं थी कि राम सचमुच में

स्वयं का राजतिलक छोड़कर वनवास चला जायेगा। उसने सोचा—एक बड़ा संघर्ष होगा। किन्तु राम ने कहा—माता! राम दो बार नहीं बोलता। मुझे पिता की आज्ञा से वनवास तो क्या अग्नि में कूदकर प्राण विसर्जन करने तथा विषपान करने में भी आपत्ति नहीं है। यह है राम की आज्ञानुवर्तिता।

किन्तु आज घर-घर में क्या देखते हैं? लड़के को यदि माता-पिता कहें कि बाजार से सामान ले आओ। तो तभी ना नु आरंभ हो जायेगी, बहानेबाजी आरंभ हो जायेगी, मेरे पास समय नहीं है, पढ़ने का काम बाकी है, आज क्रिकेट मैच देखना है। राम में आज्ञानुवर्तिता बाद दे देंवे तो उनका बाकी क्या मूल्य बचता है? इसलिये देखिये दशरथ ने तो अपने मुख से आदेश दिया नहीं, तब भी मेरी मां को दिया वचन मिथ्या न हो जाय, मेरे जीवित रहते पिता का वचन मिथ्या नहीं हो सकता। मेरे रहते पिता का वचन मिथ्या हो गया तब मेरे पुत्र-पौत्र मुझे धिक्कारेंगे! मैं सब कुछ छोड़ सकता हूँ पर पिता का वचन मिथ्या नहीं होने दे सकता यह है आदर्श पुत्र का चरित्र। अब देखें दो भाइयों का चित्रकूट में हुआ मीठा झगड़ा, किस प्रकार इतिहास में अमर हो गया। राम कहते थे, भरत! पिता के मौन आदेश और माता कैकेयी के वचन पर फूल चढ़ाते हुए मैंने वनवास स्वीकार किया और आप जैसे प्राण-प्यारे भाई के लिये राज्य छोड़ा। अतः भरत राज्य मेरा नहीं आपका है। भरतजी रोकर कहते हैं राम दुहाई, आपके चरणों की सौगंध, ऐसा पाप मुझसे मत करवाइये। यह सदा-सदा आपका है और आपका ही रहेगा। दोनों भाइयों के अंतर से इदं न मम् की भावना गूंज रही थी। दोनों ने मानो राज्य को कन्दुक (गेंद) बनाकर परस्पर एक-दूसरे की ओर ठुकराकर फेंकना प्रारम्भ किया। दोनों खिलाड़ी भी इतने जागरूक थे कि गोल कोई भी नहीं होने देता था। अंत में निर्णय किया गया कि भाइयों का प्रेम अमर बना रहे और राज्य की कीमत लगाई दो जूते (चरणपादुका)। 14 वर्ष तक अयोध्या के सिंहासन पर राम की पादुका राज्य करती रही। हमें आगे इतिहास में भी इस घटना का प्रभाव देखने को मिलता है कि शिवाजी महाराज के ज्येष्ठ पुत्र सम्भाजी महाराज की मृत्यु के अनन्तर उनके छोटे भाई राजाराम महाराज राजगद्दी पर कभी बैठे नहीं। अर्थ के प्रति निर्लोभवृत्ति एवं साम्राज्य के प्रति यज्ञभाव का इससे श्रेष्ठ उदाहरण सारे विश्व के इतिहास में भारत के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं मिलता। भरतजी की अर्थ-व्यापार में इस निर्लोभवृत्ति का गुणगान करते हुए गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं—

रमा विलास राम अनुरागी,
तजत वमन इव नर बड़ भागी।

अर्थात् राम के सच्चे अनुरागी ने रमा (लक्ष्मी) के भोग-विलास को वैसे ही

त्याग दिया जैसे विचारवान् मनुष्य वमन को त्याग देता है। वह व्यक्ति बहुत भाग्यवान् है।

टाटानगर के बार एसोसिएशन के प्रेसिडेन्ट ने मुझसे कहा—अयोध्या के राज्यसिंहासन पर राम का कानूनी अधिकार था। उनका परंपरागत अधिकार था, संवैधानिक अधिकार था उन सब अधिकारों के लिये राम का लड़ाई करना उचित था। मैं इस प्रकार के मुकदमे की निःशुल्क वकालत कर देता। मैंने कहा—अरे वकील! तुम राम के होकर वकालत करते। यदि राम लड़ाई करता तो राम की पूजा कौन करता? इस प्रकार की लड़ाई करने वाले बहुत से राजपुत्र जन्मे हैं, मरे हैं। कौन उसका हिसाब रखते हैं। वे सब इतिहास के कूड़ेदान में फेंक दिये गये। जिन्होंने स्वार्थ को व्यर्थ जाना है, जिन्होंने तपस्या के द्वारा चित्त को विजित किया, वे ही प्रातःस्मरणीय हैं। राम का महत्त्व ही इस बात के लिये है कि उन्होंने अपने लिये कुछ नहीं किया, जो किया विश्व कल्याण के लिये किया।

अब देखें राजगृह में कलह उपस्थित हुआ पर गृहधर्म में राम, भरत आदि सब स्थिर रहे। इसी प्रकार विदेशी आक्रमण के समय भी हमारी परिवार व्यवस्था स्थिर रही, हमारी वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, ग्राम पंचायत व शिक्षा व्यवस्था स्थिर रही। भले हमारे राज्य कुछ काल या दीर्घ काल के लिये गुलाम बने पर हमारा राष्ट्र जीवन अखण्ड बना रहा हम फिर उठ खड़े हुए। आक्रान्ताओं का दमन कर फिर से अपना राज्य पा लिया। जबकि विश्व की अन्य सभ्यतायें विदेशी आक्रमण पर सदा के लिये समाप्त हो गई।

कैकेयी के मन में किंचित मात्र प्रायश्चित्त का भाव आया तो वह श्री रामचन्द्र की त्याग-तपस्या को देखकर ही। राम ने अपने इस तपोमय व्यवहार के द्वारा मां की उस मनोवेदना को दूर किया था। इसलिये देखा जाता है अयोध्यावासी जब राम को वापस लाने चित्रकूट गये थे तब कैकेयी साथ में थी। मैथिलीशरण गुप्त ने अपने साकेत नामक ग्रंथ में लिखा है—

युग युग तक चलती रहे कठोर कहानी
'रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी।'
निज जन्म-जन्म में सुने जीव यह मेरा-
धिक्कार! उसे था महा स्वार्थ ने घेरा।

कैकेयी स्वयं बोलती है जितने दिन यह कहानी चलती रहेगी उतने दिन मेरा यह जीव सकल लोक की धिक्कार सुनता रहे—

थूके मुझ पर त्रैलोक्य भलेहि थूके,
जो कोई जो कह सके, कहे, क्यों चूके।

छीने न मातृपद किन्तु भरत का मुझसे,
हे राम दुहाई करूं और क्या तुझ से ?

यदि त्रिलोक की जनता मेरे मुख पर थूके तो थूके, कोई यदि कटु कथा कहता है तो कहे, किन्तु हे राम! दुहाई तुम्हारी, मैं जो भरत की मां, इस मातृपद को, जिसे मुझ से कोई छीन न लेवे। कोई इस तरह न सोचे, भरत जैसे रामभक्त की मां अभागी कैकेयी कैसे हो सकती है।

राम ने कहा है—

'सौ बार धन्य वह एक लाल की माई,
जिस जननी नें है जना भरत सा भाई',
पागल सी प्रभु के साथ सभा चिल्लाईह्न
'सौ बार धन्य वह एक लाल की माई।'

भगवान् श्रीराम ने निज तपस्या सुलभ आचरण तथा वचन के द्वारा कैकेयी के मन को जीता था। कैकेयी हार गयी राम की तपस्या के आगे। यही कैकेयी जिसने एक दिन राम को वनवास भेजा था, किन्तु राम की तपस्या ने आज उसके मन के काटे को उखाड़ फेंका था। आज इसलिये वह राम के पास उत्सर्गित होना चाहती है।

एक गुरुद्वारे में कुछ अकाली लोगों ने स्वयं को हिन्दू से अलग मानकर प्राचीन परंपरा की निंदा करनी प्रारंभ की थी। उन्होंने कहा था—देखो जी, क्या हुआ। दशरथ क्या बाप थे? बेटा वनवास गया तो उसका प्राण निकल गया। देखो, गुरु गोविन्द सिंह के चार बेटे थे दो दीवारों में चुने गये तो दो कत्ल। किन्तु उन्होंने प्राण नहीं छोड़ा बल्कि सब सहन किया तो यह क्या बात हो गयी कि दशरथ बेटे के शोक में मर गये?

मैंने उनको कहा—देखो भैयागण। इस प्रकार निंदा करके तत्त्व को तो समझा नहीं पायेंगे? इस खालसा पंथ के संस्थापक कौन? गुरु गोविन्द सिंहजी ने तो रामायण से प्रभावित होकर व्रजभाषा में गोविन्द रामायण लिखी है—

रामकथा जुग जुग अटल, सब कोउ भाखत नेत।

यह है गुरु गोविन्दसिंह की वाणी, गुरु गोविन्दसिंहजी दशरथ राजा के प्राणत्याग के प्रसंग में बोलते हैं—

प्राण गवन नृपवर करयो, प्रण नहि त्यागा जाय।
देने कहे जो वर हुते, तन युत दिये चुकाय।।

जो दो वर देने का वचन दिया था वह तो राजा दशरथ ने दिया ही, साथ ही

साथ सूद स्वरूप अपने प्राण भी दे दिये। जो इस त्याग की महानता को समझते नहीं वे ही गोडामी के रोग से ग्रस्त होकर उलटी-पुलटी कथा कहते हैं, व्यर्थ की बकवास करते हैं। दशरथ का प्राणत्याग साधारण त्याग नहीं है—

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयऊ सुरधाम।। ......मानस...2/155/1

रामायण के प्रत्येक चरित्र में जो महानता है वह अमूल्य है। हमारी सांस्कृतिक परंपरा को जीवित रखे हुए है। यदि हम लोग रामायण का नित्य पाठ करें व उसके ऊपर मनन करें तब घर स्वर्ग में परिणत होगा। संघर्ष नहीं होगा। क्लेश कंटक आयेगा नहीं। घर-घर में राम-सीता का चरित्र दृष्टिगोचर होगा। इसलिये कहता हूँ रामायण का पारिवारिक मूल्यांकन करके उसको स्वीकार करें।

संसार के वाङ्मय में नैतिक जीवनमूल्यों को जीवन की प्रत्यक्ष परिस्थितियों में उतारकर इतनी सुंदर रीति से अन्यत्र कहीं प्रस्तुत नहीं किया गया जितना की रामायण के कथानक में। नैतिकता कर्तव्य की आंतरिक पुकार है।

फ्रांस के इतिहासकार मिचलेट (Michelet) ने रामायण के मूल्यांकन में लिखा है—जिस किसी ने भी महान् कार्य किया है या महान् आकांक्षाएं संजोयी उसे रामायण रूपी अमृत की प्याली से जीवन और यौवन का एक लंबा घूंट पीने दो। पश्चिम में सभी कुछ संकीर्ण है। यूनान छोटा और तंग है और वहाँ मेरा दम घुटता है। जुडिया शुष्क है तथा मैं वहाँ हांफ जाता हूँ। मुझे महान् एशिया और गहन प्राची की ओर देखने दो। वहाँ मिलता है मेरे मन का महाकाव्य रामायण—हिन्दमहासागर जैसा विस्तृत, सूर्य से ज्योतित एवं धन्य, एक दिव्य संगीत का ग्रंथ जिसमें कहीं भी लयभंग नहीं है। वहाँ एक अपार शांति का राज्य है, कर्तव्यों के संघर्ष के बीच भी अपार माधुर्य है, अनंत सौहार्द है जो सब जीवों पर प्रेम-दया, क्षमा का अपार और अथाह सागर लहरा देता है।

यदि इंग्लैण्ड को अपनी महानता की रक्षा करनी है तो भारतीय कुटुम्ब व्यवस्था को स्वीकार करना पड़ेगा। ये कुटुम्ब ऐसी चीज है, जिसके अन्दर अनेक लोग अनेक प्रकार की पूजा पद्धतियों, स्वभाव एवं आदतों के साथ एक साथ मिलकर रह सकते हैं। इसलिये ब्रिटेन के लिये भारत से परिवार व्यवस्था को लेना पड़ेगा यदि ब्रिटेन को ब्रिटेन रहना है।

—इंग्लैण्ड की प्रधानमंत्री मिसेस थेचर

गृह-वाटिका से रामायण काल तक

आधुनिक युग सामाजिक विषमताओं का युग है। परन्तु अभी तक पूर्वी देशों में, विशेषकर भारतवर्ष में आध्यात्मिकता का गुण पर्याप्त मात्रा में बचा हुआ है। यही गुण सभी विदेशियों को हमारी संस्कृति की ओर आकर्षित करता है। आज विश्व की सभी सामाजिक समस्याओं में केन्द्रीय स्थान परिवार से सम्बन्धित ही है तथा इसका निदान भी निकट भविष्य में होना चाहिए—यह सभी जानते हैं। भौतिकता की अपेक्षा आध्यात्मिकता को ही परिवार में प्रथम स्थान प्राप्त है—पूरब यही कहता है, जबकि पश्चिम भौतिकवाद की कृत्रिम नींव पर खड़ा अपने पतन से बचने के लिए भारतवर्ष की आध्यात्मिकता के सम्मिश्रण की दिशा में प्रयत्नशील है।

भारतवर्ष में राम-राज्य से आदर्श क्या और कोई भी युग हो सकता है? क्या दशरथ के परिवार में आदर्शता का उच्चतम स्तर नहीं? इन्हीं प्रश्नों का उत्तर छिपा है—डॉ. हरवंशलाल ओबराय के एक प्रवचन में, जिसे उनकी छोटी बहन—निर्मला कुमारी ने पंक्तिबद्ध किया था।

इस वृहज्जगत् में प्रत्येक घर एक छोटी-सी वाटिका है। उसमें माता-पिता रूपी माली प्रत्येक पुष्प को पल्लवित और पोषित करते हैं। फिर गृह एक सुन्दर उपवन स्वरूप हो जाता है। इसमें छोटे-बड़े, रंग-बिरंगे, सुगन्धित और बिना सुगन्ध के फूल सभी अपना-अपना व्यक्तित्व दिखाते हैं। माता-पिता उस सुन्दर उपवन को देख कर फूले नहीं समाते, क्योंकि यह सब उन्हीं की सद्भावनाओं का ही फल है।

वाह रे मानव ! तुम अपने अहं पर विजय न पा सके। ज्यों-ज्यों परिवार के सदस्य किसी विशेष कार्य में समर्थ होते जाते हैं, उनके मन में अभिमान का अभ्युदय होने लगता है। धीरे-धीरे भाई-बहिनों में आपसी संघर्ष होने लगते हैं। फिर वे माता-पिता से भी मुकाबला करने लग जाते हैं। अन्त में वह उपवन असुन्दर सा दीखने लगता है। यह असुन्दरता क्या है? **मान, बड़ाई, ईर्ष्या, दुर्लभ तजना ऐह !** (इसी मान, बड़ाई और ईर्ष्या से घर तबाह हो जाते हैं।)

क्यों न हम भगवान् राम के आदर्श जीवन से शिक्षा लें? जहाँ राम आदर्श पुत्र, दशरथ आदर्श पिता, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न—आदर्श भाई; कौशल्या और सुमित्रा आदर्श माता और वशिष्ठजी आदर्श गुरु हैं। उनके आदर्श आज भी भारत में गाए जाते हैं।

वह रामायण काल भी क्या था, जहाँ कि त्याग भरा जीवन था। जहाँ परिवार के प्रत्येक व्यक्ति ने एक-दूसरे के सुख के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर डाला। यदि राम ने माता-पिता की आज्ञा से चौदह वर्ष का वनवास लिया तो उनके साथ सीताजी और लक्ष्मणजी भी वनवासी हो गये। इधर उर्मिला घर में रह तपस्विनी जैसा जीवन व्यतीत करने लगी। उधर भरत, शत्रुघ्न, कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी माता भी राम के वियोग में अत्यन्त दुःखी होने लगी। राजा दशरथ का तो कहना ही क्या, जिन्होंने राम के वियोग में प्राण ही त्याग दिये।

राम राम रटते हुए ही दशरथ सुरधाम को सिधार गये।

राम दरबार के सभी व्यक्ति ब्रह्मज्ञानी थे। एक ब्रह्मज्ञानी में जो निःस्वार्थ त्याग, सच्चा प्यार और कष्ट सहन की क्षमता होती है, वह उन सभी में थी। आज भी उन सद्गुणों की आवश्यकता है। कितना सुन्दर था भगवान् राम का युग :

राम राज बैठें त्रैलोका, हरषित भए गये सब सोका।
बयरु न कर काहू सन कोई, राम प्रताप विषमता खोई।।

आज भी हमें उसी रामराज की स्थापना में प्रयत्नशील तथा तत्पर रहना चाहिए।

महर्षि वाल्मीकि विश्व के आदिकवि होने के नाते सारे विश्व वाङ्मय के पूज्यतम पूर्व पुरुष हैं। उन्होंने जो अमर रामचरित्र दिया उससे न केवल भारत का वरन् सारे विश्व का मुख समुज्ज्वल हुआ तथा साहित्य भण्डार समृद्ध हुआ।

—प्रो. ओबराय

तुलसी और रामायण की महिला पात्र

महात्मा गांधीजी से एक अमेरीकन प्रेस रिपोर्टर ने जिज्ञासा की कि आप तो कहते हैं कि मेरी सब प्रेरणा का मूल है तुलसी रामायण। तो आपके इस सत्याग्रह आंदोलन की प्रेरणा कहाँ से मिली आपको? गांधीजी ने कहा—तुलसी रामायण से। रिपोर्टर ने कहा—सारी तुलसी रामायण में कहीं सत्याग्रह का नाम भी नहीं है और आप कह रहे हैं तुलसी रामायण से। गांधीजी बार-बार कहते हैं 'सत्याग्रह' है, रिपोर्टर कहता है 'नहीं'। गांधीजी ने कहा—देखो, कहाँ सत्याग्रह छिपा हुआ है। भारत की एक अबला युवती नारी, एक असहाय सीता। भारत से सुदूर लंकाद्वीप में नरभक्षक राक्षसों के हाथ में परिवृता होकर है। रावण कहता है—'ऐ' सीता! आज संध्यापर्यन्त तुम यदि मेरी शय्यासंगिनी न हुई तो इस तलवार को देख, जिसको देखकर इन्द्र, कुबेर आदि भी भय पाते हैं। इसी तलवार से तेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर, ताजा मांस से सुबह का अल्पाहार होगा। सीता क्या उत्तर देती है—

हाथ में तृण लेकर सीता बोलती है—अरे निशाचर! बायें पैर की कनिष्ठ अंगुली से भी मैं तुझे स्पर्श नहीं कर सकती। इसके पश्चात् की कथा तुलसीदासजी कहते हैं—

स्याम सरोज दाम सम सुंदर।
प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर।।
सो भुजकंठ कि तव असि घोरा।
सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा।। दो. 9/2 सुंदरकाण्ड

सीताजी कहती हैं—अरे दशकंधर! कान खोलकर सुन ले। मेरे स्वामी का श्याम कमल की माला के समान सुंदर तथा हस्तिशुण्ड की तरह बलशाली भुजद्वय के सामने तेरी यह तलवार कुछ भी नहीं। रे शठ, मेरी प्रतिज्ञा सुन। जिस तलवार को दिखाकर मुझे भय दिखाते हो तेरे कंधों पर उसी तलवार से मार पड़ेगी।

युद्ध करने के लिए कुम्भकरण को जगाया। रावण से कुंभकरण ने जिज्ञासा की युद्ध के कारण के विषय में। रावण ने बहन शूर्पणखा के अपमान का बदला लेने के लिये सीताहरण की कथा से लेकर श्रीराम-लक्ष्मण और वानर सेना के साथ समुद्र

में सेतु निर्माण कर के लंका में चढ़ाई कर एवं युद्ध में समस्त राक्षस वीरों के एक-एक करके मरने की कहानी बताई। और भी कहा—इतने दिन हो गये किन्तु सीता किसी का वश नहीं मानती। कुंभकर्ण ने परामर्श दिया—तुम राम बनकर सीता के पास जाओ। रावण ने कहा—भाई! वह करके भी देख लिया। अपने स्वरूप में जब उसके पास जाता हूं तब उसके देह से इस प्रकार का भीषण तेज निःसृत होता है जिसको सहन करना कठिन है, पुनः जब राम का छद्म रूप धारण करके जाता हूँ तब मेरे मन में ऐसा सात्त्विक भाव उठता है जिससे सीता के प्रति मातृबुद्धि, मातृभाव जागृत होता है। परम वैराग्य जागता है। इसलिये इस प्रकार की चेष्टा मैं नहीं करता। यही है सतीत्व का बल।

एक है सती नारी, एक है पशु नारी। लोग तुलसीदासजी की समालोचना करके कहते हैं तुलसीदास ने शूद्र एवं नारियों की निंदा की है—

ढोल गँवार सूद्र पसु नारी,
सकल ताड़ना के अधिकारी। मानस 5/58/3

यहाँ पर पशु नारी का अर्थ पाशविक चरित्र की नारी। पुनः पशु और नारी अलग-अलग पकड़ा जा सकता है। ढोल को ताड़न नहीं करने से आवाज नहीं होगी। गंवार लोग को ताड़न नहीं करने से कोई भी कार्य नहीं करवाया जा सकता। शूद्र माने यहाँ कोई जाति नहीं जिसकी स्वयं की कोई ज्ञान-बुद्धि, अक्ल नहीं उसको यहाँ शूद्र कहा गया है। ऐसे लोग की ताड़ना नहीं करने से उसके माथे में कुछ भी प्रवेश नहीं करता। पशु नारी को बिना ताड़न अनुशासन के रास्ते पर लाया नहीं जा सकता। पुनः जोतने वाले बैल को बिना ताड़न के उसे हल में नहीं जोता जा सकता है।

लोग यह कथा बिना समझे ही तुलसीदास पर दोषारोपण करते हैं कि स्त्री, शूद्र के प्रति अत्याचार किया है। मैंने कहा—तुम लोग जो तुलसीदास पर अत्याचार कर रहे हो उसका क्या होगा? आप लोग कहेंगे रामायण में राम चरित्र कहना ही कथा है। तब यह सब लिखने की क्या आवश्यकता थी। कहता हूँ, सुनो—महाकाव्य में लिखना होने से सब प्रकार के पात्रों पर ही लिखना होता है। नायक, खलनायक, नायिका-खलनायिका आदि। उनके मुख से जो कुछ कथन कहलवाया जाता है सब-कुछ में लेखक का अभिप्राय है यह मान लेना अनुचित है।

नाटक में खलनायक का चरित्र भी दिखाना पड़ता है। इसलिये उसके मुख से कभी-कभी विरुद्ध कथा भी कहनी पड़ती है। देखो, ढोल, गंवार आदि चौपाई कौन कह रहा है, या कौन कह सकता है? यह कथन न राम का है, न भरत का, न सीता का, न वशिष्ठ आदि का। ये बोल ही नहीं सकते। तब इस प्रकार क्यों कहा? देखो, यह चौपाई सागर की उक्ति है। सागर ने पथ अवरुद्ध करके रखा था। राम उसके पास पथ के लिये अनुनय करते-करते थक गये, तब भी पथ नहीं मिला सागर से। तब शेष

में राम ने सागर को सुखा देने का संकल्प किया, तभी भयभीत सागर ने राम के सामने आकर, हाथ जोड़कर यह कथन कहा था। इसलिये इस उक्ति के लिये तुलसीदासजी की समालोचना करने का कोई अर्थ नहीं है। क्योंकि समुद्र खलनायक की भूमिका में है समुद्र देव होते हुए भी खलनायक की भूमिका में है। जैसे कर्ण (सूर्यपुत्र) कुन्ती का पुत्र होते हुए भी महाभारत में खलनायक की भूमिका में है। रावण ऋषि पुत्र होते हुए भी खलनायक की भूमिका में है।

प्रसंग चल रहा है सती नारी और पशु नारी। सती नारी सीता की चर्चा पहले कर चुके हैं। अब पशु नारी की कथा कहता हूं। रावण की बहिन शूर्पणखा। रावण ने उसको पंचवटी (दण्डकारण्य) में स्वच्छंद विचरण करने को भेजा। वहाँ दो नये नवयुवक आये, उनसे काम-लिप्सा पूर्ण कर सकती है और चाहे तो नर मांस का स्वाद ले सकती है। शूर्पणखा दौड़कर दण्डकारण्य पहुँची।

प्रथम में तो दिव्य सुंदर षोडशी का रूप सजकर राम के पास गयी। राम ने कहा—हम लोग वनवासी व्रत-नियम के अंतर्गत जीवन यापन करते हैं। इसलिए हमारे ऊपर से दृष्टि हटा लो। परन्तु पशु-नारी क्या यह सब सुन सकती है। लगाम कसने पर वह खाने को दौड़ पड़ी। प्रथम में लक्ष्मण ने उसको दूर करने का प्रयास किया। जब देखा किसी तरह वह मानने को तैयार नहीं है। तब हार कर लक्ष्मण ने थोड़ी ताड़ना की। उसके नाक-कान काटकर उसको विदा कर दिया।

प्रश्न है कि नाक-कान क्यों काटे? क्योंकि नाक है सम्मान का स्थान। नाक ऊँचा माने सम्मान से रहना। 'नाक काटना' माने सम्मान की हानि होती है। 'नासिका कुम्चन' माने घृणा प्रदर्शन। लक्ष्मण ने उसका नाक काट लिया क्योंकि पशु नारी सम्मान की पात्र नहीं है। कान क्यों काटा? कान सत्कथा सुनने के लिये है जो सत्कथा नहीं सुनता है उसको थोड़ा-सा काट देने से भविष्य में उसको याद रहेगा। यह पशु नारी के लक्षण हैं यह ताड़न की अधिकारी है।

सती नारी जगत् पूज्या जगत्जननी सीता की चरणधूलि माथे पर लगाकर तुलसीदासजी कहते हैं—

जनकसुता जग जननि जानकी, अतिसय प्रिय करुनानिधान की।।
ताके जुग पद कमल मनावउँ, जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ।।

मानस 1/17/4

इस प्रकार सती नारी पूजा के योग्य और पशु-नारी ताड़न योग्य। जिसकी जो रुचि, जिसका जो अधिकार, तुम लोग चुन लो। तुलसीदास ने किसी के प्रति अन्याय नहीं किया। उन्होंने उभय चरित्र को आमने-सामने रखकर स्पष्ट मात्र कर दिया।

रामायण : राष्ट्रीय एकात्मता का महानतम काव्य

'रामायण भारत की आत्मा का महाकाव्य है', विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के इस कथन की व्याख्या निम्न प्रकार से हो सकती है—

1. रामायण समग्र भारत का प्रतिनिधि-ग्रन्थ है।

2. रामायण उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ को एकात्म सूत्र में बाँधने वाला ऐक्य मंत्र है।

3. रामायण भारतीय राष्ट्र की अंगीभूत अनेकानेक जातियों, उपजातियों को एक राष्ट्रात्मा में समन्वित करने वाला भावात्मक एकता का महानतम प्रयोग है।

4. रामायण में भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम जीवनमूल्य मुखर हो उठे हैं।

उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ का प्रथम ऐक्य मंत्र

रामायण काल से पूर्व विन्ध्याचल के नीचे के दक्षिणापथ में आर्यावर्त्त का विस्तार नहीं हुआ था। मनु भगवान् ने आर्यावर्त्त की सीमाएँ गिनाते हुए कहा है कि जिसके उत्तर में हिमालय व दक्षिण में विन्ध्याचल है, पूर्व एवं पश्चिम में समुद्र है वह आर्यावर्त्त है। पुराणों की गाथा के अनुसार विन्ध्याचल का ईर्ष्यावश हिमालय से ऊँचा उठने का प्रयास वस्तुतः विन्ध्यगिरि में वास करने वाली वनवासी जातियों का आर्यावर्त्त के विरुद्ध राक्षसप्रेरित विद्रोह था।

विन्ध्याचल तथा लंका के बीच का क्षेत्र अर्ध-सभ्य, वनवासी, वनचर जातियों का क्षेत्र (वानर देश, दण्डकवन, जनस्थान) आदि कहलाता था। इसी में कोल, किरात, भील, शबर, ऋक्ष, वानर, भल्लूक, गोंड, द्रविड़ आदि जातियाँ बसती थी।

लंका के राक्षस राजा रावण के दूत एवं नरभक्षी राक्षस सारे दक्षिण भारत में अपने आततायी प्रभाव का विस्तार कर फैले हुए थे। वे ऋषि-मुनियों को खा कर उनकी हड्डियों के पर्वताकार ढेर बना देते थे, वे बक्सर (वक्षसर) तक पहुँच कर विश्वामित्र का यज्ञ ध्वंस कर देते थे, वे भोले-भाले वनवासी वानरों को सताते थे। रावण ने किष्किन्धा (वर्तमान अनागोंदी, निकट हम्पी, जिला बिल्लारी, तुंगभद्रा

के तट पर, आन्ध्रप्रदेश) के वानर राजा बाली से मिल कर यह कूटनीतिक षड्यन्त्र रचा था कि वे दोनों (राक्षस एवं वानर) मिल कर मानव देश आर्यावर्त्त की धज्जियाँ उड़ा देंगे।

विन्ध्याचल के इसी लाक्षणिक विद्रोह को अपनी संस्कृति-सुधा से शान्त करने हेतु दक्षिणापथ की यात्रा पर निकलने वाले प्रथम सांस्कृतिक दूत महर्षि अगस्त्य थे जिन्होंने अपने अध्यात्म बल से विन्ध्याचल को (वनवासी जनगण को) शिष्य बनाया। उन्होंने भगवान् राम के महान् अभियान की पूर्व-भूमिका निर्माण कर दी थी।

वस्तुतः, भगवान् राम जब अपने कंधों पर दुष्ट दलन हेतु धनुष-बाण एवं सरलमना, वनवासी जनों का हृदय जीतने हेतु असीम वात्सल्य लेकर, स्वयं वनवासी बन कर दण्डकवन के कण्टक पथ पर उतरे तब राष्ट्रीय एकता का महानतम चमत्कार प्रकट होने लगा। वीर सावरकर के शब्दों में, 'जिस दिन भगवान् राम का विजयरथ लंका विजयोपरान्त पुनः भरत भूमि की ओर लौटा, वह दिन (विजयादशमी का दिन) भारतीय राष्ट्र का वास्तविक जन्मदिवस था। उस दिन उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ, आसेतु हिमाचल एक ही भारत राष्ट्र में अंगीभूत हो गये थे।' अतः भगवान् राम ही हमारे प्रथम एवं अन्यतम राष्ट्र-निर्माता हैं।

आर्य-अनार्य, नर-वानर जातियों की भावात्मक एकता का महानतम प्रयोग

भगवान् राम जब वनवासी बन कर वनवासी-जनों की कुटिया पर प्रेमदान हेतु पहुँचे तो वह मानव इतिहास का अद्वितीय समन्वय प्रयोग था। भगवान् राम का गुह को प्रेमदान, केवट से प्रेम ठिठोली, हनुमान्, सुग्रीव, अंगद पर वात्सल्य, बाली पर कृपा, जटायु पर करुणा, विभीषण को शरणागति, शबरी के जूठे बेरों की स्वीकृति आदि ऐसे अलौकिक आचार थे जो जन-हृदयों को स्नेह सूत्र से ऐसा बाँध देते हैं कि काल के थपेड़े भी उन्हें विलग नहीं कर सकते। रातू प्रखण्ड में एक नागपुरी गीत में वनवासी आज तक गाते हैं कि 'हमीं राम-लक्ष्मण के साथी हैं। हमीं उनकी सेना बने। हमीं ने रावण को मारा तथा हमीं सीता माता को लौटा कर लाए थे।'

रामगृह एवं रामगढ़

रांची (हजारीबाग) जिले की सीमा पर स्थित रामगढ़ राम की सेना का गढ़ था। सरगुजा जिले में, अम्बिकापुर से 32 मील दूर 3202 फुट ऊँची पहाड़ी पर रामगढ़ नामक स्थान राम की वनवास यात्रा का रामगृह नामक प्राचीन तीर्थ है। रामायण में राम की वनवास यात्रा में नर्मदा, ताप्ती, रेणु आदि विशाल नदियों को पार करने का उल्लेख नहीं है। इससे स्पष्ट है कि भगवान् राम गंगा पार करने के पश्चात् चित्रकूट से विन्ध्याचल, झारखण्ड होते हुए दण्डकवन में प्रविष्ट हुए होंगे।

रामरेखा धाम

राँची जिले के सिमडेगा अनुमण्डल में उड़ीसा एवं मध्यप्रदेश (जशपुर) को स्पर्श करता हुआ ऊँची पहाड़ी पर स्थित रामरेखा धाम तीर्थ राम-लक्ष्मण-सीता के चरण चिह्नों से सुशोभित है। वनवासी जनों ने भगवान् की स्तुति में गाया होगा।

धन्य भूमि वन पंथ पहारा।
जहँ-जहँ नाथ पाँव तुम धारा।।
धन्य नदी अरु निर्झर ठाँउं।
जहँ-जहँ नाथ दीन तुम पाँऊ।।
हम सब धन्य सहित परिवारा।
दीख नयन भरि दरस तुम्हारा।।

भक्तराज हनुमान् का जन्मस्थान आंजन

राँची जिले के गुमला अनुमण्डल में टोटो के निकट आंजन नामक ग्राम में आञ्जनेय श्रीहनुमान् का जन्म हुआ था। ऐसी मान्यता सारे छोटानागपुर में प्रचलित है। वहाँ आज भी अंजनी माता की मूर्ति है जो अपनी गोदी में बाल हनुमान् को लिए है।

वानर गोत्र

छोटानागपुर के उराँव जनों में लगभग 12 गोत्र ऐसे हैं जिनका अर्थ ही वानर है यथा—हनुमान, बजरंग, गड़ी, रेछी, बरई, बसोर, मैना, तिग्गा, बानरा, खंगार, पवन और वंशज।

उराँव : राम की वानर सेना

श्री शरतचन्द्र राय की प्रसिद्ध पुस्तक 'ओरांँवज आफ छोटानागपुर' की भूमिका में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय, इंग्लैण्ड के नृतत्व शास्त्र के अध्यक्ष डॉ. ए. सी. हेडन ने लिखा है, 'हमारे ग्रन्थ लेखक का विश्वास है कि उराँव वनवासी आर्यवीर रामचन्द्र की उस वानर सेना के अंग थे, जिसने उन्हें लंका के अनार्य राजा रावण को पराजित करने में सहायता की थी।' यह भी रोचक तथ्य है कि वनवासी बंधु अभी भी अपने पारम्परिक वेश में कुर्ते के पीछे कपड़े की एक लम्बी तुलुंग (पूंछ) लटकाए रहते हैं।

बिरसा भगवान् के प्रेरक : भगवान् राम

शताब्दी-पूजित बिरसा भगवान् को भगवान् राम के जीवन से महान् प्रेरणा मिली थी। बचपन में वे अपने चाचा से तथा अध्यापक आनन्द पंहार से रामायण

पढ़ते थे। जी. ई. एल. मिशन स्कूल, चाईबासा में जब पादरियों ने बिरसा का धर्म लूटने का षड्यन्त्र किया तो बिरसा दौड़ कर राँची आया तथा चुटिया के राम-मन्दिर में भगवान् राम की मूर्ति से प्रार्थना कर मूर्ति का धनुष-बाण उतारते हुए उसने कहा—'हे राम ! जिस प्रकार आपने अपने धनुष-बाण से राक्षसों का नाश किया उसी प्रकार मैं भी धनुष-बाण से देशधर्म के शत्रुओं का कलेजा चीर डालूँगा। बिरसा शताब्दी वर्ष में बिरसा की रामभक्ति वनवासी-जनों के लिए महान् प्रेरणा किंवा पथप्रदर्शक है।

पादरी बुल्के की राष्ट्रघातक भ्रान्ति

पादरी बुल्के ने अपने शोध प्रबन्ध 'रामकथा, उत्पत्ति और विकास' के पृष्ठ 123 एवं 520 पर बार-बार लिखा है, 'उराँव वनवासी रावण की सन्तान है।' वानर गोत्रीय, हनुमान् व सुग्रीव के वंशज, रामभक्त वनवासी बन्धुओं को रावण की सन्तान कहना सत्य का घोर तिरस्कार है। इसी भ्रान्ति से भ्रमित होकर डॉ. संकलिया ने भी भ्रान्ति मूलक लेख किया है—'छोटानागपुर ही रामायण युग की लंका थी।' छोटानागपुर के विन्ध्य पठार को समुद्र स्थित लंकाद्वीप मान लेना कितना हास्यास्पद लगता है।

राजनीतिक द्वेष से प्रेरित द्रविड़ कड़गम की रावण लीला भी ऐसी ही राष्ट्रघातक प्रवृत्ति है।

राँची की रामनवमी शोभायात्रा : संसार का विशालतम झंडा-जुलूस

मैंने संसार के किसी देश में इतना बड़ा झण्डा जुलूस नहीं देखा जैसा रामनवमी पर राँची में निकलता है। राम के जन्म पर हनुमान् का झण्डे फहराने के पीछे भी वही प्रेरणा है, जिसने भगवान् राम एवं भक्तराज हनुमान् को एक कर दिया था, जिसने आर्य-अनार्य, नगरवासी-ग्रामवासी-वनवासी सभी को एक ही भावात्मक एकता के सूत्र में बाँध कर एकात्म बना दिया था। यही रामायण की सब से बड़ी देन है। जहाँ श्रीराम फहराते हुए बजरंगी ध्वजों से पूजित होते हैं, वहाँ वे राष्ट्रपुरुष राम वनवासी बन्धुओं के हृदय में लहराते हुए राम प्रेम एवं राष्ट्र-प्रेम से शतशः आनन्दित होंगे।'

वनवासियों के प्रेम एवं गौरव का महाकाव्य : रामायण

रामायण महाकाव्य वास्तव में वनवासियों के प्रेम एवं गौरव का महाकाव्य है। रामायण के इतिहास अथवा भगवान् राम के चरित्र के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रसंग— चौदह वर्ष वनवास-काल-के वनवासी प्रसंग ही रहे हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कोई भी प्रसंग, इतने घटना-प्रधान एवं राष्ट्रीय इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं रहे जिनका, इस महाकाव्य में या किसी अन्य पुराण-इतिहास में वर्णन किया जा सकता।

रामायण का बालकाण्ड तो वनवास की पूर्व-भूमिका के समान है। अयोध्याकाण्ड वनवास का संकल्प है। शेष सारे काण्ड, वनवास-काल में श्रीराम के प्रति वनवासियों के प्रेम एवं श्रीराम की वनवासियों पर कृपा से परिपूर्ण वाल्मीकि रामायण का उत्तरकाण्ड, पुनः सीता के वनवास के करुण अश्रुओं से भीगा हुआ है और तुलसी का उत्तरकाण्ड, भक्ति-रस के दार्शनिक विवेचन से आप्लावित है, जिसमें घटनाप्रधान कथानक प्रायः कोई नहीं है। यदि रामायण से वनवासी-प्रसंग निकाल दिये जाएं तो रामायण का मूल्य कुछ नहीं बचता।

चाहे राम ने सैकड़ों वर्षों तक राज्य किया हो अथवा देश ने कई सहस्राब्दियों तक रामराज्य का सुख भोगा हो, किन्तु राम के समकालीन आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि को राम के चौदह वर्ष के वनवास के अतिरिक्त और कोई घटना इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं प्रतीत हुई जिसे वे, अपनी अमर लेखनी के स्पर्श से, चिरस्मरणीय बना पाते। इसलिये रामायण, मात्र राम के चरित्र का ही अयन (धाम) न होकर, भारतीय राष्ट्र के सांस्कृतिक समन्वय उत्तरापथ और दक्षिणापथ के एकीकरण, नगरवासी, ग्रामवासी और वनवासी समाज के भावात्मक ऐक्य, जन-हृदयों के स्नेह-सूत्रीकरण का पावन धाम है। दूसरे शब्दों में रामायण, भारत का सांस्कृतिक स्नेहायन ही है।

वनवासी क्षेत्र : दक्षिणी बिहार

राँची नगर जो आज दक्षिण बिहार का सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वप्रसिद्ध महानगर बन

गया है, वह कुछ काल पूर्व, न नगर था न उपनगर, न महानगर, न ही छोटानागपुर प्रमण्डल का केन्द्र। 74 वर्ष पूर्व तक राँची जिला (मण्डल) तक भी नहीं था। तब राँची से पचास मील पश्चिम स्थित लोहरदगा ही मण्डल का केन्द्र था तथा राँची एक छोटा सा नगण्य वन्य-ग्राम था। तब के राँची क्षेत्र का चित्र यदि वर्तमान नगर देख ले तो प्राचीन तथा नवीन नगर एक-दूसरे को पहचान न पायेंगे। तब आज के सबसे अधिक चहल-पहल वाले प्रशस्त मुख्य पथ पर बीहड़ जंगल स्थित थे तथा शहीद-चौक तक कभी-कभी बाघ आदि हिंस्र-पशु भी घूमते रहते थे। इन हिंस्र पशुओं से बचने के लिए यहाँ के वनवासी, अपने हाथ में छड़ी धारण करते थे, जिसे मुंडारी भाषा में 'अरांची' कहा जाता है। राँची नाम की व्युत्पत्ति सम्भवतः उसी 'अराँची' शब्द से है।

छोटानागपुर

झारखण्ड—जिस छोटानागपुर पठार का केन्द्र आज राँची नगर है, उसका छोटानागपुर नाम राँची स्टेशन के सामने वाले गांव चुटिया के साथ संयुक्त होकर चुटिया-नागपुर कहलाता था। जेम्स रेनल ने सन् 1792 में अपने भारत के मानचित्र में इसे चुटिया नागपुर लिखा तथा 1812 में ब्रिटिश-संसद ने इसे अधिकृत रूप में छोटानागपुर नाम दे दिया। नागपुर (महाराष्ट्र) का भोंसला-राज्य बहुत बड़ा एवं शक्तिशाली था, उसे बड़ा नागपुर या मराठा नागपुर कहा जाता था तथा राँची-कमिश्नरी के पाँच जिलों तथा संथाल-परगना के क्षेत्र को छोटानागपुर कहा जाता था।

इससे पूर्व आर्यों एवं मुगलों के राजत्व-काल में इसे झारखण्ड नाम से पुकारा जाता था। यह नाम संस्कृत का 'झारखण्डः' अथवा 'झाड़ः खण्डः' हो सकता है। 'झाडः' अथवा 'झाड़ः' का अर्थ है, वृक्षों का झुरमुट, जंगल, लता, कुंज आदि।

वैदिक काल में आर्यावर्त्त

वैदिक काल में आर्यावर्त्त की सीमाएँ हिमालय से विन्ध्याचल तक थी। मनु भगवान् के शब्दों में—

आसमुद्रात्तु वै पूर्वात् आसमुद्रात्तु पश्चिमात्।
हिमवान विन्ध्योर्मध्ये, आर्यावर्त्तः प्रकीर्तितः।।

अर्थात् जिसके पूर्व में भी समुद्र है, पश्चिम में भी समुद्र है, उत्तर में हिमालय है तथा दक्षिण में विन्ध्याचल है वही आर्यावर्त्त है।

लैमुरिया महाद्वीप

संसार-भर के भूगर्भ-शास्त्री एकमत हैं कि अति प्राचीन काल (वैदिक काल)

में विन्ध्याचल के नीचे का त्रिभुजाकार दक्षिण का पठार भारत की मुख्य भूमि से जुड़ा हुआ नहीं था; वह लैमूरिया नामक एक महाद्वीप का अंग था जो अफ्रीका महाद्वीप का ही प्रागैतिहासिक रूप था। लैमूर शब्द संस्कृत के लांगूल शब्द से ही निकला है। जिसका अर्थ दुम या पूँछ होता है। इसलिए लांगुली, वानर को कहा जाता है। मनु के जल-प्लावन के पश्चात् ही विन्ध्याचल के नीचे का पठार, लैमूरिया द्वीप से पृथक् होकर ही, भारत प्रायद्वीप के साथ आकर मिल गया।

वानर-देश

संस्कृत में लांगुली का अर्थ वानर अथवा लंगूर होता ही है। हनुमान् को भी लांगुली कहते हैं। वानर शब्द का अर्थ अनिवार्यतः बन्दर नामक पशु ही नहीं। इसका एक अर्थ है—ऐसा नर जिसके नर अथवा अनर होने में सन्देह हो 'नरो वा अनरो वा' अर्थात् अर्द्धविकसित-मानव। वानर का दूसरा अर्थ है वनवासी अथवा वनचारी। जैसे नगर में रहने वाले को नागर कहा जाता है उसी प्रकार, वन में रहने वाले को वानर कहा जाता है।

रामायण-काल में जब दक्षिण भारत का त्रिकोण पठार उत्तर भारत के साथ सट चुका था तो एक गम्भीर सांस्कृतिक संकट उत्पन्न हुआ। लंका का आततायी सम्राट् रावण, इन भोले-भाले वनवासी वानरों को सताता था तथा आर्यावर्त्त के विरुद्ध विद्रोह के लिए भड़काता था। इसी उद्देश्य से रावण ने बाली से युद्ध-समझौता कर रखा था।

महर्षि अगस्त्य का सांस्कृतिक अभियान

रावण के अत्याचार से संत्रस्त वनवासी-जनों का आक्रोश ही पुराणों में विन्ध्याचल के विद्रोह के रूप में चित्रित किया गया है। महर्षि अगस्त्य हिमालय की अपनी तपस्या छोड़ कर विन्ध्याचल की तलहटी में आए तथा उन्होंने वनवासी-जनों को भगवान् शिव की अर्चना की दीक्षा दी। वही शिव-पूजा की परम्परा, छोटानागपुर तथा समस्त दक्षिणी पठार के वनवासी-जनों में मण्डा-पूजा (शिव-मण्डप-पूजा) के रूप में आज तक प्रचलित है जिसमें वनवासी दस दिन तक उपवास करके ग्यारहवें दिन दहकते हुए अंगारों की लगभग 30 फुट लम्बी पट्टी पर चल कर अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं। महर्षि अगस्त्य ने ही वनवासी बन्धुओं को भगवान् राम के आगमन की सूचना दी थी तथा वे पंचवटी (नासिक), महाराष्ट्र में राम के दक्षिण-आगमन की प्रतीक्षा करते रहे।

भगवान् राम ने पंचवटी पहुँच कर नरभक्षी राक्षसों द्वारा खाए गए ऋषि-मुनियों की अस्थियों के समूह को जब देखा तो उनके नेत्रों से अश्रुजल छलक गया और उन्होंने भुजा उठा कर धरती को निशाचर-विहीन करने की प्रतिज्ञा की।

पुनि रघुराय चले बन आगे। मुनिवर वृन्द बिपुल सँग लागे।।
अस्थि समूह देखि रघुराया। पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया।।
जानतहू पूछिअ कस स्वामी। समदरसी तुम्ह अन्तरयामी।।
निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुनाथ नयन जल छाए।।

दोहा—**निसिचर हीन करउँ मही, भुज उठाइ पन कीन्ह।**
सकल मुनिन्ह के आस्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह।।

राक्षस आर्य ऋषियों एवं भोले-भाले वनवासियों, दोनों को सताने वाले, दोनों के समान रूप से शत्रु थे। अतः भगवान् राम की प्रतिज्ञा, नर एवं वानर दोनों के लिए कल्याणकारी थी।

विन्ध्याचल के नीचे वाले दक्षिणी पठार में बसने वाली अनेक जातियों, उपजातियों को सामूहिक रूप से वनवासी (वानर) नाम से पुकारा जाता था। वानर शब्द का यौगिक अर्थ वनवासी ही है 'वनेषु बसन्ति इति वानराः' इसी क्षेत्र में कर्कखण्ड, झारखण्ड, व्याघ्रसर (बक्सर), आरण्य (आरा), सारण्य (सारण), चम्पारण्य (चम्पारण), दण्डकारण्य (जनस्थान) इत्यादि क्षेत्र, सामूहिक रूप से वानर देश कहलाते थे, जिनमें भोली-भाली, अर्ध-विकसित वनवासी-जातियाँ बसती थी जो लंका के असुर-शासन द्वारा ग्रस्त एवं प्रवंचित होती थी।

भगवान् राम के वनवास में शृंगवेरपुर पहुँचने पर निषादराज गुह ने राम-लक्ष्मण-सीता का सरल सहज स्नेह से बड़ा मधुर स्वागत किया—

यह सुधि गुहँ निषाद जब पाई। मुदित लिए प्रिय बन्धु बोलाई।।
लिय फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हियँ हरषु अपारा।।

भगवान् के दर्शन कर वनवासी नर-नारी बड़े आनन्दित हुए किन्तु उनके वनवास के सम्भावित कष्टों का विचार कर बड़े चिन्तित भी हुए—

राम लखन सिय रूप निहारी। कहहिं सप्रेम ग्राम नर-नारी।।
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठए बन बालक ऐसे।।
एक कहहिं भल भूपति कीन्हा। लोयन लाहु हमहि विधि दीन्हा।।
तब निषादपति उर अनुमाना। तरु सिंसुपा मनोहर जाना।।

कई वनवासी यह कहने लगे कि राजा ने अच्छा ही किया कि इसी बहाने, हमें भी ब्रह्मा ने नेत्रों द्वारा भगवान् के दर्शन का लाभ दे दिया। इसके पश्चात् निषादराज ने भगवान् के वनवास की प्रतिज्ञा का विचार कर एक अशोक-वृक्ष को उनके ठहरने के लिए उचित स्थान बताया। सारी रात्रि-भर निषादराज धनुष-बाण लेकर लक्ष्मण के साथ भगवान् राम एवं भगवती सीता की सुरक्षा हेतु पहरा देता रहा—

गुहँ बोलाइ पाहरू प्रतीती। ठाँव ठाँव राखे अति प्रीति।।

आपु लखन पहिं बैठेउ जाई। कटि भाथी सर चाप चढ़ाई।।

वनवासियों द्वारा भगवान् के दर्शन का सुख पाद्यं-अर्घ्यं-आचमनीयम्—

'गाँव निकट जन निकसहिं जाई। देखहिं दरसु नारि नर धाई।' ।। अ. 114

दोहा—**एक देखि बट छाहँ भलि, डारि मृदुल तृन पात** ।। अ. 114

भगवान् राम, सीता एवं लक्ष्मण के आगमन हेतु बनवासी जल कलस ले आए।

एक कलस भरि आनहिं पानी। अँचइअ जान कहहिं मृदु बानी।। अ. 115

कोल किरात वेष सब आये। रचे परन तृन सदन सुहाए।। अ. 133

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु भव निधि घर आई।। अ. 135

कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना।।

करहिं जोहारु भेंट धरि आगे। प्रभुहिं बिलोकहिं अति अनुरागे।। अ. 135

प्रभुहिं जोहारि बहोरि बहोरी। बचन विनीत कहहिं कर जोरी।। अ. 135

वनवासियों से प्रेमालाप

भगवान् राम भी वनवासियों पर प्रेम-वर्षण करते हुए मधुर वार्तालाप करते हैं।

राम सकल बनचर तब तोषे। कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे।। अ. 137

ग्राम्य नारियाँ भी अपने व्यवहार की भूल-चूक के लिए सीता-माता से क्षमा मांगती हैं।

स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी।

बिलगुन मानब जानि गवाँरी।। अ. 116

शबरी के जूठे बेरों में अमृत-रस

भगवान् द्वारा बनवासी भीलनी का आतिथ्य स्वीकार करना सच्ची मानवता का सर्वश्रेष्ठ प्रसंग है।

स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई।।

अरण्य/34

प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा।।

सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुंदर आसन बैठारे।।

अरण्य/34

दोहा—**कन्द मूल फल सुरस अति दिए राम कहँ आनि।**
प्रेम सहित प्रभु खाइहै बारंबार बखानि।। अरण्य/34

सीता-माता की वनवासियों के प्रति आत्मीयता

वनवास हेतु निकलने के अवसर पर भगवान् राम ने सीताजी को वन के कष्टों का वर्णन करते हुए, वन-गमन से रोकना चाहा—

नर अहार रजनीचर चरहीं। कपट बेस बिधि कोटिक करहीं।।
लागइ अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी।। अ. 63

यह सुनकर सीताजी वनवासी-जनों के प्रति आत्मीयता दर्शाते हुए उत्तर देती हैं—

बन देबीं बन देव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा।। अ. 66
कन्द मूल फल अमिअ अहारू। अवध सौध सत सरिस पहारू।। अ. 66

उदार हृदय के वनदेवी और वनदेवता ही सास-श्वसुर के समान मेरी सार-सम्भाल करेंगे।

कन्द, मूल और फल ही अमृत के समान आहार होंगे और पहाड़ ही अयोध्या के सैकड़ों राजमहलों के समान होंगे।

कोल किरात कुरंग बिहंगा। मोहि सब सुखद प्राणपति संगा।।

केवट द्वारा भगवान् राम का पाद-प्रक्षालन

वनवासी केवट द्वारा अपनी नौका में भगवान् राम को गंगा पार कराते समय उनके पाद-प्रक्षालन का आग्रह वनवासी जीवन-परम्परा की बड़ी मधुर झाँकी प्रस्तुत करता है।

केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि लेइ आवा।।
अति आनंद उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा।। अयो. 101

भगवान् राम जब केवट को उसकी गंगा पार उतारने की सेवा के लिए कुछ मजदूरी देना चाहते थे तथा सीताजी अपनी मणि-मुद्रिका उतार कर देने लगी तो भक्तप्राण केवट बोला—

नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुःख दारिद दावा।
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी।
अ. 102

वनवासी (वानर) जनगण का स्नेह-सूत्रीकरण

भगवान् राम का महानतम कार्य था भारत की विन्ध्यगिरि से नीचे बसने वाली वनवासी जातियों (वानर, ऋक्ष, मल्लूक, निषाद, भील, शबर आदि) को रावण के आसुरी-प्रभाव से मुक्त कर भारतीय समाज के साथ एकात्म करना। उन्हीं में से उन्होंने हनुमान् जैसे वीर राष्ट्र-भक्त निर्माण किए, जिनको समूची आर्य जाति आज तक श्रद्धा से शीश नवाती है।

विद्यावान गुनी अति चातुर।
राम काज करिबे को आतुर।।
प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया।
राम लखन सीता मन बसिया।।

राँची जिले में गुमला के निकट, टोटो से 10 मील भीतर जंगल में स्थित आंजन ग्राम है, जो हनुमान्जी का जन्मस्थान माना जाता है। यहाँ अभी भी अंजनी माता की गोदी में बालक हनुमान् को लिए हुए मूर्ति है।

वनवासियों में वानर-गोत्र

छोटानागपुर के वनवासी अभी तक वानर के समान लांगूल लगाकर नृत्य करते हैं। इसे यहाँ की स्थानीय भाषा में तुलुंग कहा जाता है। वनवासियों के अनेक गोत्र हनुमान् तथा वानर नाम सूचक हैं जैसे पवन, वंशज, तिग्गा, हनुमान्, बजरंग, गड़ी, वानरा, बरई, बसोर, मैना, खंगार आदि। सभी का अर्थ वानर ही है। इसी प्रकार सिंहभूमि की भुंइयाँ जाति हनुमान्-वंशज होने का दावा करती है। वे अपने आपको पवन-वंशज ही पुकारते हैं। द्रविड़ वनवासियों में भी हनुमान् नाम प्रचलित है।

राँची एवं समग्र छोटानागपुर का रामनवमी-पर्व पर आयोजित झंडा-जुलूस, सारे विश्व में अद्वितीय है। भारतीय नृतत्त्व-शास्त्र के जनक श्रीसरतचन्दराम अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'उराँव ऑफ छोटानागपुर' में लिखते हैं कि उरांव, रामायण-महाकाव्य में वर्णित वानर ही हैं। भगवान् राम ने इन्हीं वनवासियों को अपना कर, इन्हीं की सेना सजा कर लंकाधिपति रावण को धूलि-धूसरित किया था।

पादरी बुल्के समस्त इतिहास-परम्परा की विडम्बना करते हुए अपने शोध-प्रबन्ध 'राम-कथा : उत्पत्ति और विकास' के 123वें पृष्ठ पर लिखते हैं कि 'छोटानागपुर के लोग भी यह मानते हैं कि रावण से ही उनकी जाति की उत्पत्ति हुई तथा इसी कारण उन्हें उराँव नाम मिला, इसी प्रकार पादरी ग्रिग्नाई ने भी यही मत स्थापित किया था कि छोटानागपुर के वनवासी इतिहास-पुराण में वर्णित राक्षस ही हैं। विदेशी पादरी ग्रिग्नाई एवं बुल्के का षड्यन्त्र यह है कि भारत के राम-भक्त

वनवासी समाज को राम भक्ति की धारा से विलग कर उन्हें राम-द्वेषी चित्रित कर, ईसाई मत जैसे विदेशी धर्म का गुलाम बनाया जाय। अतः समस्त भारत हितैषी संस्थानों एवं नागरिकों को भारतीय समाज की हत्या के उद्देश्य से चलने वाली इस साहित्यिक धोखा-धड़ी का प्रबल विरोध करना चाहिए।

स्वयं वनवासी जनों में प्रचलित सर्वाधिक 'महत्त्वपूर्ण' 'ददाकटा' नामक कथा में राक्षसों के दाँत तोड़ने की प्रेरणा है। उसमें राम को दार्मेश (ईश्वर) या पिता, सीता को पार्वती माता, हनुमान् को चाचा कह कर सम्बोधित किया जाता है। जिन वनवासी बन्धुओं ने वीर-शिरोमणि हनुमान् के नेतृत्व में राक्षसों के दांत तोड़े तथा पापी की स्वर्ण लंका को जलाकर धूल में मिला दिया—उन्हें रावण का वंशज कहना सरासर झूठ है। आज भी वनवासी बंधुओं को चाहिए कि बुल्के जैसे पादरियों के झूठ-पाखंड के दांत तोड़ दें तथा रोमन-कैथोलिक-मिशन की भारतद्वेषी स्वर्ण-लंका को फूँककर भस्मीभूत कर दें।

रामहि केवल प्रेम पियरा,
जानि सके तो जाननिहारा।
जाति पांति पूछे नहीं कोई,
हरि को भजे सो हरि का होई॥

रामानन्दजी

गोस्वामी तुलसीदास हमारी म्रियमाण जाति को मृत्युंजय बनाने वाले अमर कवि हैं।

—प्रो. ओबराय

सप्तपर्ण पर्णसि

भाषा विचारों का वाहन है। मानव के भावरूपी राजकुमार भाषा के सुनहले रथ पर बैठ कर शब्दों एवं अर्थों के अलंकारों से सुसज्जित होकर विशाल विचारलोक में स्वच्छन्द विचरण करते हैं। आवेग-संवेग प्राणीमात्र के मन में उठते रहते हैं, किन्तु विचार-शक्ति मात्र मानव के पास ही है, जिसके द्वारा वह उद्दाम संवेगों को कुछ निश्चित भावनाओं में परिवर्तित कर सकता है। भावों एवं विचारों को एक निश्चित विषय की परिधि में क्रमानुसार बाँधना, भाषा एवं भाव दोनों का अनूठा खेल है।

मेरे विद्वान् मित्र डा. रामनरेश मिश्र 'हंस' हिन्दी एवं संस्कृत के लब्धप्रतिष्ठ-विद्वान् हैं। उन्होंने संस्कृत के महानतम वैयाकरण पाणिनि पर एक मौलिक शोध-प्रबन्ध लिख कर डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की है। अतः उनकी निबन्ध कला के विषय में कोई दो मत नहीं हो सकते।

डॉ. 'हंस' जी ने स्वयं विद्वान् होते हुए मेरे जैसे व्यक्ति से अपने नये निबन्ध-संग्रह 'सप्तपर्ण' की प्रस्तावना लिखने का प्रेमपूर्वक आग्रह किया है। उनके निबन्धों में निबद्ध भाव एवं भाषा का आनन्द लेने के लिए ही मैंने उनका यह आग्रह स्वीकार कर लिया। निबन्धों में मुझे यह जान कर सुखद आश्चर्य हुआ कि तुलसी मानस चतुःशती के उपलक्ष्य में जो मेरे तीन प्रवचन गोपालगंज के पालिका प्रशाल तथा स्नातक महाविद्यालय में, उन्होंने आयोजित करवाये थे उनमें मेरे द्वारा प्रस्तुत किये गये कुछ शोधपूर्ण तथ्यों एवं उद्धरणों को भी उन्होंने अपने निबन्धों में सुन्दरता से समाविष्ट कर लिया है। यह इनकी गुणग्राहकता का ही प्रमाण है। श्री 'हंस' जी सचमुच हंस ही हैं जो सुन्दर विचारों के मुक्ताकण जहाँ कहीं से मिलें, चुगते रहते हैं। उन्होंने अपने गोपालगंज निवास का नाम भी 'मानसरोवर' रखा है जो सार्थक ही है।

प्रो. 'हंस' जी ने 'मानस की कला' नामक निबन्ध में जहाँ और अनेक तथ्य एवं भावों को लिपिबद्ध किया, वहाँ एक वाक्य मेरे हृदय को काँटे के समान चुभन दे रहा है। उन्होंने लिखा, 'फादर बुल्के रामकथा की उत्पत्ति और विकास खोजते-

खोजते तुलसी के अनुचर बन बैठे।' वास्तव में यदि प्रो. 'हंस' ये लिखते कि पादरी एटकिन्स (Atkins) रामकथा की आलोचना की तैयारी करते-करते तुलसी के भक्त बन बैठे, तो वह अक्षरशः सत्य होता। किन्तु पादरी बुल्के रामकथा उत्पत्ति और विकास के छद्म रूप के नीचे उन सब आदर्शों के द्वेषी एवं हंता बने हुए हैं, जिनके लिए तुलसी एवं उनका मानस विश्व में पूजित है। बुल्के महोदय, बार-बार दोहराते हैं, 'मैं राम का भक्त नहीं तुलसी का भक्त हूँ।' यह विसंगत बात कोई ऐसा छद्म रूपधारी व्यक्ति ही कह सकता है जिसकी कथनी और करनी में आकाश-पाताल का अंतर हो। बुल्के निश्चय ही रामभक्त तो हैं ही नहीं क्योंकि वे बेल्जियम से राम के देश में रामभक्तों को रामभक्ति से च्युत करके ईसा भक्त बनाने के लिए ही आये थे, किन्तु राम को माने बिना कोई तुलसी भक्त होने का दम्भ करे तो, सारी सृष्टि के साथ स्वयं तुलसीदास को भी उसके कथन पर बहुत बड़ा आश्चर्य होगा। जबकि तुलसीदास के रोम-रोम में राम ही समाये हैं तथा तुलसी साहित्य की पंक्ति-पंक्ति राम रस में पगी हुई है, तब राम को अस्वीकार करके कोई तुलसीभक्त होने का दम्भ करे तो यह वैसा ही होगा जैसे कोई हमारे पिता, गुरु या इष्ट देवता का तिरस्कार अथवा हनन करके हमसे मित्रता का हाथ मिलाने के लिए आवे। पादरी बुल्के अपने पूरे शोध-प्रबन्ध का निष्कर्ष यही निकालते हैं कि राम वस्तुतः हुए ही नहीं, वरन् वे भिन्न-भिन्न रामकथाओं के कल्पित नायक मात्र हैं। श्री बुल्के के इस निष्कर्ष से रामभक्त तुलसीदास की आत्मा को कितना भीषण क्लेश होता होगा यह रामभक्त ही समझ सकता है?

भगवान् राम का महानतम कार्य था भारत की विन्ध्यगिरि से नीचे बसने वाली वनवासी जातियों (वानर, रीछ, मल्लूक, निषाद, भील, शबर आदि) को रावण के आसुरी प्रभाव से मुक्त कर भारतीय समाज के साथ एकात्म करना। उन्हीं में से उन्होंने हनुमान् जैसे वीर राष्ट्रभक्त निर्माण किये जिनको समूची आर्य जाति आज तक श्रद्धा से शीश नवाती है। राँची जिला में स्थित आंजन ग्राम के निकट टोटो (गुमला) आज तक परम्परागत आस्था के आधार पर हनुमान् (आञ्जनेय) के जन्मस्थान के रूप में प्रतिष्ठित है। किन्तु पादरी बुल्के समस्त इतिहास की विडम्बना करते हुए अपने शोध-प्रबन्ध 'रामकथा उत्पत्ति और विकास' के पृष्ठ 123 पर लिखते हैं कि 'छोटानागपुर के उराँव लोग भी यह मानते हैं कि रावण से ही उनकी जाति की उत्पत्ति हुई, तथा इसी कारण उन्हें उराँव नाम मिला।' इस प्रकार की तथ्यविहीन समाजद्वेषी बातों को प्रचारित कर वे भारत के वनवासी समाज को रामभक्ति की धारा से विलग कर, उन्हें रामद्वेषी चित्रित कर, ईसाई बनाने के प्रयास में लगे हुए थे। पादरी बुल्के का शोध प्रबन्ध नाम से तो 'रामकथा-उत्पत्ति और विकास' कहा जाता है किन्तु उसका उद्देश्य रामकथा, विपत्ति और

विनाश है। सम्भवतः डॉ. 'हंस' जी को इन सब तथ्यों का ज्ञान नहीं होगा, किन्तु राँची में अनेक बार मंचों पर मेरे द्वारा भी बुल्के के पाखण्ड का खण्डन हो चुका है तथा अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन, उज्जैन में भी मैंने अपने शोध पत्र में इस साहित्यिक धोखा-धड़ी का भंडाफोड़ किया है।

अपने निबन्ध 'आषाढ़स्य प्रथमे दिवसे, में डॉ. 'हंस' जी महाकवि कालिदास के मेघदूत की अमर पंक्ति के शीर्षक से कुछ नवीन उद्भावनाएँ प्रस्तुत करते हैं।

'आठवें दशक की हिन्दी कविता' एक शोधपूर्ण लेख है। 'घुच्च अंधेराः टहटह उजाला' में भादों की घोर काली रात्रि में ज्योति स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण के आविर्भाव पर्व के अत्यन्त मंगलकारी प्रकाश का दर्शन है। आषाढ़ एवं भाद्रपद, वर्षा के इन रस भीगे मासों की चर्चा के बहाने डॉ. 'हंस' जी ने सूर्यदर्शन एवं वर्षा मंगल की बड़ी सुन्दर दार्शनिक व्याख्याएँ भी प्रस्तुत की हैं। पाँचों तत्त्वों का निरूपण, सृष्टि के प्रथम स्फोट में ॐ से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से भूमि आदि का सृष्टि-क्रम, यह सब दार्शनिक गुत्थियाँ डॉ. 'हंस' जी ने साहित्यिक निबन्धों के भीतर खोल कर रख दी हैं। यह उनके गम्भीर अध्ययन एवं दार्शनिक चिन्तन का ही सुफल है।

डॉ. 'हंस' जी के निबन्ध, साहित्य के रंगमंच पर दर्शन की तत्त्व लीला प्रस्तुत करते हुए प्रतीत होते हैं। अतः वे विचारवान् एवं विद्वान् पाठकों के लिए बुद्धिरंजन करने वाले अधिक हैं तथा जनसाधारण का मनोरंजन करने वाले कम।

प्रकृति के पंच-महाभूतों के साहित्यिक एवं दार्शनिक रूपक भी भारतीय पुराण-विद्या एवं साहित्य-शास्त्र की अनूठी माधुर्य छटा लिए हुए हैं।

मैं डॉ. 'हंस' जी को हार्दिक बधाई देता हूँ कि उन्होंने अपनी लेखनी से इतने उच्च कोटि के विचारगर्भित निबन्धों की सर्जना की तथा मैं उन्हें हार्दिक साधुवाद देता हूँ कि उन्होंने मुझे उक्त साहित्य-दर्शन समन्वित निबन्धों को पढ़ने का सुअवसर प्रदान किया।

पादरी बुल्के का वनवासी समाज के प्रति घोर तिरस्कार

आपके सम्मानित साप्ताहिक के गत 17 फरवरी 1974 के अंक में पादरी कामिल बुल्के के विरुद्ध वनवासी-कल्याण संस्थान सम्मेलन में पारित प्रस्ताव का प्रमुखता से प्रकाशन देख कर कुछ विचारवान् लोगों का ध्यान पादरी बुल्के के ग्रन्थ—रामकथा : उत्पत्ति और विकास—में वर्णित तथ्यहीन स्थापनाओं की ओर आकृष्ट हुआ है।

यह बहुत रोचक व आश्चर्य का विषय है कि आपके पत्र के 3 मार्च, 74 के अंक में प्रो. रामचन्द्र वर्मा ने 'पादरी बुल्के पर अनुचित प्रहार' शीर्षक से अपने 'सम्पादक के नाम पत्र' में इस बात पर घोर आपत्ति की है कि आपने उक्त समाचार को अपने पत्र में मोटे अक्षरों में प्रमुखता से क्यों छापा है?

उन्हें इस बात पर भी आपत्ति है कि विश्व हिन्दू परिषद् ने सन् 1950 में प्रकाशित, पादरी बुल्के की चर्चित पुस्तक की पिछले 24 वर्षों में आलोचना क्यों नहीं की? वास्तव में यह कोई आपत्ति का पुष्ट कारण नहीं हो सकता। आजतक लोग हजारों वर्ष पूर्व लिखित पाणिनि और पतंजलि तक के ग्रन्थों की आलोचना करते रहते हैं। स्वयं पादरी बुल्के के कॉलेज में ही अनेक वर्षों से पढ़ाते हुए क्या श्री वर्मा ने श्री बुल्के के कथित शोध-प्रबन्ध को आद्योपान्त पढ़ा और उसके किसी अंश पर विवेकपूर्ण आलोचना के लिए लेखनी उठायी? विश्व हिन्दू परिषद् की तो स्थापना ही 1966 में हुई तथा छोटानागपुर में उसका प्रथम वनवासी कल्याण संस्थान सम्मेलन फरवरी 1974 में ही सम्पन्न हुआ। अतः उसमें इस प्रस्ताव का आना सब प्रकार से उचित ही था। उक्त प्रस्ताव जगद्गुरु शंकराचार्यजी की उपस्थिति में सहस्रों-नागरिकों की महती सभा में, सर्वसम्मति से पारित हुआ।

अपने उक्त पत्र में हमारे मित्र वर्माजी एवं 10 मार्च के अंक में सम्पादक के नाम पत्र लिखने वाली बहिन डॉ. वीना सक्सेना—दोनों उदारता या अज्ञान-वशात्

पादरी बुल्के की वकालत करते हुए लिखते हैं कि श्री बुल्के ने उराँव वनवासियों को अपनी ओर से 'रावण की सन्तान' न बता कर निम्नलिखित तीन लेखकों की स्थापनाओं का आधार लिया है—1. पी. डेहों, 2. आर. बी. रसेल, 3. शरच्चन्द्र राय। यदि यह बात अक्षरशः सत्य होती तो भी एक शोधकर्ता विद्वान् को 'अंधेन नीयमानाः यथान्धाः' (अन्धा अन्धेरे में अन्धों को ले जा रहा है) की नीति न अपनाकर प्रत्येक तथ्य को इतिहास, परम्परा तथा अपने विवेक के निष्कर्ष पर भी परखना चाहिए। इस दृष्टि से श्री बुल्के उपनिषद् में वर्णित उक्त सूक्ति के 'अन्धे' ही प्रमाणित होते हैं।

किन्तु श्री बुल्के ने उक्त तीनों ग्रन्थकारों को भी निष्पक्षता से उद्धृत नहीं किया। रसेल स्वयं लिखते हैं कि छोटानागपुर में उराँव तथा मुण्डा जातियों में अनेक गोत्र हैं, जिनका अर्थ ही वानर अथवा हनुमान् होता है यथा—हनुमान्, बजरंग, गड़ी, रेद्दी, बरई, बसोर, मैना और खंगार। श्री बुल्के ने कहीं भी उराँव जाति को रावण की सन्तति सिद्ध करने के लिए रसेल को उद्धृत नहीं किया। इसके अतिरिक्त शरच्चन्द्र राय ने (जो भारतीय नृत्तत्व शास्त्र के जनक माने जाते हैं) अपने उराँव जाति पर लिखे महानतम ग्रन्थ (उराँवज् ऑफ छोटानागपुर) में पृष्ठ 19 से 24 तक अनेक प्रमाण देकर यही सिद्ध किया है कि छोटानागपुर के उराँव वनवासी ही रामायण में वर्णित वनचारी वानर थे, जिन्होंने आर्यश्रेष्ठ श्री रामचन्द्र को लंका के राक्षसराज रावण के संहार में सहायता की थी। इस महान् दुर्लभ ग्रन्थ की भूमिका में कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी, इंग्लैण्ड के नृतत्त्व शास्त्र के अध्यक्ष, डॉ. ए. सी. हेडेन भी पृष्ठ 8 पर लिखते हैं—'हमारे ग्रन्थलेखक का विश्वास है कि उराँव वनवासी आर्यवीर रामचन्द्र की उस वानरसेना के अंग थे, जिसने उन्हें लंका के अनार्य राजा रावण को पराजित करने में सहायता की थी।' रामायण में रामचन्द्र इन्हें प्रेम से मित्र, भाई तथा वानर कह कर सम्बोधित करते हैं। जैसे नगर में रहने वाला नागर कहलाता है, उसी प्रकार वन में रहने वाले को वानर कहा जाता था। अतः वानर, कपि, प्लवंग आदि नाम पशुसूचक न होकर वनचारी, वनवासी, शरीर के फुर्तीले, साहसी, वीर, निर्भय वनवासी-बन्धुओं के गुणवाचक नाम थे।

यदि श्री बुल्के ने कुछ अन्य लेखकों को ईमानदारी से उद्धृत मात्र किया होता, तो सम्भवतः वे क्षम्य होते। उन्होंने अपनी द्वेषपूर्ण स्थापना के लिए अन्य लेखकों के मतों को कहीं तोड़ा-मरोड़ा है और कहीं पर्दा डालकर छिपा दिया है। बुल्के के समान एक पादरी ग्रिग्नार्ड ने भी उराँव बन्धुओं को राक्षस कहने का पाप किया था, जिसे श्री शरच्चन्द्र राय ने अपने ग्रन्थ के पृ. 4 पर आड़े हाथों लिया है। उराँव वनवासी राक्षसों को अपना जन्मजात शत्रु मानते आये हैं तथा उनकी 'दंदा

कट्टा' (राक्षस के दाँत तोड़ने की कथा) में राम को धर्मेश अथवा महादेव का पर्याय, सीता को पार्वती का पर्याय माना गया है। राम को अब्बा, सीता को अम्मा और हनुमान् को चच्चा कहा गया है।

पादरी बुल्के ने स्वयं अपनी ओर से भी उराँव वनवासियों को रावण की सन्तान कहने का अक्षम्य अपराध किया है। अपनी पुस्तक के पृ. सं. 116 पर श्री बुल्के के अपने शब्द हैं—'लोकप्रिय नायक (राम) को विकट जंगलों में निवास करना पड़ता है, एक क्रूर-आदिवासी राजा उनकी पत्नी हर लेता है।' यहाँ श्री बुल्के ने अपनी ओर से रावण को क्रूर-आदिवासियों का राजा बताया है। श्री बुल्के पुनः अपने इसी ग्रन्थ के पृष्ठ 140 पर लिखते हैं—'द्वितीय सोपान में वनवास का स्थान गोदावरी तट पर माना जाता है और राम आदिवासियों के आक्रमणों से मुनियों की रक्षा करते हैं।' यहाँ पुनः श्री बुल्के रामायण के मूल कथानक में राक्षसों के स्थान पर आदिवासियों का आक्रमण लिखकर देश के चार करोड़ आदिवासियों का ही अपमान नहीं कर रहे हैं वरन् इतिहास, परम्परा और रामकथा का भी घोर तिरस्कार कर रहे हैं। पृष्ठ 520 पर भी श्री बुल्के अपनी ओर से लिखते हैं—'उराँव नामक आदिवासी अपने को रावण का वंशज समझते हैं।' रसेल की पाद-टिप्पणी लंका-दहन के विषय में है। श्री बुल्के की सारी शोध का मूल आधार बुल्के की निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—'हाल ही में मुझे पता चला कि राँची जिले के रायडीह थाने के कटकयाँ गाँव में एक रावना नामक परिवार अब तक विद्यमान है। यह गोत्र कम प्रचलित है, इसके स्थान पर प्रायः गिधि नाम चलता है। निष्कर्ष यह है कि हनुमान् की तरह रावण का नाम भी एक वास्तविक अनार्य नाम का संस्कृत रूपान्तर ही प्रतीत होता है।' (पृष्ठ 122-123)। श्री बुल्के की इस विचित्र खोज की जाँच के लिए मैंने कई बार रायडीह थाना के कटकयाँ गाँव में स्वयं जाकर अधिक से अधिक पूछताछ की है, किन्तु वहाँ कोई भी 'रावना' नामक परिवार न पहले था, और न अब ही है। 10 वर्ष पूर्व भी वहाँ जब वनवासी-जनों को बताया गया कि श्री बुल्के ने उन्हें 'रावण की सन्तति' चित्रित किया है, तो वे उत्तेजित होकर कहने लगे—'हम रामभक्त वनवासियों को जो रावण-सन्तान कह कर तिरस्कार करता है, हम धनुष-बाण से उसका कलेजा उसी प्रकार चीर डालेंगे, जैसे रावण का कलेजा चीरा गया था।'

वाल्मीकि-रामायण के अनुसार राम-रावण युद्ध में रावण कुल-समेत नष्ट हो गया था। मात्र विभीषण बचा था, जिसकी कुल परम्परा का कहीं उल्लेख नहीं है। प्रसिद्ध उक्ति है—

इक लख पूत सवा लख नाती, तिस रावण को दीया न बाती।

(गुरुग्रन्थ साहिब)

तब प्रश्न उठता है कि श्री बुल्के उराँव लोगों को रावण की सन्तति कहने का दुस्साहस कैसे करते हैं?

रामायण के आधार पर रावण तो पितृ वंश से राक्षस न होकर ऋषि पुलस्त्य का पोता एवं ऋषि विश्रवा का पुत्र, ब्राह्मण था। चरित्रहीनता के कारण उसे एक गुणवाचक नाम दिया गया—राक्षस (दूसरों को सताने वाला)। क्या श्री बुल्के उराँव-जनों को रावण सन्तति कह कर ब्राह्मण की सन्तान कहना चाहते हैं या दूसरों को सताने वाले राक्षस?

रावण की स्वर्ण-लंका एक अत्यन्त विकसित नगर सभ्यता का श्रेष्ठतम नमूना थी। किन्तु रावण स्वयं उसी प्रकार चरित्र भ्रष्ट था, जिस प्रकार आज की धन-वैभव, भौतिक सम्पदा-सम्पन्न पाश्चात्य सभ्यता में पोषित आततायी (दूसरों के स्वदेश और स्वधर्म को लूटने वाले), चरित्र भ्रष्ट अत्याधुनिक गुण्डे हैं। इसके विपरीत, वनवासी वानर (उराँव बन्धुगण) सदा से वनों में पर्णकुटी में रहने वाले, सरलमना, स्वदेश-स्वधर्मनिष्ठ भूमिपुत्र रहे हैं जो आचार-भ्रष्ट आततायी को उसकी सोने की लंका सहित भस्मीभूत कर सकने का सामर्थ्य रखते हैं। अतः इन प्रकृति के दुलारे वनवासी बन्धुओं को रावण-सन्तति कहना समूची मानवता का घोर अपमान है।

भगवान् राम स्वाभिमान के प्रतीक थे। इसलिये मैंने इंग्लैण्ड में आयोजित श्रीराम जन्मोत्सव समारोह में कहा था—'अगर मैं इस देश का अंग्रेज डिक्टेटर होता तो सबसे पहला काम करता कि महर्षि वाल्मीकि द्वारा लिखित रामायण को जब्त करने का आदेश जारी करता। क्यों? इसलिये कि जब तक यह महान् क्रान्तिकारी ग्रंथ भारतवासी हिन्दुओं के हाथ में रहेगा, तब तक कोई हिन्दू न तो किसी दूसरे ईश्वर या सम्राट के आगे सिर झुका सकता है और न ही उसकी नस्ल का ही अन्त कर सकते हैं।

—स्वातंत्र्य वीर सावरकर

पादरी बुल्के का वनवासी समाज के प्रति घोर अन्याय

संस्कृति विहार, राँची के निदेशक प्रो. हरवंशलाल ओबराय ने इस बात पर गहरा दुःख एवं आश्चर्य व्यक्त किया है कि जिस विदेशी पादरी कामिल बुल्के ने अपने ग्रन्थ 'रामकथा : उत्पत्ति और विकास' में भारत के कोट्यावधि वनवासी बन्धुओं को राक्षस एवं रावण की सन्तान चित्रित किया है तथा उसको प्रमाण मानकर जिस पूना के डॉ. संकलिया ने अपने एक शोध पत्र में ऐसी ही स्थापना की है कि छोटानागपुर ही रामायण में वर्णित स्वर्ण लंका है। उन दोनों भ्रान्त लेखकों को राष्ट्रपति ने पद्मभूषण की उपाधि से सम्मानित किया है। यह राष्ट्र की इतिहास-परम्परा का अपमान तथा राष्ट्र की अखण्डता को गम्भीर चोट है।

वास्तव में छोटानागपुर के वनवासी-जनों को भगवान् राम ने जिस निश्छल प्रेमामृत से गले लगाया था उसकी विश्व इतिहास में कहीं तुलना नहीं है। वनवासी-जनों के रोम-रोम में भी रामभक्ति भरी हुई है। राँची के निकट प्रभु रामचन्द्र की सेना का गढ़-रामगढ़, उनके चरणों का तीर्थ रामरेखा धाम (सिमडेगा), महावीर (आञ्जनेय-हनुमान्) का जन्मस्थान आंजन ग्राम, निकट गुमला सभी वनवासी बन्धुओं की राम भक्ति के जीवन्त प्रमाण हैं। हमारे वनवासी बन्धु ही रामायण काल के वर्णित वानर हैं तथा इनमें आज तक लगभग 10 गोत्र ऐसे हैं जिनका अर्थ ही वानर होता है यथा—हनुमान्, बजरंग, गड़ी, वानरा, तिग्गा, रेछी बाई, बसोर, मैना, खंगार आदि। छोटानागपुर के वनवासी बन्धुओं में उराँव, मुण्डारी और खरिया आदि भाषाओं में तथा सर्व प्रचलित नागपुरी भाषा में भी रामायण सम्बन्धी असंख्य लोकगीत प्रचलित है जिनमें रामभक्ति भरपूर है। रामनवमी के उत्सव पर राँची तथा समस्त छोटानागपुर में आयोजित होने वाला विराट् महावीर झण्डा जुलूस संसार भर में अद्वितीय है। उराँव वनवासी अभी तक अपने पारम्परिक नृत्यों में लंगोटी के पीछे कपड़े की एक लांगूल लगाकर नाचते हैं जिसे तुलुंग कहते हैं।

अतः रामायण काल के इन वनचारी-वनवासी रामभक्त वानरों को राक्षसराज

रावण की सन्तान चित्रित करना भारतीय संस्कृति, भारतीय इतिहास एवं भारतीय समाज, सभी का घोर तिरस्कार है। इसके पीछे पादरियों का षड्यन्त्र यह है कि रामभक्त वनवासियों को राम के शत्रु राक्षस चित्रित करके, रामभक्ति की धारा से विलग कर ईसाईयत जैसे विदेशी धर्म का गुलाम बनाया जाय।

अतः समस्त भारत हितैषी संस्थानों एवं नागरिकों को भारतीय समाज की हत्या के उद्देश्य से चलने वाली इस साहित्यिक धोखाधड़ी का प्रबल विरोध करना चाहिये। डॉ. संकलिया की भ्रान्ति भी पादरी बुल्के की साहित्यिक धोखाधड़ी पर आधारित है। छोटानागपुर के पठार को लंका चित्रित करना तो केवल अनर्गल ही नहीं हास्यास्पद भी है। लंका समुद्र स्थित द्वीप है। छोटानागपुर में न तो कोई सागर है न सागर जैसी कोई महान् नदी ही है। छोटानागपुर की पहाड़ियाँ जो विन्ध्याचल की ही श्रेणियाँ है मूल विन्ध्याचल तथा हिमालय से भी पुरानी है। इसलिये यहाँ कोयले से लेकर हीरे तक सभी खनिज पदार्थ मिलते हैं। इसलिये यहाँ अति प्राचीनकाल में भी कोई समुद्र या द्वीप होने की कोई सम्भावना नहीं है। वनवासी-जनों के प्रसिद्ध धार्मिक कृत्य दंदा कट्टा पूजा में राम को पिता, सीता को माता तथा हनुमान् को चाचा कह कर सम्बोधित किया जाता है। उस पूजा का भाव ही यह है कि दुष्ट राक्षसों के दाँत तोड़ना ताकि वे वनवासी भाइयों को सता न सकें। रामायणकाल में इन्हीं वनवासी वानरों की सेना ने वास्तविक लंका में जाकर राक्षसों के दाँत तोड़े थे। यह इतिहास की भयंकर विडम्बना है कि बुल्के एवं डॉ. संकलिया जैसे भ्रमित लेखक उन्हीं वनवासियों को राक्षस तथा उनके देश छोटानागपुर को लंका चित्रित कर रहे हैं।

'भारतीय इतिहास के महान् तथा घटनापूर्ण-काल में अपने व्यस्त जीवन की संध्या-बेला में मैंने रामायण की जो कहानी कही है, मेरी राय में, भारतवासियों के प्रति की गयी यह मेरी सर्वोत्तम सेवा है। इस कार्य से मुझे मन की शांति और तृप्ति मिली है।'

—च. राजगोपालाचारी

रामायण काल की लंका

रामायण भारत में प्रतिष्ठित है और भारत रामायण में प्रतिष्ठित है। ऐसा नोबल पुरस्कार विजेता विश्वकवि श्री रविन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है। वास्तव में रामायण और महाभारत, भारत के ये दो ऐसे प्रसिद्ध महाकाव्य हैं जिनकी छाप पूरे संसार की कला, पुरातत्त्व, इतिहास, परम्परा, सभ्यता और संस्कृति पर पड़ी है।

नेपाल कभी भारत का अभिन्न अंग था और अभी भी सांस्कृतिक भारत का सजीव अंग है। नेपाल को इस बात का गौरव प्राप्त है कि सीता का पैतृक निवास 'जनकपुर धाम' नेपाल में था और यहीं प्रसिद्ध 'वाल्मीकि आश्रम' था जहाँ सीता निर्वासन की अवधि में रही। इस प्रकार नेपाल रामायण से उसी प्रकार संयुक्त है, जिस प्रकार सीता राम से संयुक्त थी। तुलसीकृत रामायण नेपाल का श्रेष्ठ लोकप्रिय ग्रन्थ है। रामायण का संगीतमय गायन नेपालियों के हृदय को उल्लसित कर देता है और उनमें गर्व एवं साहस का संचार करता है। इन्हीं दिनों तुलसी रामायण के नेपाली काव्यानुवाद ने भारत और नेपाल की सांस्कृतिक आत्मीयता में नूतन कड़ी जोड़ दी है। नेपाल की परम्परागत रामायण भानुभक्त की रामायण है जो अत्यन्त सुन्दर एवं लोकप्रिय महाकाव्य है। नेपाल के राजधानी क्षेत्र का नाम हनुमान्ढोका है तथा विजयादशमी राष्ट्रीय महापर्व है।

श्रीलंका रावण की परम्परागत राजधानी होने के कारण सर्वप्रसिद्ध है। विद्वानों में लंका की वास्तविक भौगोलिक स्थिति के विषय में कुछ विवाद भी हैं, किन्तु अधिकांश विद्वानों का यही मत है कि वर्तमान श्रीलंका ही रामायण काल की लंका का एक बचा हुआ द्वीप है। वास्तव में रावण का लंका साम्राज्य मारीच द्वीप (मॉरीशस) से लेकर आस्ट्रिक द्वीप (आस्ट्रेलिया) तक फैला हुआ था। हिन्द महासागर में और भी कई द्वीप थे, जो जलमग्न हो चुके हैं। आस्ट्रेलिया में संसार की सबसे अधिक सोने की खानें थीं। सुमात्रा द्वीप का नाम स्वर्णद्वीप था। दक्षिणी बर्मा को भी स्वर्णभूमि कहते थे। राजधानी वर्तमान श्रीलंका द्वीप में थी। वहाँ अशोक-वाटिका अभी तक तीर्थस्थल के रूप में प्रतिष्ठित है। वहाँ राम, सीता, शिव, हनुमान् और विभीषण तक के मन्दिर हैं, किन्तु विचित्र तथ्य यह है कि रावण का एक भी मन्दिर नहीं है।

कोलम्बो से 6 मील दूर कालिनियाँ में एक बौद्ध विहार के दाहिनी ओर विभीषण का मन्दिर है। नोरेलिया के निकट हाग्गल वागिया में हजारों वर्ष पुराना सीताजी का मन्दिर है। इसी के निकट अशोकवनम् है जिसको सीता एलिया भी कहते हैं। मन्नार के निकट एक प्राचीन शिव मन्दिर है जहाँ रावण शिव ताण्डव स्तोत्र गाकर भगवान् शिव की पूजा करता था।

कुछ लेखक बिना किसी पुष्ट प्रमाण के लंका को छोटानागपुर या मध्यप्रदेश में बताने का व्यर्थ प्रयास करते रहते हैं। पादरी बुल्के छोटानागपुर को लंका और उरांव जनजाति को रावण की संतान बताते रहते हैं। डा. एच. डी. संकलिया भी अमरकण्टक के निकट नर्मदा नदी के एक छोटे टापू को लंका मानते हैं। वास्तव में राम का वनवास मार्ग—अयोध्या से चित्रकूट, फिर दण्डक-वन पार कर जनस्थान (पंचवटी) पहुँचना, वहाँ सीताहरण, फिर किष्किंधा पर्वत (हम्पी) पहुँच वहाँ से आठ मील दूर पर्वत पर सुग्रीव से मित्रता, फिर हनुमान्जी का सीता की खोज में जाना, उनका महेन्द्र पर्वत (उड़ीसा) से छलांग लगाकर लंका पहुँचना, पुनः राम का रामेश्वर में लवण सागर पर पुल बाँधकर लंका में सैनिक अभियान इत्यादि, सभी तथ्य यही प्रमाणित करते हैं कि रामायण काल की लंका भारत के दक्षिणी छोर पर स्थित श्रीलंका द्वीप ही था। वहाँ के साहित्यकार भगवान् श्रीराम की उदार मानवता के गीत अभी तक गाते हैं जिन्होंने रावण जैसे परम शत्रु की मृत्यु के उपरान्त भी अपने हाथों से उसको अग्नि संस्कार का सम्मान दिया और सोने की लंका जीतने के उपरान्त भी वहाँ का साम्राज्य-सिंहासन रावण के भाई विभीषण को ही सौंप दिया।

जो सम्पत्ति दशशीश अरप करि, रावण शिव पै लीन्ही।
सोई संपदा विभीषण को अति सकुच सहित प्रभु दीन्हीं।।
ऐसा को उदार जग माहिं।।

नायकर की नासमझी

आपके समाचार पत्र में हाल ही में एक समाचार पढ़ा। श्री ई. वी. रामास्वामी नायकर ने एक आमसभा में भगवान् राम के चित्र को जला कर अपवित्र कृत्य किया। यह बहुत ही खेद की बात है। यह अत्यन्त दुःख की बात है कि द्रविड़-कड़गम के एक वयोवृद्ध, श्वेत दाढ़ी वाले नेता फिर से आर्य-द्रविड़ की बहस को उठाने का यत्न कर रहे हैं।

यह सबको ज्ञात है कि भगवान् राम एक आदर्श आर्य थे साथ ही साथ वह विश्व के एक महानतम नेता और लोकनायक भी थे जिन्होंने करोड़ों लोगों का मन अपने आदर्श व्यवहार और शुद्ध चरित्र से जीत लिया था। इसमें सभी धर्म-सम्प्रदाय और देशों के लोग थे।

कुछ प्राच्य और पाश्चात्य इतिहास लेखकों ने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि रामायण काल में आर्यावर्त्त की सीमा केवल हिमालय से विन्ध्याचल तक ही सीमित थी, और भगवान् राम ने पहली बार आर्यावर्त्त की सीमा बढ़ा कर भारत के दक्षिणतम छोर तक पहुँचाई थी। एक सिरफिरे व धर्मान्ध द्रविड़ नेता श्री नायकर समझते हैं कि भगवान् राम ने दक्षिण भारत से सभी द्रविड़ लोगों को मार भगाया और संपूर्ण भारत को आर्यावर्त्त नाम दिया। वास्तव में यह एक बहुत ही तुच्छ और गलत धारणा है। यदि यह सत्य होता तो रामास्वामी नायकर व द्रविड़ कड़गम आदि नाम दक्षिण भारत में न पाये जाते।

श्री नायकर और इस प्रकार के अन्य इतिहासकारों के मन में एक और गलत धारणा यह है कि रामायण काल के असुर एवं राक्षस केवल दक्षिण भारत के द्रविड़ ही थे, जिन्हें भगवान् राम ने मार भगाया था। कुछ समय पूर्व तक नायकर और उनके साथी बड़े गर्व से अपने आप को रावण और कुम्भकरण का वंशज कहते थे। कुछ इतिहासकार रामायण काल के बन्दरों-भालुओं को भी द्रविड़ वंश के मानते हैं।

कोई अनपढ़ व्यक्ति भी जानता है कि भगवान् राम ने वानर राजा बाली को मारने के बाद उसका राज्य उसी के भाई सुग्रीव को दे दिया था। इसी प्रकार लंका

के युद्ध में रावण को हराने के बाद भगवान् राम ने सोने की लंका को खुद नहीं सम्भाला बल्कि पूरा राज्य सम्मान सहित रावण के छोटे भाई विभीषण को दे दिया। भगवान् राम ने श्रीवेरपुर राज्य को जीत कर वह सारा साम्राज्य निषादराज को सौंप दिया। यह सब दर्शाता है कि उस काल के सभी राजा-महाराजा भगवान् राम का बहुत सम्मान करते थे और उन्हें भगवान् की तरह पूजते थे।

श्री नायकर को यह भी जानना चाहिए कि आदिकाल से आर्य हिन्दू शिव, गणेश, हनुमान् और कालीमाता को पूजता रहा है। जिन्हें अक्सर द्रविड़ माना जाता है और दक्षिण भारत के अधिकांश मन्दिरों में इनकी मूर्तियाँ पायी जाती हैं।

यह सत्य है कि एक समय आर्य लोगों ने दक्षिण भारत में भारतीय सभ्यता एवं दर्शन का प्रचार-प्रसार किया। किन्तु कालान्तर में शंकराचार्य, रामानुजाचार्य और माधवाचार्य आदि सन्तों ने दक्षिण भारत में भगवान् राम, भगवान् कृष्ण और अन्य देवताओं की पूजा अर्चना का प्रचार किया जिससे पूरे भारत में हिन्दू सनातन धर्म की लहर छा गई। श्री रामास्वामी नायकर और उनके मित्रों के हृदय में भारत (जो उनकी मातृभूमि है) एवं भगवान् राम (इष्ट देव जिन्होंने आदर्श भारतीय संस्कृति एवं राम राज्य की स्थापना की) के लिए गौरव और सम्मान होना चाहिए। उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि भारतीय सभ्यता और दर्शन का मूल ग्रन्थ रामायण है, और राम राज्य एक आदर्श राज्य की संकल्पना है। यह सब महर्षि वाल्मीकि, वेदव्यास, तुलसीदास और कम्बन् आदि सन्तों ने भी बार-बार कहा है। यही बात हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी भी रोज प्रार्थना-सभा में भी दोहराते थे। जीवन के अन्तिम क्षणों में भी उनके मुख से यही शब्द निकला था—हे राम !

राष्ट्र का उद्देश्य

राष्ट्र स्वयं में महत्त्वपूर्ण तो है किन्तु स्वयं में लक्ष्य नहीं है। लक्ष्य तो है आत्मविकास। इस बात को न समझ पाने के कारण ही विश्व में राष्ट्रवाद खतरा बन गया है और राष्ट्र को मानव एकता के बाधक रूप में देखा-समझा जाता है।

—ऋषि अरविन्द

उत्तर भारत को दक्षिण भारत की देन : श्रीराम-भक्ति

तुलसीदास से 700 (सात सौ) वर्ष पहले दक्षिण भारत में एक महाकवि कंब हुए। उस महाकवि ने तमिल भाषा में रामायण लिखा। उसको कंब रामायण कहते हैं। यह रामचरित्र का अलौकिक ग्रंथ है। रामायण के प्रारम्भ में एक वंदना कंब ऋषि ने की है। कितनी मनोहारी वंदना है, जरा बुद्धि लगायेंगे तो अर्थ खुलेगा। सहज में अर्थ समझ में नहीं आयेगा। अर्थ जानने के बाद आपको बड़ा आनंद होगा। वह तमिल में है उसका पद्यानुवाद इस प्रकार है—

पांच में से एक के पुत्र ने जो, पंच परमेश्वर के दूत बन, पांच में से एक मार्ग से, पांच में से एक को लांघकर, पंचनख वालों के देश में, पांच में से एक की पुत्री लख, पांच में से एक को लगाकर, लौटकर सकुशल आये जो, दोनों पंच जोड़कर प्रणाम करूं। पंच के प्रकोप से रक्षा करें।

अब सोचिये यह पंच क्या है? पांच में से एक का तमाशा क्या है? कम्ब ऋषि ने एक अलौकिक चमत्कार किया है। आप ध्यान देवें। यह बड़ी मीठी पहेली है। आपके हृदय को गुदगुदाने वाली पहेली है। आपकी श्रद्धा को जगाने वाली पहेली है और इसमें बड़ा काव्य का चमत्कार है।

पांच तत्त्व हैं जिससे सारी सृष्टि बनी है। यह पिण्ड और ब्रह्माण्ड पांच तत्त्वों से बना है। पांच तत्त्व कौन-कौन से हैं? पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। पांचों तत्त्वों से ब्रह्माण्ड और पांच तत्त्वों से पिण्ड बना है। ये पांच तत्त्व प्रकृति माता के पांच पुत्र जैसे हैं।

मानव के शरीर में भी पांचों तत्त्वों का पंचीकरण हुआ। यह इस प्रकार से मिल-जुलकर बना है कि खोजना कठिन है यहाँ कौन सा तत्त्व है, कौन सा तत्त्व नहीं है। पर फिर भी मानव के शरीर में भगवान् ने एक Scale लगा दिया है कि कौन सा तत्त्व ऊँचा है कौन सा तत्त्व नीचा है। इसको मापने का एक मापकयंत्र मानव शरीर में लगा दिया है। चाहे सभी अंगों में सभी तत्त्व मिले-जुले हैं पर कमर

से नीचे पांव में पृथ्वी तत्त्व की अधिकता होती है। टांगें पृथ्वी को छूती हैं। ये जो जंघाएं हैं यह शरीर रूपी यंत्र को ढोने को एक Mobile Stand है। जैसे कैमरा का Stand होता है। मानव शरीर के जीने के लिये इसमें कोई आवश्यक तत्त्व नहीं हैं। Stand है चलने में मदद करता है। पर दुर्भाग्य से किसी की रेल या किसी अन्य दुर्घटना से दोनों टांगें कट जाये तो भी जीते रहते हैं। उसके प्राणों को, उसके जीवन को, कोई नुकसान नहीं पहुँचता। चलना-फिरना कठिन हो जाता है। इसमें पृथ्वी तत्त्व की अधिकता है। सबसे स्थूल तत्त्व यही है।

इसके ऊपर आता है लंगोटी का स्थान। जहाँ से आप मल-मूत्र त्याग करते हैं। यह जल का विशेष स्थान है। आप कहेंगे कैसे? मानव शरीर में जितना हम जल पीते हैं उसका सबसे बड़ा कार्य यही है कि अन्दर की नस-नाड़ियों को धोना, पेट को साफ रखना और गन्दगी को, फुजला को मल-मूत्र के रूप में बाहर फेंक देना। जैसे घर में पानी के आने का एक नल है, पानी की निकासी का दूसरा नल है। इस तरह से मानव शरीर में जल डालते तो मुख से हैं पर निकालने का मार्ग अलग है और उसमें जल का सबसे बड़ा उद्देश्य सफाई है और कोई दूसरा उद्देश्य नहीं है। इसलिये वहाँ जल तत्त्व की अधिकता है।

इसके ऊपर तेज तत्त्व है। तेज में अग्नि तत्त्व की अधिकता है जठराग्नि। सारे शरीर में माथे को छुएं, सिर को छुएं, जबान को छुएं, हाथ को छुएं, पांव को छुएं साढ़े ९८ डिग्री तापमान है। पर पेट की जठराग्नि ठण्डी हो जाय तो पूरा शरीर ठण्डा हो जायेगा। इसलिये सब कुछ जठराग्नि पर निर्भर है। इसलिये अग्नि तत्त्व जल से ऊपर है।

उससे ऊपर वायु का स्थान है। फुफ्फुस से लेकर नासिका तक वायु का विशेष स्थान है। इसमें वायु चल रहा है। वायु पूरे शरीर में संचार करता है। पर इसका विशेष स्थान यह है।

इसके ऊपर कपाल में आकाश का स्थान है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश; इन पांच तत्त्वों से पिण्ड बना है। पांचों तत्त्वों से ब्रह्माण्ड बना है। अब कंब ऋषि कहते हैं—पांच में एक के पुत्र जो। अर्थात् पांच तत्त्वों में वायु के जो पुत्र हैं, पंच परमेश्वर के दूत बनकर अर्थात् पांचों तत्त्वों का जो परमेश्वर है भगवान् राघवेन्द्र 'मर्यादा पुरुषोत्तम' राम जो हैं उनके दूत बनकर वो गये। कैसे गये? पांच में से एक मार्ग से। पांच तत्त्वों में एक तत्त्व आकाश है। तो पांच में से एक मार्ग से अर्थात् आकाश मार्ग से। पांच में से एक को लांघकर अर्थात् समुद्र के जलतत्त्व को लांघकर गये। पंच-नखों वालों के देश में। जिनके बड़े-बड़े, पैने नख हैं। लोगों के कलेजों को फाड़ डालें ऐसे राक्षसों के देश में। अब पांच में से एक की पुत्री को लख अर्थात् पृथ्वी माता की पुत्री सीता माता को देखकर और पांच में से एक को

लगाकर अर्थात् पांच तत्त्वों में से अग्नि तत्त्व से लंका को जलाकर सकुशल लौट आये, को दोनों पंच जोड़कर प्रणाम करूं। दोनों हाथों की हथेलियाँ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। पंच के प्रकोप से रक्षा करें। पृथ्वी के प्रकोप से, जल के प्रकोप से, अग्नि के प्रकोप से, वायु के प्रकोप से, आकाश के प्रकोप से सदा हमारी रक्षा करते रहें। एक हनुमान्जी की स्तुति में उन्होंने क्या चमत्कार कर दिया। यह है तमिल रामायण में।

आज दक्षिण भारत में कुछ लोग राजनीतिक स्वार्थलिप्सा के कारण और कुछ अंग्रेजों के सिखाये हुए उलटे-सीधे और विद्रोही मंत्रों के कारण कहते हैं कि हम रावण की संतान हैं। राम के पुतले जलाते हैं। उत्पात करते हैं। हम दक्षिण भारतीयों को कहते हैं—अरे मूर्खों! राम की भक्ति तो दक्षिण भारत ने उत्तर भारत को दी थी। उत्तर भारत ने तो राम को निर्वासन दे दिया, देश-निकाला दे दिया, वनवास दे दिया। दक्षिण भारत ने अपने हृदय में राम को बसाया। दक्षिण भारत ने दण्डकारण्य में, पम्पारण्य में, किष्किन्धारण्य में और जनकारण्य में उनको स्थान दिया। किष्किन्धारण्य में सुग्रीव ने मित्रता की और हनुमान् जैसे महावीर सेनानायक मिले। फिर वानरों की सेना सजाकर लंका पर विजय प्राप्त की।

भक्ति तो द्रविड़ देश में पैदा हुई भाई। क्योंकि भगवान् शंकराचार्य के बाद भगवान् रामानुजाचार्य ने सबसे पहले अपने विशिष्टाद्वैत में भक्ति का स्थान बनाया। शंकर स्वयं ज्ञानी भी थे, भक्त भी थे पर अद्वैत में, तर्क की दृष्टि से भक्ति का स्थान बहुत कम बनता है बनता ही नहीं। वे स्वयं भक्त थे। वे चाहते थे कि लोग भक्ति करें लेकिन उनके मत में भक्ति के लिये स्थान बनता ही नहीं था। तो भगवान् रामानुजाचार्य ने वेदान्त दर्शन में सबसे पहले भक्ति का स्थान बनाया। उसका नाम है विशिष्टाद्वैत। उनकी शिष्य परंपरा में रामानन्दाचार्य महाराज हुए और वे उत्तर भारत में आये और काशी में आकर उन्होंने राम भक्ति की लौ जगा दी। उनके शिष्यों में कबीर हुए, रविदास हुए उनके सत्संगियों में गुरुनानक हुए, दादू हुए और उनसे प्रभावित गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज हुए। इसलिये भक्ति दक्षिण भारत की देन है। भक्ति तो द्रविड़ देश में उपजी।

तुलसीदास से सात सौ वर्ष पूर्व इतनी महान् रामायण लिखने वाला महाकवि कम्ब दक्षिण ने पैदा किया। तेलुगु में श्रीपाद रामायण, मलयालम में रामचरित कन्नड़ में तोरवे रामायण भरी पड़ी है। रामायण पर सबसे बड़ा भारी वक्ता, उत्तम वक्ता दक्षिण भारत ने पैदा किया है। श्रीनिवास शास्त्री के Lectures on Ramayana इतने महान् व्याख्यान हैं। इनकी तुलना में रामायण के व्याख्यान आज तक संभवतः और कोई देश नहीं कर सका।

भारत के प्रथम गवर्नर जनरल रहे राजगोपालाचारी कहते हैं कि मैं अपने लंबे जीवन में देश की सबसे बड़ी सेवा यदि कुछ कर सका तो रामायण और महाभारत को सरल भाषा में जनसाधारण तक पहुँचा सका। यही मेरी देश के प्रति सबसे बड़ी सेवा है। डॉ. राधाकृष्णन् और रामास्वामी अय्यर जैसे बड़े-बड़े उद्भट विद्वान् दक्षिण भारत ने पैदा किये। इसलिये रामकथा की परंपरा भी दक्षिण भारत ने दी।

आज कुछ मूर्ख लोगों तथा कुछ अंग्रेजों की चाल के कारण बड़ी विकृत परंपरा चल पड़ी है, वे लोग रामायण के द्वेषी बन गये हैं। अंग्रेजों ने क्या चाल चली? अंग्रेजों ने सोचा—उत्तर भारत में हिन्दू-सिक्ख को लड़ाया जाय। हिन्दू और सिक्ख अलग-अलग कर दिये जायें। हिन्दू और मुसलमान की लड़ाई सदा जारी रखी जाये और आर्य और द्रविड़ों को सदा लड़ाकर रखा जाय ताकि उत्तर और दक्षिण सदा कटा रहे। अंग्रेज बड़ा कूटनीतिज्ञ था। इस देश पर शासन करने के लिये लड़ाइयाँ कराना चाहता था। और लड़ाइयाँ करवाने के लिए वह जहरीले इंजेक्शन लगाता था। एक राममूर्ति था। उसको इन्होंने ईसाई बनाया। टोमस नाम रखा। फिर उसको पढ़ने इंग्लैण्ड भेजा और इंग्लैण्ड में उससे कहकर एक पुस्तक लिखवाई अंग्रेजी में— The Rama Retold राम की कहानी पुनः कही गई। उसमें उसने क्या कही राम की कहानी?

उसने कहा—राम उत्तर भारतीय थे। उत्तर भारत के राजा थे। दक्षिण भारत पर आक्रमण करने के लिये आये थे। राम आर्य थे। उन्होंने द्रविड़ों पर आक्रमण किया था। इसलिये राम द्रविड़ों के शत्रु हैं, दक्षिण भारत के शत्रु हैं। दक्षिण भारत के इष्ट देवता, आराध्य पुरुष इतिहास पुरुष हैं वह राम नहीं रावण हैं। यह एक बहुत जहर भरा इंजेक्शन अंग्रेजों ने टोमस नामक व्यक्ति द्वारा पुस्तक लिखाकर दिया उसके द्वारा दक्षिण भारत के मस्तिष्क को विकृत करने, उसमें जहर घोलने की कोशिश की। हर चीज का कुछ असर होता है। कुछ-कुछ ऐसे विष होते हैं जिनका तुरंत परिणाम होता है। कुछ ऐसे विष होते हैं जिनका बहुत देर बाद जाकर असर होता है। Slow Poison की तरह जहर धीरे-धीरे घुलता रहता है और वह इस प्रकार से बाद में असर करता है। दुर्भाग्य से ये D.M.K. और द्रविड़ कड़गम ये सब जहरीले इंजेक्शन की उपज हैं।

दक्षिण भारत में जाकर देखें तो बड़े-बड़े विशाल मंदिर मिलेंगे जिनकी तुलना का मंदिर उत्तर भारत में दिखाई नहीं देता। रामेश्वर जैसा देश का सबसे बड़ा मंदिर मिलेगा। हजार स्तम्भों वाला मंदिर। राम का ही तो मंदिर है जहाँ राम ने शिव की पूजा की। राम और शिव एकाकार हो गये वह राम का मंदिर है। इस प्रकार से सारे दक्षिण भारत के विचारवान् लोग, सब राम की प्रतिष्ठा करते हैं। कुछ मूर्ख, राजनीतिक लोग उत्पात मचाते हैं। वह उत्पात भी धीरे-2 अपनी मौत मर गया। ये

जिस रावण की चर्चा करते हैं उस रावण की लंका में ही रावण का कोई मंदिर नहीं है जहाँ रावण की पूजा होती हो। मैं तीन बार लंका गया। पूरी लंका में राम के प्रति श्रद्धा, तमिल कवियों में राम के प्रति अगाध प्रेम यह देखने से हमें लगा यह तो दक्षिण भारत में द्रविड़ लोगों को उलटा-सीधा सिखाया जा रहा है वह बड़े धोखे का काम है। क्योंकि यदि लंका का रावण द्रविड़ों का आदर्श होता तो कम से कम लंका के लोग तो उसको अपना आदर्श मानते। सारी लंका में खोज कर देखो। लंका में एक भी रावण का मंदिर नहीं है जहाँ उसकी पूजा होती हो। वहाँ तो राम की, सीता की, शिव की, भगवान् बुद्ध की पूजा हो रही है।

वहाँ पर राणेश्वर महादेव का बड़ा भारी शिवतीर्थ है, रामेश्वर के समान ही, रामेश्वर के आकार का ही, इससे कुछ छोटा। लंका के तट पर मनार की खाड़ी जहाँ पर बड़े कीमती मोती मिलते हैं वहाँ एक विशाल शिवतीर्थ है जिसको छोटा रामेश्वर कहते हैं। वहाँ रावण की प्राचीन राजधानी थी। उस नगर का नाम है लूअर एलिया। वहाँ रावण शिव की स्तुति करता था और शिव की स्तुति में अपने दस-दस शीश को काटकर भेंट करता था और शिव ताण्डव स्त्रोत गाता था। आठ हजार फुट की ऊँचाई पर वह नगर है। विदेशी सैलानियों के लिये वह बहुत ही प्रिय स्थान है। क्योंकि बाकी लंका समुद्र के तट पर है। वह नगर त्रिकूट पर्वत पर स्थित है त्रिकूट पर्वत में एक लुअर एलिया, दूसरा श्रीपाद पर्वत, तीसरा सीता एलिया है। लुअर एलिया जो रावण की राजधानी, जिसको हनुमान्जी ने अपनी पूंछ से जलाया था। कुछ भाग उस पर्वत के हैं जो अभी तक जले हुए से नजर आते हैं। वहाँ पर राख नजर आती है। ऐसा माना जाता है हनुमान्जी का जलाया हुआ खण्ड वही है।

अब वहाँ से सात मील की दूरी पर स्थान है जिसको सीता एलिया बोलते हैं। उसका दूसरा नाम अशोकवनम् है। वहाँ रावण की अशोक वाटिका थी जहाँ सीताजी को रखा था। बाकी जितने आप तीर्थ देखें उसमें राम की मूर्ति बीच में है, बायीं ओर सीताजी हैं और दायीं ओर लक्ष्मणजी। लेकिन वहाँ के मंदिर में सीताजी बीच में है और राम दायीं ओर हैं लक्ष्मण बायीं ओर हैं चरणों में हनुमान्जी। मुख्य रूप से सीता की पूजा होती है। मंदिर पुराना है। कुछ टूट-फूट गया है फिर भी मंदिर अभी तक सुरक्षित है। छोटे रूप में ही है। एक ऊँचा घण्टे का स्थान है। शिखर में हनुमान्जी सीता के सामने हाथ जोड़े खड़े हैं, कहीं मुद्रिका भेंट कर रहे हैं तो कहीं चूड़ामणि ले रहे हैं। ये सब मूर्तियाँ बनी हुई हैं। मंदिर के पिछवाड़े में एक पानी का झरना है जिसे सीता डागुला बोलते हैं जहाँ सीताजी स्नान किया करती थीं। वहाँ एक बड़ी भारी पत्थर की चट्टान है जिसके नीचे-नीचे पानी आ रहा है। लगभग सौ डेढ़ सौ फुट से चट्टान के नीचे यदि फूल डाले जायें तो

फूल तैरते हुए चट्टान की दूसरी ओर सौ डेढ़ सौ फुट आगे निकल जाते हैं। एक छोटा-सा प्रपात बनता है। एक बहुत सुंदर दृश्य है। उसके पीछे पूरा जंगल है, अशोक वन है। अशोक के वृक्ष में प्रायः दो प्रकार के अशोक होते हैं। एक लाल रंग के फूलवाले और एक सफेद रंग के फूल वाले। वहाँ हमें जो देखने को मिले वे लाल रंग के फूल वाले थे। पास में एक National पार्क है उसके साथ जो पर्वत है उसको कहते हैं संजीवनी मलय। हनुमान्‌जी जब संजीवनी बूटी लेकर गये थे तो वहाँ पर संजीवनी बूटी रखी थी जिससे लक्ष्मणजी की बेहोशी दूर हुई थी। उसके बाद उसी बूटी का कुछ अंश वहाँ छूट गया उससे बूटी उगने लगी। और अभी तक श्रीलंका में संजीवनी बूटी के नाम से वह बूटी प्रचलित है और बेहोशी दूर करने की सबसे उत्तम औषधि मानी जाती है। आयुर्वेद में उसका खूब प्रचलन है। अब उस मंदिर के जीर्णोद्धार के लिये हमने वहाँ के Minister of Hindu Religion & Culture उसको, और वहाँ के राष्ट्रपति जयवर्द्धने को कहा कि यह महान् तीर्थ है। यह इतने छोटे रूप में है। इसका बढ़िया जीर्णोद्धार होना चाहिये। हमने यह भी उनको बताया—एक अमरीकन था, बड़ा श्रद्धालु था। जब उसने देखा सीता जैसा महान् चरित्र। स्वामी विवेकानंदजी ने कहा है अरे भारत! तेरे पास दुनिया में और कोई चरित्र नहीं होता, केवल एक सीता का चरित्र होता तो भी तू युग-युग के लिये पूजा जाता। सीता का ऐसा पावन चरित्र है—पूरे भारत को, पूरी भारतीयता को पावन करने वाला, पूरी मानवता को पावन करने वाला चरित्र है। ऐसा महान चरित्र है सीता का। इसकी तुलना में दूसरा चरित्र दुनिया में किसी के पास है नहीं। इसलिये वहाँ जाकर जब उसने देखा कि उसका मंदिर इतना छोटा-सा और बाकी बड़े-बड़े शान-शौकत के, बड़े-बड़े विशाल बौद्धों के मंदिर बने हुए हैं तो उस बेचारे अमरीकन की श्रद्धा को चोट लगी। वह अमरीकन बड़ा जोर-जोर से रोने लगा। उसकी हिचकी न बंद होवे। हाय! सीतामाता का इतना महान् चरित्र और इतना छोटा मंदिर। रो पड़ा। उसका वर्णन हमने जो मिनिस्टर है Hindu Religion & Culture से कहा। श्रीपाद पर्वत है जिस पर सब धर्मों का दावा है कि हमारा है मुसलमान, यहूदी, ईसाई उसे एडम्स पीक कहते हैं। बाबा आदम का पांव लगा हुआ है। वे कहते हैं—आदम को जब स्वर्ग से गिराया गया था तो यहीं गिरा। बौद्ध लोग उसको श्रीपाद कहते हैं। भगवान् बुद्ध के चरणों का तीर्थ है। शैव लोग उसको शिवपाद कहते हैं शिव के चरणों का तीर्थ है। सबका दावा है। सब जाति है पर बौद्धों का बाहुल्य है। उस क्षेत्र में बौद्ध हिन्दू है।

लंका के लोगों के मन में राम के प्रति शिव के प्रति श्रद्धा है। तमिल कवियों के मन में राम के प्रति अगाध श्रद्धा है, प्रेम है। सारी लंका में खोजकर देखो, लंका में एक भी रावण का मंदिर नहीं है। दो स्थानों पर रावण को दिखाया है। एक स्थान पर शिव की स्तुति करते हुए, शिव के सामने नाचते हुए वहाँ देवता तो रावण नहीं

है, देवता तो शिव हैं। एक स्थान पर कैलास को हिलाते हुए। और ऊपर से शंकर भगवान् ने एक छोटी अंगुली दबा दी है इससे वह चीत्कार कर रहा है वह दस मुखों से चीख रहा है, अलग-अलग भाव दिये हुए हैं और दबा हुआ है और माफी मांग रहा है, यह तो रावण की पूजा नहीं हुई। रावण की पूजा तो लंका में, रावण की नगरी में नहीं होती। अरे दक्षिण भारत के भाइयो! तुम रावण की पूजा क्यों करते हो ?

आपको बड़ा अचंभा होगा। आप रामेश्वर तक जाते होंगे। वहाँ से आप जल जहाज में बैठ जाओ। केवल डेढ़-दो घण्टे की यात्रा है। लंका में जाकर देखो, उस लंका में क्या है? मैं आपको अपने अनुभव से स्पष्ट बताता हूँ।

लंका में भगवान् बुद्ध के हजारों मंदिर हैं। अधिकांश मंदिरों में बीच में भगवान् बुद्ध है तो चार कोनों में चार और देवता है। पंच देवता की उपासना वहाँ भी है। पांच देवता कौन हैं? आपको अचंभा होगा। आपको सत्य बताता हूँ क्योंकि मेरे पास सब चित्र हैं। कौन देवता है? एक कोने में भगवान् विष्णु हैं। चतुर्भुज विष्णु की पूजा हर बुद्ध मंदिर में होती है क्योंकि बुद्ध भगवान् विष्णु के अवतार हैं और दूसरे कोने में गणपति की मूर्ति है। गणपति का मंदिर हर बुद्ध मंदिर में है। गणपति की पूजा साथ होती है। एक कोने में कार्तिकेय हैं। भगवान् शिव के दूसरे पुत्र उसकी भी पूजा हरेक बुद्ध मंदिर में होती है और चौथे कोने में आपको जानकर आश्चर्य होगा, रावण की नहीं, राम के शरणागत भाई विभीषण की मूर्ति हर बुद्ध मंदिर में है। पचासों तो विभीषण की मूर्तियों के फोटो हम लेकर आये हैं। हर बुद्ध मंदिर में विभीषण की पूजा साथ-साथ होती है विभीषण तो पूजित हो रहा है लंका में। रावण तो लंका में भी पूजित नहीं हो रहा है। तो रावण के नाम पर हमारे मूर्ख कुछ दक्षिण भारतीय यदि रावण की पूजा करना शुरू करे और रावण अपने घर में पूजा ही न जाय, दुत्कारा जाय तो फिर क्या कहेंगे? इससे बड़ी मूर्खता क्या हो सकती है?

लंका के कवि कहते हैं—हे राम! तेरे जैसा उदात्त चरित्र, तेरे जैसा महान् चरित्र; तेरे जैसा महान् मानवीय चरित्र सारे संसार में खोजने पर नहीं मिलता।

अंग्रेजों की दूसरी चाल थी कि राम ने आक्रमण किया। राम मानवता के मुक्तिदाता हैं। राम मानवता की रक्षा के लिये आते हैं। राज्यलिप्सा उनको तनिक भी नहीं है। वे श्रीवेरपुर का राज्य गुह को देते हैं। किष्किन्धा का राज्य बाली को मारकर सुग्रीव को देते हैं और लंका में रावण को मारकर उसके भाई विभीषण को लंका का राज्य दे देते हैं। उनको तनिक भी, धूलि का एक कण भी नहीं चाहिये। अपने लिये कुछ नहीं मांगते हैं। सोने की लंका मिले न मिले, अवधपुरी की धूल मिले। अवधपुरी की धूल उससे अच्छी है।

लक्ष्मण ने भी कहा है—हे भगवन्! अब तो हम 14 वर्ष से मातृभूमि से बिछुड़े हुए हैं। पता नहीं पीछे क्या हो गया होगा? अब क्यों न हम यहीं राज्य कर लें। अपने पुरुषार्थ से, इतनी कठिनाइयों से हमने यह राज्य जीता है। तब भगवान् राम कहते हैं—

अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।।

हे लक्ष्मण! सोने की लंका मुझे तनिक भी अच्छी नहीं लगती। मेरी जननी भारतमाता जो है यह सौ-सौ स्वर्गों से अधिक ऊँची है। यह जिस राम की श्रद्धा है उस राम को कोई आक्रान्ता कैसे माने?

और, राम की मानवता को देखो। राम ने क्या किया? जब रावण मारा गया और मंदोदरी उसके दस-दस शीशों को उठाकर रोती है '**इक लख सुत सवा लख नाती, तिस रावण को दीया न बाती**'। एक लाख पुत्र और सवा लाख नाती होने के बाद भी तेरा कोई दीया-बाती करने वाला भी बचा नहीं। बहुत करुण विलाप करती है, उसके विलाप को देखकर विभीषण की आंखों में आंसू आ जाते हैं। और विभीषण की आंखों में आंसू देखकर भगवान् राम की आंखों में आंसू आ जाते हैं। राम विभीषण के कंधे पर हाथ रखकर कहते हैं—

मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।।

किसी आदमी के मर जाने से सारे वैर भी मर जाते हैं। हमारा प्रयोजन था धर्म की, मर्यादा की रक्षा करना। मर्यादा की संस्थापना यह हमारा कार्य था मर्यादा पुरुषोत्तम राम के रूप में। जो किसी परायी औरत को वह उठाकर ले जायेगा, समझाने पर भी नहीं समझेगा, वापस नहीं लौटाएगा, जिद पर अड़ा रहेगा तो अंत में स्वयं की दुर्गति के साथ-साथ कुलवंश का बीज नाश हो जायेगा। यह मर्यादा स्थापित करनी थी। यह मर्यादा स्थापित हो गई है। हमारा प्रयोजन पूरा हो गया है। आओ विभीषण, हम इसका संस्कार करें। हे विभीषण, यह मेरा भी उतना ही प्यारा है जितना तेरा प्यारा है। भगवान् राम ने अपने हाथों से अग्नि संस्कार किया। वाल्मीकि रामायण प्रमाण है। लंका के कवि मुग्ध हैं, कहते हैं—अरे! राम जैसा उदात्त महापुरुष कहाँ किसने दुनिया में देखा होगा, इतने परम वैरी, महानतम रावण के मरने के तुरंत पश्चात् उसके प्रति सब वैर भुलाकर अपने हाथों से अग्नि-संस्कार कर रहे हैं। कहते हैं—विभीषण! तेरा भाई मेरा भी तो भाई है। तेरा प्यारा है तो मेरा भी तो प्यारा है। ऐसा कहकर राम अपने हाथों से संस्कार करते हैं। यह है राम की महानता। ऐसी महानता संसार में कहाँ मिलेगी?

पश्चिम में क्या होता है? रोम के राजा जिस किसी राजा को पराजित करते थे, उसके शरीर को रथ के पीछे बांधकर सारे रोम के बाजारों में घसीट कर जान से मार डालते थे। जनता उस पर पत्थर फेंकती थी, हँसती थी, वह रोता चिल्लाता था, चीखता था। ऐसी दुर्गति राजाओं की होती थी।

और इंग्लैण्ड में क्या होता था? एक Whitelist (वाइटलिस्ट) नाम का बड़ा भारी कवि था। पोप की धांधली के विरुद्ध कुछ लेख लिखे। कवितायें लिखी। बड़ा भारी अच्छा कवि था। पोप ने फरमान निकाला Whitelist नामक दुष्ट को फांसी दी जाय। टावर आफ लंदन पर फांसी दी जाये। लोगों ने कहा—महाराज! क्या करें, यहाँ पर हमारा वश नहीं चलता। इंग्लैण्ड में पोप का प्रभाव नहीं है। पोप के चेले इंग्लैण्ड में शासन नहीं कर रहे हैं। पोप के विरोधी लोग शासन कर रहे हैं। है तो क्रिश्चियन ही, पर पोप की बात नहीं मानते इसलिये उसको फांसी नहीं दी जा सकती। वह और 20-25 वर्ष जीता रहा। जीने के बाद वह स्वाभाविक मौत मर गया। उसके बाद फिर अचानक रोमन कैथोलिक लोगों का शासन आ गया। पोप ने कहा—मैंने फरमान निकाला था Whitelist नामक दुष्ट को फांसी दी जाय टावर आफ लंदन पर। लोगों ने कहा—महाराज! उसको फांसी क्या दें वह तो मर चुका है। वह तो God को प्यारा हो गया, वह तो अपनी स्वाभाविक मौत मर गया। उसने कहा—नहीं। पोप धरती पर खुदा का प्रतिनिधि है। पोप का आदेश पूरा होना चाहिये। महाराज अब क्या करें? उन्होंने कहा उसकी कब्र को खोदो, कब्र को खोदकर उसके दबे हुए मुर्दे को निकालो और उस मुर्दे की गली-सड़ी हड्डियों को टावर आफ लंदन पर फांसी दो।

इतिहास की सचाई है। रामायण का सम्मेलन है। संध्या का समय है। झूठ बोलने वाले के मुंह में कीड़े पड़ जायें। इतिहास में लिखित है कि पोप के फरमान से कब्र को खोदकर उसकी सड़ी-गली हड्डियों को टावर आफ लंदन पर फांसी दी गई। कौअे, गिद्ध, उसको नोचकर खाते रहे और पोप बड़ा प्रसन्न होता रहा। ऐसे दुष्ट, नीच-पामर लोग ये धर्मगुरु बने हुए हैं। जो इतना वैर रखते थे कि किसी के मरने के बाद भी उसको कब्र से निकालकर फिर फांसियाँ दिया करते थे। और कहाँ भगवान् श्रीरामचंद्रजी हैं। ऐसे दुष्ट परम वैरी का तुरंत मरने के बाद अपने हाथों से अग्नि-संस्कार कर रहे हैं। विभीषण ने कहा—महाराज! आपने मेरे पर इतनी कृपा की है। कम से कम आप लंकानगरी में पधारें। आप तो लंका की युद्ध भूमि में रहे। अपने हाथ से मेरा राज्यतिलक कर दें। तब भगवान् रामचन्द्रजी ने अपनी आंखों में अश्रुजल भरकर कहा—विभीषण! जिस दिन तू रावण की लात खाकर आया था हमारे पास शरणागत होकर, उसी दिन लंकेश कहकर तुम्हारा राज्यतिलक कर दिया था। हम पिता को वचन देकर 14 वर्ष के लिये वनवास में

निकले हैं। 14 वर्ष तक हम किसी नगर की सीमा में पांव नहीं रख सकते। तेरी लंका कितनी सुंदर है, कितनी वैभवशालिनी है हम यह देखना नहीं चाहते। देखेंगे भी नहीं। हमने तेरी लंका की युद्ध भूमि को, समर स्थल को देख लिया और युद्धभूमि से हम लौटकर चले जा रहे हैं और तेरी लंका से हमारा कोई मतलब नहीं। हम प्रतिज्ञाबद्ध हैं तेरी लंका में पांव नहीं रख सकते। देखो, केवल एक-डेढ़ दिन बचा है 14 वर्ष पूरे होने में। उधर हमारा प्राण प्यारा भाई भरत नंदीग्राम में धरती पर बैठकर, हमारी पादुका पूजकर बैठा है और उसने कह रखा है कि 14 वर्ष के बाद क्षण भी ऊपर बीत गया तो भरतजी को जीवित नहीं पायेंगे। प्राण प्यारा भाई मुझे पुकार रहा है और उधर पिता का वचन मुझे मर्यादा में बांधे हुए है, इसीलिये विभीषण, तुम्हारी लंका तुझे ही मुबारक हो। हम तुम्हारी युद्धभूमि से ही लौटकर वापस जा रहे हैं। यह है राम। ऐसा निष्काम, ऐसी मर्यादा में, ऐसा महापुरुष दुनिया में किस देश ने कहाँ पैदा किया? कोई तुलना दुनिया में किसी महापुरुष से हो सकती है? इसलिये लंका के कवि भगवान् राम की अद्‌भुत महिमा गाते-गाते अघाते नहीं है। कलेनिया नामक एक बहुत भारी विश्वविद्यालय है कोलम्बो से दस मील की दूरी पर, वहाँ पर भगवान् राम विभीषण का राज्यतिलक कर रहे हैं और अनेक चित्र मूर्तियाँ बनी हैं और अनेक हनुमान्‌जी की मूर्तियाँ बनी हुई है। जाफना में हनुमान्‌जी के व राम के बहुत मंदिर हैं। लंका तो राम भक्ति से भरपूर है और लंका का नाम लेकर दक्षिण भारत में D.M.K., A.D.M.K. के लोग रावण के नाम पर नारे लगा रहे हैं। रावण के देश में रावण को कोई पूछता नहीं और ये मूर्ख लोग रावण का नाम लेकर नारा लगा रहे हैं।

मैं जब भी रामायण पढ़ता हूँ, मेरा यह अभिप्राय अधिक से अधिक दृढ़ बनता जाता है कि यह महाकाव्य मानव की सबसे उत्कृष्ट रचनाओं में से एक है। इस महाकाव्य ने हमारी समस्त जनता (के हृदय और मन) पर प्रभाव डाला है—न केवल मूल या इसके अनुवाद पढ़ने वालों पर, बल्कि ऐसे लाखों-करोड़ों लोगों पर भी, जिन्हें अक्षर-ज्ञान तक नहीं और जिन्होंने रामायण की कथा घर पर ही या तो माता-पिता से सुनी है, अथवा सार्वजनिक समारोहों में ऐसे व्याख्याताओं (कथा वाचकों) से, जो हमारी पवित्र भूमि की विशिष्ट विभूति रहे हैं।

—श्री एस. श्रीनिवास शास्त्री

प्रजातंत्र और श्रीराम

आज भारत जैसे विश्व के सबसे बड़े जनतंत्र में इतिहास की एक अत्यंत नाजुक घड़ी पर चुनाव जैसा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पर्व आया है। इस प्रसंग पर यह समझ लेना बहुत ही उपयोगी होगा कि जनतंत्र का महत्त्व क्या है, भारतीय जनमानस में उसकी परंपराएं एवं संस्कार कितने गहरे हैं तथा आज की आपात स्थिति में, संगीन की नोक पर भयभीत-आतंकित भारतीयजन अपने मताधिकार का मूल्य कितना आंकता है।

जनतंत्र का स्वामी जन ही होता है। वास्तविक प्रभुसत्ता जनता जनार्दन ही है। तंत्र तो जन की इच्छानुसार चलने वाला प्रशासन का रथ है। अंग्रेजी में Minister शब्द का अर्थ ही होता है नौकर या अभिकर्ता (दलाल) Ministerial Staff का अर्थ है—नौकर-चाकर। अतः लोकतंत्र में लोक ही सारे भारत के प्रशासन का स्वामी है तथा प्रशासन तंत्र के मंत्री, उपमंत्री, प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री आदि सब उसके वशवर्ती नौकर-चाकर हैं। किन्तु आज दुर्भाग्य से; भारत के आज के जनतंत्र में तंत्र का बोझल छकड़ा जनतंत्र के वास्तविक स्वामी जन को ही अपने चक्के के नीचे कुचलकर दौड़ता जाता है। नौकर ने मालिक का गला घोंट डाला और आपातस्थिति के पैशाचिक आतंक में जन को चीत्कार तक करने की अनुमति भी नहीं है।

जनतंत्र का आधारभूत सिद्धांत है मानव व्यक्तित्व की पवित्रता एवं स्वतंत्रता। प्रजातंत्र के मंदिर में कोई देवता है तो वह मनुष्य ही है। उसकी गरिमा का विकास ही लोकतंत्र की पूजा-प्रतिष्ठा है। मानव की स्वाधीनता लोकतंत्र की प्राणवायु है। भगवान् वेदव्यास जैसे आध्यात्मिक महर्षि ने भी कहा है—**'न हि मानुष्यात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्' ।** अर्थात् मनुष्य से श्रेष्ठ और कोई सचाई नहीं है जिस तंत्र में मनुष्य को मात्र कीड़ा-मकोड़ा समझकर उसे इच्छानुसार मसल दिया जाता है, जहाँ लाखों शांतिप्रिय नागरिकों को बिना कारण बंदी बनाकर कारागार में डाल दिया जाता है, वहाँ बिना अपील, वकील, दलील के डेढ़-दो साल तक सड़ाया जाता है, बालू मिले आटे का भोजन कराके स्वास्थ्य का हनन किया जाता है, तनिक

शिकायत करने पर लाठियाँ तथा लोहे के दण्ड से बर्बर प्रहार कर कपाल एवं हड्डियाँ तोड़ी जाती हैं। उस देश में जनतंत्र के स्वामी 'जन' की कैसी प्रतिष्ठा हो रही है इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

मानव के व्यक्तित्व की पवित्रता का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है उसकी स्वतंत्रता। यदि जन अपने तंत्र में भी स्वतंत्र नहीं है तो किसी पराये तंत्र में स्वतंत्रता की कल्पना नहीं की जा सकती। भारत में आपातस्थिति के विगत बीस मास में मानवीय स्वतंत्रता का पूर्णतया उच्चाटन कर दिया गया। मानव को भाव प्रकाशन तथा समाचार पत्रों को तथ्य प्रकाशन और विचार प्रदर्शन की भी स्वीकृति नहीं रही। स्वाधीनता प्रथम, द्वितीय गुण है अभय। भयभीत मानव पराधीन पशुतुल्य बन जाता है। भय, संत्रास, आतंक का भीषण दमनचक्र मनुष्य की मनुष्यता का गला घोंट देता है।

भारतीय परंपराओं में भगवान् रामचन्द्र ने अपनी प्रजा को संबोधित करते हुए कहा था—

जौं अनीति कछु भाषौं भाई।
तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।।—मानस—7/42/3

अर्थात् यदि मैं कभी भी कोई अनीति पूर्ण बात कहूँ तो हे जनता, जनार्दन आप निर्भय होकर मुझे रोक दें। इसी निर्भयता के कारण राम राज्य में एक साधारण धोबी की बात को भी अनसुना नहीं किया गया। तथा एक झोंपड़ी की क्षीण आवाज पर भगवान् रामचन्द्र जैसे चक्रवर्ती सम्राट ने अपनी प्राणवल्लभा जानकी तक को वनवास दे दिया। पर आज के तथाकथित लोकतंत्र में देश के लक्षावधी नर-नारी जब प्रधानमंत्री के भ्रष्ट तरीकों से चुनाव जीतने के विरुद्ध प्रयाग उच्च न्यायालय का सम्मान करते हुए यह मांग करते हैं कि प्रधानमंत्री अपने पद से हट जावे तो उन्हीं जनता-जनार्दन को ही अपराधी घोषित कर कारावास रूपी वनवास में डाल दिया जाता है।

'रामायण' विश्व ऐक्य का आधार

सरमद शहीद व दाराशिकोह—तुलसीदासजी जब बूढ़े थे उस समय शाहजहां का राज्य था। तुलसीदासजी अकबर के समय और जहांगीर के समय में थे। छः मुगल बादशाहों का शासन देखा था। वे 125 वर्ष तक जीये। औरंगजेब ने अपने पिता को कैद किया। उस समय एक फकीर था। उसका नाम सरमद शहीद था। वह आया था फिलस्तीन से (पैलेस्टाइन से)। उन्होंने औरंगजेब के बड़े भाई दाराशिकोह को अपना शिष्य बनाया। उसको रामायण पढ़ायी, उपनिषद्, गीता पढ़ायी। औरंगजेब ने दाराशिकोह को हाथी के पैर के नीचे कुचलवा दिया और सरमद को दिल्ली के लाल किले पर, फांसी पर लटकवा दिया। फांसी पर चढ़ते हुए सरमद ने एक रुबाई गायी। रुबाई बड़ी मार्मिक है। इसका भावार्थ यह है—सरमद इश्क की गली में बहुत बदनाम हुआ। यहूदी के दीन से तू इस्लाम में आ गया और फिर मालूम नहीं क्या हुआ तूने अल्लाह को भी छोड़ दिया। असली सत्य की खोज के लिये और अंत में लक्ष्मण और राम की शरण में आ गया। राम और लक्ष्मण की जय बोलकर उसने प्राण छोड़े। दिल्ली की जामा मस्जिद की सीढ़ियों के पास उसकी समाधि बनी हुई है।

डॉ. ग्रियर्सन—सन् 1857 की क्रांति के बाद अंग्रेजों ने डॉ. ग्रियर्सन को भेजा। कलकत्ता में पोर्ट विलियम् कालेज खोला गया। वहाँ पर भारत की 13-14 भाषाओं में बाइबिल छापने की योजना की गई। बाइबिल छपवाओ और प्रचार करो और भारत में आई. सी. एस., पी. सी. एस. किये हुए मिलिटरी अफसर हैं उनको भारतीय भाषा पढ़ाओ ताकि जो भारतीय षड्यंत्र रचते हों बात करते हों, उनको बम से मार डालेंगे उनको छुरे से मार डालेंगे, अंग्रेज अफसर तुरंत हिन्दुस्तानी समझ लें और उसकी बात को जान लेवें। ताकि सन् 1857 जैसी क्रांति पुनः न हो सके। डॉ. ग्रियर्सन को पोर्ट विलियम् कालेज में प्रिंसिपल बनाकर भेजा गया। वह बहुत विद्वान् था। अनेक भाषाओं का जानकार था। उसने भारतीय भाषायें पढ़ी। हिन्दी भी पढ़ी, तुलसी रामायण भी पढ़ी। रामायण पढ़कर बहुत ही कृत-कृत्यता का, कृतज्ञता का अनुभव किया।

और उसने कहा अरे इंग्लैण्ड ! तुम्हारे पास सबसे ऊँचा नैतिक आदर्श क्या

है? तुम्हारे पास सबसे ऊँचा नैतिक आदर्श बाइबिल और सबसे ऊँचा साहित्यकार तुम्हारे पास शेक्सपियर है। अरे इंग्लैण्ड! यदि एक पलड़े में बाइबिल और शेक्सपियर दोनों को एक साथ में रखा और दूसरे पलड़े में भारत की सिर्फ तुलसीकृत रामायण को रखा तो तुलसी रामायण का पलड़ा भारी होगा। तुम्हारे बाइबिल और शेक्सपियर उसके सामने हलके होंगे। खुद अंग्रेजों ने इसे भेजा, भारतीय को पंजे के नीचे दबाये रखने के लिये। उसने कहा—मेरी अंतरात्मा सच कह रही है तुम्हारी बाइबिल और शेक्सपियर रामायण के सामने तुच्छ हैं।

ब्रिटिश पादरी ए. जी. एटकिन्स रामचरितमानस से इतना प्रभावित हुआ कि वह बाइबिल छोड़कर मानस प्रचार में लग गया—इंग्लैण्ड से एक मिशन भारत में हिन्दुओं को क्रिश्चियन बनाने के लिये भेजा। उसको उत्तरप्रदेश एवं बिहार का क्षेत्र दिया गया। उन्होंने बाइबिल सोसायटी को लिखा—तुलसी रामायण उत्तर भारत की बाइबिल है। वहाँ से आदेश आया कि तुलसी रामायण छुड़ाकर ईसाई बाइबिल पढ़ाओ। उसने कहा—अच्छा! रामायण के गुण-दोष क्या हैं यह जानकर उसकी आलोचना करूंगा फिर उसको उखाड़कर के बाइबिल पढ़ाऊंगा एवं उनके हाथ में बाइबिल दूंगा। इसलिये उसने काशी जाकर हिन्दी पढ़ी, अवधी पढ़ी और हिन्दुस्तानी बाइबिल रामायण पढ़ी। उसने सोचा—मैं आलोचना करूंगा, इसके लिये बिन्दु लिखता गया। फिर उसने सोचा मैं जो आलोचना करूंगा, उसे लोग हलका न सोचें कि हलके आदमी ने, घटिया आदमी ने आलोचना की है। पहले अच्छी धाक बैठा लूं। वह स्वयं बहुत अच्छा साहित्यकार था, कवि भी था। उसने तुलसी रामायण के दोहा-चौपाई का अंग्रेजी में पद्यानुवाद करना शुरू किया। तुलसीदास के दोहा-चौपाई छंद का भावानुवाद नहीं हूबहू अनुवाद, भाषा एवं भाव उभय का मणि-कांचन संयोग। जैसे-जैसे गहराई में गये आनंद आना शुरू हुआ। जब बालकाण्ड शेष हुआ तब सोचा—यदि यह प्रकाशित हो जाये तो लोग मेरी प्रशंसा करेंगे। तब आलोचना करूंगा। लोग कहेंगे कि किसी अनाड़ी ने आलोचना नहीं की। वरन् एक अधिकारी विद्वान् आलोचना कर रहा है। तब उसे उखाड़ कर फिर बाइबिल दूंगा।

उसने इस अनुवाद को राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन को दिखाया। उनको खूब अच्छा लगा। वे रामायण लेकर गोविंद वल्लभजी के पास पहुँचे। उसके पश्चात् वे दोनों गांधीजी के पास पहुँचे। गांधीजी थे तुलसी रामायण के भक्त। उन्होंने कहा—तुलसी मेरा प्राणवायु। तुलसीदासजी की रामायण एवं गीता इन दोनों ग्रंथों ने गांधीजी का निर्माण किया था। उनको भक्ति की खुराक तुलसीकृत रामायण से एवं ज्ञानलाभ गीता से मिलता था। गांधीजी ने यह अंग्रेजी अनुवाद पढ़ा तो उन्हें खूब अच्छा लगा। उनकी दोनों आंखों से गंगा-जमुना बहने लगी। उन्होंने कहा—अरे, ओ पादरी! आपने तो बहुत अद्भुत कार्य किया है। दोहा-चौपाई छंद में अंग्रेजी

भाषा में तुलसी रामायण! आज पर्यन्त यह कार्य कोई नहीं कर सका उसे आपने कर दिखाया। आप क्रिश्चियन धर्मावलंबी पादरी भले ही हों किन्तु साहित्य के क्षेत्र में आपका बहुत बड़ा अवदान रहेगा। यह अनुवाद कार्य चालू रखें। इसे बंद न करें। साहित्य एक अनुपम वस्तु है साहित्य की आपके द्वारा अनुपम सेवा होगी।

जब आधे पर्यन्त पहुँचे तब बाइबिल सोसायटी इंग्लैण्ड को लिखा—मैं भारत आया था बाइबिल का प्रचार करने के लिए किन्तु यहाँ आकर देखा उत्तर भारत का बाइबिल तुलसी रामायण। तब रामायण पढ़ना शुरू किया। समालोचना करने की दृष्टि से। किन्तु तुलसी रामायण के रंग में आज इतना रंजित हो गया कि तुम्हारी बाइबिल तुम अपने पास ही रखो। मैं तो तुलसीदास का हो गया हूँ। इस ग्रंथ में इतने गुण भरे हुए हैं कि गुणों की खान है। पद-पद में, पंक्ति-पंक्ति में चमत्कार है, गुण ही गुण भरे हुए हैं। इतने श्रेष्ठ ग्रंथ को छोड़कर बाइबिल जैसे घटिया ग्रंथ को पढ़ाना, यह मानवता का अपमान होगा। इसलिये उठाकर रखो अपनी बाइबिल। मैं तो अब तुलसीदास का हो गया हूँ। मुझे अब बाइबिल की आवश्यकता नहीं है। मैं अपने जीवन का पथ-प्रदर्शक पा गया हूँ। जीवन के 25 वर्ष लग गये यह अनुवाद करने में।

यह अनुवाद जिस दिन समाप्त हुआ उस दिन उन्होंने तुलसी बाबा से निवेदन किया—तुलसी बाबा! लोग रामायण का नवाह-पारायण करते हैं, कोई मास-पारायण करता है मैंने तो जीवन के 25 वर्ष आपका पारायण किया है। बाबा! पारायण की समाप्ति पर पुष्पांजलि देते हैं, फूल माला पहनाते हैं पुस्तक को। मेरे तो जीवन का समस्त कार्य परिपूर्ण हो गया। अब तो मेरी कोई भी चाह बची नहीं। कुछ भी अवशिष्ट उपलब्धि रही नहीं। आज मैं कितना आनंदित-प्रफुल्लित, ऐसा आनंद जीवन में कभी नहीं पाया। आज मैंने अपने जीवन का श्रेष्ठतम कार्य परिपूर्ण किया। मेरा जीवन परिपूर्ण हो गया। अब और कुछ भी पाने की इच्छा शेष नहीं रही और न कुछ करने की इच्छा शेष है। मैं तुमको क्या समर्पित करूं? तुलसी बाबा तुमको अशेष प्रणाम!

किन्तु मजे की बात यह हुई कि प्रणाम करने गये वह पादरी साहब अपने प्राण-पुष्प ही अर्पित कर बैठे। अपने प्राणों को ही त्याग दिया। यह अंग्रेजी कृत तुलसी रामायण हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस ने छापा। गांधीजी के लड़के देवदास गांधीजी तब हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस के जनरल मैनेजर थे। गांधीजी ने बिड़ला को कहकर उसके खर्च से रामायण छापी। किन्तु पुस्तक निकलने के पूर्व ही पादरी साहब का जीवन शेष हो गया। यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ दिल्ली में तुलसी जयंती के पुण्यलग्न में। उद्घाटन किया सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने।

बालकृष्ण शर्मा, दिनकरजी, बड़े-बड़े मूर्धन्य व्यक्ति, गणमान्य उपस्थित थे

उस समारोह में। देवदास गांधीजी ने यह ग्रंथ डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के हाथ में दिया। प्रो. ओबराय उस समय सभा में उपस्थित थे। जितने ज्ञानी-गुणी व्यक्ति उसमें उपस्थित थे सबकी आंखें छल-छल कर रही थी द्रवित हो रही थी। पादरी ने तो बहुत अद्‌भुत कार्य किया है। यह सब तुलसी का चमत्कार है।

इसलिये सोहनलाल द्विवेदी लिखते हैं—

जब मुगल महीपों के बादल छाये, भारत नभ में अपार।
दासता पराजय गृह विग्रह से, गहराया तम का प्रसार।।
तब राम नाम का अमृत ले, आए गौरव गाते अमन्द्र।
मृतहत जनता को मिले प्राण, चमके तुम बन सौभाग्य चन्द्र।।

जार्ज बर्नार्ड शॉ—इंग्लैण्ड का बहुत बड़ा साहित्यकार जार्ज बर्नार्ड शॉ कहता है—शेक्सपियर क्या है मेरे सामने। लोग भी मानने लगे कि शेक्सपियर के बाद सबसे बड़ा नाटककार यही हुआ है। कई अर्थों में शेक्सपियर से भी महान् है। वह कहता है—युग आने वाला है, युग बतायेगा कि शेक्सपियर ऊँचा था या मैं ऊँचा था। लेकिन कुछ भी है, शेक्सपियर से किसी तरह कम नहीं है। इस युग में सबसे बड़ा ऊँचा साहित्यकार, बड़ा गंभीर लिखने वाला जार्ज बर्नार्ड शॉ। वह कहता है—अरे इंग्लैण्ड! तुम्हारे पास सबसे बड़ा महाकाव्य क्या है? Paradise lost नामक एक महाकाव्य मिल्टन ने लिखा। उसमें शैतान को धक्का मारकर निकाल दिया स्वर्ग से। शैतान कहता है ऐ गॉड! मैं तुम्हारा पहले नंबर का शत्रु हूँ। गॉड, तुमने प्रचारक रखे हुए हैं। पंडित, पुरोहित रखे हुए हैं जो दिन-रात तेरा प्रचार करते रहते हैं। मेरा कौन प्रचार करता है? शैतान का कोई प्रचार करता है? कोई प्रचार नहीं करता। तुमने ग्रंथ बना रखे हैं प्रचार के लिये। शैतान का कोई ग्रंथ है? शैतान ने कोई ग्रंथ नहीं बना रखा है। तुमने मंदिर, गिरजाघर बना रखे हैं। हमने कुछ नहीं बना रखा है। तुम्हारे पंडित-पुरोहित दिन-रात प्रचार करते रहते हैं फिर भी देख लो चर्च में ज्यादा लोग जाते हैं या वेश्यालयों में। ज्यादा लोग मेरी तरफ ही आते हैं। देख लो खुदा मैं तुमको एक घूंसा मारकर गिरा दूंगा। मैं पहले नंबर का शत्रु हूँ और लोग मेरे पास ज्यादा हैं। मिल्टन कृत Paradise lost में यही भाव है, यही तथ्य है।

बर्नार्ड शॉ लिखता है—तुलसी रामायण की तुलना में मिल्टन का महाकाव्य Paradise lost वैसा ही है जैसे उत्तम वारी (शराब) की तुलना में किसी गंदी नाली का पानी। तुलसी रामायण उत्तम वारी है।

तुलसी रामायण की तुलना अच्छी शराब से दी है। क्योंकि पश्चिम के लोग शराब को अच्छा समझते हैं। भारत का होता तो कहता—उत्तम अमृत की तुलना में गंदी नाली का पानी। पर उसने कहा—उत्तम शराब की तुलना में गंदी नाली का पानी। तो मिल्टन तुलसी की तुलना में कहीं नहीं ठहरता।

होमर के मानस पर भारतीय महाकाव्यों का प्रभाव—यूनान के सबसे महान् महाकाव्य लेखक होमर अंधे, प्रज्ञाचक्षु कवि थे। उन्होंने दो महाकाव्य लिखे—इलियड और ओडिसी। तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि इलियड की कथा रामायण से उधार ली गयी है या प्रभावित है या पूरी तरह प्रेरित है क्योंकि इलियड की कथा से कई शताब्दियों पूर्व रामायण की कथा प्रचलित थी।

फ्रेंच साहित्यकार फाउची अपने रामायण के फ्रेंच अनुवाद की भूमिका में लिखते हैं—रामायण की रचना होमर के काव्यों से बहुत पुरानी है। होमर ने अपने विचार उससे ही लिये हैं।

पहले तीन अध्यायों की पूर्ण समानता देखकर लेखक को अपनी पुस्तक 'राम और होमर' में ऐसा लिखना पड़ा कि वाल्मीकि रामायण को पढ़कर ही होमर ने अपने ग्रंथ रचे हैं। ये बातें पंजाब यूनिवर्सिटी के प्रो. आर. ए. दास ने तीन-चार हजार वर्ष के प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों से जो उन्होंने लंदन के तिजोरी बैंक में अमानत रखे हैं, से सिद्ध की।

रामायण की कथा आप सब जानते हैं। इलियड जो यूनानियों का महाकाव्य है उसकी कथा क्या है उसको संक्षेप में आपको बताता हूँ।

एक राजा ने अपने बेटे को वनवास दे दिया। उसके साथ उसकी पत्नी गयी। उसके साथ भाई भी चला गया। जंगल में रहने लगे। वनवासी लोगों से मित्रता कर ली। उस राजकुमार का नाम था Manalus उसकी पत्नी का नाम हेलेन था। उसकी स्त्री श्रेष्ठ सुंदरी थी। उसको Troy नामक द्वीप का राजकुमार पेरिस प्राप्त करना चाहता था। प्राप्त करने की चेष्टा करता रहा पर स्वयंवर में उसने Manalus को वरा। अतः वह हाथ मलता रह गया। वह उसे प्राप्त नहीं हुई। पर घात लगाये रहा।

एक बार Manalus शिकार को गया था। तब उसने हेलेन को अकेली देखकर (Troy द्वीप का राजकुमार) उसको उठाकर ले गया। और समुद्र के पार जाकर द्वीप में उसको बंदी बना दिया। तब Manalus ने दो बार दूत को भेजा। देखो, मेरी पत्नी वापस भेज दो। शराफत से काम लो पर उसने नहीं माना।

पेरिस का एक भाई था। पेरिस को उसने कहा—क्यों परायी औरत को घर में रखते हो, क्यों उसको उठाकर ले आये हो? अच्छा नहीं किया। इसे वापस कर दो। उसने उसको लात मारकर बाहर कर दिया। तो वह आकर Manalus से मिल गया।

आखिर में उससे युद्ध हुआ और युद्ध में जैसे रावण के पेट में अमृत कुंभ था। जब तक अमृत कुंभ का भेदन नहीं होता तब तक ग्रीवा कटने पर फिर लग जाती थी। रावण मरता ही नहीं था। तब विभीषण ने भेद बताया कि इसके पेट में अमृत कुंभ है। पेट में बाण मारिये, तब मरेगा। उसी प्रकार उसने वहाँ एक सेनापति बनाया कहानी में ऐटीलिज को। ऐटीलिज सेनापति था ट्राय द्वीप के राजकुमार पेरिस का। उसको तीर

मारते तो तीर टूट जाते थे। वह नहीं मरता था। शरीर फौलाद का बना हुआ था। तब पेरिस के भाई Antenor ने बताया यहाँ मारने से नहीं मरेगा। इसकी मां ने जनमते ही अमृत कुंड में डुबोया था। उसका शरीर वज्र का बन गया। अतः वहाँ मारने से नहीं मरेगा। पर उसकी मां ने इसे एड़ी से पकड़कर डुबोया था अमृत कुंड में। इसलिये एड़ी सूखी रह गई, कच्ची रह गयी। इसलिये ऐड़ी पर मारिये तब वह मरेगा। एड़ी पर मारा तब वह मरा। और Troy में आग लगायी गयी, हेलेन को वापस लाया गया। पूरी रामायण की कहानी। यूनान के अंधे होमर ने रामायण की कथा चुराकर इलियड महाकाव्य लिखा।

रामायण	इलियड
1. रामायण, लंका विजय का महाकाव्य है। राम+अयण का एक अर्थ है राम का सैनिक अभियान। दूसरा अर्थ है राम का धाम। लंकाह्नतिब्बती एवं अनेक वनवासी भाषाओं में लंका का अर्थ ही द्वीप है।	1. यूनानी महाकाव्य इलियड का नाम Ilium इलियम से बना है। जिसका अर्थ है Troy (Troy द्वीप की विजय)। इलियड में एशिया माइनर के Troy द्वीप पर यूनानियों की विजय का वर्णन है।
2. राम व लक्ष्मण में परस्पर अतीव प्रेम है।	2. Sparta के दो राजपुत्रों Manalus और Agamemnon में परस्पर प्रेम है।
3. दशरथ की आज्ञा से वनवास।	3. पिता Argal ने राज्य से निकाल दिया।
4. राम ने सीता को स्वयंवर में जीता। सीता विश्व की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी है। जिसके रूप का वर्णन करने में तुलसीदासजी लिखते हैं—गिरा अनयन नयन बिनु बानी। (1-228/2 मानस) इसे प्राप्त करने के लिये लंकाद्वीप का रावण ललचाता रहता है।	4. Manalus ने हेलेन को स्वयंवर में जीता, जिसके रूप-सौंदर्य का वर्णन करने वाला महाकवि स्वयं अनैन है। इसे प्राप्त करने के लिये Troy द्वीप का राजकुमार पेरिस Paris सदा ललचाता रहता है।
5. लंका समुद्र के बीच स्वर्णिम द्वीप है।	5. Troy समुद्र पर ऊँचे महल वाला द्वीप है।
6. लंका में विश्रवा की राक्षस-पत्नी से उत्पन्न बलशाली पुत्र रावण का राज्य था।	6. Troy में राजा Priam का पुत्र पेरिस बड़ा घमण्डी था।

7. राम की अनुपस्थिति में रावण सीता को चुरा ले गया।	7. Manalus की अनुपस्थिति में Troy का राजकुमार पेरिस हेलेन को चुरा ले जाता है।
8. राम वनवासियों की विशाल सेना लेकर लंका को घेर लेते हैं।	8. Manalus ग्रीक राजकुमारों की 1200 जहाजों का बेड़ा लेकर Troy को घेर लेता है।
9. रावण का भाई विभीषण रावण के पापों से सहमत नहीं था।	9. Troy का बुद्धिमान Antenar एण्टेनर पेरिस के कुकृत्यों से सहमत नहीं।
10. विभीषण रावण को उपदेश देता है कि सीता को लौटा दे।	10. एण्टेनर पेरिस को उपदेश देता है कि हेलेन को लौटा दे।
11. विभीषण रावण को छोड़कर राम से जा मिलता है।	11. एण्टेनर पेरिस को छोड़कर Manalus के साथ जा मिलता है।
12. विभीषण राम की सेना को बचाता है तथा रावण की मृत्यु की युक्ति बतलाता है।	12. एण्टेनर न होता तो Manalus मारा जाता।
13. युद्ध में रथ तथा घुड़सवार, दैवी अस्त्रों का प्रयोग।	
14. मेघनाथ के बाण लौट आते थे।	14. Troy के सेनापति के बाण लौट आते थे।
15. हनुमानजी की गर्जना से आतंक छा जाता था।	15. ग्रीक योद्धा Achilles की गर्जना से आतंक छा जाता था।
16. हनुमान ने लंका तोड़ डाली।	16. Troy के लौहद्वार को तोड़ा।
17. हनुमान ने बहुत विशाल और बहुत सूक्ष्म रूप बनाकर सुरसा को पराजित कर, लंकिणी एवं अक्षयकुमार को मारकर युक्ति से लंका की दुर्गप्राचीर के भीतर प्रवेश किया।	17-18. Colysseus ने एक विशाल लकड़ी का घोड़ा बनाने की युक्ति बताई जिसके भीतर बैठे हुए ग्रीक योद्धा घोड़े के साथ ही Troy में प्रविष्ट हो जाएं।
18. भारी पत्थरों एवं वृक्षों से भी युद्ध हुआ। तलवार, भाला एवं धनुषबाण का भी प्रयोग हुआ।	

19. कुंभकर्ण जब युद्ध भूमि में गिरा तो बड़ी संख्या में सेना नीचे दबकर मर गई।	19. Troy का वीर मार्स Mars जब मरकर गिरा तो सात एकड़ जमीन घिर गई।
20. देवता आकाश में युद्ध देखने के लिये प्रकट हुए।	20. देवता आकाश में दर्शक।
21. हनुमान के अंग वज्र के थे।	21. Anchilles के अंग वज्र के थे।
22. रावण मरता नहीं था। उसके उदर में अमृत कुंभ था। पेट में बाण लगने से मरा।	22. बाण शरीर पर लगकर टूट जाते थे।
23. महाभारत कथा में दुर्योधन की माता गांधारी ने दुर्योधन के नग्न शरीर को देखने मात्र से उसे वज्र के समान अंग वाला बना दिया था। उसके शरीर पर गदा पड़ने पर टूट जाती थी किन्तु उसका कुछ भी नहीं बिगड़ता था। केवल गुप्त-अंग को लंगोट से ढक लेने के कारण ही अंग दुर्बल रह गया था। श्रीकृष्ण के संकेत पर भीम ने वहीं गदा मारी तब दुर्योधन की मृत्यु हुई।	23. Anchilles की एड़ी मर्मस्थान था। वहीं बाण लगने से Anchilles मरा। Anchilles के जन्म के समय उसकी माता ने उसे एक अमृत सरोवर में डुबोया जिससे सब अंग वज्र के बन जायें, केवल उसकी एड़ी से जहाँ से उसकी माता ने पकड़ कर डुबोया, कमजोर रह गयी।
24. हनुमान ने अपने को स्वेच्छा से बंधवा लिया ताकि उसे रावण की राजसभा में पहुँचने का अनायास ही अवसर मिल जाय। लंकावासी कुतूहलवश हनुमान को मनोविनोद के लिये बांधकर रावण के दरबार में ले गये।	24-25. यूनानियों के लकड़ी के घोड़ों को खेल-खेल में भीतर ले जाने से Troy का पतन हो गया।
25. हनुमान की पूंछ को आग लगाने से लंका का नाश हो गया।	
26. राम सीता सहित लौटकर अपनी राजधानी अयोध्या में पधारे। अयोध्या का अर्थ है युद्ध में न जीतने योग्य।	26. Manalus हेलेन सहित लौटकर अपनी राजधानी स्पार्टा में पधारे। स्पार्टा में जन्म के साथ ही बच्चों को एक पहाड़ी से लुढ़का दिया जाता था ताकि कमजोर बच्चे मर जायें।

रूस का बड़ा भारी विद्वान् वरान्निकोव—उसने अपने जीवन के 25-30 वर्ष लगाकर पहले वाल्मीकि रामायण का फिर तुलसी रामायण का रूसी भाषा में अनुवाद किया। अनुवाद चल रहा था। द्वितीय महायुद्ध शुरू हो गया। जर्मनी ने लेनिनग्राड पर हमला कर दिया। तब वह स्टालिन के पास जाकर बोला—मुझे कलम छोड़कर बंदूक उठानी पड़ेगी। उसने पूछा—क्यों? उसने कहा—देश पर हमला हो गया है, देश की रक्षा करनी है। उसने कहा—जाओ वरान्निकोव! हमारे पास देश के रक्षक बहुत हैं पर हमारे पास दूसरा वरान्निकोव नहीं है जो तुलसी रामायण का अनुवाद कर सके। जाओ, तुम अपना अनुवाद करो। उसने कहा—मातृभूमि पर हमला हो गया है उसकी रक्षा मैं नहीं करूंगा क्या? उसने कहा—हमारे पास रक्षक बहुत हैं, यह देश की रक्षा से भी अधिक महत्त्व का कार्य है, तुलसी रामायण का अनुवाद। यह कार्य दूसरा कोई नहीं कर सकता, तुम्हीं कर सकते हो।

तो मैं कैसे करूं? तोपें छूट रही हैं, दिन-रात बमबारी हो रही है, शोर मचा हुआ है, इसमें शांतिपूर्ण काम नहीं कर सकता। तो उसने कहा—अच्छा! इसका प्रबंध मैं करता हूँ। तो उसने एक सेना की टुकड़ी को आदेश देकर उसकी सारी लाइब्रेरी अजरबेजान (या अरबैजान) रूस की सीमा पर, जहाँ ईरान से सीमा लगती है काकेशिखर पर्वत के पास वह शांतिपूर्ण स्थान है वहाँ भिजवा दी। तब उसने वहाँ अपना अनुवाद कार्य पूरा किया।

क्या यह उल्लेखनीय नहीं कि जब रूस महायुद्ध में फंसा था, उस कठिन वेला में भी रूसी कम्यूनिस्ट पार्टी तथा वहाँ के शासन ने अपने देश के एक ऐसे सांस्कृतिक कार्य को पूरा होने में सहयोग दिया जिसका मूलाधार एकमात्र गोस्वामी तुलसीदास का लिखा ग्रंथ, रामचरितमानस था। दूसरा देश होता तो कह सकता था कि यहाँ तो लड़ाई आंगन में आ गयी और आपको रामायण की पड़ी है। यही नहीं सरकार ने रामायणी पं. वरान्निकोव को 'लेनिन पदक' प्रदान करके सम्मानित किया। लेनिन पदक कम्यूनिस्ट पार्टी शासन वाले देश का सर्वोच्च गरिमामण्डित सम्मान या पुरस्कार माना जाता है। ये कोई मार्क्सवाद के न कार्यकर्ता थे न मार्क्सवाद के पंडित थे। वरन् वे तो एक साधक थे रामायण और भाषाविज्ञान के।

प्रो. वरान्निकोव ने अपनी विस्तृत 300 पृष्ठीय भूमिका में राम के प्रजापालक, दीन हितकारी, दीन-दुःखियों की पीड़ा को शमन करने हेतु राज्यसिंहासन त्याग और तुलसी की देश को विदेशी शासन से मुक्ति दिलाने की भक्ति की तीव्रता से आवेष्टित युक्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

ये गरीब परिवार में जन्मे थे। पिता बढ़ई थे। वे उन्हें सम्यक् शिक्षा न प्राप्त करा सके। अतः वह खुद परिश्रम करके पढ़ते रहे। संघर्ष किया। इस प्रकार बढ़ई का बेटा रूस का तुलसीदास बन गया।

अनुवाद पूरा करने के बाद अपने बेटे को बुलाया। कहा—बेटा! तुम मेरा श्राद्ध करोगे? उसने कहा—पिता जी! श्राद्ध क्या होता है? उसने कहा—भारत के बच्चे अपने बड़ों की स्मृति में श्रद्धा समर्पित करते हैं उसको श्राद्ध कहते हैं। तो उसने कहा—मुझे क्या करना होगा? उसने कहा—मेरा तुलसी रामायण का अनुवाद छपवा देना और मेरी समाधि पर एक पत्थर की शिला लगाकर तुलसी रामायण की निम्न पंक्तियाँ भी अंकित करवा देना। ऊपर देवनागरी लिपि में, उसके नीचे रूसी भाषा में उसका अनुवाद, अर्थ छपवा देना। उसने कहा—यह क्यों? उसने कहा—इसमें बड़ा रहस्य छिपा हुआ है? उसने पूछा—क्या रहस्य छिपा है पिता जी? रहस्य यह है कि जिंदगी भर मुझे कम्यूनिस्ट लोग ताने मारते रहे हैं कि तुम कम्यूनिस्ट देश में जन्मे, कम्यूनिस्ट आत्मा-परमात्मा, पुनर्जन्म नहीं मानते, धर्म-कर्म नहीं मानते और तुम कम्यूनिस्टों के देश में जीकर, रहकर भारत की एक दकियानूसी किताब के अनुवाद में सारी जिंदगी तबाह कर रहे हो। तुलसी रामायण के अनुवाद में जीवन बर्बाद कर रहे हो!

तुम इतने बड़े विद्वान होकर और कोई बड़ा काम कर सकते थे, देश-समाज की सेवा कर सकते थे तुम तुलसी के पीछे अपना जीवन नष्ट क्यों कर रहे हो? मैं उनको कुछ उत्तर नहीं देता था। मैं कहता—अभी काम करने दो, बाद में जवाब दूंगा? अब मेरी समाधि उसका जवाब देती रहेगी। उनकी समाधि पर तुलसीदास की यह चौपाई अंकित है जिसे वहाँ की सरकार ने साकार किया है।

भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरताँ गरल सराहिअ मीचु।। मानस 1/5

भला आदमी दूसरों में भलाई ढूंढ़ता रहता है। भले आदमी को जहाँ भी अच्छी बात मिलती है उसको लेता है। अरे! शेक्सपियर में अच्छी बात है, अरे! वेद-गीता में अच्छी बात है, अरे! रामायण में अच्छी बात है उसकी प्रशंसा करता है उसको ग्रहण करता है। जहाँ कहीं अच्छी बात मिलती है उसको ग्रहण करता है।

और, बुरे आदमी को बताया कि इटली के चोर ने चोरी की नई-तकनीक निकाली है—हाँ, हाँ, बताना-बताना। अरे अमरीका में हिप्पीकट बाल रखते हैं वह कहेगा—अच्छा-अच्छा। जिस आदमी की जैसी पसंद, जैसी रुचि, वैसी वस्तु ढूंढ़ता रहता है। बुरे आदमी को बुराई पसंद है, वही वह सबमें ढूंढ़ता रहता है, बुरा आदमी बुराई ग्रहण करता है। भला आदमी भलाई ग्रहण करता है। सुधा सराहिअ अमरता। अमृत की सराहना इसी बात के लिये कि वह सदा अमर बनाये रखता है और गरल सराहिअ मीचु विष की सराहना इसी बात में है कि वह मनुष्य को मार डालती है। जितनी विष की गुणवत्ता अच्छी है उतनी ही अधिक कीमत। कुछ विष ऐसे है जो छूते ही, सूंघते ही मार डालते हैं। उसकी कीमत बहुत अधिक। गरल की

सराहना इसी बात में है कि वह मार डालेगा। इसलिये भला आदमी भलाई खोजता है बुरा आदमी बुराई खोजता है। उसने कहा—मैं भला था। तुलसी रामायण में मुझे जीवन की सबसे ऊँची भलाई मिली। मैंने ग्रहण कर ली। तुम नीच आदमी, दुष्ट आदमी, लोगों को मारने वाले, रेल्वे को उखाड़ने वाले, हत्या करने वाले, तुम्हें जहाँ कुछ बुराई मिली, लेते रहे। तुलसी रामायण में मुझे जीवन की सर्वोत्तम भलाई मिली। यह वरान्निकोव की समाधि मैं आंखों से देखकर आया हूं। मैंने आंखों से श्रद्धांजलि चढ़ाई है। कम्यूनिस्ट देश में रहकर तुलसी के प्रति कितना सम्मान एवं समर्पण प्रस्तुत किया है। केवल इतना ही नहीं अब वहाँ एक रिवाज चल पड़ा है। वे लोग अपने मन को ठीक करने के लिये मास्को में रामायण का मंचन करते हैं। वे रामायण पर लीलाएं करते हैं। क्योंकि उनके यहाँ भयंकर भोगवादी लीला है। उससे वे तंग आ चुके हैं। उसके कारण वे अपने जीवन को शांत करने के लिये रामायण की शरण में आते हैं।

इस प्रकार से सारे भूमण्डल में रामायण का प्रचार हुआ और वहाँ एक राम-सीता उत्सव, वहाँ के आदिवासी (रेड इंडियन्स) अमरीका में अभी तक खेलते हैं। तो भूमण्डल का एक भी देश ऐसा नहीं है जिसमें राम कथा का प्रचार नहीं हुआ है। रामकथा का प्रचार बहुत पहले से चला आ रहा है। विगत चार सौ वर्षों में तुलसीदास ने इस काम को इतने अधिक चमत्कृत ढंग से प्रचारित किया कि आज रामायण के प्रताप से हम भारतीय जीवित हैं हिन्दू धर्म जीवित है। रामायण के प्रताप से हम दिग्विजयी बने हैं। रामायण के प्रताप से विदेशों में या दूर-दूर देशों में हमारे राष्ट्र राज्य बने हैं। रामायण के प्रताप से विदेशों में हिन्दी राष्ट्रभाषा बनी है। अपने देश में भी हिन्दी राष्ट्रभाषा बनी है। देश में 1200 वर्षों तक विदेशी शासन रहा। इस्लाम 1000 वर्ष तक चलता रहा। मंदिर तोड़े गये, बच्चों को दीवार में चुना गया, लोगों को तेल की कड़ाही में पकौड़े की तरह भूना गया, गरम तवों पर जलाया गया। आरों से चीरा गया, बहुत अत्याचार हुए, रमणियों पर बलात्कार हुए। सब कुछ हुआ, फिर भी भारत बचा रहा क्योंकि उसके पास रामायण थी। रामायण ने भारत को जीवित रखा। भारत में विदेशी विधर्मियों ने बहुत मंदिर तोड़े, बहुत विश्वविद्यालय जलाये, बहुत कुछ नाश किया पर उसने रामायण पर प्रतिबंध नहीं लगाया। अगर रामायण पर प्रतिबंध लगाते तो भारत का सर्वनाश हो जाता। भारत जीवित रहा तो रामायण के कारण। अतः रामायण भारतीय जीवन की संजीवनी है।

आरा, बलिया, छपरा से गिरगिटिया मजदूर लेकर गये कृषि काम के लिये। जो देश वैभव के शिखर पर था वह देश अंग्रेजों की आर्थिक नीति के चलते अकाल एवं भुखमरी का शिकार हुआ। उन्होंने हमारी परंपरागत अर्थ-व्यवस्था को नष्ट करके अपने हित के लिये आर्थिक शोषण प्रारंभ किया। फलस्वरूप भारतीयों

के पास दो ही विकल्प भुखमरी से बचने के लिये रह गये या तो फौज में भरती होकर अंग्रेजों के हित में प्राण देवें या फिर बंधुआ मजदूर बनकर भारत से बहुत दूर टापुओं में अंग्रेजों के हित में कृषिकार्य करने जायें। फिजी द्वीप समूह है भारत से सात हजार मील दूर। पूर्वी इंडोनेशिया के पार, आस्ट्रेलिया के पार वहाँ पर साढ़े तीन हजार द्वीप हैं। वहाँ पर जंगलों को साफ करके उनमें गन्ना लगाने का काम करने के लिये, लेकर गये। मारीशस ले गये वहाँ पर इसी प्रकार का काम कराने के लिये। भारत से साढ़े सात हजार मील दूर और वहाँ पर भारतीयों को ले जाया गया मजूदरी के लिये जहाज में। हजारों लोगों को जहाज में भर दिया।

कलकत्ते में आकर 100 आदमी इसमें, 200 आदमी उसमें, 400 आदमी उसमें भर दिया। भाई से भाई बिछुड़ गया। पति से पत्नी बिछुड़ गई। पिता से पुत्र, माता से पुत्र बिछुड़ गया। उनको तो गिनती के कुली की तरह बिठाने हैं। कोई कितना भी बोले-रोये कि मैं, मेरा भाई, मेरा पुत्र, मेरी पत्नी, मेरा पति कोई सुनने वाला नहीं। परिवार उजड़ गये। लोग बहुत दुःखी हुए रास्ते में जंगली और समुद्र के जंतुओं ने आक्रमण किये उसके कारण भी, वहाँ जाने पर जंगली पशुओं ने कई लोगों को मारकर खा लिया। वहाँ के आदिवासी थे सिर को काटकर खा जाने वाले, उन लोगों के साथ भी संघर्ष हुआ। बहुत कष्ट में पड़े। कुछ लोगों को मारीशस में उतारा। कुछ लोगों को सूरीनाम, दक्षिण अमरीका ले गये। वहाँ जाकर कुछ लोगों को ब्रिटिश गिआना, डच गिआना ले जाकर उतारा। वहाँ कोड़े मार-मारकर काम लिया जाता था। इस प्रकार बहुत दुःख में पड़े। भाई भाई से, पति पत्नी से, पिता पुत्र से बिछुड़ गये। बहुत दुःखी हुए। अपने मन को शांत करने के लिये, दुःख दूर करने के लिये रात को तुलसी रामायण लेकर बैठते थे। उससे मन शांत होता था आंसू बहा-बहा करके। अयोध्या कांड ऐसा है। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा—मैंने बचपन में पहली बार रामचरितमानस पढ़ा तब से अब तक (मैं राष्ट्रपति बन गया) मेरे लिये एक बार भी तुलसी रामायण के अयोध्या काण्ड को आंख के आसुंओं की श्रद्धांजलि चढ़ाये बिना, पढ़ना संभव नहीं हुआ है। जब-जब अयोध्या काण्ड पढ़ा है आंखें छल-छल करके बहती है। रामायण तो करुण काव्य है। आंखों के मैल को आंसुओं में बरसा देता है। उससे हृदय निर्मल हो जाता है। दुःख हलका हो जाता है और इसलिये बिचारे फिर गिआना, मारीशस, सूरीनाम जो हिन्दू ले जाये गये थे वे अपने साथ तुलसी रामायण ले गये थे। उसको पढ़कर अपना गम भुलाते थे। उस समय तुलसी रामायण की कृपा से पढ़ने-लिखने लगे। धीरे-धीरे हिन्दी का प्रचार हुआ। धीरे-धीरे बहुसंख्यक हो गये। धीरे-धीरे हिन्दी वहाँ की राजभाषा बन गयी। धीरे-धीरे वहाँ हिन्दू प्रधानमंत्री बन गया। जिस तुलसी की कृपा से मारीशस, फिजी, सूरीनाम, गिआना आदि चारों देशों में हिन्दू 60-65 प्रतिशत हो गये। आज वहाँ कोई मिनिस्टर है, कोई तुलसी की कृपा से

साढ़े सात हजार मील दूर फिजी में, भारत से साढ़े चार हजार मील दूर मारीशस में, भारत से 12 हजार मील दूर गिआना और सूरीनाम में आज हिन्दी राज भाषा है। वहाँ हिन्दू बहुल क्षेत्र हो गये। यह सब तुलसी की कृपा का प्रताप है।

स्वाधीनता के काल में फिजी के हिन्दुओं पर बहुत अत्याचार होता था। उन्होंने महात्मा गांधी को लिखा कि आपने मारीशस की समस्या हल करने के लिये जिस प्रकार वहाँ अपना एक दूत भेजा। यहाँ पर भी किसी को भेजिये। उन्होंने अपने संबंधी केनदास गांधी को वहाँ भेजा। वह कहता है—जिस दिन उनकी राजधानी में पहुँचा वहाँ साढ़े तीन हजार द्वीपों के समस्त हिन्दू वहाँ पहुँचे हुए थे। सारा फिजी भारत बना हुआ था। पूरा फिजी सड़कों पर उतर आया था। वहाँ लोग हारमोनियम गले में टांगे हुए, हारमोनियम पर रामायण की चौपाई गाते हुए, आंखों से अश्रुधारा प्रवाहित कर रहे थे। उन्हें लगा कि आज भारत मिलने आया है। उसका स्वागत रामायण से करें। रामायण ने उन्हें जीवित रखा है।

मारीशस के मंत्री कहते हैं इस रामायण से हमारा धर्म बचा रहा। एक भी प्रवासी हिन्दू (भारत से आया हुआ) धर्मान्तरित नहीं हुआ। कितने प्रलोभन दिये गये। अपनी मातृभूमि से हजारों मील दूर बैठे हुए भी एक भी हिन्दू ने अपना ईमान नहीं बदला। एक भी हिन्दू मुसलमान या ईसाई नहीं बना। इस रामायण ने हमें साहित्य दिया, रामायण ने हमें भाषा दी, रामायण ने हमें बल दिया। रामायण ने हमें स्वराज्य दिया, रामायण ने हमें सम्मान की जिंदगी दी। कुली से प्रधानमंत्री तक का पद एवं जीवन प्रदान किया। यह रामायण का चमत्कार है। सूरीनाम में वहाँ के लोगों ने उसका नाम श्रीराम कर दिया। सूरीनाम में हिन्दू मंदिर बन गये। हिन्दू वहाँ 60 प्रतिशत हैं। भारतीय पद्धति पर वहाँ हिन्दू संस्कारित किये जाते हैं। जब तुलसीदासजी बूढ़े हो गये, तब गुरु गोविंदसिंह 15-16 वर्ष के थे। गुरु गोविंदसिंह ने तुलसीदासजी से प्रेरणा प्राप्त कर गोविंद रामायण लिखी व्रज भाषा में। उसमें गुरु गोविंदसिंह कहते हैं—

राम कथा जुग-जुग अटल सब कोऊ भाखत नेत।
स्वर्गवास रघुवर कियो सगली पुरी समेत।
जो यह कथा सुने अरु गावैं, दुःख दोष तहँ निकट न आवै।
रामभक्त की यह गति होई, आधि-व्याधि छू सकैं न कोई।।

ये गुरु गोविंदसिंह की रामायण की पंक्तियाँ हैं। एक-एक महापुरुष तुलसीदास से प्रभावित हुआ है।

जनकपुरधाम नेपाल में है। जब भगवान् राम वहाँ गये। जानकी से विवाह हुआ। लोग ब्याह में थोड़ा मजाक करते हैं। व्यंग्य-विनोद करते हैं। तो वहाँ की

सखियों ने कहा कि जनकपुत्री जो गुणशीला है उसे निर्गुण राम को क्यों दे रहे हो? तो तुरंत लक्ष्मणजी ने उत्तर दिया—हमारे रामचंद्र तो देही हैं, देह के स्वामी हैं जानकी विदेही, बिना देह वाली।

ब्रह्म देश

भारत के पूर्व में ब्रह्मदेश है वह सन् 1936 तक भारत का ही अंग था। यह बहुत ही रोचक तथ्य है। वर्तमान राजधानी रंगून का नाम ही रामावती अर्थात् राम की नगरी था। रामावती से रम्मनवती, रंगनवती इत्यादि नाम परिवर्तित होते-होते रंगून हो गया है। बर्मा का साथ वाला देश है थाई देश। इसे आंग्ल भाषा में थाईलैण्ड पुकारा जाता है। इसे श्याम देश भी कहते हैं। जावा, कम्बोडिया, इंडोनेशिया थाईदेश के ही भाग हैं। दुनिया में रामराज्य को सबसे अधिक जीवंत रूप में आज तक किसी ने जीवन में धारण कर रखा है और राम राज्य विभूषित देश है थाईदेश। महर्षि वाल्मीकि ने कहा—

न हि तद्भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपति।

अर्थात् वह राष्ट्र ही नहीं जहाँ राम राजा नहीं। थाईदेश ने इसी कथन को मानो जीवन का आदर्श स्वीकार कर लिया है। इसलिये वहाँ के राजाओं के नाम राम से जुड़े हुए हैं। यथा बुद्धराम, जीवनराम, कृपाराम, समाधि पति, रामराजा, महामंतक राम, सुखदेवराम, रामा मात्य, रामसुमन, रामपुत्र आदि। वहाँ हर राजा का नाम राम है आज तक। वहाँ की राजधानी का नाम अयोध्या। थाईलैण्ड में जो अयोध्या है उसकी आबादी तीन लाख, हमारी अयोध्या में मुश्किल से 30 हजार। हमारी अयोध्या में गंदगी के ढेर, गोबर के ढेर नजर आते हैं। उनकी अयोध्या में धूल का कण भी नजर नहीं आता है। आपकी अयोध्या खपरापोस मकान है फूस के झोपड़े हैं उनकी अयोध्या में सोने के महल हैं। प्रशस्त राजपथ है। फव्वारे चल रहे हैं। देखने से लगता है, स्वर्ग है। वे लोग कहते भी हैं कि विश्वकर्मा ने जिस अयोध्या नगरी को बनाया कि मनु भगवान् ने जहाँ राजधानी की, वह विश्वकर्मा की बनायी हुई अयोध्या नगरी कौन-सी है? आपकी अयोध्या या हमारी अयोध्या। हम कहते हैं सच्ची बात तो यह है कि हमारी अयोध्या ही विश्वकर्मा की बनायी हुई क्योंकि हमारी अयोध्या त्रेतायुग की है। तुम्हारी अयोध्या आधुनिक काल की है। तुमने तो पिछले 1000-1200 वर्षों में अयोध्या नाम रखा है और श्रद्धा से रखा है। हमारी अयोध्या की प्रेरणा या नकल से रखा है और दुर्भाग्य से हमारी अयोध्या पर बार-बार आक्रमण हुए हैं। राम मंदिर तोड़कर मस्जिद बना दी गई थी। अभी भी पुनः मंदिर नहीं बनाया जा सका है। इसलिये हमारी अयोध्या क्षत-विक्षत है, लहूलुहान है तुम्हारी अयोध्या सुरक्षित है। वहाँ के Parliament में भगवान् मनु का चित्र है। मनु प्रथम विधि-निर्माता हैं उसके बिना Parliament कैसी? हमारी Parliament

में मनुस्मृति फाड़ी जाती है। वहाँ राजपुरोहित का उपनाम वामदेव ही प्रचलित है। वामदेव वशिष्ठ के साथ महाराज दशरथ के दूसरे पुरोहित थे। इस देश में जो मुद्रापत्र छपते हैं, करंसी नोट छपते हैं उस करंसी नोट के ऊपर भगवान् राम का चित्र छपता है।

वहाँ राजा के सिंहासन के पीछे राम के सिंहासन का चित्र है। जिसको हनुमान्‌जी ने शीष के ऊपर उठा रखा है। मूल चित्र सोने का है। उस पर मणियों से काम किया हुआ है। राजा कहता है मैं तो राम के चरणों में बैठा हूँ। राम का सिंहासन पीछे है, ऊँचा है। राजा का सिंहासन आगे, नीचा है। जैसे राम के वनवास चले जाने पर पीछे उनकी पादुका राज्य करती थीं। मैं तो राम की पादुका के समान बैठा हूँ। जीवित राजा अपने आपको राम की पादुका मानता है। हमने कहा—ऐसी बात है! ऐसी आपकी अपार श्रद्धा है! हम इसका फोटो लेंगे। उन्होंने कहा हम फोटो नहीं लेने देंगे। मैंने कहा—क्यों? उन्होंने कहा—ये हमारे इष्ट देवता है। मैंने कहा—आपके इष्ट देवता हैं क्या हमारे इष्ट देवता नहीं हैं? क्या हमसे हमारा इष्ट देवता, हमारा राम ही छिनोगे? उसने कहा—नहीं, पर हम फोटो उतारने नहीं देंगे। हमने कहा—देखो, हम राम के अंशज, वंशज हैं। राम के देश के हैं, राम के देश की मिट्टी हमारे तन को लगी है राम हमारे राष्ट्रपुरुष हैं, राम हमारे आदर्श पुरुष हैं, राम हमारे नीति पुरुष हैं, राम हमारे धर्मविग्रह हैं। राम हमारे भगवान् हैं। राम हमारे प्राण सर्वस्व हैं। राम हमारे सब कुछ हैं। आपने इष्ट देवता मान लिया, कुल देवता मान लिया तो आपके राष्ट्रपुरुष तो नहीं हुए। राम आपके देश के तो नहीं हैं। हम तो राम के देश के हैं। हमारे तो अनेक रिश्ते हैं। तब सात दिन बाद फोटो लेने की अनुमति मिली। थाईदेश के राष्ट्रीय संग्रहालय के मुख्यद्वार पर धनुर्धारी भगवान् श्रीराम की ऐसी अलौकिक एवं ओजस्वी मूर्ति स्थापित है जिसकी तुलना में दूसरी मूर्ति संभवतः विश्व में दुर्लभ ही है। 18 फुट ओजपूरित, विश्व को चुनौती देती हुई इस कांस्य मूर्ति को देखते ही मन ओज से ऊर्जस्वित हो उठता है। इस अलौकिक प्रतिमा के चित्र अभी तक थाईदेश के डाकटिकटों तथा दस टिक्कल के मुद्रापत्रों (करंसी नोटों) पर छपते हैं।

रामकीर्ति : रामाकिएन-(थाईदेश की रामकथा) थाई भाषा में रामकथा को रामकिएन कहते हैं। जिसका अर्थ रामकीर्ति होता है। यह थाईदेश के कोटि-कोटि रामभक्तों की श्रद्धा का ही चमत्कार है कि थाई लोग राम को अपने देश का तथा रामायण की घटनाओं को साक्षात् अपने देश की घटनायें ही मानते हैं।

थाईदेश में रामलीला—थाईदेश में रामलीला कई प्रकार से होती है। मुखौटा पहन कर नृत्य करते हैं। छायाचित्रों द्वारा रामलीला भी अत्यंत रोचक एवं प्रभावोत्पादक रहती है।

थाईदेश की प्राचीन राजधानी अयोध्या के समान ही इन्डोनेशिया की राजधानी का नाम भी अयोध्याकर्त्ता रखा गया था जो रूपांतरित होकर जोग्याकर्त्ता तथा जकार्ता (वर्तमान राजधानी) बन गया है। इंडोनेशिया में सबसे बड़ा रामायण मूर्तिशिल्प तीर्थ है जिन पर रामायण की मूर्तियाँ उत्कीर्ण की हुई हैं आप देखें तो आपके नेत्र धन्य हो जायें। इंडोनेशिया दुनिया में सबसे पहला अंतर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन करवाता है। इंडोनेशिया की सरकार की ओर से रामलीला के पत्रक छपते हैं उनमें वे लोग एक संस्कृत की उक्ति छापते हैं—

यावत सादयन्ति ग्रीवा सरिताय महितले।
तावत रामायण गाथा लोकेषु प्रचलित सदा।।

जब तक धरती पर पर्वत खड़े रहेंगे और नदियाँ बहती रहेंगी। लोक-लोकांतरों में रामायण की कथा जन-जन में प्रचारित होती रहेगी। यह धर्म है हमारा। कर्तव्य है हमारा कि हम रामायण का प्रचार करें भारत सरकार की ओर से। दुर्भाग्य से हम तो करते नहीं हैं। इंडोनेशिया जो इस समय दुनिया का सबसे बड़ा मुस्लिम देश है वह अभी भी यह प्रचार करता है कि जब तक धरती पर पर्वत खड़े रहेंगे और नदियाँ बहती रहेंगी तब तक रामायण की कथा लोक-लोकांतरों में प्रचारित होती रहेगी। वहाँ के मंदिरों में जाकर रामकथा की मूर्तियाँ देखें। राम की लीला देखें। रामलीला, कृष्णलीला के चित्र देखें। आपका हृदय गद्‌गद हो जायेगा। इंडोनेशिया में हर साल रामायण महोत्सव राजकीय स्तर पर आयोजित होता है। इनमें मुस्लिम अभिनेता श्रद्धापूर्वक राम लक्ष्मण हनुमान् आदि का हृदयस्पर्शी अभिनय कर श्रोताओं को भाव-विभोर कर देते हैं। रामलीला काल में अभिनयकर्ता भूशयन करते हैं, मदिरा, मांस आदि का सेवन छोड़कर शुद्ध सात्त्विक आहार ग्रहण करते हैं।

भारतीय मुसलमान और रामायण : इंडोनेशिया में रामलीला। इस पर पाकिस्तान के राजदूत ने कहा कि कुरान में रामलीला का आदेश कहाँ हैं? इंडोनेशिया के राजदूत ने कहा—We have not changed our history. We cannot change our blood. Ramayan & Mahabharat are in my blood. यदि भारत का मुसलमान इंडोनेशिया की तरह होता तो आज हम सिंध और पंजाब में होते। 95 प्रतिशत मुस्लिम में हिन्दू रक्त है। यदि भारत की संस्कृति को मानते, उसके प्रति उदार होते तो देश की हत्या नहीं होती। मुसलमानो! तुम भारतीय संस्कृति को मानो। जब 1400 साल बाद यहूदी अपनी मातृभूमि वापस पा सकता है तो हम पुनः क्यों नहीं एक हो सकते हैं। अवश्य एक होंगे। गयी भूमि को प्राप्त करने का सबको स्वप्न देखना चाहिये।

आज प्रश्न उठता है भारत के मुसलमानों की समस्या का हल क्या है? क्या रहीम और रसखान ने मार्गदर्शन नहीं किया, अशफाक उल्ला खां ने मार्गदर्शन नहीं

किया। दाराशिकोह ने मार्ग नहीं दिखाया। यदि मुसलमान रहते हुए भारत एवं भारतीयता के भक्त रहते तो क्या भारतमाता खंडित हो पाती? अभी भी चेत हो तो क्या खंडित रह पायेगी?

इंडोनेशिया की जनता को स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये दीर्घकालीन संघर्ष करना पड़ा। उन्होंने गीता की शपथ ली। हममें भगवान् कृष्ण की बुद्धि एवं अर्जुन का बल है अतः विजय सुनिश्चित है। अंत में 17 अगस्त 1945 ई. को वह गणराज्य बना। उसी दिन घर-घर स्वतंत्रता के प्रतीक लाल व सफेद राष्ट्रीय ध्वज फहराये गये। सन् 1945 को वहाँ प्रथम राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हुई। इस राष्ट्र को साम्राज्यशाही के कई बड़े-बड़े प्रहारों का सामना करना पड़ा। अंत में नवंबर 1949 में हेग में संपन्न गोलमेज कान्फ्रेंस में डच सरकार ने इण्डोनेशिया को इरियन (न्यूगिनी) छोड़कर शेष इण्डोनेशियाई क्षेत्रों की संप्रभुता सौंपने की सहमति दे दी। इस तरह इंडोनेशिया गणतंत्र को कानूनी मान्यता मिल गई। किन्तु देश की जनता को अपने राष्ट्र के अभिन्न अंग न्यूगिनी की पीड़ा साल रही थी। जनता न्यूगिनी की आजादी के लिये सतत संघर्षशील रही पर डच लोग तैयार नहीं हुए। अंत में डचों ने आखिरी दांव फेंककर कि यदि ऐतिहासिक आधार पर यह प्रमाणित कर दिया जाये कि न्यूगिनी इण्डोनेशिया का अभिन्न अंग है तो उसे स्वतंत्रता दे दी जायेगी। धार्मिक दृष्टि से शून्य डचों को क्या पता था कि भारतीय कवि वाल्मीकि ने किष्किंधा कांड के एक श्लोक में इस प्रश्न का उत्तर बहुत पूर्व लिखकर सुरक्षित कर दिया है। इंडोनेशिया वैसे भी रामायण-परायण देश था।

लोग राम के अध्ययन-मनन में लग गये। अंततः इंडोनेशियाई लोगों ने न्यूगिनी से संबंधित एक श्लोक रामायण में खोज ही लिया। यह महत्त्वपूर्ण श्लोक इस प्रकार है—

यत्नवन्तो यवद्वीपं सप्तराज्योपशोभितम्।
सुवर्णरूप्यकद्वीपं सुवर्णाकरमण्डितम्॥30॥
यवद्वीपमतिक्रम्य शिशिरो नाम पर्वतः।
दिवं स्पृशति शृंगेण देवदानवसेवितः॥31॥

सीता की खोज में पूर्व दिशा की ओर जाने वाले वानर दल को संबोधित करते हुए सुग्रीव ने कहा था—'सात राज्यों' से शोभित यवद्वीप (जावा) में, फिर सुमात्रा (स्वर्णद्वीप) में जाना। सुमात्रा के बाद एक शिशिर नामक पर्वत है। यह शिशिर पर्वत न्यूगिनी में है। यह अकाट्य प्रमाण पाकर साम्राज्यशाही डचों के पैरों तले की जमीन खिसक गयी। उन्होंने घुटने टेक दिये और बिन हीला-हुज्जत के न्यूगिनी को

इण्डोनेशिया के हवाले कर दिया। यह चमत्कार वाल्मीकि रामायण के एक श्लोक ने किया।

राम-कृष्ण, भीम, अर्जुन आदि राष्ट्रीय महापुरुषों के रूप में सम्मानित हैं। भूतपूर्व राष्ट्रपति सुकर्ण का नाम महाभारत के महारथी कर्ण के नाम पर था। इंडोनेशिया का बाली द्वीप तो शत-प्रतिशत हिन्दू धर्मावलंबी है। बाली में घर के दो भाग है—नर गृह और देवगृह। नर गृह में लोग रहते हैं तथा देवगृह में दैनिक पूजा-उपासना करते हैं। वहाँ अभी तक वर्ण-व्यवस्था, गौ पूजा, शिव-विष्णु उपासना, अंत्येष्टि संस्कार, श्राद्ध आदि सभी प्रथायें प्रचलित हैं।

अगला देश **कम्बुज** है जिसे कंबोडिया कहते हैं। संसार का सबसे बड़ा मंदिर है तो कम्बुज में है। इस मंदिर का नाम है अंकुरवट। यह कितना बड़ा है आपको अचंभा होगा। 14 वर्गमील के घेरे में यह मन्दिरों का नगर है। मन्दिर ही मन्दिर 14 वर्गमील के। आप कल्पना नहीं कर सकते इतना बड़ा मंदिर है। इस मंदिर के बीच में विष्णु भगवान् का मंदिर है। उसके चारों ओर ढाई सौ फुट चौड़ी खाई है जिसमें जल भरा हुआ है। उसमें जाने के लिये चार पुल बने हुए हैं। पुल पार कर के मंदिर की पीठिका में 14 हजार गरुड़ हैं जिन्होंने मंदिर के विमान को सिर पर उठा रखा है। उस मन्दिर विमान के सात सोपान हैं—भूलोक, भुव लोक, स्वलोक, मह-जन-तप और सत्य लोक। फिर जाकर विष्णु भगवान् के दर्शन हैं। निर्माता है यशोवर्मन। यशोवर्मन प्रथम ने बनाना शुरू किया नौवीं शताब्दी में और यशोवर्मन तृतीय ने पूरा किया 85 वर्ष बाद। 85 साल लगे मंदिर को बनाने में। अलौकिक मंदिर है, उसमें सात खण्डों में रामायण-महाभारत की इतनी सामग्री है कि उसका अध्ययन करने के लिये यदि भगवान् सौ वर्ष का जीवन और देवे, यहीं बैठो, कहीं मत जाओ, इसी का अध्ययन करो, तो भी सौ वर्ष का जीवन उसके अध्ययन के लिये पर्याप्त नहीं है। कितनी सामग्री है एक स्थान पर सोच ही नहीं सकते हैं!

उस समय भारत में पठानों का राज्य था। उस समय एक हिन्दू राजा ने विश्व का सबसे विशाल मंदिर बनवाया। उसकी महिमा में वहाँ एक विशाल लेख है—

चीन चंपा यवद्वीप भूभृत तुंग मस्तकैय,
यस्य आज्ञा मारुतिमाला यदा सदा चुम्दाय यतै।

चीन के राजा, चंपा-वियतनाम के राजा, यवद्वीप जावा इंडोनेशिया के राजा, भू भृत माने राजा अपने 'उत्तंग मस्तकै' माने अपने ऊँचे मस्तकों से। चीन, चंपा, यवद्वीप के राजा अपने ऊँचे मस्तकों से, 'यस्य आज्ञा' राजा यशोवर्मा की आज्ञा को मारुतिमाला समझकर उसको शीश झुकाते थे, चूमकर मान दिखाते थे। उसका

इतना मान था कि चीन उसकी आज्ञा के सामने अकड़ नहीं दिखाता। कोई अकड़ नहीं दिखाता है पर मन से नहीं मानते हैं। कुछ लोग मन से मुकर जाते हों। ऐसा भी नहीं। वरन् चीन, चंपा, यवद्वीप के राजा उसकी आज्ञा को सूत्र मानकर चूमते थे, मारुति माला समझकर उसको शिर पर चढ़ाते थे। ऐसा प्रतापी राजा था।

अगला देश **लव देश**। यहाँ भगवान् राम की लीलायें खेली जाती हैं। इस प्रकार सारे दक्षिण-पूर्व एशिया के अनेक देशों तथा सहस्रों द्वीपों में भारतीय संस्कृति का प्रकाश आज भी जगमगा रहा है। इसे देखकर फ्रेडरिक लुई ने लिखा—

जब यूरोप सभ्यता से बहुत दूर था, उस समय के जो अवशेष एशियाई प्रदेशों में पाये जाते हैं वे इस बात के प्रमाण हैं कि भारत के निवासियों ने सभ्यता का निर्माण कर ठोस आधार पा लिया था। प्रम्बनम में संसार का विशालतम एवं सुंदरतम रामायण मूर्तिशिल्प तीर्थ है। इंडोनेशिया में सर्वप्रथम अंतर्राष्ट्रीय रामायण महोत्सव आयोजित किया, कंबुज, लव देश, चंपा, चीन, जापान, तिब्बत, मंगोलिया, नेपाल सभी में रामायण प्रतिष्ठित है। ईरान, अरब, मध्यपूर्व अफ्रीका तक में रामायण के अनुवाद हुए हैं। यूरोप एवं अमरीका के विद्वान् रामायण पर मुग्ध हैं। सूरीनाम, मारीशस, फिजी, गियाना में रामायण ही वहाँ के भारतवंशियों का जीवनप्राण है।

खालसा पंथ के संस्थापक होते हुए भी गुरु गोविंदसिंह ने गोविंद रामायण लिखी। जिस पर आज बड़े-बड़े शोध हो रहे हैं।

गुरु ग्रंथ साहिब में 30 हजार बार राम नाम आया है। बौद्धों ने रामायण पर मुग्ध होकर दशरथ जातक, अनामक जातक नामक रामायण पर आधारित ग्रंथ लिखे।

जैन धर्म के विमलसूरि ने परमचरित्र और हेमचंद्र आचार्यश्री ने जैनी रामायण द्वारा राम के चरणों में अपना अर्घ्य चढ़ाया है, आदि।

डॉ. लोहिया अनीश्वरवादी थे फिर भी वे राम-कृष्ण-शिव की चर्चा करते हैं क्योंकि ये राष्ट्र की एकता के ही नायक नहीं वरन् विश्व ऐक्य के आधार हैं। ये तीनों मानव-जाति के आदर्श पुरुष हैं। वे श्रीराम, कृष्ण व शिव को भारतीय संस्कृति का आधार मानते थे। रामकथा संसार व्यापी है। इसलिये उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय रामायण मेले की योजना प्रस्तुत की। क्योंकि रामायण मेला विश्व मैत्री का प्रबल सांस्कृतिक आधार भी है। रामकथा भारत के उत्तर और दक्षिण भाग को ही जोड़ने वाली नहीं, सिर्फ दक्षिण-पूर्व एशिया को मात्र एकात्म सूत्र में बांधने वाला एशियाई एकता का ही आधार नहीं वरन् अंतर्राष्ट्रीय सौहार्द का अनुपम साधन है। क्योंकि सारा विश्व रामायण पर मुग्ध है।

रामभक्त श्रीहनुमान्

श्रीरामचरित्र की धुरी श्रीहनुमान् चरित्र ही है। श्रीहनुमान्जी के नेत्रों में रामचरित्र है, उनकी वाणी में राम नाम है, उनके प्रत्येक कृत्य में राम काज है, उनकी प्रत्येक चेष्टा राम प्रेरित है, उनके रोम-रोम में भी राम रमा है। रामकथा का घटनाचक्र मारुतिनन्दन हनुमान्जी जैसी सुदृढ़ धर्म धुरी पर ही घूम रहा है।

श्री हनुमान्जी का जीवन निष्काम कर्मयोग पर जीवितभाष्य ही था। वे यज्ञमय जीवन के मूर्तिमन्त अवतार थे। 'राम काज करिबे को आतुर' श्रीहनुमान्जी ने इतने उपकार कर्म किये किन्तु अहंकार उन्हें छू तक नहीं पाया।

भगवान् श्रीराम ने अपना राज्याभिषेक हो जाने पर सबको पुरस्कार बाँटे किन्तु श्रीहनुमान्जी को क्या दें यही समझ में नहीं आ रहा था। भगवान् राम ने कहा—

एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे।
शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम्।।
मदंगे जीर्णतां यातु यत् त्वयोपकृतं कपे।
नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम्।।

वा. रामा. 7/40/23-24

'हे हनुमान्जी ! तुम्हारे एक-एक उपकार का ऋण चुकाने में मैं प्राण न्योछावर करने को उद्यत हूँ परन्तु तुम्हारे जो अनेकों उपकार शेष रह जाते हैं, उनके लिए तो हम सपरिवार-सपरिकर सदैव तुम्हारे ऋणी ही रहेंगे। मैं नहीं चाहता कि मैं तुमसे उऋण हो जाऊँ। मैं चाहता हूँ कि मैं तुम्हारा चिरऋणी बना रहूँ और तुम्हारे उपकार मेरे अंग में पच जायें, क्योंकि किसी का बदले में प्रत्युपकार तभी किया जा सकता है जब वह भी वैसी आपत्ति में पड़ा हो। मैं स्वयं भी नहीं चाहता कि तुम पर कोई आपत्ति आये (अर्थात् मैं नहीं चाहता कि तुम कभी विवाह करो, तुम्हें वनवास मिले, पत्नी के हरण में रोते भटकते रहो और तब हम तुम्हारी सहायता कर सकें)।

जब हनुमान्जी अशोक वाटिका, लंका (वर्तमान नाम सीता एलिया निकट नूवर एलिया, श्रीलंका का 8000 फुट ऊँचा पर्वतीय अशोकवनम्) में सीताजी का

पता लगाकर किष्किंधा पर्वत पर लौटे तो भगवान् ने उन्हें हृदय से लगा कर कहा, 'मैं तो इस समय स्वयं दीन हूँ, इस शुभ संवाद के बदले तुम्हें क्या दूँ। लो, तुम्हारा आलिंगन कर मैं तुम्हें अपना सर्वस्व दे रहा हूँ। (वा.रा.)

सुनु कपि तोहि समान उपकारी,
नहि कोउ सुरनर मुनि तनुधारी।।

श्रीहनुमान्जी निराभिमान भाव से उत्तर देते हैं—

सो सब तव प्रताप रघुराई।
नाथ न कछू मोरि प्रभुताई।।

वानर शब्द वन से ही बना है जिसका अर्थ है वन्य, वनवासी।

वानं वनसंयूत कंद मूल फलानि आराति इति वानरः। (आप्टे)

आप्टे ने प्रसिद्ध संस्कृत कोश में लिखा है—वन में रहने वाले, वन के कन्द-मूल फल का आहार करने वाले मनुष्य ही वानर कहे जाते हैं। श्यामजी पराशर के मत में हनुमान्जी रामायण काल के वायु सेनापति (Air Martial) थे।

श्रीहनुमान्जी के जन्मस्थान के विषय में बड़ी खोज की आवश्यकता है। वाल्मीकि रामायण में हनुमान्जी सीताजी को अपना परिचय बताते हुए कहते हैं 'गिरियों में उत्तम माल्यवान पर्वत है, वहाँ गोकर्ण पर्वत है, फिर केशरी हरि है, वही मेरे पिता हैं। समुद्रतट पर शंब सादन का उद्धार करते हुए, जो मैं हरिण क्षेत्र में वायु द्वारा उत्पन्न हुआ हूँ, वह मैं लोक में हनुमान् नाम से विख्यात हूँ।' माल्यवान पर्वत कर्नाटक में प्राचीन विजयानगर साम्राज्य की राजधानी हम्पी के निकट माना जाता है।

श्री बाल गोविन्द द्विवेदी ने शम्बसादन को स्वीडन देश सिद्ध किया है जो जर्मनी के ऊपर उत्तरी ध्रुव क्षेत्र का अत्यन्त शीतप्रधान देश है। श्री द्विवेदी ने हरिण क्षेत्र का अर्थ हार्ननगर लगाया है। इसी प्रकार हरि को उन्होंने केशरी वानर न मान कर हरिवर्ष पर्वत माना है। कपि प्रवीर का अर्थ सूर्य लगाया है। उन्होंने वाल्मीकि रामायण के श्लोक का नया अर्थ लगाया है—'मैं महर्षि की आज्ञा से प्रतिवर्ष होने वाले प्राकृतिक संग्राम में कपि प्रवीर सूर्य द्वारा आहत दैत्य रूप देश शम्बसादन (स्वीडन) में वायु के द्वारा उत्पन्न हुआ हूँ।' हरिवर्ष का अर्थ उत्तरी ध्रुव क्षेत्र, साइबेरिया, रूस, स्कैण्डेनेविया के वायु प्रधान देश को माना है।

प्रसिद्ध ज्योतिषविद् भास्कराचार्य के मत में माल्यवान पर्वत चीन, तिब्बत में है। श्री द्विवेदी के मत में माल्यवान देश हिमालय से ऊपर त्रिविसृप (तिब्बत) से लेकर एक ओर हरिवर्ष (साइबेरिया) तक और दूसरी ओर रम्यक वर्ष (कनाडा) तक फैला हुआ था। यह बड़ा विस्तृत माल्यवान (किन्नर) देश है। गोकर्ण पर्वत

तिब्बत में गोकर्ण तीर्थ है जो गंगा का मूल उद्‍गम स्थान है। यह विशाल पर्वत है जो मंगल (मंगोलिया) तक फैला हुआ है। इसे मेनका भी कहा जाता है। आंबी नदी (उमा) को मेनका पुत्री भी कहा जाता है। पार्वती मैना पुत्री प्रसिद्ध है।

शबर देश (साइबेरिया) केशरी हरिवर्ष है। श्री द्विवेदी हरिवर्ष को ही गन्धमादन पर्वत मानते हैं। गन्धमादन अतल समुद्र (अटलांटिक समुद्र) तक फैला है। इसके पश्चात् समुद्रतट पर शम्बसादन दैत्य का स्थान शम्बसादन देश (स्वीडन) है। वहाँ के हरिण क्षेत्र (हार्ननगर) में श्रीहनुमान्‌जी का जन्म हुआ।

शम्बसादन—सादन - स्वादन - स्वीदन - स्वीडन नाम बना। शम्ब (भू कटिबंध रेखा) से सादित (बिद्ध) होने के कारण भी शम्बसादन नाम हुआ।

सूर्य के नाड़ी वृत्त से अत्यन्त दूर हो जाने के कारण 11 नवम्बर से 15 जनवरी तक सूर्य का दर्शन न होने के कारण अन्धकार छाया रहता है। 'बाल समय रवि भक्ष कियो तब तीनों ही लोक भयो अंधियारो, शम्बसादन से पूर्व-भाग में अर्कदेश (आर्चेजिल) स्थित है। अर्कांगिल का अर्थ ही है अर्क (सूर्य) को निगल जाना।

शब्दतः और अर्थतः स्वीडन देश ही शंब (भूमध्य रेखा) द्वारा 66 1/2 अंश पर बिद्ध है तथा समुमवेला में भी है। अतः स्वीडन ही हनुमान्‌जी का जन्मस्थान सिद्ध होता है।

राँची मण्डल के गुमला अनुमण्डल में टोटो के पास आंजन गाँव हैं। वहाँ 3 मील जंगल में जाकर नदी-पर्वत पार कर एक पर्वतीय गुफा में अंजनी माता की मूर्ति है जो गोदी में शिशु रूप हनुमान्‌जी को लिए है। छोटानागपुर में सैकड़ों वर्षों से यही मान्यता चली आती है कि यही हनुमान्‌जी का जन्मस्थान है। प्रतिवर्ष सहस्रों यात्री दर्शनार्थ आते हैं। राँची जिला गजेटियर में विगत 200 वर्षों से यही लिखित है कि वही हनुमान्‌जी का जन्मस्थान है। कोई उसे अंजनी माता का मायका-घर, हनुमान्‌जी का ननिहाल मानते हैं। कहते हैं किसी समय वहाँ 300 शिवलिंग तथा 300 सरोवर थे तथा वहाँ के नागवंशी राजा प्रतिदिन सभी सरोवरों के जल से सभी लिंगों की पूजा करके अन्न-जल ग्रहण करते थे। विश्व हिन्दू परिषद् ने आंजन में एक विशाल मन्दिर एवं धर्मशाला बनाने का संकल्प किया है। उराँव जाति के 12 गोत्र हैं जिनका अर्थ ही वानर है। वे अपनी ददाकट्टा पूजा (राक्षस के दांत तोड़ने की पूजा) में राम को अब्बा, सीता को अम्मा तथा हनुमान् को चच्चा कहते हैं। लंका से तिब्बत तक, साइबेरिया से स्वीडन तक, आंजन से अयोध्या तक, इंडोनेशिया से मैक्सिको तक, त्रेतायुग से कलियुग तक, नर से वानर तक जिनका यश गूंज रहा है उनके यश में श्रद्धा के वाक्‌पुष्प चढ़ाकर हम अपनी प्रणामांजलि प्रस्तुत करते हैं।

सूरदास की हृदय वीणा से निःसृत रामायण गीतिका

जिस अलौकिक भक्तकवि ने अपने काव्यामृत के पावन छींटों से कोटि-2 मानवों के अज्ञान तिमिर से अन्धे हुए मोह मुदित नेत्रों को पुनः ज्ञान ज्योति प्रदान कर दी, उस नेत्रहीन कलावन्त, सन्तप्रवर सूरदास की अनन्त महिमा को कौन गा सकता है?

सामान्यतया जनसाधारण की यही धारणा है कि भक्तप्रवर सूरदासजी ने श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकंद को ही अपनी साधना का केन्द्रबिन्दु मान कर अपने हृदय का समूचा प्रेम उन्हीं पर उंडेल दिया तथा संतप्रवर गोस्वामी तुलसीदासजी की हृदय-रागिनी का एकमात्र स्वर रघुकुल गौरव रामचन्द्र महाराज का गुणानुवाद ही था। पर, वास्तव में कृष्णभक्त सूरदासजी ने जो लोकपावनी श्री रघुनाथ गाथा गाई है तथा श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी ने जो अलौकिक कृष्ण चरित गाया है वह काव्यानन्द एवं ब्रह्मानन्द का अद्‌भुत, सुस्वादु सम्मिश्रण होने पर भी सामान्य हिन्दी प्रेमियों के भावपूर्ण आस्वादन का विषय नहीं बना।

कोटिशः वंदित, जनगण पूजित श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी जब व्रज में गए तो व्रजचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्र की मूर्ति के सम्मुख भक्त के बालसुलभ हठ के साथ बोल उठे—

कहा कहौं छवि आज की, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवे, जब धनुष-बाण लियो हाथ।

भक्त की अनन्य निष्ठा के सम्मुख भगवान् को भी झुकना पड़ा और भक्तकवि नन्ददासजी के शब्दों में, 'राखी जिन की टेक मदन मोहन धनुधारी।' किन्तु जब कविप्रवर तुलसीदासजी महाकवि सूरदास से मिले तो दोनों महापुरुषों ने जहाँ एक-दूसरे को अपने अनन्त प्रेम में आप्लावित कर दिया वहाँ दोनों को अपनी-अपनी भक्ति निष्ठा के रंग में भी रंग दिया। भगवान् को कृष्ण रूप में देख कर शीश तक न झुकाने वाले गोस्वामी तुलसीदासजी अब श्रीकृष्णचन्द्र की रूप-माधुरी पर ऐसे

मुग्ध हुए कि उन्हें तन-मन की सुधि भी न रही—

जैसे हो तैसे सुखदायक, ब्रजनायक बलिहारी।
तुलसीदास प्रभु मुख छवि, निरखत मन सब जगुति बिसारी।।

श्रीकृष्ण गीतावली के सुललित पदों में गाते हुए वे कहते हैं कि श्रीकृष्ण के यशरूपी अमृत को मैंने खूब पीया है—

नन्दलाल बाल जस संत सुर-सरबस,
गाइ सो अमिय रस तुलसि हुँ-पियो है।।

इसी प्रकार भक्त शिरोमणि सूरदासजी भी रघुकुलकुमुद दिवाकर श्री रामचन्द्रजी के लोक पावनकारी चरित्र के प्रति आकर्षित हुए बिना न रहे। स्वयं गोस्वामी तुलसीदासजी के पावन दर्शन में उन्होंने युगल स्वरूप श्रीसीताराम के दर्शन कर लिए थे। तुलसीदासजी की प्रशस्ति में सूरदासजी गा उठे—

धन्य भाग ममसन्त-सिरोमनि
चरन कमल तकि आयऊं
बदन प्रसाद-सदन दृग भरि,
लखि सुख सन्दोह समायऊं
दया दृष्टि ते मम दिसि हेरेऊ
तनु पुलकित मानस धीर
सुधा समान वचन कहि
पोषेउ सुमरित सीय रघुवीर
श्रीतुलसी सुचि सन्त समागम
अद्भुत अमल अनूप।
सूरदास जीवन फल पायो,
दरसन जुगल स्वरूप।।

यह महाकवि की महाकवि को श्रद्धांजलि, कितनी अनूठी है।

श्रीराम-जन्म

रघुकुल गौरव श्रीरामचन्द्र के जन्मोत्सव का वर्णन करते हुए सूरदासजी अपने तानपूरे पर मस्ती से गाते हैं।

अयोध्या बाज़त आजु बधाई
अति हरषित कौशल्या माता
रामचन्द्र निधि आई।

गावैं सखी परस्पर मंगल,
ऋषि अभिषेक कराई।
भई भीर दसरथ के आंगन
सामवेद ध्वनि गाई।।
पूछत ऋषहि अयोध्या के
पति, कहि हो जनम गुसाई
बुद्धवार नौमी तिथि नीकी,
चौदह भुवन बड़ाई।
चारि पुत्र दसरथ के प्रकटे
तिहूं लोक ठकुराई।
सदा सर्वदा राज राम को
'सूर' दादि तहं पाई।

बाल क्रीड़ा

सूरदास ने राम इत्यादि चारों शिशुरूप भाइयों की धनुष-बाण क्रीड़ा का अत्यन्त अनूठा शब्दचित्र खींचा है—

धनुहीं बान लिए कर डोलत।
चारहूं वीर एक संग सोहत,
वचन मनोहर बोलत।।
लच्छिमन, भरत, सत्रुहन,
सुन्दर, राजिव लोचन राम।
अति सुकुमार परम-पुरषारथ
मुक्ति, धर्म, धन, काम।
कटि पर पीत पिछौरी बांधे
काक पच्छ धर सीस।
सर क्रीड़ा दिन देखत
आवत, नारद सुर तेंतीस।।

जनकपुरी में राम-लक्ष्मण

जब राम-लक्ष्मण जनकपुरी में पहुँचे तो जहाँ मिथिला के कोटि-कोटि नर-नारियों ने उनके पावन दर्शन से आंखों को तृप्त किया वहाँ अन्धे सूरदासजी ने हजारों वर्ष पूर्व के उस दृश्य का बिना आंखों के भावपूर्ण दर्शन कर लिया—

देखौ माई ! राम लखन दोउ आवत।
मधुर चालि, दृग भले मनोहर,
खंजन लोल कुरंग लजावत।।

धनुष-भंग का वर्णन भी बड़ा कलारुचिर है—

चितै रघुनाथ बदन की ओर।
रघुपति सों अब नेम हमारौ,
विधि सों करति निहोर।।

सीताजी रघुनाथजी के मुख की ओर देख रही हैं तथा विधाता से निहोरा करती हैं कि हमारा नियम (विवाह का निश्चय) तो रघुपति से ही है।

यह अति दुसह पिनाक, पिता प्रन राघव वयस किसोर।
इन पे दीरघ धनुष चढ़ै क्यों,
सखि ! यह संसय मोर।

यह धनुष बड़ा कठोर है, पिता का प्रण भी पक्का है, राघव आयु के किशोर ही हैं। इनसे धनुष का चिल्ला कैसे चढ़ेगा! सीताजी ऐसा संशय कर रही है। किन्तु श्रीराम के बल के तथा सूरदास की अतिशयोक्ति के बलिहारी श्रीराम ने कर के नख की नोक पर धनुष को उठा कर चिल्ला चढ़ा दिया—

सिय-अन्देस जानि 'सूरज'
प्रभु लियौ करज की ओर।
टूटत धनु नृप 'लुके'
जहां तहां ज्यौं तारागन भोर।

विवाह के अनन्तर महाराज दशरथ, श्रीराम एवं अन्य बारातियों को विदा करते समय महाराज जनक तो प्रेम रस में भीगे ही, उस दृश्य का वर्णन करते हुए सूरदासजी भी रस-मुग्ध हो गए—

रामचन्द्र दसरथहि विदा करि
'सूरदास' रस भीन

अयोध्या के आनंदोत्सव

सूरदासजी भी अयोध्यावासियों के आनन्द में डूब कर गाने लगे—

'दसरथ चले अवध आनन्दत।'
पुनः अवधपुर आए दसरथ राई
राम लखन अरु भरत, सत्रुहन,
सोभित चारौ भाई।

घुरत निसान, मृदंग संख धुनि
भेरि झांझ सहनाई।
उमंगे लोग नगर के निरखत
अति सुख सबहिनि पाई
कौसिल्या आदिक महतारी,
आरति करहिं बनाई।
यह सुख निरखि मुदित सुर नर मुनि, सूरदास बलि जाई।

राम वनवास—हर्षोल्लास की चरम सीमा के पश्चात् तुरंत राम के वनवास की हृदय विदारक घटना राम चरित्र का सर्वाधिक मर्मस्पर्शी स्थल है। सूरदास ने इस स्थल का भी बड़ा हृदयस्पर्शी वर्णन किया है।

यह सुनि बोली नारि कैकई, अपनो बचन संभारौ।
चौदह वर्ष रहै बन राघव, छत्र भरत सिर धारौ।

महाराज दशरथ का विलाप तो मर्मान्तिक है—

महाराज दसरथ यौं सोचत।
हा रघुनाथ, लछन, वैदेही ! सुमिरि नीर दृग मोचन।

वे पुनः अश्रु-विगलित वाणी में कहते हैं—

रघुनाथ पियारे आजु रहौ हो।
बिछुरत प्रान पयान करैंगे, रहौ आजु, पुनि पंथ गहौ, हो।
अब 'सूरज' दिन दरसन दुरलभ,
कलित कमल कर कंठ गहौ, हो।

'हे प्राण प्यारे राम, तुम से बिछुड़ने पर तो मेरे प्राण प्रयाण कर जायेंगे। इसके बाद तो तुम्हारा दर्शन भी दुर्लभ हो जावेगा। तनिक एक बार अपने कमल जैसे कोमल करों से मेरे गले से तो लिपट जाओ।' कोमल भावों की व्यंजना में सिद्धहस्त महाकवि सूरदास ने अपने कृष्ण बाललीला चित्रण में जो वात्सल्य का अनूठा चित्र खींचा है उसी वात्सल्य रस में पगा हुआ राम-वनवास का यह प्रसंग है।

सीताजी का पति के संग वनगमन के लिए आग्रह भी भारतीय संस्कृति का एक उज्ज्वल आदर्श है—

तुम्हरे चरन कमल सुख सागर,
यह व्रत हौं प्रतिपालिहौं।
सूर सकल सुख छांडि आपनौ
बन विपदा संग चलिहौं।

राम-वनवास की घड़ी में, धीरता का मूर्तिमान अवतार माता कौशल्या भी रो उठती है—

फाटत नहीं बज्र की छतिया,
अब मोहि नाथ अनाथ कहै हो।
कहा अपराध किए कौशल्या,
पुत्र विछोह दुसह दुख दैहो।

हे राम, हमारी वज्र की छाती फट क्यों नहीं जाती। हाय, जो तुम सब के नाथ थे अब वनवासी बन कर अनाथ कहलाओगे। मां कौशल्या ने कौनसा अपराध किया है जो उसे पुत्र वियोग का दुःसह दुःख दे रहे हो। सूरदास के इन पदों में मूर्तिमति करुणा भी रो उठती है।

वन-गमन के समय लक्ष्मण की दशा भी अत्यन्त अश्रु प्रेरक है—

लछिमन नैन नीर भरि आए।
उत्तर कहत कछू नहि आयो, रहे चरन लपटाए।
अन्तरजामी प्रीति जानिके, लछिमन लीन्हे साथ।।
'सूरदास' रघुनाथ चले बन, पिता बचन धरि माथ।

दशरथ की मर्मान्तक मूर्च्छा का वर्णन भी हृदय में टीस पैदा करने वाला है—

आजु रघुनाथ पयानौ देत।
विह्वल भए सुवन सुनि पुरजन, पुत्र-पिता को हेत।।
ऊँचे चढ़ि दसरथ लोचन भरि सुत मुख देखे लेत।
रामचन्द्र से पुत्र बिना मैं भूंजब क्यौं यह खेत।।
देखत गमन नैन भरि आए, गात गह्यौ ज्यौं केत।
ताता-तात कहि बैन उचारत, ह्वै गए भूप अचेत।।
कटि तट तून, हाथ सायक धनु, सीता बन्धु समेत।
'सूर' गमन गह्वर कौं कीन्हौ जानत पिता अचेत।।

श्रीराम से बिछुड़ने पर पशु-पक्षियों तक ने खाना-पीना त्याग दिया—

पशु पंछी तृन कन त्याग्यौ, अरु बालक पियौ न पयौ।
'सूरदास' रघुपति के बिछुरैं, मिथ्या जनम भयौ।

भरत का शोक

भरत के शोक का जो चित्रण सूरदासजी ने किया है वह सम्भवतः तुलसी के वर्णन से भी बाजी ले जाता है—

आजु अजोध्या जल नहिं अचवौं, मुख नहिं देखौं माइ।
सूरदास राघव-बिछुरन तैं मरन भलौ दव लाई।।

भरतजी कहते हैं—'श्रीराम के बिना आज से मैं अयोध्या में जल का आचमन नहीं करूंगा, और न माता कैकेई का मुख देखूंगा। श्री रघुनाथजी से बिछुड़ने की अपेक्षा तो चिता में जल मरना अच्छा है।

भरत-मिलाप

प्रज्ञाचक्षु सूरदास ने राम-भरत मिलन का जो दृश्यांकन किया है वह दो आंख वाले कलाकारों की चित्रांकन-कला को भी मात देने वाला है—

भरत मुख निरखि राम बिलखाने।
मुंडित केस सीस, बिह्वल दोउ,
उमंगि कण्ठ लपटाने।।

सीताहरण

श्रीराम और श्रीकृष्ण की मूलभूत एकता दर्शाते हुए सूरदासजी ने कृष्णलीला वर्णन में माता यशोदा द्वारा लोरी के रूप में बालकृष्ण को सुलाने के लिए रामायण की कथा सुनवाई है। कथा सुनते-सुनते सीताहरण का प्रसंग आने पर बालकृष्ण तुरंत रक्तिम नेत्र लिए हुंकार उठते हैं—

सुनु सुत एक कथा कहौं प्यारी।
नगर एक रमणीक अयोध्या बड़े महल अगम अटारी।।
तहं नृपति दशरथ रघुवंशी, जाके नारि तीनि सुखकारी।
चारहुँ पुत्र वीर अति सुन्दर तिन महं एक व्रतधारी।।
रावन हरन करयो सीता को, सुनि नन्दनन्दन नींद बिसारी।
'सूर' स्याम कर उठे चाप को, लक्ष्मण देहु, जननि भ्रम भारी।।

राम विरह

सीता की खोज में वन-वन भटकते हुए राम के विरह-विलाप से समस्त दण्डकारण्य जैसे अश्रुपात करने लगता है—

फिरत प्रभु पूछत बन द्रुम बेली।
अहो बन्धु काहु अवलोकी
इहिं मग बधू अकेली।
अहो बिहंग, अहो पन्नग नृप,
या कंदर के राई।

अब के मेरी विपति मिटाऔ,
जानकि देहु बताई।।

श्रीराम ने धरती पर सीताजी के चरण चिह्न को देखा तो तुरंत लपक कर उस धूली को शरीर पर ऐसे चढ़ा लिया जैसे शंकरजी विभूति लगाते हैं—

यह सुनि धावत धरनि,
चरन की प्रतिमा पथ में पाई।
नैन नीर रघुनाथ सानि सो
सिव ज्यौं गात चढ़ाई।।
कहुँ हिय हार, कहूँ कर-कंकन
कहुँ नूपुर; कहुँ चीर।
'सूरदास' बन बन अवलोकत,
बिलख बदन रघुवीर।।

सीता का राम के नाम संदेश

रससिद्ध कविश्वर महाकवि सूरदास ने अपने सुललित पदों में गृध उद्धार, शबरी उद्धार, सुग्रीव मिलाप, बाली वध तथा हनुमान् के दूतकार्य का ऐसा अनूठा वर्णन किया है कि समूची रामलीला के कलारुचिर दर्शन हो जाते हैं। सीताजी हनुमान्जी के द्वारा श्रीराम को निम्न सन्देश भेजती है—

कपि ! तुम यह संदेसो कहियौ।
रघुपति ! तुम पात पतिव्रत हमरैं-
करुना नाथ ! सोध अब लहियो।।
मोहि चिन्ता नहिं आपनी,
तुमहिं हंसिहैं लोग।
मानो राघव बल नहीं,
रावन मारन जोग।

रावण वध

इसके अतिरिक्त सूरदासजी ने अपने सैकड़ों पदों में अशोक वाटिका का वर्णन, सीता-त्रिजटा संवाद, हनुमान्-सीता संवाद, रावण-सीता संवाद, हनुमान्-रावण संवाद, मन्दोदरी-रावण संवाद, लंका-दहन, विभीषण-रावण संवाद, विभीषण शरणागति, सेतु बन्धन, अंगद-रावण संवाद तथा राम-रावण युद्ध का

अत्यन्त भावपूर्ण वर्णन किया है। रावण वध में सूरदास ने वीर एवं रौद्र रस का अद्‌भुत चित्र खींचा है—

रघुपति अपनौ प्रन प्रति पाल्यौ।
तोरयौ कोपि प्रबल गढ़,
रावन टूक टूक करि डारियौ।।
कहँ भुज कहूँ धड़, कहूँ सिर लौटत,
मानौ मद मतवारौ।
भभकत तरफत स्रोनित में तन,
नाहीं परत निहारौ।।

मातृभूमि का अनंत प्रेम

वाल्मीकि रामायण में लंका-विजयोपरान्त जब लक्ष्मण राम को सुझाव देते हैं कि हम यहीं लंका में ही राज्य क्यों न कर लेवें तब प्रभु रामचन्द्र कहते हैं—

अपि स्वर्णमयी लंका
न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्म भूमिश्च
स्वर्गादपि गरीयसी।

नेत्रहीन किन्तु दृष्टिवान् महाकवि सूरदास ने इसी भाव को अपने एक अत्यन्त रसीले पद में गाया है—

हमारी जन्म भूमि यह गाऊं।
सुनहु सखा सुग्रीव विभीषन,
अवनि अजोध्या नाऊं।
देखत बन उपवन सरिता सर
परम मनोहर ठाऊं।
अपनी प्रकृति लिए बोलत हौं
सुरपुर मैं न रहाऊं
ह्यां के बासी अवलोकत हौं
आनन्द उर न समाऊं।
'सूरदास' जो विधि न संकोचे
तो बैकुण्ठ न जाऊं।

धन्य हैं श्रीराम जो अपनी सदावत्सला मातृभूमि पर स्वर्ग एवं बैकुण्ठ न्योछावर करने को उद्यत हैं और धन्य है वह देव वन्दिता पुण्य भूमि जिसे रघुवंश नायक श्रीरामचन्द्र महाराजा की जन्म भूमि कहलाने का गौरव प्राप्त हुआ। किन्तु शत बार धन्य है मां भारती का वह कीर्तिवान् कलावन्त, भक्तियुग का मूर्धन्य कवि, भक्त-शिरोमणि सूरदास जिसने श्री राम एवं उनकी जन्मभूमि दोनों का यश गाकर अपनी काव्य कला को धन्य कर लिया।

'भारतीय सभ्यता यूनानी सभ्यता से कहीं अधिक उच्चाकांक्षी, अधिक सूक्ष्म, बहुमुखी, अनुसंधान प्रिय और गंभीर, रोमन सभ्यता की अपेक्षा कहीं अधिक उच्च और कोमल, पुरानी मिस्री सभ्यता से अधिक उदार और अध्यात्मिक, अन्य किसी भी एशियाई सभ्यता से कहीं अधिक विशाल और मौलिक, अठारहवीं सदी से पहले के यूरोप की सभ्यता से कहीं अधिक बौद्धिक, इन सब सभ्यताओं में जो कुछ था, उस सबकी तथा उससे भी अधिक की स्वामिनी यह भारतीय सभ्यता सभी अतीत मानव संस्कृतियों से अधिक शक्तिशाली, आत्मस्थित, प्रेरणादात्री तथा महाप्रतापशाली रही है।'

—ऋषि अरविन्द

रावण ऋषिपुत्र, वेदपाठी ब्राह्मण होते हुए भी असुर क्यों कहा गया ?

लक्ष्मण भगवान् राम से पूछते हैं रावण तो विश्रवा ऋषि का पुत्र है, वेदपाठी ब्राह्मण होते हुए भी सोने की लंका देखी तो उस पर उसका मन डोल गया। पुष्पक विमान देखा तो उस पर उसका मन मचल गया। सुंदर नारी को देखा तो उस पर उसका मन विचलित हो गया। ऐसा क्यों?

इसके उत्तर में भगवान् कहते हैं—

पिता यस्य सदाचारी, माता यस्य पतिव्रता।
कांचन कामिनीम् दृष्ट्वा तस्य न चलति मनः।।

अर्थात् जिसके पिता सदाचारी हों तथा माता पतिव्रता हो, उनकी संतान का मन कामिनी एवं कांचन को देखकर चलायमान नहीं होता। बच्चों पर माँ का प्रभाव विशेष पड़ता है।

सोने की लंका कुबेर की थी। हम लक्ष्मी की पूजा में चांदी का सिक्का रखकर पूजा करते हैं। कुबेर की पूजा सोना रखकर ही करते हैं क्योंकि सोने का अधिपति कुबेर है। वह दक्षिण दिशा का लोकपाल भी है।

सोने की लंका का मालिक कुबेर होते हुए भी माल्यवान का मन डोल गया। कुबेर पर चढ़ाई कर दी। कुबेर ने अपनी रक्षार्थ विष्णु को पुकारा। विष्णु ने सुदर्शन चक्र से माल्यवान की गर्दन उड़ा दी। तब माल्यवान का पुत्र माली आया। उसकी भी वही गति विष्णु ने की तब माली का भाई सुमाली आया। सुमाली पर अस्त्रप्रहार करने के लिये भगवान् विष्णु ने जैसे ही शस्त्र उठाया वैसे ही सुमाली भाग खड़ा हुआ। लंका से सीधे पश्चिम की ओर अफ्रीका का प्रथम देश है सोमालीलैण्ड, वहाँ पहुँच गया।

वहाँ अपनी बहिन कैकसी से सोने की लंका जीतने में मदद मांगी। बहिन कैकसी ने कहा, मैं औरत की जात क्या कर सकती हूं? तुम अपने बाप और भाई को मरवाकर कायर की तरह भाग कर आ गये और मुझसे कहते हो, लंका जीतो!

सुमाली ने कहा, हम युद्ध से लंका नहीं जीत सकते। हम विष्णु के सुदर्शन चक्र का ताप नहीं सह सकते। पर, उत्तराधिकार के नियम से जीत सकते हैं। ब्रह्मा के पुत्र पुलस्त्य। पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा और विश्रवा के पुत्र हैं कुबेर। कुबेर के पिता विश्रवा अभी जीवित हैं। तुम उनके पीछे छाया की तरह लगकर उनको अपनी सेवा से संतुष्ट करके, उनसे संतान प्राप्त कर लो और वह संतान भी उत्तराधिकार के नियम से लंका का अधिकारी बन जायगा।

कैकसी विश्रवा के पीछे छाया की तरह पड़ गई। विश्रवा जहाँ भी जाये पूर्व-पश्चिम, उत्तर, दक्षिण वह भी पीछे-पीछे जाये। पूजा की सामग्री, पुष्प, समिधा आदि की सारी व्यवस्था कर देवे। 12 वर्ष पश्चात् प्रयागराज में विश्रवा ऋषि ने पूछ ही लिया, तुम छाया की तरह क्यों पीछे पड़ी हो? यज्ञ के लिये समिधायें आदि लाना एवं अन्य सेवाकार्य क्यों करती हो? मैं जहाँ-जहाँ जाता हूँ, तुम मेरे पीछे-पीछे क्यों आती हो? मेरा-तेरा क्या सम्बन्ध है? तो कैकसी ने आंखों में अश्रु भर कर कहा कि आप यह सम्बन्ध मानें या न मानें मैंने आपको पति रूप में वरण कर लिया है। आपका पीछा छोड़ने वाली नहीं हूँ। विश्रवा ऋषि को दया आ गई। उस राक्षसकन्या से विश्रवा ऋषि के तीन पुत्र पैदा हुए। एक सतोगुणी पुत्र विभीषण, एक रजोगुणी पुत्र रावण और एक तमोगुणी पुत्र कुम्भकरण।

तब कैकसी ने पुत्रों से कहा—सोने की लंका पाना चाहते हो तो तपस्या करो, पुरुषार्थ करो, प्रयत्न के द्वारा ही कुछ किया जा सकता है।

तीनों ने तप करके वर प्राप्त किया। रावण ने विभीषण से पूछा—तुमने क्या वर मांगा? उसने कहा—मेरी बुद्धि अधर्म में न लगे, यह वर मांगा। तब रावण ने धिक्कारा कि हम राक्षस कुल के असुर हैं। असुरों का काम ही अधर्म करना है। असुरों का जन्म ही अधर्म के लिये हुआ है। फिर हम धर्म से थोड़े ही लंका प्राप्त कर सकते हैं। तुम मेरे लिये बेकार हो। फिर कुम्भकरण से पूछा—तुमने क्या वर मांगा? उसने कहा—मैं मांगना तो चाहता था इन्द्रासन पर थोड़े नशे में होने के कारण इन्द्रासन के स्थान पर निद्रासन मांग लिया। तब रावण ने कहा—तुम भी बेकार हो।

फिर हम देखते हैं रावण की ललचाई दृष्टि सोने की लंका पर जाती है और अपने भाई कुबेर को वहाँ से खदेड़ देता है। फिर सीता माता पर दृष्टि जाती है तो उस पर ललचा जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं रावण ऋषिपुत्र, वेदपाठी ब्राह्मण होते हुए भी बुद्धि का मलिन होने से असुर कहलाया।

योगेश्वर श्रीकृष्ण का राजनीतिक तत्त्व दर्शन

जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द की, विश्व के करोड़ों व्यक्ति आदर्श पुरुष, पूर्ण पुरुष तथा परम पुरुष के रूप में अर्चना करते हैं उन विश्वगुरु श्रीकृष्ण का राष्ट्र पुरुष के रूप में चिन्तन सम्भवतः कुछ संकुचित भाव दिखाई देगा। किन्तु प्रस्तुत लेख का ऐसा कोई आशय नहीं है। जिस प्रकार से सहस्ररश्मि सूर्य की किसी एक रश्मि का अध्ययन भी सूर्य को समझने में सहायक होता है उसी प्रकार इन पूर्ण पुरुष श्रीकृष्ण के जीवन की राष्ट्रीय रश्मि का अध्ययन भी कम महत्त्व का नहीं। वरन् अभी तक उन योगेश्वर कृष्ण की इसी जीवन रश्मि का कम से कम अध्ययन किया गया है।

भगवान् श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व इतना अनन्तमुखी है कि यह कहना कठिन है कि वे क्या नहीं थे। योग-योगेश्वर, ज्ञानदाता, सिद्ध साधक, मित्र, सारथि, सेवक, रक्षक, राष्ट्रनिर्माता, आदर्श कर्मयोगी, आदर्श प्रेमी, आदर्श शासक, सफल राजनीतिज्ञ, शूरशिरोमणि, मानवता के गौरव, लोकनायक, लोकशिक्षक—वे सभी कुछ थे। पिछले 5000 वर्षों की गम्भीर गवेषणा के पश्चात् भी अभी तक उन के बहुरंगी जीवन की अनेकानेक अज्ञात दिशायें खोजनी शेष हैं।

एक पारसी विद्वान् प्रो. फीरीज कावसजी दावर भगवान् कृष्ण की महात्मा ईसा से तुलना करते हुए लिखते हैं—'...महात्मा ईसा इतिहास के उन बहुमूल्य रत्नों में से है जिनके लिए हम लोगों की सदा आदरसूचक विशेषणों का प्रयोग करने की इच्छा होती है, परन्तु क्या वे रणभूमि में जाकर युद्ध कर सकते थे या राजदूत का कार्य कर सकते थे? हमारी यह धारणा है कि समस्त संसार के इतिहास में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं हुआ, जिसका कार्यक्षेत्र इतना अधिक व्यापक रहा हो, जितना श्रीकृष्ण का था। उन्होंने अपने कीर्तिमय जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में जो-जो लोकोत्तर कार्य किए, वे गत पांच सहस्र वर्षों से अटक से लेकर कटक तक और काश्मीर से कन्याकुमारी तक ही नहीं, प्रत्युत सारे जगत् के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में गाए जाते हैं।

वे विद्वान् पारसी प्रोफेसर आगे लिखते हैं, बालक, विद्यार्थी, मित्र, प्रेमी, योद्धा, शासक, राजपूत, तत्त्वदर्शी, योगेश्वर, सिद्ध पुरुष तथा ईश्वर के पूर्णावतार

आदि सारे ही रूपों में उनके जीवन की अद्वितीय महानता दृष्टिगोचर होती है। किसी कवि का कथन है कि कीर्तिमय जीवन की एक कार्य संकुल घड़ी भी कीर्ति रहित जीवन के एक युग से भी श्रेष्ठ है, फिर श्रीकृष्ण ने तो एक सौ पचीस वर्ष की लम्बी एवं पूर्ण आयु प्राप्त की और उसके प्रत्येक घंटे में उन्होंने ऐसे-ऐसे कार्य किए जिनसे उनका नाम तथा यश, सदा के लिए अमर हो गया।

गीता तत्त्व

गीता तत्त्व ही भगवान् कृष्ण का जीवन तत्त्व है। भगवान् स्वयं कहते हैं, 'गीता मे हृदयम्' अर्थात् गीता ही मेरा हृदय है। गीता उपनिषदों का सार है पर सार मात्र ही नहीं है उससे अधिक भी कुछ है। उपनिषदों का ब्रह्मज्ञान जगत् के कोलाहल से दूर अरण्यों या वनों में गाया गया। परमशान्ति में बैठे हुए गुरु और शिष्य वार्तालाप कर रहे हैं। पर समस्या है धर्म के उस परम तत्त्व को जीवन में कैसे साकार किया जाए? प्रायः लोग कह देते हैं कि परमार्थ की बातें परमार्थ के लिए है उनका यथार्थ जीवन में, व्यवहार में कोई स्थान नहीं। यह ऐसा ही, जैसा पश्चिम के बड़े-बड़े विज्ञानवेत्ता गिरजाघर में जाकर प्रभु ईसा का सन्देश गाते हैं—'सभी जीवों से वैसे ही प्रेम करो जैसे अपने आप से करते हो।' और गिरजे से बाहर अपनी प्रयोगशाला में जाकर मानवता के नाश के लिए अणुबम तथा उद्‌जन बम तैयार करते हैं। पूछने पर वे तर्क देते हैं कि धर्म और राजनीति का आपस में कोई सम्बन्ध नहीं है, विज्ञान का क्षेत्र और धर्म का क्षेत्र भिन्न-भिन्न है। ऊपर से ठीक प्रतीत होते हुए भी इस कथन में कितना धोखा छिपा हुआ है यह हिरोशिमा और नागासाकी के उजड़े हुए भू-प्रदेश से पूछियेगा, कथनी और करनी के इसी अन्तर ने मानवता का नाश कर रखा है। आदर्श और यथार्थ के बीच की इसी खाई में मानवता गिर रही है। गीता ने ऊँचे से ऊँचे ब्रह्मज्ञान को जीवन की भीषण से भीषण परिस्थिति पर लागू करके दिखाया है जब 18 अक्षौहिणी सेनाएं मरने-मारने को उद्यत है और रक्त की नदियाँ बहाना चाहती है वहाँ भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को ब्रह्मज्ञान का महान् उपदेश दिया पर शान्ति लाभ के लिए वन में भागने भी नहीं दिया।

प्रवृत्ति और निवृत्ति

क्रान्ति के तुमुल नाद के भीतर भी भगवान् ने अर्जुन को शांति का उपदेश दिया। और भीतर की शांति को बिना खोए ही बाहर से भीषणतम युद्ध तक कर सकना ही जीवन की वह अद्‌भुत कला है जो, गीता ने सिखाई है।

इसमें प्रवृत्ति तथा निवृत्ति का संयोग है बाहर से प्रवृत्त रहते हुए भी अन्तर से सर्वथा निर्लिप्त रहना ही गीता का मर्म है। श्रीकृष्ण का जीवन संदेश है—आदर्श को व्यवहार में उतारो, परमार्थ को यथार्थ में साकार करो, संन्यास को कर्म में

विकसित होने दो। जीवन एक इकाई है तथा धर्म राजनीति के दो अलग-अलग क्षेत्र नहीं हैं। दोनों क्षेत्र एक हैं।

भगवान् का आदेश है—'माममुस्मर युद्ध च।' मुझे याद भी करता रह और युद्ध भी करता जा।

स्वदेश और स्वधर्म

देश और धर्म को भिन्न-भिन्न मानने से देश की सेवा धर्मपूर्वक नहीं हो सकेगी और धर्म हमें इहलोक में उत्थान न दे सकेगा। यदि धर्म से राजनीतिक बेहोशी फैले तो उसका क्या लाभ है और यदि धर्म साधना से देश लुट जाए तो वह साधना किस काम की? शास्त्र का मत है—'यतोऽभ्युदय निःश्रेयस्सिद्धि स धर्मः।' जिससे इहलोक और परलोक दोनों सुधरे वही धर्म है अतः भारत में राजनीति धर्म का एक अंग है इसे राजधर्म कहा है। बिना धर्म के राजनीति वेश्या के समान हो जाएगी। अतः भगवान् कृष्ण जहाँ धर्मरक्षक हैं वहाँ राष्ट्र निर्माता भी हैं।

धर्म युद्ध

भगवान् कृष्ण ने गीता शास्त्र में धर्म युद्ध की कल्पना बड़ी सुन्दर दी है। राग-द्वेष से हीन होकर, सुख-दुःख को समान जानकर मित्र-शत्रु में भेद न करते हुए, अपने मन की शांति को स्थिर रखते हुए, भगवान् को निरन्तर स्मरण करते हुए निष्काम कर्म भाव से धर्म रक्षा के लिए यदि युद्ध किया जाय तो वह धर्म युद्ध है। सच्चा क्षत्रिय युद्ध धर्म के लिए ही लड़ता है, किसी स्वार्थ सिद्धि के लिए या प्रतिकार भावना से नहीं। शांति निश्चय ही उत्तम है किन्तु यदि अन्तर की शांति कायम रख कर असंग भाव से युद्ध किया जाय तो वह भी महान् है। जो धर्म की पुकार पर युद्ध से भागे, वह कायर है।

क्षत्रिय कसाई या बूचड़ नहीं है वह धर्म की रक्षा के लिए शस्त्र धारण करता है। यदि युद्ध के साथ योग का संयोग न हो, यदि शक्ति के साथ शील का समन्वय न हो तो बल का दुरुपयोग प्रारम्भ हो जायगा।

श्रीकृष्ण के 'मामनुस्मर युद्ध च' में ध्वनि है कि मनुष्य निरन्तर भगवान् को भी स्मरण रखे तथा जीवन के संघर्ष में भी लगा रहे। इसी भाव को गुरु गोविंदसिंह ने प्रकट किया है—

धन्य जिओ तिंह को जग में, मुख ते हरि चित्त में युद्ध विचारे।

यज्ञमय जीवन

भगवान् का अपना जीवन भी यज्ञमय था, वे स्वयं कहते हैं—

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र, लोकोऽयं कर्मबन्धनः।

अर्थात् यज्ञ के सिवा शेष सभी कर्म बन्धन में डालने वाले हैं। श्रीकृष्ण का कोई भी स्वार्थ शेष नहीं था, कोई कामना नहीं थी। फिर भी वे इतने कर्मशील थे। उन का समस्त जीवन 'इदं न मम्' की यज्ञ भावना से ओत-प्रोत था। राष्ट्र के प्रत्येक बच्चे को इसी भावना से कार्य करना चाहिए, स्वार्थ एवं अहंकार राष्ट्रोत्थान के लिए घातक है।

राज्य के उद्देश्य

श्रीकृष्ण की घोषणा है—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।

यह एक राजकीय घोषणा भी है। सज्जनों की रक्षा करें, दुष्टों को दण्ड देवें।

समता

समता का आश्वासन देते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं—

विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनिचैवं श्वपाके च पण्डिताः सम दर्शिनः।।

अच्छा शासक सभी नागरिकों को समान अधिकार प्रदान करे।

वह पशुओं तथा छोटे जीवों का भी संरक्षण करे। किसी प्रकार का पक्षपात न करे।

अनन्य राष्ट्रभक्ति

भगवान् की प्रतिज्ञा है—

अनन्यश्चिन्तयतो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योग क्षेत्रं वहाम्यहम्।।

जो लोग अनन्य भाव से मुझ राष्ट्र पुरुष का चिन्तन करते हैं मैं उन के योग क्षेम का वहन करता हूँ। अनन्य भाव से राष्ट्र चिन्तन करने का अर्थ है राष्ट्र को अपने से अन्य, अपने से भिन्न न माने। अर्थात् अपना हित और राष्ट्र हित को भिन्न न समझे। मैं राष्ट्र का अंग हूँ तथा राष्ट्र के हित में ही मेरा हित है, ऐसा मानकर राष्ट्र सेवा करने से ही राष्ट्र का उद्धार हो सकता है। यदि देश के मुसलमान तथा ईसाई, भारत के हित में ही अपना हित मानें तथा राष्ट्र को पराया न समझें तो क्या वे राष्ट्र के साथ कभी द्रोह कर सकते हैं?

विराट् रूप दर्शन

श्रीकृष्ण राष्ट्र पुरुष हैं। विराट् रूप में उन्होंने अर्जुन को संगठित राष्ट्र की

विराट् शक्ति का रूप दिखाया है। विराट् रूप के सामने एक व्यक्ति अति लघु है। व्यक्ति समझता है मैं सब कुछ कर रहा हूँ, किन्तु विराट् राष्ट्र के दर्शन करने पर वह लज्जित हो जाता है। भगवान् उसे कहते हैं—राष्ट्र के इस विराट् रूप के मुख में सारे पापी पहले ही भस्म होने के लिए जा रहे हैं, 'निमित्त मात्रं भव सव्य साचिन्', हे अर्जुन, तू निमित्त मात्र बन जा।

राष्ट्र शरणागति

राष्ट्र की शरण में आने वालों को आश्वासन देते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं—

चाहे बड़े से बड़ा दुराचारी भी मुझ राष्ट्रपुरुष की शरण में आ जावे, उसकी रक्षा होगी।

'न मे भक्तः प्रणश्यति'

अर्थात् राष्ट्रभक्त का कभी नाश नहीं होगा।

वे आह्वान करते हुए मानव से कहते हैं—

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

इसमें ध्वनि है 'राष्ट्रैकं शरणं व्रज—हे मानव, तू सर्व धर्मों को त्याग कर एक मुझ राष्ट्रपुरुष की शरण में आ जा। मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूंगा।

बल तथा बुद्धि

बल तथा बुद्धि के संयोग से ही राष्ट्र का कल्याण है।

यत्र योगेश्वरो कृष्णः यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्री विजयोर्भूति ध्रुवा नीति मर्तिर्मम।।

जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं तथा जहाँ धनुर्धारी अर्जुन है, जहाँ शस्त्र और शास्त्र का, युद्ध और यज्ञ का, बल एवं बुद्धि का समन्वय है, वहीं विजय है, वैभव है तथा यश है। राष्ट्रोत्थान के लिए जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराज का यह मुक्ति मन्त्र क्या हम सुनेंगे।

गीता सिर्फ व्यक्तियों या राष्ट्र विशेष का नहीं बल्कि समग्र विश्व के संकट निवारण हेतु अपरिहार्य ग्रंथ है।

—इंडोनेशिया के राष्ट्रपति सुकर्ण

भारत का अमर अध्यात्म संगीत : गीता

युग बीत गये। युग बीत रहे हैं तथा युग बीतते चले जायेंगे किन्तु भारत की मृत्युंजय संस्कृति भूत, भविष्य तथा वर्तमान के लिए चुनौती बनी हुई आज तक जीवित है। नश्वर पर अधिष्ठित संस्कृति नश्वर है, अविनाशी पर निर्मित संस्कृति सदा अविनश्वर है। बड़े-बड़े साम्राज्य ध्वस्त हो गए, बड़ी-बड़ी विश्वव्यापी संस्कृतियाँ धूलि धूसरित हो गईं। जातियों का उत्थान-पतन एक अतीत की धूमिल कहानी मात्र रह गया है किन्तु दुर्भाग्य की सब से अधिक ठोकरें खाकर भी भारत आज तक जीवित है। इसका कारण क्या है? इसका कारण है भारतीय संस्कृति की वह संजीवनी जिसे विश्व श्रीमद्-भगवद्गीता के नाम से पहचानता है।

भगवद्गीता का अर्थ है भगवान् का गायन। यह भारत का दिव्य आध्यात्मिक संगीत है जिसने पतन के गर्त में पड़ी हुई तथा मृत्यु के किनारे पर खड़ी हुई इस जाति को भी मृत्युंजय बना दिया है।

गीता की पुस्तक खोलिए। प्रथम अध्याय है अर्जुन विषाद योग अर्थात् अर्जुन के दुःख का वर्णन। यह जीव का रोना है। जीव कर्तव्याकर्तव्य को न पहचान कर दुःख पाता है तथा अर्जुन के समान रोता है। वह महाबली होते हुए भी 'अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम' है, उसके नेत्र अश्रुपूरित हैं। वह रोदन करके कहता है—'गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते'—मेरे हाथ से गाण्डीव गिर रहा है तथा मेरी त्वचा जलती है। पुनः उसकी स्वीकारोक्ति है—'न च शक्तोमि अवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः।' विश्व का वह लासानी वीर कहता है कि मैं खड़ा तक नहीं हो सकता हूँ तथा मेरा मन चक्कर खा रहा है, वह वीरश्रेष्ठ हाथ में भीख का कटोरा लेकर भीख मांगने को तैयार है। इस सारे रोदन का उपचार क्या है? उपचार बड़ा ऐतिहासिक है—भगवद्गीत, भगवान् का गाना। जीव का रोना त्याग कर भगवान् का गाना गाओ, यही भगवद्गीता का सन्देश सार है।

जिस महान् ऐतिहासिक दिन कुरुक्षेत्र की रणस्थली में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द वासुदेव नारायण, अन्तर्यामी परमेश्वर के श्रीमुख से यह महान् आध्यात्मिक संगीत निःसृत हुआ होगा वह दिन कितना धन्य हुआ होगा। यह

पंजाब की धरती कितनी सौभाग्यशालिनी है कि इस पर स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-चिह्न अंकित हुए तथा उन्होंने वह महान् गीतिका गाई जो पिछले 5000 वर्षों से विश्व के अन्तरिक्ष में जीवन-ज्योति बनकर चमक रही है, हर गिरे हुए को उठाने के लिए, हर भटके हुए को राह दिखाने के लिए, हर पतित का उद्धार करने के लिए, मर्त्यों को अमरत्व की सुधा पिलाने के लिए वह भगवद्गीतारूपी ज्ञान-भक्ति-कर्म की त्रिपथगा भागीरथी मानव मात्र को उबारने के लिए निरन्तर बह रही है।

गीता ज्ञान का तेजपुंज सूर्य है, ज्ञान के आगार उपनिषदों का साक्षात् सारतत्त्व है, उपनिषद् रूपी गऊओं का दुहा हुआ दुग्धामृत है, किंवा उनका नवनीत है। इसके विषय में जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान् विलियम वान हम्बोल्ट का कथन है—'गीता विश्व की किसी भी ज्ञात भाषा में लिखी हुई आध्यात्मिक गीतिकाओं में सब से अधिक सुन्दर, किंवा सच्चे अर्थों में एकमात्र दार्शनिक गीतिका है।

आधुनिक काल में अमरीका में थोरो जैसे महापुरुष प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर गीता रूपी अमृत के झरने में स्नान करते थे। उन्हीं के महान् शिष्य इमर्सन भी गीता के अनन्य-भक्त हुए। इंग्लैण्ड में भी गीता के अध्यात्म संगीत के रसिक कार्लाइल जैसे तत्त्वद्रष्टा हुए। इमर्सन एक बार कार्लाइल से मिलने गए। वहाँ कार्लायल ने इमर्सन से कुछ सौगात या उपहारस्वरूप कोई वस्तु मांगी। क्या यह प्रत्येक भारतीय के लिए महान् गौरव की बात नहीं है कि दोनों ने एक-दूसरे को भगवद्गीता की प्रति भेंट की। दोनों ने स्वीकार किया कि उनके कंगाल देश में उससे अधिक मूल्यवान कोई निधि नहीं है।

सत्यं शिवं सुन्दरम् की त्रिपथगा भागीरथी गीता माता को, हम अपने अन्तस्तल में स्थान देवें जिससे हम अन्तर्बाह्य पवित्र हो जावें तथा हृदय वीणा के तार-तार से यह अमरता की अमर रागिनी गूंजने लगे।

गीता का शाश्वत दर्शन कभी भी रचे गये सबसे स्पष्ट व सर्वांगपूर्ण सारांशों में से एक है। इसलिये न केवल भारतीयों के, अपितु सम्पूर्ण मानव-जाति के लिये इसका स्थायी मूल्य है। सम्भवतः भगवद्गीता शाश्वत दर्शन का सबसे अच्छा सुसंगत अध्यात्मिक विवरण है।

—जीवविज्ञानी, अलडुअस हक्सले

गुरुवाणी में कृष्ण चरित्र

भारत की एकता के साक्षात्कार के लिए भारतीय जनगण के हृदय में ध्वनित होने वाली राम तथा कृष्ण चरित की अमर रागिनी का श्रुति दर्शन अनिवार्य है। कैलास से लेकर कन्याकुमारी तक तथा कामरूप से द्वारका तक प्रदेश, प्रकृति, पंथ, वेशभूषा, भाषा, भोजन तथा रीति-रिवाज की असंख्य विभिन्नताओं के उपरान्त भी हमारे कोटि-कोटि हृदयों को एक ही स्नेह तार में गूंथने वाले तत्त्व हैं— श्रीराम एवं श्रीकृष्ण चरित। कोट्यावधि भारतवासियों की हृत्तन्त्री राम एवं कृष्ण के नाम पर समान रूप से झंकृत हो उठती है। भारत की भाषाएँ भले ही अनेक हैं पर उनका अन्तःस्थ भाव एक है, भारतीय जनगण के हृदय के तार भले ही अनेक हैं पर उनकी झंकार एक है। उसी एक झंकार को श्रुतिगोचर करने का पुण्यपावन दिवस श्रीकृष्ण जन्माष्टमी महोत्सव आया है।

आज सामान्य रूप से समस्त देश तथा विशेष रूप से पंजाब प्रदेश की परिस्थिति विषम है। भारत के सांस्कृतिक ऐक्य के सूत्र शिथिल पड़ गए हैं, स्वार्थ के शत-शत कौरव उत्पात मचा रहे हैं, मातृभूमि के वास्तविक शत्रुओं से युद्ध न करके अपनों के विरुद्ध ही मोर्चा लगाने वाले दुर्योधन (भ्रष्ट योद्धा) कृपाण ताने देश की अखण्डता का खून करने को उद्यत हैं, दुःशासन (बुरे शासन) के पापी एवं असह्य करों (हाथों अथवा टैक्स) ने भरी सभा (विधानसभा इत्यादि) में असहाय प्रजारूपी द्रौपदी का चीरहरण कर उसकी लाज लूट ली है, देशभर के अनेक भू-भाग (आधा पंजाब, सिन्ध, ब्लोचिस्तान, सीमान्त, आधा बंगाल, गोआ तथा हिमालय का 14 हजार वर्गमील क्षेत्र) पारतंत्र्य के कंस-कारागार में पड़े कष्ट भोग रहे हैं। जरा (बुढ़ापे) में दुरभिसन्धियाँ करने वाले जरासन्धों की धर्मनिरपेक्ष नीति-नीड़ में धर्म-नीति बन्दिनी पड़ी है, स्वयं भारत के बूचड़स्थानों में प्रतिदिन तीन लाख गोवंश के गले पर छुरी चलती देख आज गौएँ अपने प्यारे गोपाल को कातर वाणी में पुकार रही हैं, चीन-रूपी शकुनि अपनी कूटनीति के दाँव-पेंच से भारतरूपी युधिष्ठिर को छल रहा है, साम्यवादी बकासुर सारे देश को खा जाने के लिए अपना मुख फैला रहा है, देश के अन्दर बैठे हुए बकासुर-बन्धु अपने चंचुप्रहार से राष्ट्र को भीतर से खोखला कर रहे हैं; पाकिस्तान रूपी कालयवन भी देश की

मान-मथुरा पर कुदृष्टि जमाए बैठा है। आन्तरिक विग्रह एवं बाह्य संकटों से घिरा हुआ भारत आज अपने भगवान् को पुकार रहा है। आज देश का जनगण पुनः उस ऐक्य के अमर सन्देश को सुनने के लिए आतुर है जो महाभारत महाकाव्य में शाश्वत बनकर गूँज रहा है—

न वै भिन्ना जातु चरन्ति धर्मम्, न वै सुखं प्राप्नुवन्तीह भिन्ना।
न वै भिन्ना गौरवं प्राप्नवन्ति, न वै भिन्ना प्रश्रयं रोचयन्ति।।

अर्थात् बिखरे हुए, असंगठित लोग न धर्म पर चल सकते हैं, न सुख प्राप्त करते हैं, न गौरव तथा न ही कोई आश्रय, प्रश्रय का आनन्द पा सकते हैं।

आज वेद, उपनिषद्, गीता एवं गुरुवाणी की धरती पर विग्रह के बादल उमड़ रहे हैं। सिख सम्प्रदाय को हिन्दू जाति का अभिन्न अंग बनाने वाली श्रीकृष्ण चरित की अमर रागिनी आज हम भूल गए हैं। इसीलिए आज यह परस्पर विग्रह, विद्वेष एवं वैषम्य दृष्टिगोचर होता है। स्वयं सिक्ख गुरुओं ने श्रीकृष्ण चरित का जो अमर गान गाया है, यदि आज वह पुनः हमारे हृदयों में प्रतिध्वनित होने लगे तो समस्त विभिन्नताएँ दूर कर हम एक सबल-सुसंगठित राष्ट्र के रूप में खड़े हो जाएँ।

श्रीगुरुग्रन्थ साहब

श्रीगुरुग्रन्थ साहब, सिक्ख सम्प्रदाय का सर्वमान्य धर्मग्रन्थ है, ज्ञान, भक्ति एवं वैराग्य का अगाध सागर है। उसमें लगभग 30 हजार बार श्रीराम का नाम आता है तथा लगभग 16 हजार बार श्रीकृष्ण एवं हरि, गोविन्द, गोपाल इत्यादि नाम आये हैं। यदि श्रीगुरु ग्रन्थ साहब में से राम एवं कृष्ण के नाम वाले पृष्ठ निकाल दिए जाएँ तो डेढ़ हजार पृष्ठों के विराट् ग्रन्थ में से जिल्द के प्रथम एवं अन्तिम पृष्ठ के अतिरिक्त कुछ भी न बचे। श्रीराम एवं कृष्ण के नाम से गूँजती हुई गुरुवाणी का प्रतिदिन-पाठ करने का दावा करने वाले सज्जन भी यदि राम एवं कृष्ण के भक्त, अ-केशधारी हिन्दुओं से शत्रुता रखें तो स्वयं लज्जा के लिए भी लज्जित होने का प्रसंग है।

सर्वं कृष्णमयं जगत्

श्रीगुरुग्रन्थ साहब की साक्षी है—

एक कृष्ण सर्व देवा देव देवोत् आत्मः।
आत्मं श्री वासुदेवस्त जे को जानस भेद
नानक ताका दास है, सोई निरंजन देव।।
आपे गोपी आपे कान्हा, आपे गउ चराने वाला।

आप उपावे, आप खपावे, तुध लेप नहीं इक तिलरंगा।

(गुरु अर्जुनदेवजी)

उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण के निर्गुण एवं सगुण—दोनों रूपों की वन्दना श्रीगुरु ग्रन्थ साहब में गायी गयी है।

श्रीकृष्ण चरित के पद

श्री गुरु नानकदेव जी गाते हैं—

हरि का नाम सदा सुखदाई।
पांचाली की राज सभा में, हरि ने लाज बचाई।

पांचाली (द्रौपदी) की राजसभा में लाज बचानेवाले निश्चय ही महाभारत की महाविभूति योगेश्वर श्रीकृष्ण ही हो सकते हैं, कोई निर्गुण हरि नहीं।

श्रीगुरु ग्रन्थ साहब के अन्तर्गत भक्त नामदेवजी का पद है—

हरि हरि कान पूतना तरी,
बाल घातनी कपटहिं भरी।
केसी कंस मंथन जिन लीला,
जीय दान काली को दीया।
प्रणवे नामा, ऐसो हरी,
जाय जपत, भय-अपदा टरी।।

स्वयं गुरु नानकदेवजी ने गाया है—

जुब महि जोरि छली चंद्रावलि
कान्ह कुसनु जादमु मइया।
पारजातु गोपी ले आइया
निंद्रावन महि रंग किया।

अर्थात् यजुर्वेद में कहा है कि 'चन्द्रवंश में कान्ह कृष्ण यादव बड़े वीर हुए, उन्होंने वृन्दावन में गोपियों के संग रास रचाई।' प्रसंग चारों वेदों के वर्णन का है। चाहे यजुर्वेद में श्रीकृष्ण चरित का होना ऐतिहासिक तथ्य न हो फिर भी उक्त पद से गुरुनानक की कृष्ण-भक्ति अवश्य प्रकट होती है।

चतुर्थ गुरु की साक्षी है—'जिउ प्रकार द्रोपती दुसरां आनी हरि हरि लाज निकमे।'

श्रीकृष्ण स्तुति में गुरुनानक कहते हैं—'श्री उधाई नुमति हथि कोनो कर्ता नथि किसा बड़ा भया' जिसने सब जीवन सृष्टि करके सारा विधान अपने हाथ में रखा

हुआ है, उनके लिए कालीय नाग को नाथना ही बड़प्पन का एकमात्र कारण नहीं था।

श्रीकृष्ण का सुधावर्षी नाम

सिक्ख गुरुओं ने हरि नाम की अनन्त महिमा गाई है।

गुरु नानकदेवजी जीव को उपदेश करते हैं—

जपहु मन मेरे राम नारायण गोविन्दा हरि माधो।

अन्यत्र वे गाते हैं—

हरि चरण कमल मकरंद लोभित माते
अनदिनो मोहि आहो विभाग।
कृपा जल देहि नानक सारिंग कउ
होर गाते तेरै नामि बासा।।

हरि चरण कमल के मकरंद का लोभी बना हुआ गुरु नानकदेवजी का मन-भ्रमर प्रभाव शुद्ध वैष्णव भक्ति की रागिनी गा रहा है। चतुर्थ गुरु श्री रामदासजी की हृदय-वीणा गोविन्द-गोविन्द ही गा रही है।

गोविंदु गोविंदु प्रीतम् मनि प्रीतम्
मिलि सतसंगति संवाद मनु मोहै।
जीप गोविंदु गोविंदु, धिआइए।
सम कउ दानु देह प्रभ ओहै।
मेरे भाई जना मोकउ, गोविंदु गोविंदु गोबिन्दु मन भी है।
गोविंदु गोविंदु गोविंदु गुण माना मिलि गुरु साध संगति जन सेहि।

श्रीगुरुग्रंथ साहब के अन्तर्गत पृ. 1082 पर पंचम गुरु श्री अर्जुनदेव जी का राग मारू में गाया हुआ सहस्रनाम है जो भगवान् श्रीकृष्ण के असंख्य नामों से गूँज रहा है—

अचुत, पारब्रह्म परमेसुर अंतरजामी।
मधुसूदन दामोदर सुआमी।
रिखीकेस गोवर्धन धारी
मुरली मनोहर हरि रंगा।
मोहन माधव कृष्ण मुरारे।
जगदीसुर हरि जीउ असुर संघारे।

जग जीवन अविनासी ठाकुर
घट घट वासी है संगा।।
भगति बछलु अनाथह नवो।
गोपीनाथ सगल है साथे।
वासुदेव निरंजन दाते
नानि न साकउ गुण अंगा।।
मुकुंद मनोहर लखमी नारायण।
द्रौपदी लज्जा निवारि उधारण। कमला कन काहि कंतूहल।
अनद विनोदी निह संगा।

गुरु अत्यन्त कलारुचिर एवं भाव गर्भित स्तुति में आगे गाते हैं—

निराहारी निरतैक सभाइआ।
धारि खेलु चतुरभुज कहाइआ।
सांवल सुन्दर रूप वाण वहि
नेणु सुनत सम मौहेगा।
वन गाला विभूखन कमल नैन,
सुन्दर कुण्डल मुकुट बैन।
संख चक्र गदा है धारी
नहा सारथी सत संगा।
....
आपे गोपी आपे कान्हा
आपि गऊ चरावै वाना।
आप उपा वहि आप रतपावहि
बुधु लेपु नहीं इकु तिलु रंगा।।

अन्यत्र पंचम गुरु गाते हैं—

दोन दय आल गोपाल गोविन्दा हरि धिआवहु।

श्रीगुरुग्रन्थ साहब में श्रीकृष्ण एवं विष्णु के निम्नलिखित नामों की पुनः-पुनः वन्दना गायी गयी है—मधुसूदन, दामोदर, हृषिकेश, गोवर्धनधारी, मुरलीमनोहर, हरि, मोहन, माधव, कृष्ण, मुरारी, कान्ह, धरणीधर, नृसिंह, नारायण, वामन,

श्रीराम, वनमाली, चक्रधारिण, गोपीनाथ, वासुदेव, मुकुन्द, लक्ष्मीनारायण, कमलाकांत, श्रीरंग, केशव, चतुर्भुज, श्यामसुन्दर, शंख-चक्रधारी, जगन्नाथ, गोपाल, शारंगधर, भगवान, विठूला, धनंजय, गोविन्द, गोपाल, श्रीधर इत्यादि।

अवतारवाद

चाहे कुछ विचारक अवतारवाद में विश्वास नहीं रखते, किन्तु स्वयं श्रीगुरुग्रन्थ साहब वामन, बलि, प्रह्लाद, ध्रुव, नरसिंह, राम, कृष्ण इत्यादि अवतारी विभूतियों के नामों से गुंजायमान है। ग्रन्थ साहब में भाटो की वाणी सवैयों में है जहाँ गुरु नानकदेवजी को भी नरसिंह, वामन, राम, कृष्ण के समान विष्णु का अवतार कहकर उनकी वन्दना की गयी है। सुदामा, द्रौपदी, ध्रुव प्रह्लाद इत्यादि के चरित्र तो गुरुओं ने भी आनन्द से गाए हैं। भाई गुरुदासजी की वाणी में विदुर, सुदामा, धन्ता, नामदेव इत्यादि भक्तों के चरित्र अत्यन्त भावपूर्ण है।

दशमेशगुरु का कृष्ण चरित

अपने महान् 'दशम ग्रन्थ' में गुरु गोविन्दसिंह जी गाते हैं—

मै नगवे शाहिं प्रथम मनाऊँ,
किसन निशन काहू वहि ध्याऊँ।
कान सुनै, पहचान न तिन सौ, लिव लागी मोरी पग इनसौं
कृष्ण यथामति चरित्र उचारौं, चूक ह्वेय कवि लेहुँ सुधारों।

प्रथम दो पंक्तियों में भ्रम होता है कि किशन निशन में उनकी आस्था नहीं है किन्तु 'लिव लागी मोरी पग इन सौं' से गुरु की गम्भीर सहज भक्ति प्रकट हो जाती है।

भगवान श्रीकृष्ण के रूप को देखकर उनका मन स्वतः कह उठता है—

'मुख जाहि विशायपति के सम है।
बन सें तिन सीत रिझयो अरू गायो।
वा सुर की धुन निज सुउन्न में,
ब्रह्म का त्रिया सबही सुनियायो।
धाई चली हरि के मिलवे कहू।
प्रिय श्याम सबके मन में जब भायो।
श्री कान्ह मनो गृगनी जुबती।
छलिने कहुं घटंक हे रबनायो।'

गुरु गोविन्द सिंह के विचार में मुरली की धुन सुन सभी यंत्रवत् खड़े रह जाते हैं।

एक निर्मल सन्त की मुरली पर पंक्तियाँ देखिए—

द्वापर कन्हाई बनि बंसुरी बजाई सुनि,
सुर मुनि नर काहूं धीर न तलै कइयों।
कलिजुग तारिबे कोई साधन को पारिबो को,
सुन्दर सरूप गुरु गोविन्द हवै अवत्‌रवो।।

भगवान् की रूप-माधुरी भी गुरु गोविन्द सिंह से अछूती नहीं रही। यह तो है ही परन्तु यहाँ रूप और मुरली वर्णन देखिए—

अन्य कवियों की भांति उन्होंने लिखा है—

टाढ़ रही जमुना सुनि कै
धुनिराग मलै सुबिबे को चेही हे,
मोह रहे बन के गज औ,
इकठे मिलि आवन सिंह सहे है,
अवात है सुर में डल के सुर
त्याग सबे सुर ध्यान कहै है।
महारास कासे तो मानो स्वयं देखने लगे
जब आई है कातक की रतु सीतल,
कान्ह तवै अति ही रसिया,
संग गोपाल खेले विचार करमो,
भे पुतो भगवान् गंथ जसिया,
अपवित्रन लोगनि के जिह के पग
लागत पद सबै नसिया
तिह को सुनि तिरियन के संग खेल।
निबा रहु काम उहे बसिया।

भगवान् की गोवर्धन-लीला को उनकी इन पंक्तियों में देखिए—

आयो है उब्द त्र्त्र के दिवोस
सभी मिलि गोपन बात उचारी

भगवान् कृष्ण के अनन्य उपासक थे वे—

'जो अभा ब्रजनाथ की गाइ हूँ और कविमन बीच करेगे।

इस तरह लगभग भगवान् कृष्ण के सभी रूप उनकी लेखनी के बीच आये हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण का विश्वव्यापी प्रभाव

भगवान् श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंद का पावन व्यक्तित्व ऐसे पूर्ण पुरुष का प्रकाश है कि विश्व के सभी देश उनके जीवन एवं संदेश से अनुप्राणित एवं प्रेरणा-पूरित हुए हैं। नेपाल संसार का एकमात्र घोषित हिन्दू राष्ट्र है।

नेपाल—नेपाल में भगवान् श्रीकृष्ण के मंदिरों एवं मूर्तियों का बाहुल्य है। काष्ठमण्डप (काठमाण्डू) से 7 मील की दूरी पर नीलकण्ठ नामक स्थान पर लगभग 100 फुट लम्बी प्राकृतिक पाषाणावेष्ठित झील में लगभग 60 फुट लम्बी पाषाण-निर्मित शेषनाग की शय्या पर शेषशायी भगवान् विष्णु की (7वीं शती में निर्मित) लगभग 50 फुट लम्बी पाषाणमूर्ति इतनी भव्य एवं विराट है कि उसकी तुलना की शेषशायी मूर्ति संसार में अन्यत्र कहीं नहीं है। प्राचीन राजधानी ललितपुर (पाटव) में राजा सिद्धि नरसिंह मल्ल द्वारा सन् 1930 में मथुरा के प्रसिद्ध श्रीकृष्ण मंदिर की अनुकृति पर निर्मित श्रीकृष्ण मंदिर अपने प्रकार का अनूठा तीर्थस्थल है। राजा ने स्वप्न में राधा-कृष्ण को दरबार के सामने देखा था अतः दरबार चौक में उसी स्थल पर उन्होंने वह मंदिर निर्माण करवा दिया। श्रीमद् भागवत एवं महाभारत के चित्रों द्वारा मंदिर को सुसज्जित किया गया है। भक्तपुर में वलेज् भवानी के सुवर्ण मन्दिर में एक सुन्दर भित्ति चित्र है जिसमें बालमुकुन्द भगवान् वंशी बजा रहे हैं तथा इन्द्र झाल बजा रहे हैं एवं ब्रह्मा, विष्णु, महेश वंशी की लय पर मुग्ध होकर नृत्य कर रहे हैं। चाग नारायण में गरुड़ की मूर्ति तथा काठमाण्डू में विष्णु की चतुर्मुख सुवर्ण मूर्ति सचमुच अतुलनीय है। चांगू नारायण में 12वीं शती की नृसिंहावतार की सुन्दर मूर्ति है। जहाँ वैकुण्ठनाथ की मूर्ति तो अत्यन्त आकर्षक है। शिखा नारायण नामक तीर्थ पर एक पहाड़ी पर सुरम्य दृश्य के बीच राजा हरिदत्त वर्मा (चौथी शती) द्वारा बनवाया हुआ भगवान् विष्णु के वामनरूप का मंदिर है। भगवान् वामन नारायण अपने तीन डग से त्रिलोकी को मापते हुए दिखाए गए हैं। विष्णु के वाराह अवतार की मूर्ति तो भारत की उदयगिरि की वाराह मूर्ति से भी अधिक भव्य है। गो-माता तो नेपाल का राष्ट्रीय पशु एवं धार्मिक पवित्र प्रतीक हैं तथा गो-वध का दुस्साहस करने वाले के लिए प्राणदण्ड का विधान है। भगवान् श्रीकृष्ण के

बालरूप पर सुन्दर लीलाएं आज तक होती हैं तथा भगवान् द्वारा गाई गई श्रीमद्भगवद्गीता पर नेपाल में अनेक भाष्यों, अनुवादों के अतिरिक्त दैनिक कथा-प्रवचन, गोष्ठियों का आयोजन होता है। गीता के 'अभय' और 'अमरत्व' के संदेशों को तो मानों जीवन का मंत्र मान लेने से नेपाली गोखला वीर विश्व भर में अपने अतुलनीय साहस एवं वीरत्व के लिए प्रख्यात हैं।

लद्दाख—लद्दाख भारत के कश्मीर राज्य का तिब्बत को स्पर्श करता हुआ प्रदेश धर्म एवं संस्कृति में तिब्बती बौद्ध जीवन के बहुत निकट है। फिर भी स्वात घाटी में 8वीं शताब्दी की विष्णु बलराम (भगवान् श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता) की पद्मासन संस्थित सुन्दर मूर्ति मिली है। बलरामजी चतुर्भुज दर्शाए गए हैं जिनके ऊपर के दाएं हाथ में हल और बाएं में मूसल है तथा नीचे के दाएं हाथ में कमल तथा बाएं में नवनीत (मक्खन) का गोला है।

लद्दाख, भूटान, सिक्किम में बौद्ध धर्म के 8 पवित्र प्रतीकों में भगवान् विष्णु के शंख एवं चक्र भी सम्मिलित हैं। लद्दाख के थिक्षे मठ की भित्ति पर भगवान् विष्णु के वाहन 'गरुड' का सुन्दर-भव्य चित्र है।

सिक्किम—सिक्किम देश का नाम संस्कृत के सुखिम् शब्द से पड़ा है, जिसका अर्थ है सुख, शांति का प्रदेश। 60 प्रतिशत लोग भारतीय वंश के हैं। बौद्ध धर्म का विशेष प्रचलन है किन्तु वैष्णव धर्म के प्रतीकों की विशेष प्रतिष्ठा है। भारत के आचार्य पद्मसंभव ने वहाँ योग का विशेष प्रचार किया था। मठों की प्राचीरों पर श्रीकृष्ण चरित्र के चित्र यत्र-तत्र मिलते हैं। सिक्किम में 60% से अधिक लोग नेपाली हैं जो पूर्णतः हिन्दू हैं तथा श्रीकृष्ण एवं अन्य हिन्दू देवी-देवताओं को पूजते हैं। वैसे हिन्दू धर्म एवं बौद्ध धर्म में सुन्दर सामंजस्य है। श्री कृष्णाष्टमी एवं बुद्ध जयंती महोत्सव सभी लोग मिल-जुल कर सोत्साह मनाते हैं। मुखौटा लीला एवं श्रीकृष्ण लीला का भी प्रचलन है।

श्रीलंका—राम, कृष्ण आदि अनेक अवतारों की तथा लक्ष्मण, कार्तिकेय, गणेश, विभीषण आदि की मूर्तियाँ हैं। दोण्ड्रा में 1500 वर्ष पुराना एक विष्णु मंदिर था जिसमें भगवान् विष्णु की स्वर्ण मूर्ति की पूजा होती थी। पुर्तगालियों ने अपने आक्रमण में उक्त मंदिर को क्षतिग्रस्त कर दिया था। इसमें भगवान् शेष अभी तक वर्तमान हैं। लंका में कामधेनु का मंदिर है जो भारत में भी सम्भवतः नहीं है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने इन्द्र की कोप-वृष्टि से व्रज को बचाने के लिए गोवर्धन पर्वत को 8 दिन के लिए उंगली पर धारण किया था तथा आठवें दिन कामधेनु गाय ने प्रकट होकर अपनी दुग्ध-धाराओं से भगवान् श्रीकृष्ण का अभिषेक किया था

तथा उन्हें गोविन्द की उपाधि दी थी। श्रीलंका के कामधेनु मंदिर का दर्शन कर नेत्र व्रजभूमि की गोवर्धन लीला के पुनः दर्शन से करने लगते हैं।

भगवान् विष्णु के श्री-चरणों से जो पतित पावन गंगा प्रवाहित हुई उसके प्रति लंकावासियों की इतनी श्रद्धा है कि उन्होंने अपने देश की 4 प्रमुख नदियों का नाम ही गंगा नाम से विभूषित कर दिया है, यथा कलू गंगा, केलती गंगा, महावेली गंगा तथा माणिक्य गंगा।

ब्रह्मदेश—बर्मा का प्रमुख तथा अत्यन्त प्राचीन नगर प्रोम कभी वैष्णव धर्म का एक प्रमुख गढ़ रहा है। उस समय इस नगर का नाम 'विष्णोमिया' अर्थात् विष्णुपुरी था। उस समय इसे 'श्रीक्षेत्र' भी कहा जाता था। बौद्ध कथाओं के अनुसार इस नगर का निर्माण स्वयं श्रीविष्णु ने ही विश्वकर्मा, इन्द्र, नाग, गरुड, चण्ड परमेश्वर तथा गणपति की सहायता से किया था। ब्रह्मदेश में भगवान् श्रीकृष्ण के वंशज अनिरुद्ध के नाम पर एक राजा अनिरुद्ध (1044 ई.) हुआ जिसने अनिरुद्धपुर (अनोरथपुर, पगान) नामक नगर में राजधानी बनाई, जहाँ 16 वर्गमील क्षेत्र में 5000 मंदिर आज भी वर्तमान हैं। ब्रह्मदेश के हेलांग नगर में अभी तक भगवान् विष्णु का एक विशाल प्राचीन मंदिर विद्यमान है जो लगभग एक हजार वर्ष पुराना है। यहाँ की गरुडवाहन विष्णु की प्रधानमूर्ति बर्लिन (जर्मनी) के संग्रहालय में ले जाई जा चुकी है किन्तु मंदिर की भित्तियों पर भगवान् विष्णु के दशावतारों की अत्यन्त भावपूर्ण मूर्तियाँ अभी भी विद्यमान हैं। भू-देवी के साथ वाराह, हिरण्यकशिपु का वध करते हुए नृसिंह, त्रिभंग मुद्रा में खड़े श्रीराम, परशु आदि शस्त्रास्त्र धारण किये हुए परशुराम, वंशीवादन करते हुए मुरलीमनोहर भगवान् श्रीकृष्ण आदि की मूर्तियाँ बड़ी चित्ताकर्षक हैं। प्रथम शती में तेलंगाना तथा उत्कल प्रदेश के भारतीय लोगों ने ब्रह्मदेश को धर्म, संस्कृति और भाषा दी थी। लगभग चार लाख तेलंग लोग अभी भी ब्रह्मदेश में हैं। ई. सन् से पूर्व ब्रह्मदेश में केवल सनातन धर्म के ही हिन्दू मंदिर थे। तीसरी शताब्दी में उन्हीं हिन्दू मंदिरों को बौद्ध मंदिरों में परिवर्तित किया गया।

थाईदेश—ब्रह्मदेश को स्पर्श करता हुआ पूर्व की ओर अगला देश थाईदेश अथवा स्यामदेश है। स्यामदेश नाम हरीतिमा के कारण पड़ा तथा थाईदेश का अर्थ है—स्वतंत्र लोगों का देश। प्रथम शती से भारतीयों द्वारा यहाँ सनातन वैदिक हिन्दू संस्कृति का प्रसार हुआ। आजकल बौद्ध धर्म राजधर्म घोषित होने के उपरान्त भी सनातन हिन्दू धर्म का पूरा-पूरा सम्मान होता है। प्राचीन राजधानी अयोध्या में राम-उद्यान के मध्य में एक विशाल प्रशाल में क्षीर सागर में शेषशय्या पर विश्राम करते हुए लक्ष्मीनारायण का सुन्दर चित्र है। नवीन राजधानी बैंकाक (प्राचीन नाम रत्नकोशीन्द्र) से चिंगमाई जाते हुए मार्ग में लवपुरी तथा विष्णुलोक नगर भी पड़ते

हैं। इसी प्रकार स्वर्गपुरी, इन्द्रपुरी नामक नगर भी सनातन हिन्दू धर्म से ओत-प्रोत हैं। भगवान् विष्णु के वाहन गरुड मुख्य रूप से राज्यचिह्न पर अंकित है। बैंकाक की एक विशाल नृत्यशाला के बाहर गणेशजी की विशालकाय मूर्ति स्थापित है। अनेक बौद्ध मंदिरों में भी गणेशजी की मूर्ति देखने को मिलती है। बैंकाक में ही एक प्राचीन हिन्दू मंदिर है जिसके प्रधान पुजारी राजगुरु पद पर आसीन हैं। उन्हें वामदेव कहा जाता है। इस मंदिर में गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, पृथ्वी, चन्द्रमा, दुर्गा आदि देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं। राष्ट्रीय संग्रहालय में भी गणेशजी की दो मूर्तियाँ हैं। यहाँ लक्ष्मीजी की एक मूर्ति है, जो एकदम भारतीय शैली की है। सुखोदय के खण्डहरों में भी गणेशजी की मूर्तियाँ पाई गई हैं। इसके संग्रहालय में विष्णु, हरिहर, शेषशायी विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, गरुड, नाग आदि की मूर्तियाँ भी रखी हुई हैं। अयोध्या के संग्रहालय के बाहर विशालकाय त्रिमूर्ति के दर्शन होते हैं। अन्दर गणेश, विश्वकर्मा आदि की मूर्तियाँ हैं।

इस देश में कभी विष्णु भगवान् का भी बहुत अधिक प्रभाव था। यहाँ के राष्ट्रीय संग्रहालय में विष्णु की अनेक कलात्मक तथा विशाल मूर्तियाँ देखने को मिलती हैं।

संस्कृति-विहार, रांची के संग्रहालय में थाईदेश के श्रीकृष्ण-लीला के चित्र एवं श्रीकृष्ण-सुभद्रा संवाद के प्राचीन भित्तिचित्र संगृहीत हैं।

कम्बुज—कम्बोडिया का प्राचीन नाम कम्बुज है। 10वीं शताब्दी तक सारा इन्डो-चाइना ही कम्बुज कहलाता था। इतना ही नहीं, स्याम और मलाया भी उस समय कम्बुज के ही अन्तर्गत थे। कहते हैं कि किसी समय भारत के राजर्षि कम्बु ने यहाँ वन्य-जनों को भारतीय संस्कार दिया तथा यहाँ के राजवंश की स्थापना की थी। इन्हीं कम्बु ऋषि के नाम पर इस देश का नाम कम्बुज हुआ और शैवधर्म यहाँ पर राजधर्म बना।

अंकुरवट संसार का सबसे बड़ा विष्णुमंदिर है। अंकोरवट का विशाल देवालय 12वीं शताब्दी में निर्मित हुआ था। इसके चारों ओर एक खाई है जो 700 फुट चौड़ी है। उसे पार करने के लिए नागों के आकार के खम्भों पर 36 फुट चौड़ा एक पुल बना है। चारों कोनों पर 180 फुट ऊंचे मीनार हैं। मंदिर की दीवारों पर हिन्दू देवी-देवताओं तथा रामायण, महाभारत व पुराणों की अनेक कथाओं से सम्बन्धित लगभग 30 चित्र भी अंकित हैं। किसी समय इस मंदिर में भगवान् विष्णु की उपासना होती थी। बाद में बौद्धों ने इसे अपना विहार बना लिया था।

एक शिलालेख से ज्ञात हुआ है कि बारहवीं शताब्दी में वेदों के परम विद्वान् हृषिकेश नाम के एक पंडित कम्बुज गए थे। तत्कालीन नरेश श्री जयवर्मा सप्तम ने

उन्हें 'श्री जयप्रधान' की उपाधि से अलंकृत कर अपना राज-पुरोहित बनाया था। वहाँ उन्होंने एक शैव कन्या श्री प्रभा से अपना विवाह भी कर लिया था।

कुछ शिलालेखों में सुश्रुत, मनुस्मृति तथा हरिवंश पुराण का भी उल्लेख मिलता है।

संस्कृति विहार, रांची के संग्रहालय में कम्बुज से प्राप्त गोवर्धनधारी श्रीकृष्ण की मूर्ति, हरिहर की मूर्ति तथा गरुड आदि की मूर्तियों का सुन्दर संग्रह है।

जब अत्यच्य बौद्धिक शक्तियों एवं अद्‌भुत वक्तृत्व शक्ति से सुसज्जित यूरोपियन भारत जाकर भारतवासियों से यह कहे कि उच्चतम ज्ञान की कुंजी यूरोप वालों के पास नहीं तुम्हारे पास है तथा तुम्हारे देवता, तुम्हारा दर्शन और तुम्हारी नैतिकता की यूरोप वाले छाया भी नहीं छू सकते, तब उसमें आश्चर्य क्या है कि भारतवासी हमारी सभ्यता से पीठ फेर ले।

—सर वैलेनटाइन

× × ×

रूस के राष्ट्रपति गोर्बोचेव के भारत आगमन पर पश्चिम के पतन का कारण बतलाते हुए गीता के दूसरे अध्याय के 62-63 वें श्लोक को उद्धृत किया था और कहा था कि यदि पश्चिम को विनाश से बचना है तो गीता को, भारतीय जीवनमूल्यों को स्वीकारना होगा।

गीता का विदेशों में प्रभाव

गीता विश्व के अध्यात्म रत्नों की वह अलौकिक रत्न मंजूषा है जिसमें एक विचार रत्न की पावन प्रभा पर विश्व का धार्मिक एवं दार्शनिक वाङ्मय न्योछावर हो जाय। गीता के विषय में स्वयं गीतोपदेश में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—

'गीता मे 'हृदयंपार्थ' गीता मे 'शास्त्रमुत्तमम्'

अर्थात् हे पार्थ! गीता मेरा सर्वोत्तम शास्त्र है, इतना ही नहीं यह मेरा साक्षात् हृदय ही है।

कुरुक्षेत्र की रणस्थली में अर्जुन के धर्मयुद्ध से लेकर आधुनिक काल में लोकमान्य तिलक, खुदीराम बोस, सुभाषचन्द्र बोस आदि के स्वातंत्र्य युद्ध तक, भगवान् वेद व्यास के वेदांत दर्शन से लेकर योगीराज अरविन्द के योग दर्शन तक, शंकराचार्य जैसे भारतीय महामनीषी से लेकर आल्डुअस हक्सले (Alduas Haxley) जैसे पाश्चात्य विचारक तक गीता के शाश्वत संदेश ने सभी कर्म वीरों, धर्म संस्थापकों एवं विचार सृष्टाओं को चमत्कृत किया है। भारतवासियों की गीता भक्ति तो स्वाभाविक एवं सर्वविदित ही है किन्तु विधर्मियों एवं विदेशियों की गीता के प्रति अलौकिक निष्ठा गीता की सार्वभौमिकता का अकाट्य प्रमाण है।

लंका, बर्मा, थाईदेश, कम्बुज, लवदेश, मलाया, सिंगापुर आदि देशों में सर्वत्र भगवान श्रीकृष्ण के मंदिर तथा गीता के सत्तर भाषाओं में अनुवाद प्रचारित हैं। कम्बुज में संसार का सबसे बड़ा हिन्दू मंदिर है अंकुटबार।

प्रसिद्ध दर्शन विद्वान श्री कैखुशस जे. दस्तूर का कथन है—गीता केवल हिन्दुओं का ही नहीं अपितु संसार की जातियों की धर्म पुस्तक है। गीता की एक-एक पंक्ति, एक-एक शब्द पवित्र विचारों से सुरक्षित है। आध्यात्मिकता इसमें एक छोर से दूसरे छोर तक स्वर्ण सूत्र की तरह ओत-प्रोत है। गीता को यदि दिव्य ज्ञान की खान कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

प्रख्यात फारसी चिन्तक प्रोफेसर फिरोज कावस जी दावर ने लिखा है—यह भी दिखता है कि अन्ततोगत्वा विज्ञान धर्म का बाधक न होकर साधक ही होगा

और धर्मोन्माद के स्थान पर वास्तविक विश्वधर्म की प्रतिष्ठा होगी जिसमें सर्वधर्म समान रूप से योग देंगे। उस समय मानव मात्र के लिये जब एक अखिल विश्व धर्म की प्राण प्रतिष्ठा होने लगेगी तब हमें एक मात्र गीता का ही सहारा रह जाएगा क्योंकि यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि विश्व धर्म के मौलिक प्राण तत्त्वों का जितना सुन्दर समावेश गीता में है उतना किसी भी अन्य धर्म के किसी भी धर्म ग्रंथ में नहीं है।

सम्राट् अकबर के काल में प्रसिद्ध फारसी विद्वान फैजी ने गीता का अनुवाद किया। लाहौर के ख्वाजा दिलमुहम्मद ने गीता का उर्दू पद्य में अनुवाद करते हुए लिखा—

मुसीबत से सबको बचाती है गीता
पायमे सदाकत सुनाती है गीता
जो गिरते हैं गलती से इस सरजमीं पर
उठाकर फलक पर बिठाती है गीता।

चार्ल्स विल्किज ने गीता का प्रथम अंग्रेजी अनुवाद किया जिसकी भूमिका में गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने लिखा—भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के ध्वस्त हो जाने के उपरान्त भी भारतीय दर्शन के अमर गायक पूजे जाते रहेंगे। इस गीता से अमरीका का इमर्सन तथा उनके गुरु तुल्य मित्र थोरो बड़े प्रभावित हुए। थोरो कहता है—मैं प्रतिदिन प्रातःकाल गीता के अमृतकुण्ड में स्नान करता हूँ। इमर्सन जब इंग्लैण्ड में कार्लायल से मिलने गया तो दोनों ने परस्पर एक-दूसरे को गीता भेंट की।

इंदोनीजिया की स्वाधीनता के अवसर पर लोगों ने हाथों में गीता लेकर स्वाधीनता की रक्षा की शपथ ली थी तथा राष्ट्रपति सुकर्ण ने कहा—हममें अर्जुन का बल और कृष्ण की बुद्धि है।

जापान में शिन्तो धर्म पर भी गीता का प्रभाव है। विगत महायुद्ध में जापान का एक पनडुब्बी चालक जब युद्ध में बलिदान हेतु जा रहा था तो एक भारतीय नेता के पूछने पर उसने जेब से गीता की पोथी निकाल कर दिखाई और बताया—यह अमरता का रक्षा कवच है। जब तक हम इसे जानते हैं, हम मृत्यु नाम की किसी वस्तु को जानते नहीं।

चीन के कन्फ्यूशियस धर्म एवं ताओ धर्म पर भी गीता के सत्-विवेक तथा शासक की कार्यक्षमता के समन्वय का संदेश है। चीन में प्रथम शती में महायान बौद्ध धर्म के साथ गीता भी पहुँची तथा चीनी भाषा में अनूदित हुई।

जर्मन दार्शनिक शोपनहावर तथा काण्ट के दर्शन पर गीता के कर्तव्यवाद या निष्काम कर्मयोग की स्पष्ट छाप है। अमरीका के क्रिस्टोफर ईश्रवुड को गीता के

तत्त्वज्ञान ने आत्महत्या से बचाया तथा हक्सले ने गीता को सच्चे अर्थ में 'शाश्वत दर्शन' की संज्ञा दी। यह एक अत्यंत विस्मयकारी तथ्य है कि 16 जुलाई 1945 को (जल) अमरीका के न्यू मैक्सिको रेगिस्तान में प्रथम अणुबम का परीक्षण किया जा रहा था तो आविष्कारक राबर्ट ओपेनहीमर ने ज्यों ही आकाश में अनन्त सूर्यों के प्रकाश के समान प्रचण्ड अग्नि ज्वालाओं को बम के विस्फोट के साथ ही देखा तो उन्हें गीता के विराट रूप दर्शन की स्मृति हो आई और वे जेब से गीता निकालकर एकादश अध्याय का श्लोक गाने लगे—

दिवि सूर्य-सहस्रस्य, भवेद्-युग-पदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्-भासस्-तस्य महात्मनः 11/12

कालोऽस्मि लोकक्षय कृत्प्रवृद्धो
लोकान् समाहर्तु-मिह प्रवृत्तः। 11/32

मुझे भूगोल पढ़ाने में भिन्न-भिन्न देशों की जानकारी करनी पड़ती थी। उसके साथ उन देशों का परिचय भी करना पड़ता था। इस तरह मैं भारत से परिचित हुआ। मैं जैसे-जैसे उसका अध्ययन करता गया वैसे-वैसे उसके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ती गयी....मैंने उसके तत्त्वचिंतन में रुचि ली। गीता और उपनिषदों का फ्रेंच भाषा में जो अनुवाद छपा, मैंने उसे पढ़ा और उसने मुझे आजीवन विस्मृत रखा।

—जर्मन दार्शनिक, कांट

गीता की विविध क्षेत्रों में प्रतिष्ठा

विश्वमनीषा का श्रेष्ठ सम्पद् श्रीमद्भगवत्गीता भारतीय शाश्वत संस्कृति का निर्यास (रस, नवनीत)। जगत् के सारस्वत समाज को भारत का श्रेष्ठ दान यह सद्ग्रंथ। बहुदिन पहले प्रतीचच्भूखण्डे अंग्रेज मनीषी कार्लाइल मार्किन मनीषी इमर्सन के साथ साक्षात् के समय गीता उपहार के माध्यम से परस्पर सौहार्द को सुदृढ़ करते हैं। विश्व के समुन्नतषटत्रिःशत भाषा में इस ग्रंथ का प्रायः तीन सहस्र संस्करण हुआ है। विश्व के इतिहास में यथार्थ गण साहित्य यह गीता है। पण्डित-मूर्ख, धनी-दरिद्र, स्त्री-पुरुष, शिक्षक-सैनिक, कर्मी-व्यवसायी, छात्र-श्रमिक, त्यागी-भोगी सकल के पास इस ग्रंथ का आवेदन (या वक्तव्य) है। निर्जन गुहावासी, निष्किन्चन तपस्वी से राजप्रासादवासी-धनी, सर्व कर्म-त्यागी साधु से लेकर सदा कर्मनिष्ठ राजनीतिक नेता पर्यन्त सभी जीवन का पाथेय इस गीता से प्राप्त करते हैं। गीता मानव समाज का ज्ञान-कल्पतरु। इसलिए युग-युग से गीता के ऊपर रचित हुआ है असंख्य भाष्य। मनीषी द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर गीता को बोलते हैं भारत के कुटीर का बिना तेल का प्रदीप। महात्मा गांधी के मत में गीता है शान्ति एवं शक्तिप्रदायनी माता। अध्यात्म जगत् में गीता की साधना सुविदित है। किन्तु देश के राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम एवं आन्तर्जातिक मैत्री साधना में गीता की अनन्य असाधारण भूमिका अविस्मरणीय है। गीता के निष्काम कर्मयोग, आत्म समर्पण योग आत्मतत्त्व एवं स्थितप्रज्ञत्व के आदर्श के द्वारा भारत के स्वाधीनता संग्राम में मुक्तियोद्धाओं को उद्‌बुद्ध किया था। भारत का प्रायः सकल विप्लव का अवश्य पाठ्यग्रंथ था यह गीता। पुनः अहिंस्र संग्रामीगण को भी गीता की वाणी से मिली है आदर्श की प्रेरणा। सहिंस्र एवं अहिंस्र भारत के मुक्तिसंग्राम के उभय पथ के पथिकों के पथ का पार्थक्य रहने से भी लक्ष्य एक, वैसी पाथेय भी एक और वह था श्रीमद्भगवत्गीता? तभी विप्लवी योगी ऋषि अरविन्द, चरमपंथी नेता लोकमान्य तिलक, पुनः अहिंसा संग्रामी महात्मा गांधी, भूदान आन्दोलन के प्रवर्तक निरीह विनोबा भावे गीता का प्रवचन के लिये समुत्सुक रचना की है। स्व-स्व आदर्श के आलोक में गीता का विशाल भाष्य। बाल्यावस्था से गीताध्यायी— महासंग्रामी नेताजी सुभाषचन्द्र कांग्रेस के नेता के हिसाब से कारागार में सहकर्मी

तरुण गणों को नित्य गीता पाठ के लिये प्रवर्तना देते हैं। पुनः आजाद हिन्द फौज के महानायक रूप में रणक्षेत्र में बमवर्षण के बीच में पाकेट में एक छोटी गीता आलेख्यधृता माता कालिका एवं तुलसी मालिका। खुदीराम, कन्हाईलाल, विनय-बादल-दिनेश, प्रफुल्ल प्रभृति दधीचि के दल में एवं जेल में गीता का नित्यपाठ करते थे। अवेस्ता, बाइबिल, कुरान, त्रिपिटक आदि इस प्रकार प्रत्यक्षरूप से देश के राष्ट्रीय मुक्तिसंग्राम में मरणपण सैनिकों को प्रबुद्ध किया या नहीं, जानता नहीं। लेकिन इतना बोलता हूँ कि गीता सिर्फ धर्म ग्रंथ नहीं है—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तथा चतुवर्ग तथा सामग्रिक जीवन पथ का समयसारणी तथा टाइम-टेबुल सकल पथ के यात्रियों का अपरिहार्य ग्रंथ। सिर्फ व्यक्तियों या राष्ट्र विशेष का नहीं, समग्र विश्व का संकट निरसन के लिए अपरिहार्य ग्रंथ है। विश्व शांति एवं विश्व कल्याण की दृष्टि से राष्ट्रसंघ (U.N.O.) की प्रतिष्ठा। उसके उद्देश्य को लेकर राष्ट्रसंघ के प्राक्तन सेक्रेटरी जेनरल स्वर्गत दयाग् हयामारशिल्ड् बोलते हैं—फलाकांक्षा करके कर्म करने की अपेक्षा फलाशा त्याग कर कर्म करना बहुत अच्छा है। यह उपदेश सभी युग में सभी दर्शन चूडान्त कथा है। राष्ट्रसंघ के प्रबल प्रचेष्टा से हम लोग यदि गीता का यह उपदेश अनुसरण कर चल सके तभी हम लोग सुखी होंगे।

The Bhagavad Gita echoes on experience of all ages and all philosophies when it says-work with anxiety about results is far inferior to work without such anxiety, an calm self-surrender. These words expressed deep faith and we will be happy if we can make that faith ours in all our efforts.

जर्मनी के आणविक वैज्ञानिक ओपेनहाइमर ने गीता का श्लोक पाठ करके लब्ध आणविक गवेषणा की घोषणा की। नोबेल पुरस्कार प्राप्त जीव विज्ञानी आल्डुअस हक्सले ने गीता का अनुवाद किया है और स्वदेशी गणितज्ञ नारलीकर ने गीता कंठस्थ की है। प्रत्येक मनुष्य जीवन संग्राम में, रणक्लान्त सैनिक, अर्जुन के समान विषाद ग्रस्त। विषाद से मुक्ति सभी का काम्य है। अर्जुन को उपलक्ष करके शाश्वतकाल के निखिल मानव को विषाद के हाथ से मुक्ति तथा मोक्ष के लिए योग मार्ग का भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में प्रदर्शन किया है।

मेरी अन्तरिक्ष यात्रा में मेरे पास रखी गीता निरन्तर मेरा उत्साह बढ़ाती रही, तभी में 195 दिनों तक अंतरिक्ष में रहने का विश्व कीर्तिमान स्थापित कर सकी।

—सुनीता विलियम्स

बिहार की धर्म, संस्कृति, दर्शन और कला के क्षेत्र में देन

एक दृष्टिकोण से संस्कृति शब्द बहुत बड़े व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है। भारतीय संस्कृति के चार आधारभूत जीवन-मूल्यों—पुरुषार्थ चतुष्टय के अंतर्गत धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में धर्म संस्कृति के अंग के रूप में परिगणित होता है। धर्म निष्काम कर्तव्य साधना तथा अध्यात्म साधना के रूप में संस्कृति का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। भगवान वेदव्यास ने कहा है, **धर्मादर्थश्च कामश्च सकिमर्थं न सेव्यते ।।** म. भा. स्वर्गारोहण पर्व 5/62 अर्थात् धर्म से ही काम और अर्थ की प्राप्ति होती है और मोक्ष की तो होती ही है, तब फिर भी दुर्योधन तुम धर्म का सेवन क्यों नहीं करते? इस दृष्टिकोण से धर्म संस्कृति सारसर्वस्व और चारों पुरुषार्थों का मूल, भारतीय समाज रचना का केन्द्रीय तंतु सिद्ध होता है।

धर्म का एक और भी व्यापक अर्थ है जिसमें जो कुछ भी समाज को धारण करने के लिये आवश्यक नियम-उपनियम हैं सभी धर्म शब्द के अंदर समा जाते हैं। जैसे हमारे धर्म-शास्त्रों ने दंतधावन, क्षौर्य कर्म, मूर्ति तक्षण, भवन निर्माण, गृहप्रवेश, शाला प्रवेश, व्यापार, लक्ष्मी पूजा, राजधर्म, दूतकर्म, धर्मयुद्ध, कालधर्म वरन् चौर्य धर्म तक को, सभी को धर्म की व्यापक गोदी में स्थान दे दिया है। जीवन की किसी भी दिशा को धर्म के अंतर्गत रख दिया गया है। चाहे संप्रदाय शब्द एक विशिष्ट पूजा पद्धति या साधना-पद्धति का परिचायक होने से धर्म से कम व्यापक है, किन्तु भारत में किसी संप्रदाय का धर्म के व्यापक अर्थ से आधारभूत मतभेद या द्वेष न होने के कारण यहाँ पंथों और संप्रदायों को भी धर्म जैसा सम्मानसूचक नाम दे दिया गया है, जैसे—जैन धर्म, बौद्ध धर्म, वैष्णव धर्म, शैव धर्म आदि।

धर्म जिस परम सत्य को भावना और साधना द्वारा पाना चाहता है दर्शन उसी परम सत्य की बौद्धिक तर्कसम्मत व्याख्या प्रस्तुत करता है। दर्शन बताता है सत्य क्या है? कैसा है? किन्तु सत्य की उपलब्धि नहीं करता या कराता, यह बिल्कुल संभव है कि सत्य पर हजारों पृष्ठों का शोधग्रंथ लिखने वाला Philosopher स्वयं

पहले दर्जे का झूठा और बेईमान हो। यम-नियम के पालन द्वारा तन, मन, बुद्धि को पवित्र कर निष्काम कर्म साधना, भक्ति उपासना, ज्ञान-साधना, योग साधना द्वारा सत्य का साक्षात्कार अर्थात् सत्य ही बन जाने की चेष्टा धर्म द्वारा ही संभव है।

कला अमूर्त सत्य को सुंदर-मूर्त रूप में प्रस्तुत करने की साधना है। जब सत्यम् शिवम् का रूप धारण कर जन-जन का कल्याण करने को आतुर हो उठता है तब समाज धर्म कहलाता है, जब वही सत्यम् सुंदरम् का चोला पहनकर नृत्य करने लगता है तब काव्य और कला के रूप में पूजित होता है। सभी ललित कलाएं संस्कृति की विद्याओं के रूप में मानी जाती हैं। कला का अर्थ है सुंदर। किसी भी विषय को सुंदर रीति से प्रस्तुत करने को कला कहा जा सकता है। चन्द्रमा की ज्योति के एक-एक दैनिक अंश को चन्द्रकला कहा जाता है। पूर्णिमा को अपनी पूर्ण कलाओं से चमकता है। देवताओं या अवतारी पुरुषों में उनके भग (प्रकाश) को भी कला कहा जाता है। जैसे भगवान कृष्ण को षोडश कला-संपन्न कहा जाता है। प्रत्येक कला किसी न किसी विज्ञान के आधार पर प्रतिष्ठित होती है। संगीत कला के पीछे ध्वनि विज्ञान का सिद्धांत है, मूर्तिकला या चित्रकला के पीछे धातु विज्ञान, पाषाण विज्ञान, रेखा विज्ञान, रंग विज्ञान का आधार है। यदि विज्ञान पढ़कर ही उसका जीवन रचना या समाज रचना में सदुपयोग नहीं हुआ तो विज्ञान का अध्ययन भी निष्फल है। इसलिये कहा जाता है—Art is rootless without science & science is fruitless without art. किसी भी विषय के व्यवस्थित-नियमबद्ध अध्ययन को विज्ञान कहा जाता है और उसी के सुंदर सदुपयोग को कला कहा जाता है। जैसे भाषा विज्ञान एक विज्ञान है किन्तु भाषा का सुंदर प्रयोग एक कला है। तर्कशास्त्र का शास्त्रीय अध्ययन एक विज्ञान है, किन्तु सत्य की खोज के लिये तर्क का सदुपयोग करना एक कला है। नीतिशास्त्र का नियमों और शास्त्रों में अध्ययन एक विज्ञान, किन्तु स्वयं नैतिक आचरण द्वारा जीवन एवं समाज को सुंदर-सदाचारी बनाना एक नैतिक व्यवहार की कला है। जैसे एक अच्छी माँ बच्चे के प्रति व्यवहार की कला बहुत अच्छी तरह जानती है किन्तु बाल मनोविज्ञान अथवा मातृ-मनोविज्ञान पर ग्रंथ नहीं लिख सकती, दूसरी ओर ग्रंथ लिखने वाले लेखक व्यवहार की कला में खोटे हो सकते हैं। बैजु बावरा जैसा एक निर्धन गायक संगीतशास्त्र पर व्याख्यान भले न दे सके किन्तु संगीत की जो कला वह जानता है वह बड़े से बड़ा संगीतशास्त्रज्ञ भी नहीं जानता होगा। भवन निर्माण कला (स्थापत्य कला), संगीतकला, मूर्तिकला, चित्रकला, नृत्यकला, काव्य कला सभी एक-दूसरी से उत्तरोत्तर अधिक सूक्ष्म एवं अधिक ललित बनती जाती हैं। इसलिये उनका प्रभाव भी अधिक व्यापक होता जाता है। जैसे—

अवसी पिथोरा लाट दिवस कोऊ ढही जै है,
किन्तु चन्द्र की सुजश छटा छिटकी रहै।
अकबर को वर कोट जगत में विस्तृत भारी,
किन्तु तुलसीदास अमरता के अधिकारी।

एक दिन पृथ्वीराज द्वारा निर्मित पिथोरालाट (कुतुब की लाट) अवश्य गिर जायेगी। किन्तु कवि चन्द्र वरदाई के काव्य की सुंदर चांदनी धरती पर सदा चमकती रहेगी। अकबर का आगरा किला निश्चय ही बहुत बड़ा एवं भारी है किन्तु वह विशाल पत्थर का किला भी गोस्वामी तुलसीदास की अमरता की तुलना नहीं कर सकता। पिथोरालाट और आगरा का किला भवन-निर्माण कला के उत्तम मानक हो सकते हैं, किन्तु वे चन्द्र वरदाई एवं गोस्वामी तुलसीदास की साहित्य-कला के सम्मुख तुच्छ प्रतीत होते हैं।

बिहार प्रांत को न कभी चन्द्रगुप्त-चाणक्य ने बिहार कहा, न बुद्ध-महावीर ने, न अजातशत्रु ने, न सम्राट् अशोक ने। तब इस प्रदेश का नाम मगध देश था। मगध का उल्लेख वेदों में भी मिलता है।

मगं दोषं दधाति वा मग+धा+क। वामन शिवराम आप्टे के संस्कृतकोश के अनुसार दोषों को धारण करने वाला मगध देश है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी लिखा है—

लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे।
मगहँ गयादिक तीरथ जैसे।। अयो. 42/7

कैकेयी के बुरे मुख में शुभ वचन कैसे लगते हैं जैसे मगधदेश में गया आदि तीर्थ। प्रारम्भ में अनार्यों की भूमि तथा गयासुर जैसे राक्षसों का राज्य होने के कारण इस भूमि की निंदा की गयी। फिर यहाँ बौद्ध धर्म और जैन धर्म द्वारा यज्ञनिंदा और वेदनिन्दा के कारण भी आर्य लेखकों ने यह लिखना प्रारम्भ किया कि मगध में प्रवेश करने से भी पुण्य का क्षय हो जाता है। बाद में मगध का साम्राज्य अखिल भारत में हिन्दूकुश से कलिङ्ग तक हो जाने पर और सनातन धर्म के यज्ञ, याज्ञ आदि की प्रतिष्ठा हो जाने पर मगध की प्रतिष्ठा भी बढ़ गई। यहाँ के कवि-चारण-भाट अन्य राज्य दरबारों में संस्कृत एवं पाली भाषा में सुंदर काव्यमय प्रशस्तियाँ गाया करते थे।

हिन्दू धर्म की महत्ता

1. हिन्दू धर्म संसार का प्राचीनतम एवं महत्तम धर्म है। वेद संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ है। हिन्दू धर्म का आधार ईश्वर की वाणी वेद ही है।

2. जहाँ ईसाई मत एवं मुसलमान मत केवल संप्रदाय मात्र है। हिन्दू ही केवल धर्म है, मानव मात्र के लिए पवित्र जीवन का संदेश देने वाला मानव धर्म है।

3. जहाँ ईसाई मत एवं मुसलमान मत ईसा तथा मुहम्मद नामक व्यक्तियों द्वारा प्रारम्भ किये हुए हैं, हिन्दू धर्म शाश्वत एवं सनातन है। वह किसी व्यक्ति द्वारा प्रारम्भ नहीं किया गया। अतः किसी महापुरुष के होने या न होने से इस धर्म का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं।

4. हिन्दू वह है जो इस देश भारत को ही अपनी जन्मभूमि, पितृ-भूमि, पुण्यभूमि एवं अपना सर्वस्व मानते हैं। यही उसके हेतु धर्म और कर्म की भूमि है। हिन्दू का भारत से जन्म, मरण एवं जन्मान्तर का भी संबंध है। हिन्दू मात्र की समूची श्रद्धा भारत के भीतर ही है। भारत के बाहर कहीं नहीं। मुसलमान की पुण्यभूमि भारत नहीं अरब देश है तथा ईसाइयों के लिए येरूशलम पुण्य भूमि बन जाती है, भारत नहीं। इस तरह भारत में रहते हुए भी अहिन्दुओं की श्रद्धा भारत के बाहर चली जाती है। इसीलिए वे पाकिस्तान के नाम पर देश के टुकड़े करते हैं तथा नागालैण्ड और छोटानागपुर को अलग ईसाई राज्य बनाकर भारत को खण्ड-खण्ड करना चाहते हैं।

5. हिन्दू धर्म पूर्णतया स्वदेशी धर्म है। इसकी सभी शाखाएँ भारत में ही जन्मी तथा फली-फूली हैं। अतः हिन्दू धर्म ही भारत धर्म है। इसी के उत्थान से भारत का उत्थान होगा।

6. हिन्दू धर्म की सभी शाखाएँ इस सत्य में विश्वास रखती हैं कि आत्मा अजर-अमर और अविनाशी है।

7. सभी हिन्दू कर्म के सिद्धान्त को मानते हैं। मनुष्य जो अच्छा-बुरा कर्म करता है, उसके अनुरूप परमेश्वर द्वारा उसका फल मिलता है।

8. हिन्दू मात्र मोक्ष या मुक्ति या निर्वाण को जीवन का चरम लक्ष्य मानता है।

9. हिन्दू गायत्री मंत्र के द्वारा अपनी बुद्धि को उज्ज्वल बनाने के लिए प्रार्थना करता है।

10. हिन्दू सारे संसार भर को अपना कुटुम्ब मानकर, सब को प्रभु की संतान मानकर सबके कल्याण के लिए नित्य प्रार्थना करता है। वह अहिन्दुओं के समान किसी को 'काफिर' या 'नास्तिक' कहकर गाली नहीं देता।

अतः सभी जीव मात्र का कल्याण चाहने वाला, किसी से घृणा नहीं करने वाला, यह विश्वव्यापी महान् हिन्दू धर्म ही सब धर्मों की माता है, सच्चा मानव धर्म है, आधुनिक काल में स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी योगानंद इत्यादि महापुरुषों ने यूरोप तथा अमरीका में भी इसी महान् हिन्दू धर्म के विजय के डंके बजाए तथा अनेक यूरोपियन एवं अमरीकन लोगों को भी इस महान् हिन्दू संस्कृति का अमृत पिलाया।

इस महत्तम धर्म का पालन करके हम पुनः इस हिन्दू धर्म के पावन संदेश से दुःखी मानवता को शान्ति प्रदान कर अपनी खण्डित मातृभूमि के अखण्ड सौभाग्य का निर्माण कर सकते हैं।

क्या अद्भुत देश है यह! इस पुण्य भूमि पर चाहे जो खड़ा हो—वह इस भूमि का पुत्र हो अथवा विदेशी—यदि उसकी आत्मा दुर्दान्त पशुओं के स्तर तक नहीं गिर चुकी है—तो वह स्वयं को पृथ्वी के इन श्रेष्ठतम एवं शुद्धतम पुत्रों के तेजोमय विचारों से घिरा हुआ अनुभव करेगा, जो शताब्दियों तक पशु को देवत्व के शिखर तक उठाने के लिये कार्य करते रहे हैं और जिनका आरम्भ खोजने में इतिहास भी असफल रहा है। यहाँ का वायुमण्डल ही आध्यात्मिकता की तरंगों से ओत-प्रोत है।

—स्वामी विवेकानन्द

हिन्दू एवं बौद्ध धर्म में समानताएँ

हिन्दू, बौद्ध और जैन धर्म का प्रादुर्भाव भारत में हुआ और उनमें काफी समानताएँ हैं। बुद्ध हिन्दू के रूप में पैदा हुए, हिन्दुओं के समान ही परिव्राजक संन्यासी बने, हिन्दू धर्मशास्त्रियों का अनुगमन किया और अन्त में अपने मोक्ष के मार्ग पर अकेले चलकर निर्वाण प्राप्त किया। वर्तमान में श्रीलंका में जब हिन्दू और बौद्ध एक-दूसरे के साथ व्यवहार करते हैं तो उनमें काफी समानताएँ नजर आती हैं लेकिन दोनों धर्मों के ऊपर दृष्टिपात करने पर दोनों धर्मों में कुछ मूल भिन्नताएँ देखने को मिलती हैं।

कर्म का सिद्धान्त, जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्यों से अपने भाग्य का निर्माण करता है; पुनर्जन्म का सिद्धान्त तथा अनगिनत जन्मों में विश्वास तथा मोक्ष की प्राप्ति, जिसमें व्यक्ति जन्म-मृत्यु के चक्कर से छुटकारा प्राप्त कर लेता है—सभी ऐसी अवधारणाएँ हैं जिनमें हिन्दू और बौद्ध समान रूप से विश्वास करते हैं, यद्यपि उनका निर्वचन भिन्न हो सकता है।

बौद्ध इस बात पर बल देते हैं कि हिन्दू तथा अन्य सभी ईश्वरवादी धर्मों से वे दो मूल अवधारणाओं के संदर्भ में भिन्न मत रखते हैं। बौद्ध ईश्वर में विश्वास नहीं करते। जो अपनी कृपा से अपने भक्तों को मोक्ष अथवा मुक्ति प्रदान कर देता है। यद्यपि बौद्ध इस एक से अधिक ईश्वरों में विश्वास करते हैं तथा मानते हैं कि पादार्थिक लाभ दे सकते हैं। बौद्ध अनात्मा के सिद्धान्त को मानते हैं तथा आत्मा की शाश्वतता में विश्वास नहीं करते।

आत्मा और अनीश्वरवाद के सिद्धान्त हिन्दू धर्म के सभी दर्शनों से मूलरूप में भिन्न हैं लेकिन गहरे तुलनात्मक अध्ययन से दोनों धर्मों के बारे में भिन्न सिद्धान्तों के बावजूद कुछ अंदरूनी समानताएँ देखने को मिलती हैं।

हिन्दू धर्म में कई तरह की दर्शन-धाराएँ हैं जिन्हें हम आत्मा से परमात्मा के संबंधों के आधार पर तीन मुख्य भागों में बाँट सकते हैं—द्वैत अथवा द्वन्द्ववाद, विशिष्टाद्वैत तथा अद्वैत।

बौद्ध धर्म अद्वैत अथवा वास्तविकता के प्रति अपने दृष्टिकोण में अद्वैत के

समान है, यद्यपि कुछेक विद्वानों के सिद्धान्त विरोधाभासी दिख सकते हैं। अद्वैत तथा वेदान्त के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में आत्मा अजर और अमर होती है, लेकिन इसके सभी आवरण अस्थायी और नष्टमान होते हैं। सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् तथा अदृश्य वस्तुओं के पीछे आत्यन्तिक सत्य ब्रह्म है, जिसे बौद्धिक तौर पर नापा नहीं जा सकता तथा वह बुद्धि की पकड़ से परे की वस्तु है। वेदान्त के अनुसार मुक्ति अथवा मोक्ष इस तथ्य का अहसास मात्र है कि आत्मा परमात्मा से भिन्न अथवा अलग नहीं है। मैं ही ब्रह्म हूँ। '**अहम् ब्रह्मास्मि**'। यह दृष्टि-भ्रम कि आत्मा, परमात्मा अथवा ब्रह्म से भिन्न अथवा अलग है, अज्ञानता, मानवीय सीमाओं और बन्धनों के कारण से हुआ है।

बौद्ध धर्म का विश्वास है कि यह मानना कि कोई भिन्न व्यक्ति अथवा आत्मा है, हमारे अहंकार तथा अस्थाई पादार्थिक वस्तुओं के प्रति लगाव तथा इच्छा को जन्म देता है जिससे बन्धन और कष्टों का जन्म होता है। इस दृश्य जगत् की नश्वरता का अहसास, जिसमें स्थाई आत्मा का विचार भी शामिल है, को अष्टांग मार्ग के अनुपालन से प्राप्त किया जा सकता है और यही मुक्ति अथवा निर्वाण है। यद्यपि विचारों और अवधारणाओं में विरोधाभास नजर आता है, लेकिन जहाँ तक अन्तिम लक्ष्य अथवा सत्य का प्रश्न है, बौद्ध और अद्वैत वेदान्त दर्शन—दोनों में पर्याप्त समानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। दोनों का उद्देश्य व्यक्ति के अलग-थलग व्यक्तित्व के सीमित भाव की सीमाओं को लांघना है जिससे इच्छाओं और दुःखों के कारणों को ही समाप्त किया जा सके।

बौद्ध धर्म में स्थाई स्वत्व को नकार कर सीमित भावनाओं की परिस्थितियों को लांघा जा सकता है। वेदान्त में यद्यपि स्थाई आत्मा के भाव को स्वीकार किया जाता है, लेकिन इसे परमात्मा अथवा ब्रह्म का ही हिस्सा माना जाता है तथा भिन्नता का भ्रम ही अज्ञान और बंधन का कारण कहा जाता है।

श्रीलंका में बौद्ध धर्म का पालन करने वाले ज्यादातर विद्वान्, जिन्होंने वेदान्त का गहन अध्ययन नहीं किया है, वे परब्रह्म अर्थात् अन्तिम अनिर्वचनीय वास्तविकता तथा ब्रह्म अर्थात् प्रकृति बनाने वाले परमात्मा में बहुत भ्रान्ति पैदा कर देते हैं। ब्रह्म अकल्पनीय तथा अनुकूलित मस्तिष्क की समझ से परे की वस्तु है। इसका केवल वर्णन किया जा सकता है, अथवा नकारात्मक रूप से संकेत भर किया जा सकता है। 'यह नहीं—यह नहीं' अथवा 'नेति-नेतिः।' निर्वाण की स्थिति किसी भी तरह से वर्णन अथवा कल्पना से परे की वस्तु है। भगवान् बुद्ध ने भी कहा है कि यदि अजन्मा, अनुकूलित, अनिर्मित तथा अमिश्रित नहीं है तो जन्मा, अनुकूलित, निर्मित तथा मिश्रित भी नहीं हो सकता। यह वर्णन बिल्कुल ब्रह्म के वर्णन के समान है। यदि किसी वस्तु की अनुकूलित मस्तिष्क द्वारा कल्पना नहीं की

जा सकती और उसका वर्णन किया जाए तो उसमें हमेशा समानताएँ नहीं हो सकतीं।

भौतिकी में भी भौतिक विज्ञानी पदार्थ की मूल प्रकृति का स्पष्ट रूप से तथा तार्किक रूप से वर्णन करने में असफल रहे हैं। इसे केवल विरोधाभासी रूप में ही अर्थात् कण तथा तरंग—दोनों रूप में वर्णित किया जा सकता है।

यह अपरिमेय, जो सभी अवधारणाओं और शब्दों से परे है, उसे पर्याप्त रूप से न तो नकारात्मक और न ही सकारात्मक रूप में वर्णित किया जा सकता है। इस अनुकूलित, अमिश्रित तथा अपरिमेय को समझने के लिए व्यक्ति को सभी शब्दों और अवधारणाओं की सीमाओं को लांघना होता है। यह वस्तुनिष्ठ समझ नहीं हो सकती बल्कि उसे केवल आत्मपरक अथवा स्वानुभूतिमूलक रूप में ही समझा जा सकता है। विषय तथा वस्तु—दोनों अद्वन्द्व की स्थिति में आ जाते हैं। जिन्होंने इसे महसूस कर लिया है, वे बुद्ध की तरह केवल मौन में ही अभिव्यक्त कर सकते हैं। जो इसके बारे में बात करते हैं, वे इसे जानते नहीं और जो इसे जानते हैं वे इसके बारे में बात नहीं करते। इसलिए कोई भी वर्णन सकारात्मक अथवा नकारात्मक, यदि उसे बहुत गम्भीर अर्थ में लिया जाए, केवल भ्रान्तियों अथवा विरोधाभासों को ही जन्म देता है, जिससे निरपेक्ष वास्तविकता की समझ सीमित ही होती है। अतः इस तरह के वर्णन को वर्णन से परे की वस्तु के प्रति संकेतमात्र ही माना जाना चाहिए। इस समझ के प्रति खुलेपन हेतु व्यक्ति का सभी विचार और पूर्व-अवधारणाओं का त्याग आवश्यक है। विचार और अवधारणाएँ सूक्ष्म पादार्थिक होती हैं, जो परिमेय पादार्थिक स्तर से मिलती हैं। अपरिमेय और लंघनीय को पादार्थिक परिमापक मष्तिक द्वारा जानना अथवा समझना कदापि संभव नहीं।

ईश्वरवादी धर्मों में जो आत्मा, परमात्मा अथवा ईश्वर और देवत्व का प्रतिपादन करते हैं, परमात्मा के सम्पूर्णत्व से आत्मा के पृथक्त्व को; परमात्मा के प्रति भक्तिभाव से सम्पूर्ण समर्पण द्वारा ही महसूस और प्राप्त किया जा सकता है। सीमित इच्छाओं और भयों पर नियंत्रण प्राप्त करने तथा अनुकूलित अन्तरात्मा से ऊपर उठने के लिए ईसा मसीह का विहित कथन था, 'हे ईश्वर, तेरी इच्छा पूर्ण हो।' बौद्ध धर्म में भी हम समर्पण के पथ को पाते हैं जहाँ सभी बौद्धधर्मी बुद्ध, धम्म अथवा संघ के प्रति अथवा उच्चतर और सम्पूर्ण के प्रति बिना किसी बौद्धिक जाँच के, अपने-आपको समर्पित कर देते हैं, जिससे अहम् पर विजय प्राप्त की जा सके।

यदि निर्वाण की तुलना हम वेदान्त के निर्गुण ब्रह्म से करें तो धम्म अथवा धर्म की तुलना सगुण ब्रह्म अथवा गुणयुक्त ईश्वर से की जा सकती है। ये अर्थ में समान नहीं हैं लेकिन समान अवधारणाएँ हैं, जो शब्दों से परे किसी वस्तु की ओर इंगित करती हैं।

वेदान्त और बौद्ध धर्म—दोनों ही ज्ञानमार्ग के अनुयायी हैं, जो प्राचीन काल में

अल्पसंख्यक वर्ग के लिए उपयोगी था। लेकिन यह अल्पसंख्यक वर्ग आध्यात्मिक अर्थ में कुलीन था जिसने आम लोगों का अपने उपदेशों और कार्य से पथ प्रशस्त किया था। यह कहा जा सकता है कि एशिया में बौद्ध धर्म के करोड़ों अनुयायी हैं। लेकिन वास्तव में जिस धर्म का पालन करोड़ों लोग कर रहे हैं वह भगवान् बुद्ध द्वारा प्रतिपादित धर्म के मूल तत्त्वों और शुद्ध शिक्षाओं पर आधारित धर्म नहीं है, बल्कि वह उसका साधारणीकृत स्वरूप है जो बहुत हद तक हिन्दू धर्म के समान है, जिसका पालन करोड़ों हिन्दू करते हैं; यद्यपि कुछ अल्प संख्या में बौद्ध धर्म का पालन करने वाले साधु बौद्ध धर्म के मूल तत्त्वों और उपदेशों का गंभीरता से पालन करने का प्रयास करते हैं।

बौद्ध धर्म भारत में पृथक् धर्म नहीं रहा है। बुद्ध हिन्दू के रूप में पैदा हुए; उन्होंने हिन्दू गुरुओं के उपदेशों का अनुपालन किया और अन्त में वे अकेले जंगलों में चले गए जहाँ उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई। हिन्दू धर्म के अनुसार भी अन्त में व्यक्ति को अकेला ही जाना होता है, और उच्चतम पद अर्थात् मोक्ष प्राप्त करना होता है। यह कहा जाता है कि यदि व्यक्ति को नदी के दूसरे तट पर जाना है तो उसे जिस नाव से नदी पार करनी है, उससे चिपकना नहीं होता, उसे छोड़ना होता है। गुरु और आचार्य केवल पथ की ओर संकेत कर सकते हैं, लेकिन ज्ञान-प्राप्ति, मोक्ष अथवा निर्वाण के लिए उसे अपने मार्ग पर अकेले ही यात्रा करनी होती है।

यद्यपि बौद्ध धर्म भारत में पृथक् धर्म के रूप में बचा नहीं रह सका, लेकिन बुद्ध के मूल उपदेश और शिक्षाएँ उपनिषदों की उच्चतम उपदेश और शिक्षाओं के समान हैं और महात्मा बुद्ध के विशिष्ट योगदान को हिन्दू धर्म ने अपने-आपमें आत्मसात् कर लिया है, यहाँ तक कि कुछ हिन्दुओं द्वारा बुद्ध को विष्णु का दसवाँ अवतार तक कहा जाता है।

भारत में बौद्ध धर्म क्यों एक पृथक् धर्म के रूप में बचा नहीं रह सका, इसका कारण सम्भवतः यह है कि बुद्ध ने जाति-व्यवस्था और मन्दिरों में कर्मकाण्ड की ज्यादतियों का विरोध और खण्डन किया जो उस समय के धर्मप्रभुओं और ब्राह्मणों को स्वीकार्य नहीं था। उसने उनके विशेषाधिकारों को हटा दिया और प्रत्येक को समान रूप से व्यवहार दिया। महात्मा बुद्ध की यह शिक्षा उनके समय से बहुत आगे थी। हाल तक के समय में विश्व के प्रत्येक सभ्य समाज में (आदिम सभ्यताओं को छोड़कर) किसी-न-किसी तरह की जाति अथवा वर्ग-व्यवस्था थी जिसमें प्रत्येक वर्ग का अपना उच्च अथवा निम्न स्थान था और उच्च वर्गों अथवा जातियों को कुछ विशेषाधिकार प्राप्त थे। दासप्रथा को बड़े-बड़े दार्शनिकों यथा—प्लेटो, संत ऑगस्टाइन, सन्त थॉमस एक्विनस ने उचित ठहराया था। इस तरह के श्रम-विभाजन के अभाव में सभ्यता आगे नहीं बढ़ सकती थी, क्योंकि बौद्धिक,

आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक रुचियों के विकास के लिए विशेषज्ञता विशेषाधिकार एक कुलीन वर्ग के लिए आवश्यक माने गए थे। आज तकनीक का बहुत विकास हो गया है, जिसकी वजह से कठिन, गन्दा अथवा भारी कार्य मशीनों द्वारा किया जा सकता है तथा प्रत्येक व्यक्ति को उसके खाली समय में अच्छे उद्देश्यों हेतु मुक्त किया जा सकता है। यहाँ तक कि बौद्ध धर्म का पालन करने वाले देशों तक में जाति-प्रथा जैसी व्यवस्था बची रही जिसमें कुछ विशेषाधिकार प्राप्त कुलीन वर्ग अथवा विशिष्ट व्यक्ति हुआ करते थे।

सामान्य जनसमुदाय जो ज्यादा शिक्षित अथवा सुसंस्कृत नहीं होते थे, ज्ञान-मार्ग का अनुपालन नहीं कर सकते थे और इसीलिए उन्हें अपने मन की शान्ति तथा आध्यात्मिक विकास के लिए कुछ कर्मकाण्ड तथा भक्तिमार्गी उपायों की आवश्यकता होती थी। इसलिए महात्मा बुद्ध के खण्डन तथा भर्त्सना के बावजूद भी बौद्ध समाज में कुछ तरह के कर्मकाण्ड, यथा-समर्पण भाव के साथ भगवान् बुद्ध की प्रतिमा की अर्चना करते समय पुष्पार्पण इत्यादि प्रचलित रहे। संघों के नियम एवं विनियम, एक विशेष तरह की पोशाक को पहनना, जिसे 'सिल' कहा जाता है, 'पिरिथ' का जप इत्यादि सभी इसी तरह के कर्मकाण्ड कहे जा सकते हैं, यद्यपि हिन्दू मन्दिरों में पाए जाने वाले विस्तृत कर्मकाण्ड यहाँ नहीं होते। वे लोग जो अपने शरीर और अपने मन पर नियन्त्रण नहीं रख सकते, उन्हें अपने मन को शान्त करने और शान्ति प्रदान करने के लिए पूजा-पद्धति अथवा समर्पण जैसे कुछ बाहरी उपायों की आवश्यकता होती है।

हिन्दू धर्म में बहुत से महान् सन्तों ने अपनी आध्यात्मिक साधना गहन भक्ति के साथ मूर्ति की पूजा से प्रारम्भ की है। हाल के ही वर्षों में स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने माँ काली की मूर्ति की आराधना की। उनकी माँ काली की मूर्ति आत्यन्तिक वास्तविकता नहीं थी लेकिन उनकी आराधना ने उस मूर्ति की दृष्टि को छिन्न-भिन्न कर उन्हें उससे परे जाने में सहायता की। श्री रमण महर्षि ने अरुणाचल की आराधना की लेकिन जब उनसे यह प्रश्न पूछा गया कि क्या शिव और कैलास; विष्णु और वैकुण्ठ सत्य और विद्यमान हैं? उन्होंने उत्तर दिया, वे उतने ही वास्तविक हैं जितने मैं और आप हैं, लेकिन जिस तरह मैं और आप माया के अन्तर्गत हैं, वे भी माया के अन्तर्गत हैं।' उनके द्वारा उच्चतम सत्य की प्राप्ति के बावजूद भी, उनका यह भाव था कि बहुत-से लोगों के लिए समर्पण का पथ आसान और शीघ्रगामी हो सकता है।

विज्ञान और तकनीक के विकास के साथ, मानव की शारीरिक श्रम से मुक्ति, सभी तरह के भेद, विभेदों और अत्याचारों पर विजय, स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व और मानवीय गरिमा के आदर्शों का प्रचार तथा शिक्षा तथा संस्कृति के व्यापक प्रसार से मानव समाज एक ऐसे चरण में पहुँच रहा है, जहाँ वेदान्त और बौद्ध धर्म का ज्ञानमार्ग बहुत-से लोगों के लिए उपयोगी और व्यवहार्य होगा।

कर्मकाण्ड समेत बहुत-सी धार्मिक एवं आध्यात्मिक प्रथाओं का संरक्षण होना चाहिए और यह बिना मतभेद अथवा झगड़ों के होना चाहिए जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपनी प्रच्छन्न प्रकृति और स्वभाव के अनुसार अपनी आध्यात्मिक प्रथाओं और रिवाजों का अनुपालन कर सके।

हाल ही के वर्षों में विद्यमान रहे जब एक वैदान्तिक सन्त से यह पूछा गया कि बहुत सारी विरोधाभासी शिक्षाओं के बीच में किस पथ का अनुसरण करना चाहिए तो उन्होंने कहा कि सभी शिक्षाएँ विश्वसनीय हैं लेकिन कोई भी शिक्षा सत्य नहीं है, क्योंकि सत्य की प्राप्ति तो स्वयं द्वारा ही की जा सकती है। सत्य की प्राप्ति के लिए किसी भी पथ का चयन किया जा सकता है जो साधक को अच्छा लगे, सत्य की प्राप्ति पथ के चयन पर निर्भर नहीं करती बल्कि व्यक्ति की उत्सुकता और अध्यवसाय पर निर्भर करती है।

किसी भी पथ का यदि गम्भीरता तथा उत्सुकता, गम्भीर अध्यवसाय और समर्पण के साथ अनुगमन किया जाए तो उससे परमात्मा अथवा आत्यन्तिक सत्य तक पहुँचा जा सकता है। स्वामी रामकृष्ण परमहंस का मूल संदेश था, जिन्होंने अनेक उपायों का अनुसरण किया और प्रत्येक बार वे उसी आनन्दमय मंजिल पर पहुँचे। हमें यह महसूस करना चाहिए कि बौद्धिक सिद्धान्त एवं दर्शन मूलतत्त्व का वर्णन नहीं करते। सत्य की प्राप्ति स्वत्व के द्वारा ही संभव है। इस आभास से पूर्व इस अन्तराल में हमें बिना किसी भेदभाव के सार्वभौमिक अनुकम्पा हेतु सभी लोगों को संगठित करने के लिए सभी धर्मों का उपयोग करना चाहिए। और यह हम बौद्धिक रूप में सभी धर्मों में मूल तत्त्वों की समानता दिखाकर कर सकते हैं, जिससे कि भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बियों में झगड़े और असामंजस्य की स्थिति पैदा न हो बल्कि सभी लोग सामंजस्य, शान्ति तथा सहयोग हेतु संगठित हो सकें।

हिन्दू धर्म कभी भी सनातन न बन पाता, यदि वह निरन्तर वर्धमान और वितरणशील बनकर, अनुभूतियों के नव-नवीन क्षेत्रों को अपने अन्दर सम्मिलित करता न रहता। प्रत्येक नवागत कल्पना को अपने अन्दर संकलित कर अपने को तदनुरूप समायोजित करने की सामर्थ्य हिन्दू धर्म का एक विशेष लक्षण है, इसलिये हिन्दू धर्म को हम एकमात्र अमर धर्म के रूप में पहचानते हैं। संसार के ज्ञात किसी अन्य धर्म के अन्दर इस प्रकार का सामर्थ्य उस मात्रा में नहीं जितना हिन्दू धर्म में है। अतः हिन्दू धर्म विश्वधर्म के वृक्ष का वह तना है जो संसार के अन्य अल्पजीवी, धर्म-मतों को बहिर्वर्ती शाखाओं के रूप में वहन करता है।

—भगिनी निवेदिता

धर्म तत्त्व

सैय्यद अब्दुल्लाह बुखारी ने दिनांक 6 जून 1980 को 'द रिव्यू', नयी दिल्ली में प्रकाशित भेंटवार्त्ता में अति उत्तेजित होकर क्रोध से लाल चेहरे के साथ विस्फोटकारी उत्तेजना भरे शब्दों में कहा—'हिन्दुओं का कोई धर्म ही नहीं है।'

अंग्रेजी में प्रकाशित पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

"....Now the Shahi Imam was agitated. He was red in the face. He burnt out to say, "Hindus do not have any religion." But he quickly recommend and said, "There is a culture. We are Muslims. We have a common religion but our loyalty is only to one country." He classified in the next sentence that the loyalty of all Muslims the world over was neither to India nor to Pakistan but only to Arabia the faith place of P. Mohd...."

इसमें विचार करने के निम्नलिखित बिन्दु हैं—

क. धर्म क्या है?

ख. धर्मों के इतिहास में हिन्दू धर्म माना जाता है या नहीं?

ग. भारत के इतिहास में, इस देश पर, यहाँ की संस्कृति पर, यहाँ के समाज पर, यहाँ के दर्शन और धर्म पर, साहित्य और कला पर हिन्दू धर्म की मुद्रा कितनी सुस्पष्ट एवं महत्त्वपूर्ण है?

घ. भारत के संविधान एवं विधि-विधान में हिन्दू को धर्म स्वीकार किया गया है अथवा नहीं?

ड. संसार के प्रतिष्ठित ग्रन्थों, कोशों, विश्वकोशों में तथा विद्वानों के मत में हिन्दू को धर्म के रूप में मान्यता है अथवा नहीं?

च. भारत के अतिरिक्त नेपाल, भूटान, सिक्किम, अफगानिस्तान, बर्मा, श्रीलंका, इंडो-चाइना के देश, दक्षिण-पूर्व एशिया के देश, उत्तर-पूर्व एशिया के देश, मध्य-पूर्व के देश, अफ्रीका, यूरोप, ऑस्ट्रेलिया आदि में करोड़ों हिन्दू बसते हैं या नहीं?

छ. क्या संसार के सबसे बड़े मुस्लिम देश इंडोनेशिया की सदर बाली द्वीप को, जहाँ शत-प्रतिशत हिन्दू लोग बसते हैं, हिन्दू धर्म के रूप में मान्यता, सुविधा एवं सुरक्षा प्रदान करती है या नहीं? नेपाल में हिन्दू राजधर्म है अथवा नहीं? क्या फ़िजी, गुयाना, मॉरीशस, त्रिनिदाद, सूरीनाम आदि विदेशों में हिन्दी राजभाषा एवं हिन्दू धर्म बहुसंख्यक का प्रतिष्ठित धर्म है अथवा नहीं?

हिन्दुस्तान के मूल पुत्रवत् हिन्दू समाज के विषय में प्रश्न पूछने पर सैय्यद अब्दुल्लाबुखारी को उत्तेजित होने, चेहरा तथा आँखें लाल करके भड़क कर तिरस्कारपूर्ण वाणी बोलने का क्या अधिकार है? हिन्दू को धर्म से वंचित कर मात्र तहजीब कह देने से क्या विश्वभर के हिन्दुओं के धर्मशून्य की क्षतिपूर्ति हो जाती है?

क्या अभियोगी हिन्दू धर्म एवं संस्कृति पर व्याख्यानमालाओं के लिए देश एवं विदेश के विश्वविद्यालयों, शिक्षण-संस्थानों एवं धार्मिक संस्थानों में अनेक वर्षों से प्रवास करने के कारण कोई राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा अर्जित कर चुका है या नहीं?

यदि इमाम अब्दुल्लाबुखारी का यह वचन सही मान लिया जाए कि हिन्दुओं का कोई धर्म ही नहीं है तो हिन्दू धर्म के लिए सारा जीवन समर्पित करने वाले व्यक्ति के जीवन का मूल्य स्वाभाविक रूप से शून्य हो जाता है। इस प्रकार अभियोगी की राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा का हनन एवं जीवन भर की तपस्या का सर्वनाश हो जाता है।

'धर्म' शब्द मत, मजहब, पंथ या रिलिजन से बहुत अधिक व्यापक अर्थ वाला है। संस्कृत की 'धृ' धातु से बनने वाले इस 'धर्म' शब्द का अर्थ है उन विश्वव्यापी नैतिक सिद्धान्तों का विश्वमंगलकारी विधान जो पूरे समाज एवं विश्व को धारण करने वाला है। वैदिक काल में इसे ही 'ऋतम्' कहा जाता था, जिसका अर्थ है विश्वव्यापी नैतिक सिद्धान्त। इसी 'ऋतम्' से Letn Rection, Ey. Right Ganic Raints, D.E. Right, or. Raht, आदि बने हैं। अतः धर्म विश्वव्यापी नैतिक शासन है जो सबके व्यापक कल्याण के लिए, सबके हित में उचित एवं ठीक है। भारत के ऋषियों ने इसे मानव धर्म, विश्व धर्म, सनातन धर्म, आर्य धर्म, वैदिक धर्म आदि नाम दिये। यह किसी व्यक्ति विशेष द्वारा, किसी विशेष भूखण्ड में, किसी विशेष देश के लिए, किसी विशेष परिस्थिति के विचार से, किसी विशेष तिथि को प्रारम्भ किया गया पंथ या मजहब नहीं है। स्थापित पंथों का कोई-न-कोई संस्थापक या पैगम्बर होता है, किन्तु सनातन धर्म किसी मानव शरीरधारी व्यक्ति द्वारा संस्थापित पंथ न होकर शाश्वत धर्म है, जिसका संस्थापक कौन है कोई नहीं बता सकता। हिन्दू धर्म राम और कृष्ण की उपज भी नहीं है वरन् राम एवं

कृष्ण स्वयं हिन्दू धर्म की फुलवारी के सुन्दरतम फूल हैं। राम एवं कृष्ण के पूर्वज स्वयं हिन्दू ही थे। इसकी तुलना में पंथों का प्रारम्भ करने वालों के अपने पूर्वज उस पंथ के अनुगामी कभी नहीं हो सकते। ईसा के पूर्वज किसी भी तर्क से ईसाई नहीं हो सकते तथा हजरत मुहम्मद के पूर्वज मोहम्मडन नहीं हो सकते।

अंग्रेजी का 'Religion' (रिलिजन) शब्द दो शब्दों से बना है—'Re'+ 'Legare'. 'Re' का अर्थ है दोबारा या वापस। 'Legare' का अर्थ है बाँधना। अतः 'Religion' का शाब्दिक अर्थ है वापस अपने मूल धाम से बँधना; क्योंकि सब जीवों का मूल धाम परमेश्वर ही है। इसलिए वापस परमेश्वर की ओर लौटना अपने मूल धाम से संबंध जोड़ना ही 'Religion' (रिलिजन) का शाब्दिक अर्थ है। (Swami Raman : His life and Legacy P. 664)

Oxford Concise dictionary के पृष्ठ 1048 पर 'Religion' शब्द के निम्नलिखित अर्थ दिए हुए हैं—

1. Monastic condition, being monk or nun (मठ-व्यवस्था, साधु या साध्वी होना)

2. Practice of sacred Rites (पवित्र कर्मकाण्ड का पालन)

3. One of the prevalent systems of faith and worship (विश्वास एवं पूजा की प्रचलित विधि)

जॉन येल के शब्दों में—Realization of divinity is religion. अर्थात्, दिव्यता की साधना ही धर्म (Religion) है। (What religion is? P. XXIV)

Religion is path of god realization or self realization.

Religion ईश्वर-प्राप्ति या आत्मसिद्धि की साधना है। स्वामी विवेकानंद कहते हैं—'Religion is manifestation of the Divinity already in man.' इस प्रकार धर्म की व्यापक गोदी में समय-समय पर विकसित होने वाली भिन्न-भिन्न साधनाओं को 'Religion' कहा जा सकता है, जैसे—योग साधना, तंत्र साधना, मंत्र साधना, कर्मयोग साधना, अहिंसा-व्रत साधना, जीव-दया साधना, यज्ञ-कर्म साधना, संकीर्तन साधना, सेवा-स्मरण साधना इत्यादि। इस दृष्टि से हिन्दू व्यापक अर्थ में शाश्वत धर्म है जो अनादि है, किन्तु उसी के अन्तर्गत ब्रह्म-दर्शन या आत्मदर्शन हेतु पतंजलि, बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक, कबीर आदि ने साधना के भिन्न-भिन्न पथ भी दिखाए, जिन्हें साधना-पथ या 'Religion' माना जाता है। अतः यह कहना कि 'Hindus do not have any religion', यह धर्म और 'Religion'—दोनों का अपमान होने के अतिरिक्त सत्य का भी घोर तिरस्कार है।

विश्व के धर्मों की गणना में हिन्दू धर्म सबसे प्राचीन एवं प्रतिष्ठित धर्म है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में—'Three religions now stand in the world which have come down to us from time pre-historic Hinduism, Zorastrianism and Judaism.' अर्थात् ऐतिहासिक-युग पूर्व के केवल तीन ही धर्म आज संसार में विद्यमान हैं—हिन्दू धर्म, पारसी धर्म और यहूदी धर्म।'

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने अपनी पुस्तक 'Hinduism' के पृष्ठ 2 पर स्पष्ट लिखा है—'Half of the population of world lives in Asia and poetesses allegiance to religion and moral ideas that undoubtedly originated in India. Sir Henry Maine has stated that, barring the blind forces of nature, there was nothing that lived and moved in the world which was not Hellenic in origin. This may be true, but it must be remembered that Hellenic thought owes a good deal to India. Philosophical speculation had well advanced in India before the time of Socrates. The conceptions of Indian seers travelled to Greece and could not have failed to make their impression on Hellenic thought.'

अर्थात् संसार की आधी जनता एशिया में रहती है और उन धार्मिक एवं नैतिक विचारों के प्रति आस्था रखती है जो निःसन्देह भारत में ही प्रकट हुए। सर हेनरी मैन ने कहा है कि प्रकृति की अंध शक्तियों को छोड़कर संसार में अन्य कुछ भी ऐसा नहीं घटा जो मूल में यूनानी न हो (अर्थात् संसार की सारी प्रगति यूनान से ही हुई)। हो सकता है यह ठीक हो, किन्तु यह अवश्य स्मरण रहना चाहिए कि यूनानी विचारधारा बहुत हद तक भारत की ऋणी है। सुकरात से पहले ही भारत में दार्शनिक चिन्तन बहुत अधिक प्रगति कर चुका था। भारत के ऋषियों के विचार यूनान तक पहुँचे तथा यूनानी विचारधारा पर अपनी छाप छोड़े बिना नहीं रहे।'

विश्वधर्म तथा धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन के जितने ग्रन्थ संसार भर के विश्वविद्यालयों में पढ़ाए जाते हैं, उसमें हिन्दू धर्म का सम्मानजनक स्थान है। भारतरत्न डॉ. भगवानदास अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सब धर्मों की बुनियादी एकता' में पग-पग पर हिन्दू धर्म की महिमा गाते हैं—'हिन्दू धर्म में जिन तीन गुणों को 'सच्चित्-आनन्द' नाम दिया गया, उन्हीं को इस्लाम में वजूद, हद और इल्म कहा गया है। सत्, चित्, और आनन्द—तीनों चैतन्य में जा मिलते हैं। इस्लाम में चैतन्य को 'नूर' कहा गया। वही परम ज्योति या 'नूरे काहिर' भी है। उसी नूर से सारा जहान रोशन है। 'विश्व धर्म दर्शन' में श्री साँवलिया बिहारीलाल वर्मा ने आधा

ग्रन्थ हिन्दू धर्म की चर्चा पर व्यय किया है और शेष आधे में संसार के अन्य धर्मों की चर्चा की है। डॉ. राधाकृष्णन ने अपने ग्रन्थ 'East and West in Religion' के पृ. 26 में धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन की चर्चा में ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में व्याख्यान करते हुए हिन्दू धर्म की उचित प्रतिष्ठा की—'Take for example, the case of Hinduism for many centuries its spell has bound a large part of Asia, the Middle and the far East. With its offshoots of Buddhism, Jainism and Sikhism, it appeals to millions of people, several militant creeds tried to suppress it, yet, it is still there. Many critics ancient and modern killed it, certified its death and carried out the funeral obsequies, and yet it is there....

'Men like Gandhi and Tagore, plead guilty to being Hindus....we want to understand the sources of its strength, the sprung of its vitality. To shut our eyes to it is an ostrich like policy which leads nowhere.'

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने हमारे सनातन धर्म को 'Religion of man' कहा है। मनु द्वारा प्रतिपादित धर्म को भी 'मानव धर्मशास्त्र' कहा गया है।

विश्व-विख्यात ब्रिटिश इतिहासकार अर्नाल्ड टॉयनबी ने भी धर्मों की चर्चा में हिन्दू धर्म को प्रतिष्ठा का स्थान दिया है। जर्मन दार्शनिक स्विट्जर ने भी भारतीय दर्शन एवं हिन्दू धर्म की विशद् चर्चा की है।

सर यदुनाथ सरकार ने लिखा है, 'Hinduism is not only a Religion but a Synthesis of Religion.'

भारत के इतिहास, संस्कृति एवं कला पर हिन्दुत्व की छाप

डॉ. एनी बीसेंट ने लिखा है—'India & Hinduism are one'. (भारत और हिन्दुत्व—दोनों एक और अभिन्न हैं)।

'....और यदि हिन्दू ही हिन्दुत्व का संरक्षण नहीं करेंगे तो कौन इसे बचाएगा? यदि भारतमाता की अपनी सन्तानें ही अपने धर्म के प्रति निष्ठावान् नहीं रहती तो कौन इसकी रक्षा करेगा? विदेशी कलेवर में कोई भी वह नहीं कर सकता जो अपने स्वदेश में कर सकता है। मेरा भारत के लिए कितना भी प्रेम, कितनी भी सेवा की पूर्णता, कितनी भी भक्ति की अनन्यता, इस विदेशी शरीर में वह नहीं कर सकती जो आप भारत के लाल कर सकते हैं। अतः हम भी, जिनके हृदय हिन्दू हैं, और जिनके पूर्वजन्म हिन्दू रहे हैं, हम केवल आपकी सहायता कर सकते हैं, मुख्य कार्य आपको स्वयं ही करना होगा।

'भूलो मत! हिन्दुत्व के बिना हिन्दुस्तान का कोई भविष्य नहीं है। हिन्दुत्व ही वह जनन-भूमि है जिसमें भारत की जड़ें स्थापित हैं, और उससे उखाड़ देने पर वह अनिवार्य रूप से मुरझाकर मर जाएगा, जैसे एक वृक्ष को उसके मूलस्थान से उजाड़ देने पर होता है। बहुत से धर्म हैं और बहुत सी जातियाँ हैं जो भारत में फल-फूल रही हैं, किन्तु उनमें से कोई भी उसके अतीत के अति दूर प्रथम सूर्योदय तक नहीं पहुँच पाती, तथा न ही वे उसके राष्ट्र के रूप में जीवित रहने के लिए आवश्यक है। उनमें से प्रत्येक जैसे आया था भले ही चला जाए, और भारत फिर भी बना रहेगा। किन्तु तनिक हिन्दुत्व को लुप्त होने दो, तो भारत क्या बचेगा? भूतकाल का एक भौगोलिक आभास मात्र, विनष्ट वैभव की धुँधली स्मृति मात्र! उसके इतिहास, उसके साहित्य, उसकी कला, उसके स्मारकों—सभी पर हिन्दुत्व ही अंकित है।

जरथ्रुस्त्र का पारसी धर्म भारत में शरण के लिए आया और उसके पुत्रों को भारत में शरण एवं स्वागत मिला; किन्तु पारसी धर्म भले ही चला जाए, तब भी भारत भारत ही रहेगा। बौद्धधर्म यहीं पर स्थापित हुआ, किन्तु बौद्ध धर्म लुप्त हो गया और भारत भारत ही है। इस्लाम एक आक्रमण की लहर बन कर आया, और मुसलमान भारतीय राष्ट्र के अंग बने हुए हैं, तथा इसके भविष्य के निर्माण में योगदान करेंगे; फिर भी इस्लाम भले ही चला जाए, भारत भारत ही रहेगा। ईसाइयत आई है, और ईसाई भारत में शासन करते हैं तथा इसके विभिन्न पक्षों को प्रभावित करते हैं; फिर भी ईसाइयत भले ही चली जाए और भारत भारत ही रहेगा। भारत उनके आगमन से पहले भी जीवित था; और भारत उनके चले जाने के बाद भी जीवित रह सकता है। किन्तु तनिक हिन्दुत्व को जाने दो, हिन्दुत्व जो भारत का शैशव का झूला रहा है, और उसके लोप में ही भारत की मृत्यु हो जाएगी। तब भारत, भारत के धर्म के साथ, केवल स्मृति शेष बचेगा, जैसे मिस्र एवं मिस्र के धर्म आजकल हो गए हैं। तब भारत बचेगा मात्र प्राचीन इतिहास का एक विषय, पुरातत्त्व की वस्तु, चीर-फाड़ के लिए शवमात्र, किन्तु वह देशभक्ति की वस्तु नहीं बचेगा, वह राष्ट्र नहीं रहेगा।' (डॉ. एनी बीसेंट का हिन्दू आदर्शों पर व्याख्यान, सेंट्रल हिन्दू कालेज, बनारस; हिंदुइज्म थ्रूदि एजेज, जी. एल. शर्मा पृष्ठ 118-119)

डा. रामधारीसिंह दिनकर कहते हैं—भारत का एक दुर्भाग्य सैक्यूलरिज्म भी है।...भारत के सैक्यूलर राज्य की दृष्टि में हिन्दू और मुसलमान बराबर नहीं है। हिन्दू एक ही विवाह कर सकता है, मगर मुसलमान के विवाह की संख्या पर रोक नहीं है। और यह तो है ही कि हिन्दू अगर दूसरा विवाह करना चाहे, तो उसे मुसलमान हो जाना पड़ेगा।

शिक्षा आयोग ने सिफारिश की है कि धार्मिक शिक्षा के बिना भारत की

संस्कृति नहीं बचेगी, किन्तु भारत की सैक्यूलर सरकार अपने ही द्वारा स्थापित शिक्षा आयोग के सुझाव पर अमल करना नहीं चाहती। सैक्यूलरिज्म का इस गलत अर्थ में प्रयोग जवाहरलाल जी के जोर से बढ़ा और डा. राजेन्द्र बाबू तथा डा. राधाकृष्णन् राष्ट्रपति होते हुए भी उस प्रवाह को रोक न सके। फिर भी डा. राधाकृष्णन् को यह श्रेय अवश्य दिया जायगा कि उन्होंने दो-एक भाषणों में यह खुलासा कर दिया कि सैक्यूलरिज्म का अर्थ धर्मनिरपेक्षता नहीं, बल्कि असांप्रदायिकता है।

—धर्मयुग 14 सितम्बर 1969, पृष्ठ 12-13

(अपूर्ण)

धर्म

मनुष्य मात्र के लिये धर्म एक मूलभूत आवश्यकता है, और कट्टरता एवं धर्मोन्माद से यदि इसे मुक्त रखा जाये तो यह नीति, नैतिकता, दया, भलाई एवं सामाजिक व आर्थिक न्याय का कभी समाप्त न होने वाला झरना है और साथ ही मनुष्य को सभ्य बनाने का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माध्यम भी।

—ननी. ए. पालखीवाला

धर्म तत्त्व

'धर्म संयम का मंगल मर्यादा कवच एवं मानव की अन्तरात्मा का कर्तव्यानुशासन है, जिस पर मानवता टिकी हुई है। धर्मानुशासन लुप्त हो जाने पर विश्व का कोई भी राज्य शासन मानवता को नहीं बचा सकता। आज विश्व के चारित्रिक संकट के समय विश्व के सर्वोत्तम धर्म, धर्मों के आदि स्रोत सनातन हिन्दू धर्म के प्रचार-प्रसार की आवश्यकता सबसे अधिक है। उत्तम धर्म वह नहीं जिसने आग और तलवार द्वारा दुनिया को रौंद डाला हो, देवालय ध्वस्त, जनगण त्रस्त, परिवार अस्त-व्यस्त, विधर्मी निरस्त, विश्वविद्यालय ज्वालस्थ कर नरमांस पर, नर शोणित से जघन्य बर्बरता की क्रूर कहानी लिख कर अपने पंथ का फैलाव किया है। उत्तम धर्म वह भी नहीं जिसने क्रूसेड और इनक्विजीशन द्वारा व्यापक नर संहार किये, भिन्न पंथ वालों को लाखों की संख्या में तेल छिड़क कर जीवित जलाया तथा आलोचकों के दबे हुए शवों को कब्र से निकाल कर टॉवर ऑफ लन्दन पर फांसियाँ दीं। उत्तमता की कसौटी है विश्वमंगल की निस्वार्थ साधना, बिना किसी देश की स्वाधीनता छीने तथा किसी माँ-बहिन की मान मर्यादा को लूटे, परहित के लिए आत्म त्याग एवं आत्म यज्ञ, जो हिन्दू धर्म का आधारभूत संस्कार है। आर्य धर्म की इसी महत्ता के कारण ही महात्मा ईसा हिन्दू आचार्यों के शिष्य बनकर भारत में शिक्षा-दीक्षा हेतु आए तथा हजरत मुहम्मद के पितृव्य अबुल हिक्म हिन्द देश, हिन्दू धर्म एवं हिन्दू देवों की स्तुतियाँ गाते थे।'

इन शब्दों में अन्दमान निकोबार द्वीप पुंज की राजधानी पोर्ट ब्लेयर में विश्व हिन्दू परिषद् के तत्त्वावधान में आयोजित विराट् हिन्दू सम्मेलन में संस्कृति विहार राँची के निदेशक एवं विश्व हिन्दू परिषद्, राँची जिला के अध्यक्ष डॉ. हरवंशलाल ओबराय ने भारत एवं मानवता के परम कल्याण के लिए हिन्दू धर्म की रक्षा हेतु आह्वान किया। भारत सेवाश्रम संघ, दिल्ली के प्रमुख स्वामी विजयानन्दजी महाराज ने अपने ओजस्वी व्याख्यान में कहा, 'जहाँ इस्लाम और ईसाइयत एक ही खम्भे (1 पैगम्बर और 1 ग्रन्थ) पर टिके हुए भवन हैं वहाँ हिन्दू धर्म सहस्रों-स्तम्भों पर खड़ा एक सुदृढ़ सनातन भवन है। यदि अन्य पंथों का एक पाया ही हिल जाय तो वे धराशायी हो जाते हैं किन्तु सनातन हिन्दू धर्म युगों के झंझावातों तथा काल के क्रूर आक्रमणों के उपरान्त भी मृत्युंजय है।

मजहब से रक्तपात एवं अशान्ति : धर्म से विश्व मंगल एवं शान्ति

संसार के सभी निष्पक्ष विचारकों एवं धर्म-द्रष्टाओं का यही निर्णित मत है कि विश्व के सभी धर्मों में हिन्दू धर्म ही सर्वोत्तम एवं सर्व कल्याणकारी है। भगिनी निवेदिता (मूलतः आइरिश महिला), डॉ. एनी बीसेंट (ब्रिटिश विचार नेत्री), रोमां रोलां (फ्रेंच साहित्य मनीषी), अर्नाल्ड टायनबी (विश्वविख्यात ब्रिटिश इतिहासकार), विल डूरेंट (सभ्यता के इतिहास के महानतम अमरीकी लेखक) का मत है कि धर्म तो केवल हिन्दू-धर्म ही है; शेष सब पंथ, सम्प्रदाय, मजहब मात्र हैं जो नश्वर मानवों द्वारा धरती के भिन्न-भिन्न भूखण्डों में काल सरिता की नश्वर तिथियों पर किसी सीमित-लौकिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्थापित किये गये। न वे अनादि है और न शाश्वत। पंथों और पैगम्बरों की परस्पर प्रतिस्पर्धा के कारण जो भीषण रक्तपात एवं बर्बर जनसंहार हुए उसी ने कार्लमार्क्स जैसे क्रान्तिद्रष्टा को भी नास्तिक बना दिया। जहाँ पंथों ने नर मांस और नर शोणित से अपनी बर्बरता की क्रूर कहानी लिखी वहाँ विश्व मंगलकारी सनातन हिन्दू धर्म ने बिना किसी की रोटी, बेटी या आजादी को लूटे मानवता के परम मंगल हेतु अपनी मृत्युंजयी संस्कृति के अमृत को विश्व के प्रत्येक देश एवं जाति को निःस्वार्थ भाव से बाँटा।

हिन्दुत्व अध्यात्म क्षेत्र की खुली प्रयोगशाला है।

—डा. राधाकृष्णन्

× × ×

भारतीय संस्कृति का उद्धार केवल भारत के लिये ही आवश्यक नहीं है वरन् इसलिये भी कि उससे सारे संसार का कल्याण होगा।

—डा. रामधारीसिंह दिनकर

सेवा का पुनीत संकल्प

मानव के व्यक्तित्व के तीन वृत्त (दायरे) होते हैं। एक पेट का दायरा, दूसरा परिवार का दायरा और तीसरा समाज का दायरा। लगभग 80 प्रतिशत लोग पेट के दायरे तक ही चिन्ता करते हैं। लगभग 19-20 प्रतिशत परिवार के चार-छः सदस्यों के पालन-पोषण की ही चिन्ता करते हैं। हजारों में कोई एक सज्जन समाज के दायरे की चिन्ता करता है। दुर्भाग्य से हमारे समाज का दायरा विगत एक हजार वर्षों से टूटा हुआ है।

हम ईमानदारी से अपने कलेजे पर हाथ रखकर अपने आप से पूछें कि पिछले चौबीस घंटों में हमने कितना समय पेट के लिए, कितना समय परिवार के लिए और कितना समय समाज के लिए दिया है? इसके उत्तर में हमें स्वयं ही अनुभव हो जाएगा कि हम अपने समस्याग्रस्त, संकटापन्न समाज की कितनी भयंकर उपेक्षा कर रहे हैं। यदि चार-छः दिन पेट की उपेक्षा की जाय तो पेट विद्रोह कर उठेगा, शरीर का बल क्षीण हो जायेगा तथा हम अर्धमृत से हो जायेंगे। यदि दो-चार मास परिवार की सेवा-सुरक्षा पर ध्यान न दिया जाय तो परिवार उजड़ जायेगा। हम तनिक सोचें कि जिस समाज की हमने एक हजार वर्ष तक चिन्ता नहीं की उसकी कैसी दुर्गति हुई होगी। पिछले हजार वर्ष का इतिहास साक्षी है कि सिन्ध के राजा दाहिर की पुत्रियों को बन्दी बनाकर बगदाद ले जाया गया तथा वहाँ उन्हें घोड़े की पूँछ के पीछे बाँध कर बाजारों में घसीट-घसीट कर मारा गया, सहस्रों-पुरुषों को गुलाम बनाकर तथा नारियों को दासी एवं रखैल बनाकर विदेशों में बेचा गया, नन्हे-नन्हे बच्चों को दीवारों में जिन्दा चुन दिया गया, ब्रह्मज्ञानी-सन्तों का चौराहों पर शीर्ष-छेदन हुआ, तपे हुए तवों पर और तेल के कड़ाहों में जलाया गया। वेद-मन्दिरों को ध्वस्त किया गया, कश्मीर के ब्राह्मणों का सामूहिक धर्मान्तरण हुआ, स्वदेश का एक-चौथाई भाग हिंसा एवं रक्तपात द्वारा काट कर परदेस बना दिया गया। इतिहास साक्षी है कि समाज दुर्बल रहने पर न पेट सुरक्षित रहता है न परिवार। निर्बल समाज की रोटी एवं बेटी दोनों को दुष्ट लोग लूट कर ले जाते हैं।

हरिजन एवं वनवासी बन्धुओं को त्रिविध मार का शिकार बनना पड़ा है। एक

तो निर्धन और अशिक्षित रहने के कारण वे पहले से ही पिछड़े हुए थे। दूसरे, विदेशियों का प्रहार सबसे अधिक उन्हीं पर हुआ। तीसरे वे हमारा स्नेह एवं सहयोग भी नहीं प्राप्त कर सके। वास्तव में यह तीसरा कारण ही सबसे प्रमुख कारण है। हमारी उपेक्षा से ही वे अशिक्षित एवं निर्धन बने रहे तथा हमारी सामाजिक उपेक्षा के महापाप के कारण ही वे विदेशी शक्तियों के अत्याचार का शिकार बनते रहे।

आज अपने युगों की उपेक्षा के महापाप को हमें धोना है। लम्बे तिरस्कार की ब्याज सहित क्षतिपूर्ति आज अपनी भरपूर सेवा द्वारा करनी है। समाज बचेगा तो हमारा पेट भी बचेगा और परिवार भी। यदि समाज सबल होगा तो न कोई हमारे पेट पर लात मार सकेगा, न परिवार की मान-मर्यादा लूट सकेगा तथा न हमारी श्रद्धा का खून होगा।

आइये, हम समाजसेवा का पवित्र संकल्प धारण करें।

गीता के 16 वें अ. में भगवान् कहते हैं सृष्टि में प्रारम्भ से दो प्रकार के प्राणियों की सृष्टि है—देवी और आसुरी। प्रेम और विवेक का शासन देवी प्रकृति पर ही चरितार्थ होता है। परन्तु जिनकी प्रकृति आसुरी है, जिनका मन शुष्क है, मस्तिष्क विकृत है वह दण्ड की भाषा ही समझता है और उससे शमित होता है।

सत्याग्रह-अनशन वहीं कारगर होता है जहां आत्मीयता का क्षेत्र हो और आत्मीयता शेष हो।

—गीता

× × ×

॥ राष्ट्र देवो भव॥

राष्ट्र को देवता मानो।

× × ×

वीर भोग्या वसुन्धरा

वीर पुरुष ही वसुन्धरा के राज्य का उपभोग कर सकते हैं।

पारिवारिक जीवन में केवल धार्मिक नियम ही प्रभावी होते हैं

व्यक्ति और समाज दोनों लौकिक जीवन के दो पृथक् एवं अलग-अलग बिन्दु हैं। दोनों में से किसका महत्त्व अधिक है और किसका कम, इस पर समाजशास्त्रियों में पुराने समय से शास्त्रार्थ चल रहा है। समाज की उपेक्षाकर व्यक्ति को ही पूरा महत्त्व देने से व्यक्ति स्वार्थी बन जाएगा और व्यक्ति को भुलाकर समाजवाद के रेले-ठेल में व्यक्ति व्यक्तित्वहीन हो जाएगा। आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का भी पूर्ण विकास हो तथा समाज के हितों की भी रक्षा हो। न व्यक्ति समाज को ठुकरा कर स्वार्थी बने और न समाज की भीड़-भाड़ में व्यक्ति अपना व्यक्तित्व ही खो बैठे।

व्यक्ति और समाज दोनों को जोड़ने वाला सूत्र है परिवार। परिवार में व्यक्ति स्वाधीन रहते हुए भी अन्य सदस्यों के प्रति कर्तव्यपालन एवं उत्तरदायित्व का प्रशिक्षण पाता है। अतः परिवार नैतिक एवं सामाजिक जीवन-मूल्यों का सुन्दरतम पालना है। परिवार के झूले में झूलता हुआ व्यक्ति धीरे-धीरे एक सामाजिक प्राणी बनता है। अतः परिवार की उचित शिक्षा व्यवस्था में व्यक्ति एवं समाज दोनों का कल्याण निहित है।

परिवार के सदस्यों को बचपन से ही सदाचार और नेकी के संस्कार कहाँ से मिलेंगे? वेद ने कहा है—मातृ देवो भव। (माता को देवता मानो), पितृ देवो भव। (पिता को देवता मानो)। आचार्य देवो भव (आचार्य को, गुरु को, उस्ताद को देवता मानो)। इस तरह बच्चे को सबसे पहली शिक्षा अपनी माँ की गोदी में मिलती है। वेद की तरह कुरानशरीफ माँ-बाप के एहसान को मान कर उनकी इज्जत करने का उपदेश देता है।—'व बिइल् वालिदैनि इहसानन्....(माता-पिता के साथ नेकी करो)। भारत के ऋषियों ने कहा है—' माता निर्माता भवति' अर्थात् माँ ही इन्सान की सबसे बड़ी निर्माता है। सरोजिनी नायडू का कथन है—'The Hand that rocks the cradle shocks the whole world' अर्थात् 'माता का जो हाथ

बच्चे के पालने को झुलाता है वह सारी दुनिया को हिला सकता है। असल में माँ-बाप द्वारा दी गई शिक्षा के आधार पर ही इन्सानी जिन्दगी की बुनियाद का निर्माण होता है। इसलिए परिवार में मिलने वाली शिक्षा का महत्त्व, उसकी अहमियत जिन्दगी में सबसे ज्यादा है।

शिक्षा का उद्देश्य ही मनुष्य को संस्कारित करना है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि बचपन में दो साल की उम्र से पांच साल की उम्र तक बच्चों में एक ईर्ष्या-अवस्था (Jealousy Age) होती है। उस समय भाई-बहिन एक-दूसरे से छोटी-छोटी बात पर लड़ते-झगड़ते हैं। यदि बहिन को खिलौना या मिठाई मिलती है तो भाई ईर्ष्यावश रोने-चिल्लाने लगता है कि उसे वह चीज क्यों नहीं दी गई। कई बार भाई बहिन की मिठाई छीन लेता है या खिलौना तोड़ देता है। बहिन के रोने पर वह उसे और चिढ़ाता है। तब माँ उसे समझाती है कि बहिन तो देवी होती है उसे छेड़ना, तंग करना पाप है। तब धीरे-धीरे वही भाई परिवार के संस्कारों से संस्कारित हो ऐसा कर्तव्यपरायण बन जाता है, कि वह बड़ा होकर बहिन के लिए अपनी जान और जायदाद को कुर्बान कर देता है।

शिक्षा का सबसे सरल, सहज और स्वाभाविक माध्यम है—धर्म शिक्षा। धर्म का अर्थ ही है—कर्तव्य। जैसे देश की रक्षा करना कर्तव्य है, खुदा की बन्दगी करना कर्तव्य है, दीन-दुःखी की खिदमत करना कर्तव्य है, इसी तरह खुदा की बन्दगी, दीन-दुःखी की सेवा, देश की रक्षा ये सब धर्म ही माने जाते हैं। आजकल सैक्यूलर (धर्मनिरपेक्ष) शिक्षा का और वैज्ञानिक शिक्षा का बड़ा बोल-बाला है। लेकिन माँ-बाप का अदब, खुदा की बन्दगी, इन्सानी हमदर्दी, चरित्र की मजबूती और समाज की सेवा करनी चाहिए, यह कौन से साइंस के उसूल से सिद्ध किया जा सकता है? बुद्ध की अहिंसा, महावीर की जीवदया, ईसा का प्रेम और हजरत मुहम्मद का भ्रातृ-भाव का संदेश, किसी साइंस की लेबोरेट्री से साबित होने वाली चीज नहीं है। ये धर्म के शाश्वत सिद्धान्त हैं जिन्होंने आज तक मानवता को जीवित रखा है। 'If Religion has saved mankind in the past, it would not poison it in future.'

यदि धर्म ने आज तक मानवता को जीवित रखा है तो वह भविष्य में इसे जहर देकर मार नहीं डालेगा। भारतीय मनीषियों ने कहा है—

मातृवत् परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु, यः पश्यति स पश्यति।।

अर्थात् जो दूसरी स्त्रियों को माँ-बहिन के समान इज्जत देता है, जो दूसरों की दौलत को मैला जैसा गलीज समझता है या खाक जैसा बेकार समझता है, जो

दूसरों की जान को अपने जीवन के समान ही प्यारा समझता है वही सच्चा इन्सान है जिसे ईश्वर ने देखने की सही नजर दी है। कुरानशरीफ में लिखा है—

वमन् अह्याहा

फक अलमा अह्याऽन्नास जमीअन : (कुरानशरीफ 5/35)

'जिसने एक मनुष्य को जिलाया, उसने मानो सारी मानव जाति को जिलाया।'

मानवता को जिन्दा रखना, इन्सान की सेवा करना, खालिक की और खल्क की सेवा करना, इस तरह इन्सान को खुदा तक से मिला देना यही धर्म का उद्देश्य और जीवन का लक्ष्य है। अतः धर्म को जीवन से अलग कर देने से धर्म निष्प्राण हो जायेगा और इन्सानियत मर जायेगी। इसलिए विज्ञान और सैक्यूलरिज्म की तरक्की के साथ इन्सान की इन्सानियत मरती जाती है और वह जालिम दरिन्दा बनकर सोए हुए बेगुनाह इन्सानों पर एटम बम गिराकर मानवता का हत्यारा बन रहा है। मौलाना रूमी की चेतावनी हम सुनें—

तू बराए वस्ल करदन आमदी,
न बराए फस्ल करदन आमदी।
तुझे भेजा था ए इन्सान, बन्दों को मिलाने को,
न भेजा था, कि मानवता, की हस्ती ही मिटाने को।

वेद में प्रार्थना है—'अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्' अर्थात् 'हे परमेश्वर, हमें सुपथ पर, नेकी के रास्ते पर ले चलो। कुरान शरीफ ने इसी भाव को गुंजाया है—

'एहदेनस् सिरातल् मुस्तकीम'

अर्थात् 'या खुदा, हम सब को सीधी राह दिखला'।

यही भाव अन्यत्र है—'Lead Kindly light'

धर्म वही दिव्य कृपा पूर्ण प्रकाश है जो लड़खड़ाती हुई दुर्बल मानवता को भी महानता की ओर, सदाचार की ओर, सत्य की ओर, खुदा की ओर, परब्रह्म परमेश्वर की ओर ले जाता है। यदि बचपन में पारिवारिक जीवन में उस दिव्य प्रकाश का मार्गदर्शन नहीं मिला तो सारी इन्सानियत अपने लक्ष्य से भटक कर हैवानियत की ओर पतित हो जायेगी। धर्म शिक्षा तो सारी इन्सानियत के लिए एक समान ही है। खुदा की बन्दगी, इन्सान की सेवा, हक परस्ती, नेकी, सदाचार, ईमानदारी इत्यादि मजहब-सम्प्रदाय धर्म के ही अंग हैं। धर्म एक है, मजहब अनेक। जैसे धर्म सागर के समान है और मजहब भिन्न-भिन्न नदियों के समान है। नदी पार करने के लिए अनेक घाट एवं अनेक नौकाएं होती हैं। सभी से नदी पार

हो सकती है। अतः नौकाओं को आपस में टकराने की जरूरत नहीं है, न डांड उठाकर लोगों को इस बात पर झगड़ना चाहिए कि कौन नौका कितनी बड़ी या छोटी है और कितनी नई या पुरानी है। किसी भी नौका पर शान्ति से बैठोगे तो संसार नदी के पार हो जाओगे। यदि आपस में झगड़ते रहोगे तो सिर-फुटव्वल भी होगा, नौकाएं भी टूटेंगी और नदी पार न कर डूब जाओगे।

मजहब का अर्थ ही है इन्सान का हजब करने वाला, इन्सान को चमकाने वाला, उसका परिष्कार करने वाला, उसको सुधारने वाला। इसलिए मनुष्य को चमकाने वाले, उसकी इन्सानियत को फरिश्तों जैसा रोशन करने वाले, मजहब का कानून मानवता के मंगलमय विकास के लिए परम अनिवार्य ही है।

मनुष्य को सियासी कानून (राजकीय विधि) द्वारा कभी भी ईमानदार नहीं बनाया जा सकता। राजदण्ड में भय है और डर से इन्सान के अन्दर का भगवान् नहीं जाग सकता, लेकिन धर्म के आत्मस्वीकृत मर्यादा के नियम से इन्सान बिना किसी पुलिस के डण्डे के अपने-आप नेकी की राह पर चलने लगता है। इसलिए भ्रष्टाचार मिटाने के लिए बचपन से ही धार्मिक शिक्षा जरूरी है। रामायण जिन पारिवारिक जीवन-मूल्यों का भण्डार है क्या किसी सरकार के हुक्म से उन्हें सिखाया जा सकता है? क्या सरकारी हुक्म से किसी बेटे को आज्ञाकारी, किसी भाई को त्यागी, किसी स्त्री को सती और किसी प्रजा को ईमानदार बनाया जा सकता है? मेरे बुजुर्ग दोस्त डॉ. अब्दुल लतीफ इस्लामिया कॉलिज, लाहौर में थे। वे रोजाना रामायण पढ़ते थे। वे कहते, 'यह हमारा हिन्दुस्तानी तमद्दुन है। बिना रामायण जैसे आदर्शों के परिवार उजड़ जायेंगे और हमारा समाज नष्ट हो जायेगा।'

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी रामप्रसाद बिस्मिल की दूसरे क्रान्तिकारी अश्फाक उल्ला से बड़ी दोस्ती थी, वे उसे अपना छोटा भाई मानते, उसे अपने घर ले जाते और उसे लक्ष्मण कहकर पुकारते। सब की नजर में वह राम-लखन की जोड़ी बड़ी प्यारी थी। वे घर पर साथ खाना खाते, साथ खेलते, साथ देशभक्ति के तराने गाते और अंत में दोनों साथ-साथ फाँसी पर भी चढ़ गये। एक बार अश्फाक उल्ला के पेट में भीषण दर्द हुआ, वे बेहोश हो गये, वे राम-राम चिल्लाने लगे। लोगों ने कहा— 'अल्लाह-अल्लाह बोलो।' किन्तु वे राम-राम ही चिल्लाते रहे। जब रामप्रसाद बिस्मिल पहुँचे तो वे उठकर उनके गले से लिपट गये और कहा—'अब मेरा राम आ गया है।' इस दृश्य को देखकर लोगों को रामायण में वर्णित लक्ष्मण की बेहोशी के बाद राम से मिलने की बात याद हो आई। यह हमारी संस्कृति हमारी नस-नस में है। इसने सब के दिलों को जोड़ा है। अश्फाक और बिस्मिल के दिलों को एक बना दिया है, पूरे देश को एक बना दिया है। क्या किसी सैक्यूलर

कानून या साइंस के सिद्धान्त से इन्सानों का दिल जोड़ा जा सकता है। पवित्र कुरान में लिखा है—'अल्लाह ने सब के दिल एक कर दिए हैं। सब के दिलों के भीतर मुहब्बत भर दी है। तुम सारी दुनिया की दौलत खर्च कर देते तो भी सबके दिलों को एक न कर पाते, लेकिन अल्लाह ने सब में मुहब्बत भर दी। बेशक अल्लाह सर्व-समर्थ है, सर्वज्ञ है।'

अन्त में लाला लाजपत की अमर वाणी हम स्मरण रखें—

मेरा मजहब हक परस्ती,
मेरी मिल्लत कौम परस्ती,
मेरी इबादत खल्क परस्ती,
मेरी अदालत मेरा अन्तःकरण है।
मेरी जायदाद मेरी कलम है।
मेरा मन्दिर मेरा दिल है।
और मेरी उमंगें सदा जवान हैं।

। विद्या धर्मेण शोभते ।

विद्या धर्म से शोभायमान होती है।

× × ×

दुनिया के महान् धर्मों का 40 वर्षों तक अध्ययन करने के दौरान मुझे इतना पूर्ण, इतना वैज्ञानिक, इतना दार्शनिक और इतना आध्यात्मिक दूसरा कोई धर्म नहीं मिला जितना वह धर्म जिसे हिन्दू धर्म के नाम से जाना जाता है। आप इसे जितना अधिक जानेंगे उतना ही अधिक प्यार करेंगे और जितना ही अधिक समझेंगे उतना ही इसका आदर करेंगे।

—ब्रिटिश आयरिश महिला, डा. एनी बीसेंट

स्त्रीत्व, मातृत्व

विश्व-वाङ्मय का पावनतम नाम 'माता' ही है तथा मानवीय संबंधों में पावनतम संबंध भी माता का ही है। भगवान् मनु ने कहा है कि दस उपाध्याय मिलकर एक आचार्य के तुल्य होते हैं। सौ आचार्य मिलकर एक गुरु के तुल्य होते हैं। हजार गुरु मिलकर एक पिता के तुल्य होते हैं। दस हजार पिता मिलकर भी एक माता की तुलना नहीं कर सकते।

माता की इस अलौकिक महत्ता के कारण ही वेद में धरती पर जीवित देवों की पंक्ति में सर्वप्रथम 'मातृ देवो भव' का उपदेश दिया गया है। तदुपरांत ही 'पितृ देवो भव', 'आचार्य देवो भव' एवं 'अतिथि देवो भव' का उपदेश है। इसी मातृमहिमा के कारण हमने पूज्यतम वस्तुओं, व्यक्तियों, संबंधियों, प्रतीकों एवं तत्त्वों को माता का सम्मानजनक संबोधन (ओहदा) दिया, यथा-दुर्गा माता, पार्वती माता, लक्ष्मी माता, सरस्वती माता, गायत्री माता, गंगा माता, गीता माता, भारत माता, गौ माता, सती माता, शक्ति माता इत्यादि। स्वयं भगवान् के लिए भी हम गाते हैं, 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव।' भगवान् पहले स्थान पर माता ही है, पिता तो दूसरे स्थान पर है। श्री रामकृष्ण परमहंस कहते थे—'हे भगवान्! मैं किस नाम से आपको संबोधित करूँ? मानव के शब्दकोश में माँ से बढ़ कर पवित्र शब्द कोई दूसरा नहीं है, जिससे मैं आपको पुकारूँ। अतः मैं शिशु के समान आपको माँ-माँ कह कर ही पुकारता हूँ।'

बाला क्षुधार्ता जननीम् स्मरन्ति।

माता रूप में परम तत्त्व की उपासना का रहस्य यह भी है कि माँ वात्सल्य-मूर्ति है। वह अपने सुपुत्रों एवं सत्पुत्रों पर तो कृपा बरसाती ही है, किन्तु अपने कुपुत्रों के उद्धार हेतु उन्हें भी उस वात्सल्य से वंचित नहीं करती। माँ के कठोर अनुशासन में भी वात्सल्य छिपा रहता है। भगवान् शंकराचार्य ने ठीक ही कहा है—

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।

पुत्र कुपुत्र भले ही हो जाय, माता कभी कुमाता नहीं होती। स्वामी विवेकानंद ने लिखा है—'सारी दुनिया द्वारा ही क्यों स्वयं अपने द्वारा भी तिरस्कृत कपूत के भी

होंठ जब सूखने लगते हैं तो वज्र से वज्र हृदया माता के उर से भी वात्सल्य की अमृतधारा उसी प्रकार फूट निकलती है जैसे हिमालय को चीरकर गंगा नदी फूट निकलती है।' निष्काम कर्मयोग की मूर्ति—स्वामी रामतीर्थ ने अमरीका के भोगवादी लोगो को कहा—'आप कहते हैं कि भारत का निष्काम कर्मयोग पश्चिम के अत्याधुनिक अर्थपरायण विज्ञानवादी देशों में सफल नहीं हो सकता। आपके घर में ही एक यज्ञमय जीवन की मूर्ति, निष्काम कर्मयोग की साक्षात प्रतिमा विराजमान है, जिसके बिना न आप का अस्तित्व बचेगा, न आपके परिवार का, न समाज का और न देश का। वह है आपकी माता जो स्वयं कष्ट सह कर आपको गर्भ में धारण करती है, स्वयं भूखी रहकर आपका पालन-पोषण करती है, सब को खिलाने के पश्चात् स्वयं खाती है, स्वयं गीले में, मल-मूत्र में लेटकर बच्चे को सूखे में सुलाती है। अपने प्राणों को जोखिम में डालकर शिशुओं को रोग, संकट, क्लेश और दुर्घटना से बचाती है। सचमुच, जिस दिन माता स्वार्थी बन जायेगी, उस दिन सारी मानवता मर जायेगी। एक भी मानव माँ के त्याग के बिना बचने नहीं पावेगा। माँ निष्काम कर्मयोग की मूर्ति है।

जगज्-जननी—माता जगज्-जननी है। सारी मानवता माँ की कोख से ही जन्म लेती है। अतः माता सारे जगत् की जननी है। मोहवश कोई अपनी माँ और पराई माँ, अपनी संतान व पराई संतान का भेद करते हैं, किन्तु विवेक से देखें तो अनेकता में एकता के दर्शन होंगे तथा सारे जगत् की अनेक दिखने वाली माताएँ एक ही जगज्-जननी-जगदम्बा, भवानी का रूप प्रतीत होंगी।

नारीत्व ही सृष्टि का आधार—नारीत्व की वास्तविक महिमा मातृत्व के कारण ही है। मातृत्व में ही नारीत्व पूर्ण विकसित होता है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है—अगर धरती के सारे नर मर भी जावें तो भी सृष्टि चलती रहेगी, क्योंकि कुछ माताओं के गर्भ में बच्चे बीजरूप में अंकुरित हो रहे होंगे, उनसे पुनः सृष्टि आगे विकसित हो सकेगी। किन्तु यदि संसार की नारी जाति का अंत हो जाता है तो सारी सृष्टि का अंत आ ही जायेगा।' नर केवल बीजवपन करता है मानव जाति को अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित, सुफलित करने की शक्ति तो नारीत्व, किंवा मातृत्व में ही है।

पश्चिम ने नारी को भोग्या माना है, भारत ने पूज्या माना है। 'मातृवत परदारेषु।'—में दूसरों की स्त्रियों को, पर-नारी को माता के समान आदर देने का उपदेश भारत ने दिया है, किन्तु श्री रामकृष्ण परमहंस तो मातृत्व के इतने अनन्य उपासक हो गये थे कि स्वयं अपनी विधिवत् परिणीता धर्मपत्नी को भी माता भवानी के रूप में पूजने लगे। अन्य गृहस्थी भी चाहे अपनी पत्नी को सीधे माता कह कर नहीं संबोधन करते, किन्तु उसे अपनी प्रिया, प्रियतमा, पत्नी, वाइफ

(wife), डार्लिंग (darling) न पुकार कर अपने बच्चों की माँ (रामू की माँ, श्यामू की माँ आदि) कह कर संबोधन करते हैं। नारीत्व मातृत्व में ही पूजित-सम्मानित होता है।

माता दीक्षाता भवति—मानव जाति की प्रथम गुरु माता ही है। वही अपने शिशु को प्रथम संस्कार देती है। वही पवित्र जीवन और धर्म का प्रथम मंत्र देने वाली दीक्षाता है। मदालसा जैसी माताएँ अपने शिशुओं को लोरियाँ सुनाकर ब्रह्मज्ञानी बना देती है।

शुद्धोऽसि रेतात् न तेऽस्ति नाम्, कनं हि ते कल्पनया धुनैव।
पंचात्मकं देहमिदं ज त्तेऽस्ति, जैवास्य ते रोदिषि कस्य हेतोः।।

'हे तात्! तू तो शुद्धात्मा है, तेरा कोई नाम नहीं है। यह कल्पित नाम तो तुझे अभी मिला है। यह शरीर भी पंचभूतों का बना है। न यह तेरा है, न तू इस का है, फिर किसलिये रो रहा है?'

माता विदुला, माता कुन्ती, माता जीजाबाई, माता सुभद्रा आदि ने अपने बच्चों को जीवन की प्रथम लोरियों से ही तेजस्वी बना दिया था।

माँ की संकल्प शक्ति—माता के संकल्प में महान् शक्ति छुपी हुई है। फ्रांस की एक महिला ने घरों के द्वारों पर विदेशियों के आक्रमण की तलवारों के प्रहार-चिह्न देखकर सोचा-क्या मेरे देश में ऐसा वीर नहीं जनम ले सकता है, जो फ्रांस की शक्ति की धाक संसार में बिठा दे? उसी माँ के गर्भ से नेपोलियन बोनापार्ट का जन्म हुआ। जर्मनी के भिन्न-भिन्न राज्यों को बिखरा हुआ देखकर एक जर्मन नारी के मन में विचार आया कि क्या मेरे देश को एक करने वाला कोई वीर नहीं होगा? उसी के गर्भ से बिस्मार्क का जन्म हुआ जिसने जर्मन राष्ट्र के एकीकरण का चमत्कार कर दिखाया। जीजाबाई के संकल्प से ही शिवाजी का जन्म हुआ। सरोजिनी नायडू ने लिखा है—'The Hand that rocks the cradle shocks the whole world'. माता का जो हाथ पालने को झुलाता है वह सारी दुनिया को हिला सकता है। उस माता के संस्कारों से जो बालक विकसित होगा वह अपनी कर्तृत्व शक्ति से दुनिया को हिला देगा।

माता निर्माता भवति—माता मानव जाति का निर्माण करने वाली है। सबसे अधिक कोमल संस्कारक्षम शिशु मानस पर वह जिन आदर्शों एवं सिद्धान्तों की छाप डाल देती है वे जीवन भर नहीं मिट सकते। बालक माता से ही मातृभाषा सीखता है, वह दिन-रात माता के आचार-विचार, व्यवहार को देखकर अनेक शिक्षाएं प्राप्त करता है। माता कुन्ती ने भगवान् श्रीकृष्ण के माध्यम से अपने वीर, वनवासी, धर्मात्मा-पुत्रों को संदेश भेजा—'यदर्थं क्षत्राणी सूते स

कालोऽयंसमागतः', 'जिस उद्देश्य के लिए क्षत्रिय माता पुत्र उत्पन्न करती है वह काल आ गया है।' माता जीजाबाई ने शिवाजी को कहा—'यदि तू मेरा पुत्र है तो कल प्रातःकाल तक सिंहगढ़ का किला जीत कर उससे हरा झंडा हटा कर भगवा झंडा फहराता हुआ दिखाओ, अन्यथा तुम्हें पुत्र नहीं मानूंगी।' शिवाजी ने बड़ा जोखिम उठा कर भी नानाजी जैसे विश्वासी सैनिक का बलिदान देकर भी, रातों-रात माता के वचन को पूरा कर दिखाया।

माता परित्राता भवति—माता केवल बच्चों का निर्माण ही नहीं करती, वह उनका परित्राण भी करती है। माता चाहती है कि एक बार उसे माँ कहने के पश्चात् अगले जन्म में पुत्र को किसी अन्य नारी को माँ न कहना पड़े। बच्चा इसी मानव जन्म में मुक्त हो जाये। यदि वह छोटी योनियों में गिर गया तो किसी कूकरी-शूकरी को माँ बनाने से माता का पद लांछित हो जायेगा।

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई।।
नतरु बांझ भली बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी।।

मानस 2/74/1

'यो मा तारयति सैव माता।' जो मुझे तार दे, वही माता है।।

सतीत्व का तेजस्वी स्वरूप—मातृत्व बिना पवित्र सतीत्व के पूजित नहीं बन सकता। रामायण में भगवान् राम ने लक्ष्मण को उपदेश दिया है—

'पिता यस्य सदाचारी, माता यस्य पतिव्रता,
कांचन कामिनीम् दृष्टवा तस्य न चलति मनः।

'जिसके पिता सदाचारी हों तथा माता पतिव्रता हो उनकी संतान का मन कामिनी एवं कंचन को देखकर चलायमान नहीं होता। यदि माता सती ही न होगी तो बच्चों को क्या सत्य सिखायेगी। अतः मातृत्व सतीत्व के चारित्र्य पावित्र्य से ही मंडित होकर पूजनीय बनता है।

'अपनी संतानों के लिये धन की अपेक्षा सच्चरित्रता की विमल सम्पत्ति छोड़कर जाना ही माता-पिता का कर्तव्य है।'

—प्लेटो

नारी जाति की शिक्षा

मानव सृष्टिकर्ता की श्रेष्ठतम कृति है, किन्तु मानव में सृष्टिकर्ता ने जो योग्यताएं गुम्फित कर दी है, उन्हें तपस्या द्वारा विकसित करना, छिपी हुई श्रेष्ठताओं को प्रकट करना, यह मानव का साधना का कार्य है। मानव की इस साधना को शिक्षा का केन्द्र कहा जाता है। जिसके द्वारा मानव के अन्तर्निहित गुण सम्पदाएं प्रकाश में आती हैं। बिना शिक्षा के नर के अन्तर में सोये हुए नारायण सदा सोये ही रहते हैं। कभी हृदय मन्दिर में प्रकाशमान नहीं होते।

शिक्षा की परिभाषा

भारतीय मनीषियों ने कहा—'**सा विद्या या विमुक्तये।**' अर्थात् विद्या वही है जो मुक्त करे। वास्तव में मानव जब संसार में आता है तो अनेक प्रकार की पशु-प्रवृत्तियों से बंधा रहता है। आहार, निद्रा, भय, मैथुन, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि ऐसी प्रवृत्तियाँ है, जो मनुष्य तथा पशु में समान हैं। अतः विद्या वही है जो हमें इन पाप-पूर्ण, पशु-प्रवृत्तियों से मुक्त करे। नर को पशुत्व से उठाकर नरत्व तक तथा नरत्व से देवत्व तथा ब्रह्मत्व तक पहुँचाने वाली, ज्ञान साधना का नाम ही विद्या है। भगवान् ने गीता में कहा है, 'न हि ज्ञानेन, सदृशं पवित्रमिह विद्यते अर्थात् ज्ञान के समान पवित्र वस्तु सारे त्रिभुवन में अन्य कोई नहीं है। वेद ने स्वयं कहा है—सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्मम्। अर्थात् सत्य एवं अनन्त ज्ञान ही ब्रह्म है। इसका अर्थ है कि शिक्षा ज्ञानरूपी ब्रह्म की प्राप्ति के लिये ही ज्ञान साधना है। इसमें ज्ञान द्वारा ज्ञान की ही प्राप्ति है, साध्य और साधन दोनों ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ही है। अतः शिक्षा मानव जीवन की महानतम साधना एवं पावनतम तपस्या है।

प्रकृति-विकृति-संस्कृति

शिक्षा मानव का श्रेष्ठतम संस्कार है। यह नरपशु को संस्कारित करती हुई, उसकी पशु-प्रवृत्तियों का परिष्कार करती हुई उसे देवत्व एवं ब्रह्मत्व की ओर उठाती है।

यदि मानवरूपी नरपशु की शिक्षा द्वारा संस्कृति (परिष्कृति) पर ध्यान न दिया जाए तो स्वभावतः उसकी प्रवृत्ति विकृति की ओर उन्मुख होगी। गाय का ताजा

दूध अपनी प्राकृतिक अवस्था में अधिक देर तक नहीं ठहर सकता। उसे प्रकृति पर छोड़ देने से उसमें स्वभावतः विकृति आ जाएगी। दूध फट जाएगा, उसमें दुर्गंध आने लगेगी तथा कुछ दिन बाद उसमें कीड़े पड़ जायेंगे। अतः दूध को प्रकृति पर न छोड़कर उसकी संस्कृति की जाती है, उसे कुछ संस्कार देकर—गर्म कर, जावन लगा दही बनाकर, मंथन कर, नवनीत छाछ अलग कर मक्खन को ताप देकर उसका घृत बना लिया जाता है। यह घृत दूध का संस्कारित रूप है, इसमें विकार नहीं हो सकता। इसी प्रकार यदि नरपशु को बिना शिक्षा संस्कार के, उसको प्रकृति की दया पर छोड़ दिया जावे तो निश्चय ही उसमें विकृति आकर वह नरपशु, नरपिशाच बन जावेगा। जैसे कंस, हिरण्यकशिपु, नादिरशाह, तैमूर, चंगेज आदि हुए। शिक्षा नरपशु को नरपिशाच के विकार से बचाकर उसकी प्रवृत्तियों का परिमार्जन कर उसे मनुष्यत्व की गरिमा से विभूषित करती है, वह उसके दिव्य गुणों को जगाकर उसे देवत्व एवं नारायणत्व के महान् पद से मण्डित करती है। विश्वविजेता स्वामी विवेकानंद ने ठीक ही कहा है—शिक्षा केवल उस पूर्णत्व का प्रकटीकरण मात्र है जो तत्त्वतः पहले से ही मानव के भीतर निहित है।

राष्ट्रीय नवोत्थान में नारी शिक्षा का महत्त्व

भारतीय संस्कृति ने नारी शिक्षा को इतना महत्त्व दिया है कि नारी को माता का स्थान दिया तथा माता को मानवता का प्रथम गुरु माना। वास्तव में समूची मानव-जाति किसी माता के वात्सल्य रूपी अमृत को पीकर ही जीवित होती है, किसी माता के प्यार-दुलार में ही उसे प्रथम शिक्षा मंत्र मिलता है तथा किसी माता की लोरियों से ही इस अनन्त ज्ञान के संसार में उसके ज्ञानचक्षु खुलते हैं। अतः यह स्वाभाविक ही है कि एक समूची मानव-जाति को प्रथम शिक्षा मंत्र देने वाली नारी जाति स्वयं सुशिक्षित हो, विधिवत् संस्कारित हो। पुरुष के शिक्षित होने से केवल एक व्यक्ति ही शिक्षित होता है। नारी प्रथम गुरु होने के कारण मानव जाति को शैशव में जो प्रथम संस्कार देगी, उसकी अमिट छाप मानवता के अन्तःकरण पर सदा रहेगी तथा इस प्रकार सुशिक्षित-संस्कारित नारी समूची मानव जाति को कल्याण के मंगलमय-पथ पर चला सकने में समर्थ होगी।

इतिहास के यशोमन्दिर में नारी का स्थान

भारत के इतिहास निर्माण में भी नारियों ने बड़े-बड़े महामनीषियों को अपने ज्ञान के प्रकाश से विस्मित कर दिया। महर्षि जनक के दरबार में जहाँ दार्शनिकों का महासम्मेलन जुटा हुआ था, महान तत्त्वद्रष्टा महर्षि याज्ञवल्क्य जब गृहस्थी से उपराम हो अपनी सम्पत्ति दोनों पत्नियों को देकर वन में जाने लगे तो धर्मपरायण धर्मपत्नी मैत्रेयी ने कहा—इस सब सम्पत्ति को पाकर यदि मैं अमरत्व नहीं पा सकती तो व्यर्थ है। अतः अमरत्व पाने के लिये मैं भी साधना ही करूँगी। वेदकाल में

ब्रह्मवादिनी लोपामुद्रा अनेक वेद मंत्रों की द्रष्टा हुई। महामाता विदुला ने युद्ध भूमि से विमुख हुए अपने क्षत्रिय पुत्र को पुनः क्षात्रधर्म का उपदेश देकर विजयी होने का गौरव दिलाया। वीर माता कुन्ती ने अपने वीर पुत्रों (पाण्डवों) के लिए संदेश भेजा। यदर्थं क्षत्राणी सूते स कालोऽयंसमागतः' अर्थात् जिस कार्य के लिये क्षत्रिय माताएं पुत्र पैदा करती हैं वह काल अब आ गया है। मदालसा की एक लोरी

शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि निरजनोऽसि,
संसार माया परिवर्जितोऽसि।

के द्वारा उसके पुत्र ब्रह्मज्ञानी बन गये थे। अनुसूया ने स्वयं जनकनन्दिनी सीता को पातिव्रत्य धर्म का उपदेश दिया तथा अपने पातिव्रत्य के प्रताप से स्वयं ब्रह्मा, विष्णु और महेश को शिशुरूप में वात्सल्यमयी लोरियाँ सुनाई।

महान् गणितज्ञ भास्कराचार्य की सुपुत्री लीलावती संसार में सर्वप्रथम अंकगणित का ग्रंथ लिखने के कारण अमर हो गई। सम्राट अशोक की पुत्री संघमित्रा इतनी विदुषी थी कि लंका में भारतीय संस्कृति की विजय-वैजयन्ती फहराने के लिये गई। महाकवि कालिदास के विद्वान् बनने से पूर्व ही उनकी धर्मपत्नी विद्योत्तमा अलौकिक विदुषी थी, जिन्होंने कालिदास जैसे जड़मूर्ख को अपनी विद्वत्ता की ठोकर मारकर उन्हें ज्ञान के संसार में जगा दिया। सम्राट हर्ष की बहिन राजश्री, महापण्डित मण्डन मिश्र की भार्या उभय भारती आदि भारत की बड़ी श्रेष्ठ, संस्कारित देवियाँ थी। रानी पद्मिनी, गढ़ मण्डल की देवी भवानी, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, शिवाजी की जननी जीजाबाई, सरोजिनी नायडू, माँ शारदा, श्री श्री माँ आनन्दमयी आदि देवियों के कारण भारत का मुख विश्व भर में उज्ज्वल हुआ। आचार्य मिश्र की विदुषी पत्नी भामती जिसके नाम पर वेदान्त का नाम भामती भाष्य है, यम को अपनी विद्वत्ता एवं तर्कशक्ति से जीतने वाली सावित्री, कविराय गिरधर की कवयित्री पत्नी जिसकी कुण्डलियों में गर्भित नीतिधर्म कोटि-कोटि लोगों का पथ प्रदर्शक बना तथा आधुनिक काल में रहस्यवाद की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री महादेवी वर्मा भारतीय महिलाओं के लिये आदर्श रूप है। यह देवियों की श्रेष्ठ शिक्षा और संस्कार का प्रताप है।

आधुनिक शिक्षा पद्धति में परिष्कार की आवश्यकता

शिक्षा द्वारा भारत की आत्मा का दर्शन : आधुनिक भारतीय शिक्षा का कोई सांस्कृतिक अधिष्ठान नहीं है। दुर्भाग्य से ब्रिटिश गुलामी के काल से जो विदेशी शिक्षा पद्धति भारतीय जनमानस पर लादी गई उसकी गुलामी से भारत अभी तक मुक्त नहीं हुआ है। अतः भारत के युवक एवं युवती वर्ग को विदेशी विचारों एवं विदेशी माध्यम वाली शिक्षा देकर यूरोप का मानसिक दास बनाया जा रहा है।

भारतीय शिक्षा भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम आदर्शों पर अधिष्ठित होनी चाहिए। भारत में शिक्षा पाने वाले भारतीय शिक्षार्थियों को भारत की आत्मा का साक्षात्कार होना चाहिए। अन्यथा उनको मिलने वाली शिक्षा व्यर्थ है। विशेष रूप से नारी शिक्षा के लिये यह परमावश्यक है कि देवियों को ऐसी शिक्षा दी जाए जिससे उन्हें अपनी संस्कृति भगवती का साक्षात्कार हो जाये तथा वे संस्कृति के पावनतम आदर्शों की सुधा का आकण्ठ पान कर के भारतीय संस्कृति की साकार देवी बन जावें। इस प्रकार की सुशिक्षा द्वारा संस्कारित नारी ही देश के सांस्कृतिक पुनर्निर्माण का सजीव सूत्र होगी।

इतिहास दर्शन द्वारा इतिहास निर्माण की प्रेरणा

आधुनिक शिक्षा में विशेष रूप से नारी शिक्षा में भारत के सच्चे इतिहास को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाना चाहिये। उस इतिहास में देवियों का क्या योगदान रहा इस पर विशेष बल दिया जाए? लड़के तथा लड़कियों दोनों को एक समान सिकन्दर के हमले से लेकर अंग्रेजों के विदेशी राज्यों तक के आक्रमणों तथा युद्धों का लम्बा किस्सा सुनाने से किसी बालक एवं बालिका का राष्ट्रीय स्वाभिमान नहीं जागता, इस देश के इतिहास के प्रति असीम प्रेम नहीं उमड़ता तथा पढ़ने वाले छात्र-छात्रा को इतिहास के पावन यशोमन्दिर में अपना-अपना इष्टदेव स्वतः नहीं मिल जाता, जिसका आदर्श उनकी आंखों में सदा झूलता रहे तथा जिसकी पूजा वे जीवन भर अपने कर्मों के फूलों से कर सकें। इतिहास का पाठ यदि हमारे छात्र-छात्राओं में इतिहास निर्माता बनने की उमंग नहीं पैदा कर सकता तो वह केवल तोता-मैना के काल्पनिक किस्से के समान बिल्कुल निरर्थक है।

नारी के गुण एवं स्वभाव के अनुकूल विषय

नारी शिक्षा के लिए विषयों के चयन में भी बड़ी सावधानी बरतने की आवश्यकता है। स्कूल, कॉलेजों में जो विषय लड़कों को पढ़ाये जाते हैं वही लड़कियों को पढ़ाया जाना अन्यायपूर्ण है।

स्त्री तथा पुरुष की प्रकृति में कुछ मौलिक अन्तर है—

1. बालकों का शरीर बलिष्ठ एवं कठोर होता है। वे शारीरिक श्रम अधिक कर सकते हैं। बालकों में बल अधिक होते हुए भी सहनशीलता कम होती है।	बालिकाओं का शरीर सुललित एवं कोमल होता है। उनकी ललित कलाओं एवं गृहकार्य में रूचि होती है। बालिकाओं में सहनशीलता एवं कार्य तत्परता अपेक्षाकृत अधिक होती है।
2. बालक की रुचियाँ बाह्य क्षेत्र में अधिक होती है।	बालिकाओं की रुचियाँ अधिकांशतः गृह-केन्द्रित होती है।

3. बालक के लिये संघर्ष ही जीवन है। बालकों की रुचियाँ गणित एवं विज्ञान जैसे कठोर विषयों में अधिक होती है।	बालिकाएं साधना को जीवन का सार मानती है। बालिकाओं की रुचियाँ साहित्य, काव्य, संगीत, चित्रकला आदि ललित कलाओं में अधिक होती है।
4. बालक अपने बड़े पुट्ठों से काम अधिक कर सकता है अतः मशीनों का काम, प्राविधिक शिक्षा तथा भुजाओं का परिश्रम पसन्द करता है।	बालिका छोटे पुटठों का काम अधिक अच्छा कर सकती है इसलिये वह कसीदाकारी के काम, बुनना, सितार बजाना, चित्रकला, अंगुलियों की कोमल एवं लचकीली गति से होने वाले काम बालक की अपेक्षा अधिक अच्छा कर सकती है।
5. बालक बहिर्मुखी होने से सामाजिक क्रान्ति, राजनीति, व्यवसाय तथा तज्जनित आन्दोलन, अशान्ति पसन्द करता है।	बालिका अन्तर्मुखी होने से शान्त, एकान्तप्रिय, निर्माणशील, धर्मपरायण मानव के विकास में, प्रयत्नशील तथा संस्कृति संरक्षण में तत्पर होती है।
6. युवक अपनी काम वासनाओं के प्रदर्शनों पर काव्य, उपन्यास लिख सकता है। वह अपनी वासना के गीत गाता फिरता है।	नारी लज्जा रूपी भूषण से विभूषित है। भारतीय नारी शरीर प्रदर्शन को नीचता निर्लज्जता मानती है।

उक्त तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि बालक को जो विषय— प्रेम, काव्य, विज्ञान, राजनीति, गणित आदि पढ़ाये जाते हैं, वे बालिकाओं पर भी थोपना नारी शिक्षा के साथ बड़ा भारी अन्याय होगा।

पुरुष पतंग के समान आकाश में स्वच्छन्द उड़ना चाहता है, नारी डोरी के समान उसे मर्यादा के तन्तु से बांधे रहती है। पुरुष विश्वव्यापक होने की चाह में कहीं विश्रृंखलित एवं विखण्डित न हो जाये इस हेतु नारी गृह केन्द्रित रह कर उसकी स्वच्छन्दता पर अंकुश रखती है। सृष्टि की रचना में बाह्य तथा आंतर दोनों शक्तियों की आवश्यकता है। रथ के दोनों पहिये समान रूप से सुदृढ़ सुनिर्मित रहें तभी यात्रा मंगलमय होगी।

सहशिक्षा

पाश्चात्य शिक्षा का सबसे बड़ा पाप जो आज भारत को सर्वनाश की ओर ले जा रहा है, वह है—युवक एवं युवती को एक साथ एक कक्षा में बैठ कर, एक ही

विषय (जैसे कीट्स का बायरन का, नग्न शृंगार काव्य) पढ़ाना। भारत में विद्यार्थी का एक ही नाम सर्व प्रसिद्ध था—ब्रह्मचारी। ज्ञान रूपी ब्रह्म की साधना करने वाला, ब्रह्म में ही विचरण करने वाला ब्रह्मचारी ही सच्चा विद्यार्थी हो सकता है। अतः शिक्षा के काल में किसी युवती के साथ बैठकर (सहशिक्षा द्वारा) ज्ञान साधना करना, कितना हानिप्रद हो सकता है, यह स्पष्ट ही है। पश्चिम इस पाप के फल को भोग रहा है। पश्चिम के अंधानुकरण से भारत का तो सर्वनाश ही हो जायेगा।

शिक्षा का माध्यम

भारतीय नारी के लिए शिक्षा का माध्यम अनिवार्य रूप से भारतीय भाषा ही होना चाहिये। नारी पर ही यह उत्तरदायित्व है कि माँ बनकर वह मानव को जिस भाषा में लोरियाँ सुनावें वही उस मानव की मातृभाषा बन जावे। अतः यह नितान्त आवश्यक है कि बालिकाओं को प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में ही दी जावे, ताकि वे भी माता बनकर उसी मातृभाषा के माध्यम से मानव-जाति को संस्कारित कर सके। आज छोटे-छोटे बालक-बालिकाओं को विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा देने का एक अत्यन्त दूषित एवं घातक प्रचलन दिखाई देता है। इससे बालक-बालिका को भारतीय संस्कार से वंचित होकर विदेशी भाषा के शब्दों के अत्याचार का शिकार बनना पड़ता है। प्रत्येक भाषा के साथ उस जाति के संस्कार तथा मनोभाव अनिवार्य रूप से जुड़े रहते हैं। अतः विदेशी भाषा के पठन-पाठन से भारतीय बालक-बालिकाओं का हृदय एवं मस्तिष्क विदेशी बन जाते हैं। भारतीय बालिकाओं को मातृभाषा, हिन्दी एवं संस्कृत का भी व्यवहार योग्य ज्ञान होना चाहिए ताकि वे अपने भारतीय साहित्य के रत्नों को स्वयं पहचान सकें तथा भावी पीढ़ियों की झोलियाँ भी उन रत्नों से भर सकें।

पुराणकथाओं का चमत्कारी प्रभाव

भारतीय जनमानस सदा रामायण, महाभारत आदि पुराणकथाओं से उर्वर रहा है। भारतीय माताएं अपने शिशुओं को राम, कृष्ण, भीम, अर्जुन, हरिश्चन्द्र, दधीचि, श्रवण, ध्रुव, प्रह्लाद की गाथाएं लोरियों के रूप में सुना-सुनाकर इतिहास निर्माण का कार्य करती रही हैं। अतः भारतीय बालिकाओं के हृदय को पुराणगाथाओं की सुधा से परिपूरित करना परम महत्त्वपूर्ण है। इसी से जाति का भविष्य सुरक्षित होगा।

बालिकाओं को योग्य शारीरिक शिक्षा

बालिकाओं को योग्य शारीरिक शिक्षा दी जानी चाहिये ताकि आवश्यकता पड़ने पर वे आत्मरक्षा के साथ-साथ देश व समाज की रक्षा भी कर सकें।

भारतीय बालाएं ज्ञान-साधना के क्षेत्र में विश्व के किसी अन्य राष्ट्र की देवियों से पीछे न रहे, वे भारतीय संस्कृति की जीवन्त प्रतिमा बनकर राष्ट्र की भावी पीढ़ियों को संस्कृति सुधा का पान करा सके।

सच्ची शिक्षा वह है जो मानव को तुच्छता से, पशुता से, जड़ता से, स्वार्थ से और कमीनेपन से मुक्त कर सके। जो व्यक्ति आजकल की परिभाषा में शिक्षित होकर भी स्वार्थ, पशुता और कमीनेपन से मुक्त नहीं हो सकता वह सच्चे अर्थ में शिक्षित नहीं है। संस्कृति विहीन शिक्षा तो मात्र कुशिक्षा ही है।

—प्रो. हरवंशलाल ओबराय

पर भारत में अंग्रेजों या ईसाई मिशनरियों द्वारा स्थापित शिक्षा की विडम्बना गांधीजी एवं स्वामी विवेकानन्दजी के शब्दों में देखें—

जब वे (मिशनरीज) हमारे बालकों को शिक्षित करते हैं तब वे पूर्णतया उनके आत्मविश्वास को ही नष्ट नहीं करते बल्कि सभी प्रकार के आत्म सम्मान को भी नष्ट करते हैं।

—गांधीजी

जब बालक विद्यालय जाना प्रारम्भ करता है, तब वह प्रथम पाठ पढ़ता है कि उसके पिता मूर्ख है, दूसरा उसके दादा पागल है, तीसरा उसके सभी गुरु पाखण्डी हैं चौथा उसकी सभी अध्यात्मिक पुस्तकें झूठी हैं। और जब वह 16 वर्ष का होता है तब वह नकारात्मक सोच लिये जीवनहीन तथा आधारहीन व्यक्तित्व का स्वामी बनता है।

—स्वामी विवेकानन्द

पश्चिम सभ्यता की प्याली है और भारत संस्कृति का पालना

संस्कृति जीवन के आदर्शों का विकास है जबकि सभ्यता जीवन के साधनों का विकास है। बाहर की खोजों द्वारा पश्चिम ने जीवन को अधिक सुविधाजनक और साहसी बनाया है। भारत ने आन्तरिक परिष्कार के द्वारा मानव को अधिक श्रेष्ठ, पवित्र एवं महान् बनाने में अधिक योग्यता दिखाई है।

भारतीय संस्कृति के प्रतीक भगवान् बुद्ध हैं जो त्याग और आत्म-विजय के आदर्श हैं। इसकी तुलना में पश्चिम के गौरव का प्रतीक यूनानी राजा युलिसिस है जो द्वीप जीतने के अभियान में लड़ते-लड़ते मर गया। भारत में अशोक इसलिये महान् हुआ कि उसने राज्य सत्ता त्याग दी और भिक्षु बन गया। किन्तु पश्चिम में सिकन्दर, सीजर और नेपोलियन को इसके लिए महान् माना गया क्योंकि वे सत्ता और वैभव के भूखे थे। भारत की महानता दान में है और पश्चिम की बहादुरी लूट-खसोट में। विश्व शान्ति की समस्या पर प्रकाश डालते हुए प्रो. ओबराय ने कहा, 'बिना मन की शान्ति (योग साधना) और घर की शान्ति (पवित्र गृहस्थ धर्म) के विश्व शान्ति असम्भव है। पश्चिम में भी कुछ गुण है। परिश्रमशीलता, साहसिकता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और नागरिक मूल्य जो भारतीय को अवश्य सीखने चाहिये। परन्तु सच्ची मानव संस्कृति के लिये नैतिक और आध्यात्मिक तत्त्व भारत द्वारा ही दिये जा सकते हैं जो संस्कृति के क्षेत्र में परम्परा से जगद्गुरु रहा है।

भारत परलोकवादी है और पश्चिम इहलोकवादी। भारतीय संस्कृति के चार आदर्शों में से भारत ने धर्म और मोक्ष का अधिक चिन्तन किया है और पश्चिम ने अर्थ और काम का अधिक विचार किया है किन्तु धर्म के बिना पश्चिम में अर्थ अनर्थ का, काम—भोग एवं रोग—का कारण बन रहा है।

संस्कृत और संस्कृति परस्पर जुड़े हुए हैं

संस्कृत एवं संस्कृति, दोनों का परस्पर अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। संस्कृति राष्ट्र की आत्मा है और संस्कृत उस आत्मा को प्रकाशित करने वाली राष्ट्र की बोली। भारतीय संस्कृति के सभी महान् एवं ऐतिहासिक अभिलेख संस्कृत तथा संस्कृत मूल वाली भारतीय भाषाओं में सुरक्षित हैं। अतः हमारी संस्कृति, संस्कृत में ही बोलती है, संस्कृत में ही सुरक्षित है, संस्कृत के माध्यम से ही युगानुयुग परम्परा द्वारा हम तक पहुँची है। संस्कृति जीवन के महानतम आदर्शों की संस्कार परम्परा है किन्तु यदि कोई पूछे कि वे आदर्श क्या हैं? तो बिना भाषा के माध्यम के उन आदर्शों का निर्वचन कोई नहीं कर सकता। भाव भाषा के माध्यम से यात्रा करते हैं और भारतीय संस्कृति देवभाषा संस्कृत के दिव्य रथ में बैठकर ही देशों-कालों एवं युगों की यात्रा करती हुई अभी तक अमर बनी है।

शोपेनहावर ने भविष्यवाणी की, 'मैं विश्वास करता हूँ, जो पन्द्रहवीं शती में ग्रीक साहित्य ने पुनर्जागरण किया था उससे कम गहरा प्रभेदकारी प्रभाव संस्कृत साहित्य का न होगा। शोपेनहावर की भविष्यवाणी सत्य होती दिखाई दे रही है।

'संस्कृत भाषा की वाक्य संरचना अद्‌भुत है। ग्रीक भाषा से ज्यादा उत्कृष्ट, लैटिन भाषा से ज्यादा समृद्ध तथा दोनों की तुलना में अत्यन्त परिष्कृत है।'

—सर विलियम जोन्स

संगणक (कम्प्यूटर) में संस्कृत भाषा में निरूपित सूत्र के द्वारा सर्वाधिक संदेशों को प्रेषित किया जा सकता है तथा यह श्रेष्ठता विश्व की किसी भी भाषा में नहीं है।

नासा ने संस्कृत की उत्कृष्टता को इन शब्दों में व्यक्त किया है 'संस्कृत इस ग्रह की एकमात्र शुद्ध भाषा है।'

भारतीय राष्ट्र एवं संस्कृति पर हिन्दुत्व की अमिट छाप

भारत एक धर्मप्राण देश है। यहाँ स्वदेश एवं स्वधर्म एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। भारत के धर्मग्रन्थों में वेद से लेकर विवेकानंद साहित्य तक सर्वत्र देशभक्ति, देवभक्ति के साथ-साथ चलती है। अतः सच्चा देशभक्त न कभी स्वदेश से, स्वधर्म से द्रोह करता है न परधर्म (अन्य पंथों) की निन्दा ही करता है। अपने स्वदेश से विद्रोह की तो वह कल्पना भी नहीं कर सकता। इसी प्रकार सच्चा धर्मात्मा न कभी स्वदेश से द्रोह कर सकता है न अन्य देशों से अकारण घृणा करता है तथा न किसी प्रतिष्ठित धर्म या सम्प्रदाय का तिरस्कार करता है। भारत में देशभक्ति ही सर्वोच्च धर्म भी है तथा भारत भक्ति ही भगवान् की भक्ति भी सिद्ध होती है। चारों धामों की तीर्थयात्रा के धार्मिक कृत्य से राष्ट्रीय एकता का जो चमत्कार हिन्दू धर्म ने करके दिखाया है वह विश्व इतिहास में अद्वितीय है। इस स्वदेश एवं स्वधर्म की एकता का मूल कारण यही है कि हमारे देश ने सदा विश्वमंगल की साधना की है तथा हमारा धर्म विश्वव्यापी नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित सच्चा विश्वधर्म ही रहा है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' हमारा राष्ट्रीय आदर्श तथा 'सर्वधर्म समभाव' हमारा धार्मिक आदर्श रहा है।

इसकी तुलना में कुछ देश दूसरे देशों को कुचल कर पराधीन बनाने में अपनी शान दिखाने वाले होते हैं तथा कुछ धर्म-सम्प्रदाय दूसरे धर्मों के प्रति घृणा का विष फैला कर विद्वेष की अग्नि फूंकने में ही अपने पंथ की महानता मानते हैं। वे विश्व शान्ति के बैरी तथा मानवता के घोर शत्रु सिद्ध हुए हैं।

जामा मस्जिद, दिल्ली के इमाम सैय्यद अब्दुल्ला बुखारी ने वीक एण्ड रिव्यू (Week and Review) नई दिल्ली के 7 जून 1980 के अंक में प्रकाशित एक भेंटवार्त्ता में अति उत्तेजित वक्तव्य दिया और यह हिन्दुओं की अतिशय उदारता की आत्मघाती अतिसीमा ही समझनी चाहिए कि देश की किसी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिका में अब्दुल्ला बुखारी के अपराधपूर्ण, अपमानकारी कथन का उत्तर देते हुए बुद्धि सम्मत, तर्कपूर्ण उद्बोधक लेख नहीं छपे। इसकी तुलना में मुस्लिम समाज

इतना अधिक जागरूक एवं पूर्वाग्रह ग्रस्त है कि इस्लाम के हित अथवा इतिहास पर कहीं आक्षेप या आलोचना हो तो वे संसार भर में एक अवांछनीय तूफान खड़ा कर देते हैं। यरुशलम में कोई ऑस्ट्रेलियावासी अल-अक्सा मस्जिद को जलाने का प्रयास करे तो भारत के मुसलमान अपना सारा गुस्सा हिन्दुओं पर निकालना प्रारम्भ करते हैं। अहमदाबाद के जगन्नाथ मंदिर पर धावा बोल देते हैं, संध्या को गोचर भूमि से लौटने वाली गायों को काट देते हैं और हिन्दुओं की बस्तियों में आग लगा देते हैं। इसी प्रकार हजरत मुहम्मद साहब के विषय में अमेरिका में छपी हुई पुस्तक का समाचार 'स्टेट्समैन कलकत्ता' में छपता है तो वे धर्मान्ध लोग स्टेट्समैन कलकत्ता के कार्यालय को आग लगा देते हैं। चौदहवीं सदी पूरी होने वाले दिन अगर कुछ बन्दूकधारी मुसलमान ही काबा की मस्जिद की मीनारों में ऊपर चढ़कर नीचे आंगन में नमाज पढ़ने वाले हज यात्रियों पर गोली चलाते हैं तो उसका गुस्सा कोलकात्ता और हैदराबाद के हिन्दुओं पर हिंसक आक्रमण, गोलीबारी और अग्निकांड के रूप में निकालना कहाँ तक तर्कसंगत है?

भारत में हिन्दुओं की हत्या, दूकानों, ट्राम-गाड़ियों का जलाना काबा की मस्जिद की मुक्ति और इस्लाम की रक्षा में कैसे सहायक हो सकता है और कुरान के शरअी कानून के अनुसार यह कहाँ तक न्यायोचित है?

रोमां रोलां जो प्रथम जीवन में मार्क्सवादी था, मार्क्सवाद से मोह भंग होने पर ईसाइयत की ओर झुका, वहाँ भी अपने जीवन की उलझनों का समाधान न पाकर भारत की ओर झुका और वहाँ समाधान पाकर कहता है—मैंने यूरोप और एशिया के सभी धर्मों का अध्ययन किया है, परन्तु मुझे उन सबमें हिन्दू धर्म ही सर्वश्रेष्ठ दिखाई देता है...मेरा विश्वास है कि इसके सामने एक दिन समस्त जगत् को सिर झुकाना पड़ेगा।

अन्यत्र कहता है—अगर संसार की सतह पर कोई ऐसा देश है, जहाँ जीवित लोगों के सभी स्वप्नों को, उस प्राचीन काल से स्थान मिला है जबसे मनुष्य ने अस्तित्व का स्वप्न आरम्भ किया, तो वह देश हिन्दुस्तान है।

वर्ण व्यवस्था

भारत की मृत्युञ्जय संस्कृति में भारतीय समाज को एक सुन्दर व्यवस्था में निबद्ध किया गया है ताकि व्यक्ति और समाज, दोनों का क्रमशः विकास होता जाय और मानव पुरुषार्थ चतुष्टय के जीवन मूल्य को प्राप्त कर सके। चातुर्वर्ण्य की रचना बड़े मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय आधार पर की गई थी। यह हमारी जाति व्यवस्था थी, जात-पांत का भेदभाव नहीं। व्यवस्था और भेदभाव में आकाश-पाताल का अन्तर है। जिस घर में व्यवस्था है वहाँ स्वर्ग का वास है और घर में भेदभाव होते ही घर नरक तुल्य बन जाता है।

दुर्भाग्य से आजकल चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को जात-पांत का भेदभाव कहकर इसकी निन्दा करना आजकल के अधकच्चरे लीडरों का धन्धा बन गया है। समाजवादी और कम्यूनिस्ट नेतागण भी पश्चिमी विचारधारा से प्रभावित होकर आये दिन हिन्दू समाज, वर्ण व्यवस्था, ब्राह्मणवाद आदि को जाने-अनजाने गाली सुनाते रहते हैं। कई हिन्दुत्वाभिमानी नेता भी जाति व्यवस्था की ऐसी असन्तुलित आलोचना कर बैठते हैं जिससे हिन्दुत्व को लाभ होने के स्थान पर हानि होती है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने कहा, 'वर्ण व्यवस्था जो कभी हिन्दू समाज की जीवन व्यवस्था थी, आज वह समाज की मरण व्यवस्था बन रही है।'

इस कथन में स्वामीजी का दुःख ध्वनित होता है कि आज दुर्भाग्य से हिन्दू-हिन्दू को अछूत मानकर घृणा करने लगा है जिसके फलस्वरूप चतुर्थ वर्ण के अभागे हिन्दू अपना स्वधर्म त्याग कर ईसाई और मुसलमान बन जाते हैं तथा इस प्रकार हिन्दू समाज का क्रमशः मरण होता जाता है। स्वामी दयानन्द प्रतिक्रिया में दूसरी अति सीमा पर भी पहुँच गये और उन्होंने हरिजनों का यज्ञोपवीत संस्कार कर वेद पढ़ने का विधान किया।

गांधीजी ने शूद्रों को हरिजन नाम देकर उनका मान बढ़ाया और स्वयं हरिजन कालोनी में रहकर और साबरमती में हरिजनोद्धार हेतु आश्रम बना कर उन्होंने सवर्णों और अन्त्यजों के बीच के भेद को मिटाने का भरपूर प्रयास किया किन्तु वर्ण व्यवस्था में उनकी श्रद्धा बनी रही। वे एक बार वर्धा में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के

एक शिविर में सब वर्णों के हिन्दुओं को साथ-साथ मिलकर कार्यक्रम करते हुए देखकर विस्मित हुए तथा संघ संस्थापक डा. हेडगेवार को कहा, 'जो कार्य मैं जीवनभर परिश्रम कर सफलतापूर्वक नहीं कर सका वह चमत्कार आप हिन्दू संगठन के माध्यम से कर सके हैं।' कई हिन्दू नेताओं (जैसे श्री सन्तराम बी.ए.) ने सब वर्णों के संगठन के स्थान पर जात-पाँत तोड़क मण्डल बनाया किन्तु वह सारे समाज से अलग-थलग एक पांचवीं जाति के समान एक छोटा खण्ड बना जो धीरे-धीरे समाप्त हो गया।

जो प्रगतिवादी नेता मंचों पर जातिवाद के विरुद्ध भयंकर विष वमन करते हैं वे स्वयं अपने आचरण में, लोक व्यवहार में, राजनीति में और चुनाव के प्रसंगों पर स्वयं जात-पांत को बड़े घृणित ढंग से बढ़ावा देते हैं और कुछ जातियों को दूसरी जातियों के विरुद्ध भड़का कर, एक पंथ को दूसरे पंथ के प्रति संशयालु बनाकर वे भयभीत एवं भ्रमित लोगों के मत बटोरकर अपना राजनीतिक उल्लू सीधा करते हैं। इस प्रकार भारत में जातिवाद एक ऐसा बेकार का पत्थर मान लिया गया है जिसको जल्दी से जल्दी फेंक देने का जनता को उपदेश दिया जाता है और चालाक लीडर उसी पत्थर पर अपने राजनीतिक शस्त्रों को घिसकर तेज करते हैं ताकि वे अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए समाज को काट सकें।

भगवान् ने गीता में कहा—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः . 4/13

हे अर्जुन! मैंने गुण कर्म के विभाग से चातुर्वर्ण्य की सृष्टि की है किन्तु चारों का कर्ता मैं स्वयं निर्लिप्त होने के कारण अकर्ता ही हूँ। गीता में भगवान् स्वयं चारों वर्णों का कर्तव्य निभाते हुए भी स्वयं निर्लिप्त ही रहते हैं। वे ब्राह्मण के समान अर्जुन को ब्रह्मज्ञान का उपदेश दे रहे हैं। एक क्षत्रिय के समान युद्ध संचालन भी करते हैं, वैश्य के समान गो-पालन करते हैं और शूद्र के समान सारथि बनते हैं, रथ-संचालन करते हैं, घोड़ों की मालिश करते हैं और यज्ञ में जूठी पत्तल उठाते हैं और इस पर भी चारों वर्णों के कर्मों से निर्लिप्त-निर्विकार और सबसे ऊपर रहते हैं। आदर्श वर्ण व्यवस्था गुण एवं कर्म के आधार पर होती है जन्म के आधार पर नहीं, किन्तु गुण एव कर्म भी जन्म से प्रभावित होते ही हैं अतः जन्म के आधार को भी टाला नहीं जा सकता। जिस प्रकार एक नाटक में परस्पर भाई-भाई के समान प्रिय सदस्यों को भिन्न-भिन्न पात्रों की भूमिका दी जाती है और भूमिका देते समय यह विचार किया जाता है कि ऋषि की भूमिका के लिए किस व्यक्ति की वाणी, शरीर और गुण सम्पदा अधिक उपयुक्त है। इसी प्रकार राजा के लिए कौन उपयुक्त है आदि-आदि। वे नाटक में अपना-अपना कर्तव्य बहुत सुन्दर रीति से निभाते हैं किन्तु परस्पर विरोधी भूमिका होने पर भी उनके मन में कोई भेदभाव नहीं होता।

समाज में चार वर्णों की परस्पर सहयोग भावना अनिवार्य है, शिक्षक, रक्षक, पोषक और सेवक। ब्राह्मण ज्ञाता है, क्षत्रिय त्राता है, वैश्य दाता है और शूद्र सहेता है। इन शास्त्री, शस्त्री, धनी और श्रमी के बिना आलिम, आमिल और ताजिर और मजदूर के बिना कोई समाज चल ही नहीं सकता।

वेद में चारों वर्णों की उत्पत्ति एक ही परम पुरुष से बतायी गई है।

ब्राहमणोऽस्य मुखमासीद्‌बाहू राजन्यः कृतः।
उरू तदस्य यद्‌वैश्यः पद्‌भ्यां शूद्रोअजायत।।

उसी परमपुरुष के मुख से ब्राह्मण की उत्पत्ति हुई, भुजाओं से क्षत्रिय, मध्य भाग से वैश्य तथा चरणों से शूद्र। इस प्रकार चारों वर्ण एक ब्रह्म के अभिन्न अङ्ग होने के कारण उनमें परस्पर संघर्ष, वैमनस्य, भेदभाव आदि का स्थान ही नहीं बचता। जिस व्यक्ति के मुख के आदेश को भुजायें न माने, जिसके उदर के अन्न से पूरे शरीर का पोषण न हो, जिसके पांव शरीर की सेवा करने के काम में हड़ताल कर दें उस शरीर का नाश अवश्यंभावी है। जहाँ चरण सेवा करते हैं, वहाँ मस्तिष्क उनकी भलाई का विचार करता है, हाथ निरंतर रक्षा के लिये तत्पर रहता है उदर अपने खाये हुए भोजन से उचित मात्रा में पांव को भी पोषण देता है और पांव तीनों वर्णों के सहयोग के बदले उनकी सेवा को प्रस्तुत रहता है, वहाँ शरीर स्वस्थ, सुन्दर एवं समाजोपयोगी बनता है। मानव के सुसंगठित शरीर के समान समाज का शरीर है जिसका कोई अंग अस्पृश्य, तिरस्करणीय, अनुपयोगी अथवा त्याज्य नहीं है। यह हमारी व्यवस्था गुण कर्म के आधार पर हो तो ही सर्वोत्तम है किन्तु बहुत से गुण परम्परा से वंश परम्परा के द्वारा भी पिता से पुत्र तथा पुत्र से पौत्र में संस्कार बीज के रूप में प्राप्त होते हैं। अतः जन्म परम्परा का भी महत्त्व कम नहीं है।

फिर यह भी देखना आवश्यक है किस वातावरण में संस्कारों में पल रहा है और उसके प्रयास किस दिशा में हैं?

इन तीनों आधारों के आधार पर ही वर्ण का निर्णय होता था और वर्ण व्यवस्था थी, वर्ण भेद नहीं। इस रूप में वर्ण व्यवस्था जब तक सम्यक् रूप में चलती रही तब तक जीवन व्यवस्था के रूप में थी। पर कालान्तर में वर्ण व्यवस्था वर्ण भेद में परिणत हो गया, ऊंच-नीच का भाव जुड़ गया और केवल जन्म ही आधार रह गया। केवल जन्म ही आधार रहने से विशेषाधिकार जैसी वस्तु बन जाती, गुण अर्जन का प्रयास न्यून हो जाता है, फलतः विकृत होकर आज मरण व्यवस्था के रूप में परिणत होती जा रही है।

50 देशों के हिन्दू आज भी गंगास्नान को तरसते हैं

जहाँ राजनीति तोड़ती है, संस्कृति जोड़ती है। पंथ, प्रदेश, भाषा, वर्ण, जाति, आश्रम, व्यवसाय, आर्थिक, सामाजिक स्तर सभी हमें बांटते हैं किन्तु केवल संस्कृति सुधा ही हमें जोड़ती एवं एकात्म बना देती है, जहाँ पश्चिम के राष्ट्र राजनीतिक इकाई पर अवलम्बित हैं, वहाँ भारत में राष्ट्र सांस्कृतिक ऐक्य का ही नाम है। 1947 में देश विभाजन के अवसर पर भी जबकि 80 प्रतिशत भारतीय भूखण्ड ब्रिटिश दासता से मुक्त हुआ और उसका 20 प्रतिशत पाकिस्तान में चला गया, तब भी शेष भारतीय भूखण्ड में 550 से अधिक देसी रियासतें थी। उससे पूर्व देश में हजारों राज्य भी रहे होंगे। किन्तु हजारों छोटे-छोटे राज्यों के उपरान्त सांस्कृतिक एकता के चमत्कार से सारा भारत कैलास से कन्याकुमारी तक एक ही रहा। सिद्ध है कि हमारी दिव्य संस्कृति ही हमारे मृत्युंजय राष्ट्र की आत्मा है।

जो संस्कृति अपने देश में समन्वय का स्वर्णिम सूत्र है, वही संस्कृति भारत के सांस्कृतिक दिग्विजय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री-सम्बन्धों की प्राणधारा है। यदि जापान का प्रधानमंत्री भारत की धूलि को मस्तक पर चढ़ाता है, यदि इण्डोनेशिया का राष्ट्रपति अपने देश में सर्वप्रथम अन्तर्राष्ट्रीय रामायण-सम्मेलन कराता है, यदि तिब्बत के दलाईलामा अपना राज्य व धन खोकर भी भारत के बौद्ध तीर्थों में शान्ति पाते हैं, यदि मारिशस के प्रधानमंत्री सर्वप्रथम 'विश्व हिन्दी सम्मेलन' अपने देश में आयोजित करते हैं, यदि सात हजार मील पूर्व का फिजी और बारह हजार मील पश्चिम का सूरीनाम 'रामचरितमानस', 'गीता' तथा 'हिन्दी भाषा' को राजभाषा का सम्मान देता है, यदि संसार के 85 देशों के हिन्दू आज भी कुंभ मेले पर गंगा-स्नान के लिए तरसते हैं तो यह सब सांस्कृतिक एकात्मता का ही चमत्कार है। इस पुनीत संस्कृति को खोकर भारत खण्ड-खण्ड हो जायेगा।

'भारते भातु भारती'

भारतवर्ष में भारतीयता प्रतिष्ठित हो।

स्वतन्त्रता के सांस्कृतिक आधार

सृष्टि के आदि-ग्रन्थ वेद ने गाया—'वयं जागृयाम पुरोहिताः।' (वाः संहिता 9/23) अर्थात् हम राष्ट्र हितैषी सदा राष्ट्र में जागते रहें। यह जागृति ही स्वतंत्रता का मूल्य है।

भगवान् मनु

मानवता के आदि पुरुष भगवान् मनु ने कहा है—'सर्वं परवशं दुःखं, सर्वं आत्मवशं सुखं'—अर्थात् सब परवशता ही दुःख है और सब आत्मवशता ही सुख है। यह सूत्र आध्यात्मिक एवं राष्ट्रीय दोनों दृष्टियों से एक महान् सत्य की उद्घोषणा करता है। यदि कोई व्यक्ति समाज अथवा राष्ट्र अथवा किसी अन्य के वश में जीता है तो उस परवशता से बड़ा कोई अन्य दुःख नहीं है। इसीलिये हर व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र स्वाधीनता के परम सुख के लिये साधना करता रहता है। आध्यात्मिक दृष्टि से जो व्यक्ति अपने सच्चे 'मैं' के स्वरूप को भूल कर शरीर और मन, इन्द्रियों के द्वारा जड़ प्रकृति के नश्वर विषय-भोगों का दास बना रहता है, वह भी जड़ वस्तुओं की परवशता के कारण गुलामी का दुःख भोगता है। इसीलिए विचारवान मुमुक्षुजन आत्मस्वराज्य, आत्मोपलब्धि, आत्म-साक्षात्कार अथवा मोक्ष के परम सुख के लिये साधना करते रहते हैं।

भगवान् राम और भगवान् कृष्ण भारत के परम्परा प्रतिष्ठित राष्ट्रपुरुष रहे हैं। जहाँ भगवान् राम ने हिमालय के तुषार-मंडित हिमशिखरों से ले कर कल्लोल-नृत्यकारी तरंगों के मध्य स्थित सुवर्णद्वीप लंका तक उत्तर एवं दक्षिण भारत को एक कर दिया, वहाँ भगवान् कृष्ण ने प्राग्-ज्योतिषपुर (गुवाहाटी) को नरकासुर की पराधीनता से मुक्त कर, मगध के जरासंध को भीम द्वारा मरवा कर, भारत के हृदय देश में कंस एवं दुःशासन का मर्दन कर, सिन्धुराज जयद्रथ का अर्जुन द्वारा ग्रीवोच्छेदन करवा कर पश्चिम के कालयवन आदि विदेशी आक्रान्ताओं के संभाव्य आक्रमणों को निर्मूल करने के हेतु पश्चिमी समुद्रतट पर द्वारिका जैसी सुदृढ़ राजधानी बसा कर भारत के पूर्व से लेकर पश्चिम तक को स्वाधीन एवं भयमुक्त कर भारत को सांस्कृतिक एकता के सूत्र में पिरो दिया।

भगवान् राम

भगवान् राम ने जहाँ उत्तरापथ और दक्षिणापथ को विंध्याचल के ऊपर के आर्यावर्त्त और विंध्याचल के नीचे वाले दंडकवन, वानर देश, गौडं देश एवं द्रविड़ देश को, आर्य एवं अनार्य सभी को एक सुदृढ़ राष्ट्रीय एकता से बांध कर एक चमत्कार किया, वहाँ उन्होंने राष्ट्र भक्ति, राष्ट्र मुक्ति एवं लोकतन्त्र तथा लोकमंगल की ऐसी आदर्श मर्यादायें स्थापित की कि आज तक हम रामराज्य के स्वप्न को पुनः साकार करने के लिए तरसते रहते हैं। लंका विजय के पश्चात् भगवान् राम को लक्ष्मण का लंका में ही बस कर राज्य चलाने के सुझाव के उत्तर में जो देश भक्ति का सूत्र दिया वह आज तक हमारी राष्ट्र भक्ति का महामंत्र बना हुआ है।

अपि स्वर्णमयी लंका, न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्म भूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी।।

अर्थात्

स्वर्णमयी लंका भी लक्ष्मण, तनिक न मुझको है भाती,
जननी जन्मभूमि तो मेरी, सौ स्वर्गों से भी ऊँची।

इसी राष्ट्रप्रेम के मंत्र से अभिमंत्रित हुए भारत के देशभक्त बालक आज तक गाते हैं—

स्वर्णमयी लंका न मिले माँ, अवधपुरी की धूल मिले।
सोने में कांटे चुभते हैं, मिट्टी में है फूल खिले।।

लंका-विजय के पश्चात् भगवान् राम ने राज्याभिषेक के प्रसंग पर प्रजाजनों को अत्यन्त उदार, लोकतन्त्र-निष्ठ वाणी में कहा—'जो अनीति कहु भाषौ भाई, तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।'

एक चक्रवर्ती सम्राट द्वारा सामान्य प्रजाजनों को खुले आम यह अधिकार देना कि यदि वह भूल से कभी अनीति का शब्द बोल दे अथवा अनीति पूर्ण कर्म करने लगे तो प्रजाजन निर्भय हो कर सम्राट को भी वर्जित कर दें, एक बहुत बड़ा लोकतान्त्रिक आदर्श है। इसकी तुलना में इन्दिरा गांधी के तानाशाही शासन का चित्र बड़ा विचित्र है।

जो अनीति कुछ भाषौ भाई। मत बरजहुँ, न तु करूं पिटाई।
जो पीड़ा में करे रुलाई। मीसा, डी. आई. आर. हूं लाई।

लोकरंजन के आदर्श के लिये राम कितना बड़ा त्याग करने को प्रस्तुत हैं, इसे महाकवि भवभूति ने अपनी अमर लेखनी के स्पर्श से एक राष्ट्रीय आदर्श बना दिया है।

स्नेहं दयां च सौख्यं च, यदि व जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य, मुंचतो नास्ति मे व्यथा।।

स्नेह, दया और सौख्य सभी कुछ, प्राणवल्लभा सीता भी।
लोकाराधन हेतु त्यागने में, मुझको न तनिक व्यथा।।

भगवान् श्री कृष्ण

भगवान् श्री कृष्ण, जिनका जन्माष्टमी पर्व स्वाधीनता पर्व की पूर्व संध्या को है, वे हमारे राष्ट्र के महानतम मुक्तिदाता राष्ट्रपुरुष होने के साथ-साथ सारी विश्व-मानवता के लिये आध्यात्मिक मुक्तिदाता भी हैं। उन्होंने अपने जीवनकाल में देश को आततायी शासन से मुक्त करने हेतु जीवनभर संघर्ष किया और धर्म की रक्षा के लिये महाभारत के विश्वयुद्ध का सफल संचालन किया। महारथी अर्जुन को राष्ट्रीय स्वाधीनता हेतु धर्मयुद्ध के लिये प्रेरित करते हुए वे कहते हैं—

हतो वा प्राप्यसि स्वर्गम्, जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मात् उत्तिष्ठ कौंतेय, युद्धाय कृत निश्चयः।। गीता 2/37

मर जाने पर स्वर्ग मिलेगा, जय होने पर भूतल राज।
इसीलिये तुम खड़े हो अर्जुन, निश्चय लड़ो धर्म के काज।।

एकादश अध्याय में अपना विराट् रूप दर्शन करवाने के पश्चात् भगवान् अर्जुन के निमित्त से पूरे राष्ट्र को राष्ट्रीय स्वाधीनता का मंत्र देते हुए आह्वान करते हैं—

तस्मात्-त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून्, भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।।11/33
अतः उठो वीर, यश लाभ कर लो,
शत्रु जीत, वैभव राज्य भोगो,
मेरे से मृत, पूर्व ही शत्रु सारे
निमित्त मात्रं बनो सव्यसाची।।

भगवान् बुद्ध ने स्वाधीनता का मंत्र दोहराते हुए गाया—

अत्ताहि अत्तनो नाथो, को हि नाथो परोसिया
अत्तना हि सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं।।
आत्मा ही आत्मा का स्वामी कौन पराया नाथ बने।
अपने आप को वश में करके दुर्लभ नाथ की प्राप्ति हो।

राष्ट्रीय स्वाधीनता की ज्योति को सदा जाज्वल्यमान रखने का आदर्श-सूत्र आचार्य चाणक्य ने दिया—

'न त्वेवार्यस्य दासभावः'

कौटिल्य का प्रसिद्ध उद्घोष था—'आर्य या अन्य सुसंस्कृत व्यक्ति कभी दासता में जीने के लिए जन्म नहीं लेता।

इस राष्ट्र निर्माता महापुरुष ने अपनी विचक्षण बुद्धि एवं अलौकिक राष्ट्रभक्ति द्वारा अनेकों छोटे-छोटे दुर्बल राज्यों में बँटे हुए देश को पुनः एक शक्तिशाली, देशव्यापी साम्राज्य के रूप में संगठित किया और विश्व विजय की लालसा से आधी दुनिया जीतकर भारत पर आक्रमण करने वाले यूनानी आक्रान्ताओं को सदा के लिये कुचल डाला। रणनीति एवं कूटनीति दोनों पर समान अधिकार रखने वाला, आसेतुहिमाचल जितने विशाल एवं शक्तिशाली साम्राज्य का संस्थापक व प्रधानमंत्री स्वयं पाटलिपुत्र में गंगा के तीर पर एक फूस की झोंपड़ी में स्वार्थ रहित एवं अहंकार शून्य निष्काम कर्मयोगी का जीवन जीता था। इस प्रकार चाणक्य का कर्तृत्व एवं व्यक्तित्व दोनों ही राष्ट्रीय स्वाभिमान एवं समर्पण के जीवन्त आदर्श बन गये।

आचार्य चाणक्य ने लोकरंजन के आदर्श को पुनः प्रतिष्ठित करते हुए गाया—

नात्मनः सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च सुखे सुखम्।
नात्मनः प्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्।।

नहीं निजी सुख राजा का कुछ, प्रजाजनों के सुख में सौख्य
न राजा का प्रिय हित अपना, प्रजाजनों का प्रिय हित मुख्य।।

भारत में राष्ट्र एक राजनीतिक इकाई की अपेक्षा एक सांस्कृतिक इकाई के रूप में अधिक प्रतिष्ठित रहा है। महाकवि इकबाल ने लिखा है—

यूनानो मिस्र रोमां सब मिट गए जहां से,
बाकी है अब तलक भी, नामों निशां हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमां हमारा।

यूनान, मिस्र, रोम जैसे प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित राष्ट्रों के मिट जाने के उपरान्त भी शताब्दियों के विदेशी आक्रमणों को झेलता हुआ भी भारत अभी तक बचा है, इसका रहस्य क्या है? भारत के अमरत्व के रहस्य की बात यह है कि जहाँ यूनान, मिस्र, रोम आदि राष्ट्र राज्य-केन्द्रित थे, वहाँ भारत सदा से संस्कृति-केन्द्रित रहा है। पश्चिम में राज्यों के नष्ट होते ही राष्ट्र लुप्त हो गए। किन्तु भारत में राज्यों के नष्ट होने, सत्ता के छिन जाने तथा 1300 वर्ष की पराधीनता के बादल छा जाने पर भी भारतीय संस्कृति का सूर्य अस्त नहीं हुआ।

जहाँ राजे-रजवाड़े, चप्पा-चप्पा भूमि के लिये युद्ध करके देश को सैकड़ों टुकड़ों में बांटते रहे वहाँ जगद्गुरु शंकराचार्य जैसे सांस्कृतिक देवदूतों ने सारे भारत की नंगे पांव, तीन-तीन परिक्रमा कर , चारों कोनों में चार पीठ स्थापित कर भारत की सांस्कृतिक एकता के सम्पादन का चमत्कार कर दिखाया। रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, रामानन्दाचार्य, निम्बार्काचार्य आदि ने भी शंकराचार्य की सांस्कृतिक ऐक्य-परम्परा को आगे बढ़ाया। भारतीय राष्ट्र-जीवन में यह भी एक आनन्ददायक आश्चर्य का विषय है कि जहाँ प्राचीनकाल में सभी ऋषि उत्तर भारत ने दिए, वहाँ मध्यकाल में मानो उत्तर भारत का ऋण चुकाने के लिए सभी आचार्य दक्षिण भारत ने ही दिये।

संत तुलसीदास

मध्यकाल के सन्तों ने राष्ट्र की स्वाधीनता एवं स्वाभिमान के लिये अपनी अमर वाणी का अमृतमंत्र फूँका। राष्ट्रकवि गोस्वामी तुलसीदास ने पराधीन राष्ट्र को जगाते हुए उद्बोधन किया—

'**पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं।**'

यह एक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है कि अभावग्रस्त एवं सुख से वंचित व्यक्ति सपनों में कल्पना के सुख भोग कर अपने अभावों की क्षतिपूर्ति करता है। दिन भर का भूखा व्यक्ति सपने में सुख के पकवान भोगकर अपना मन बहला लेता है। किन्तु गोस्वामी तुलसीदास की चेतावनी है कि पराधीन व्यक्ति सपने में भी सुख नहीं पा सकता। उसका जाग्रतकाल जितना भयंकर है, उसका स्वप्नकाल उससे भी अधिक भयंकर होता है। कुटिल मन्थरा के चरित्र में तुलसीदास ने अवसरवादी, सिद्धान्तहीन व्यक्तियों की चालाकी भरी छल-छाया का चित्र खींचा है।

कोउ नृप होउ हमहि का हानी।
चेरि छाड़ि अब होब कि रानी।।

देश के स्वाभिमान की रक्षा हेतु महाराणा प्रताप जब स्वयं अपनी पत्नी एवं बच्चों सहित घास की रोटी खाने की स्थिति में आ गए और उनके पास सैनिकों को वेतन देने योग्य कुछ भी नहीं बचा था तो अनेक राजपूत सैनिक प्रताप का साथ छोड़कर अकबर की सेना में सम्मिलित होने लगे थे। वे राष्ट्रभक्ति शून्य, युद्ध को मात्र व्यवसाय मानने वाले सैनिक, अवसरवादिता का चालाकी भरा तर्क देते थे कि 'राज्य प्रताप का हो या अकबर का हो, हमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। हमें बस लड़ने से काम है। हम सैनिक की चाकरी छोड़कर कोई शासनाधिकारी थोड़े ही बनने वाले हैं।'

गुलामी की चूरी खाने का लोभ लग जाने पर जो मानसिक गुलामी छा जाती

है, उसका चित्र गोस्वामी तुलसीदास ने कवितावली में शुक-सारिका संवाद के बहाने प्रस्तुत किया है—

हम पंख पाई पींजवनि तरसत
अधिक अभाग हमारो।

अर्थात् 'हम स्वर्ग के पंछी अपने स्वस्थ पंखों से एक ही उड़ान में मुक्तगगन में उड़कर स्वाधीनता का आनन्द ले सकते हैं किन्तु यह परम दुर्भाग्य की बात है कि मुक्ति के सब साधन होते हुए भी मानसिक गुलामी के कारण पिंजरे की चूरी के लिए तरसते हैं। जो राजपूत अपने शौर्य के लिये जगत् प्रसिद्ध रहा है, वही यदि मुगल दरबार की चूरी के लोभ में अपनी बुआ और बेटी के डोले उठा कर अकबर के रनिवास में भेजने लगे तो इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है?

महाकवि सूरदास

महाकवि सूरदास जिनकी पंचशताब्दी इसी वर्ष मनाई जा रही है, मुख्य रूप से भक्ति एवं अध्यात्म के गीत गाते रहे। वे प्रज्ञाचक्षु महाकवि आध्यात्मिक स्वाधीनता की अमर रागिनी गाते हैं—

रे मन आपु को पहिचानि।
सब जनम हैं भ्रमत खोयौ, अजहुं तौ कछु जानि।।
ज्यौं मृगा कस्तूरि भूलै, सु तौ ताकैं पास।
भ्रमत हीं वह दौरि ढूंढैं, जबहिं पावै बास,
भरम ही बलवंत सब में ईस हूँ कैं आई।
जब भगत भगवंत चीन्हैं, भरम मन तैं जाई।।
सलिल लौं सब रंग तजिकै, एक रंग मिलाइ
सूर जौ द्वै रंग त्यागे, यहै भक्त सुभाइ।।

सूरदास ने व्यक्तिगत स्वाभिमान, कुलाभिमान एवं समाज के स्वाभिमान को भी अपनी लेखनी से अमर बना दिया है। युद्ध भूमि में भीष्म की प्रतिज्ञा बड़ी स्वाभिमान पूर्ण है—

जौ पै हरि हिं न शस्त्र गहाऊं।
तो लाजौं गंगा जननी को, शान्तनु सुत न कहाऊं।।

सूरदास अपने अमर भक्ति काव्य में कहीं-कहीं साम्ययोग (आधुनिक शब्दावली में समाजवाद) की छटा भी दिखाते हैं—

खेलत को कासौं गोसैया,
अति अधिकार जनावत याते।

अधिक तुम्हारे हैं कछु गैया।।

ग्वाल-बाल भगवान् कृष्ण को ताना मारते हुए कहते हैं—'हे गोस्वामी, खेल में कौन किस के साथ खेले? क्या आप अधिक अधिकार इसीलिए जता रहे हैं कि आपके घर में गैया अधिक है?

यह कितना मीठा व्यंग्य है?

राष्ट्र-संत समर्थगुरु रामदासजी ने छत्रपति शिवाजी को निमित्त बनाकर राष्ट्र-विजय के लिये वैसा ही निष्काम कर्मयोग का उपदेश दिया जैसा भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को निमित्त बनाकर महाभारत युद्ध में दिया था।

धर्मासाठी मरावे। मरोनि अमछपांसि मरावे।
मारितां मारिनां ध्यावें। राज्य आपुले।।

अर्थात् धर्म हेतु मरने को प्रस्तुत, हम बलि वीर रिपु सब मारें।

मरते मारते प्राप्त करें हम, निज स्वदेश में अपना राज्य

दशम गुरु गोविन्दसिंह ने देश व धर्म की रक्षा के लिये खालिस (युद्ध) आर्यों का पंथ सजाया।

जे आरज तूं खालिस होवें, हंस-हंस सीस धर्म हित खोवें।
सकल जगत में खालसा पन्थ गाजे, जगे धर्म हिन्दू सकल मंड भाजे।।
यही देहु आज्ञा तुरक गहि खपाऊँ। गऊ घात का दोख जग सों मिटाऊँ।
यही आस पूरण करों तुम हमारी। छुटै कष्ट गैयन, मिटे खेद भारी।

राष्ट्र रक्षा के लिये गुरु महाराज धर्मरक्षा एवं गौ-रक्षा को अनिवार्य मानते थे। आज देश का दुर्भाग्य है कि धर्म-स्वातंत्र्य विधेयक और गौ-रक्षा विधेयक का समर्थन करने वाले प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई को विद्रोही शक्तियों के आन्दोलन के कारण त्याग-पत्र देना पड़ा।

गुरु गोविन्दसिंह की भविष्यवाणी है—

राज करेगा खालसा, याकी रहा न कोय।

अर्थात् शुद्ध धर्मात्मा खालिस आर्यों का ही राज्य होगा। दुष्टों का अन्त होकर रहेगा।

आर्य समाज के संस्थापक, वेदोद्धारक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सन् 1857 की क्रान्ति के समय रानी लक्ष्मीबाई एवं तात्या टोपे आदि को स्वराज्य की प्रबल प्रेरणा दी तथा घोषणा की कि 'सुराज्य की अपेक्षा स्वराज्य हजारों गुणा अधिक मूल्यवान है।'

भारत की अखण्डता एवं विश्व शान्ति का स्वर्णिम सूत्र : सद्भावना यात्रा

यात्रा से मनुष्य का जीवन एवं जगत् के प्रति दृष्टिकोण व्यापक बनता है। नये-नये व्यक्तियों, वस्तुओं और भूखण्डों के परिचय द्वारा व्यक्तित्व परिपक्व होता है। वेद का संदेश है चरैवेति-2 अर्थात् मानव तुम चलते जाना निरन्तर चलते जाना, बढ़ते जाना। यही प्रगति का लक्षण है। किन्तु चलना सोद्देश्य होना चाहिए, निरुद्देश्य नहीं। सोद्देश्य चलने वाला व्यक्ति, यात्री या यायावर कहलाता है और निरुद्देश्य घूमने वाला आवारा या लोफर। आवास या आजीविका की खोज में देश-विदेश घूमने वाले मानव समूह या मण्डलियाँ घुमन्तू जातियाँ कहलाती हैं। ये खानाबदोश लोग यूरोप में रामणि, रोमा कहलाते हैं। रोमानिया ऐसा देश है जहाँ ऐसे ही घुमन्तू लोगों की अधिकता है। वैसे ये सारे यूरोप, अमेरिका में फैले हुए हैं। रोमानिया, रोमा नाम इनका मूलतः रोम से निकला है। सम्भवतः भारत से ईरान होकर यूरोप की ओर जाने वाले घुमन्तू मानव समूह में रोम जाति के लोग अधिक रहे होंगे। इन्हें जिप्सी (Gipsy) भी कहा जाता है। सम्भवतः यूरोप में इनकी रंग-बिरंगी वेशभूषा को देखकर लोगों ने इन्हें मिस्र (Egypt) वासी मान लिया होगा। इसलिये इजिप्टवासी की भांति जिप्सी नाम चल पड़ा।

भगवान् बुद्ध ने कहा—

चरथ चिक्कने चारिकम्
बहुजन हिताय बहुजन सुखाय
धर्म चक्रं प्रवर्तनाय

मित्रों! तुम सभी दिशाओं में चलते जाओ। बहुत जनों के हित के लिये, बहुत जनों के सुख के लिये, धर्म चक्र के प्रवर्तन के लिये निरन्तर बढ़ते जाओ।

महापण्डित राहुल सांस्कृत्यान ने घुमक्कड़ शास्त्र नाम पुस्तक में घूमने वाले व्यक्तियों और मानव समूहों की बड़ी महिमा गाई है। वे घुमक्कड़ जाति में घुमन्तुओं और यात्री को सम्मिलित कर लेते हैं और आज संसार में जो कुछ प्रगति

संभव हुई है वह (पर्यटन प्रियता) घुमक्कड़ी के कारण ही हुई। घरघिसु लोगों से कुछ भी प्रगति नहीं हो सकती। राम के वनवास के बिना रामायण का इतिहास कैसे बनता? पाण्डवों के वनवास के बिना महाभारत का घटनाक्रम नितान्त फीका होता। श्रीकृष्ण अपनी जन्मभूमि मथुरा और लीलाभूमि गोकुल-वृन्दावन छोड़कर द्वारिका, हस्तिनापुर, इन्द्रप्रस्थ, कुरुक्षेत्र, प्राग्ज्योतिषपुर, विदर्भ आदि स्थानों पर घूमते न रहते तो देश का इतिहास आज भिन्न प्रकार का ही होता। शंकराचार्य यदि अपनी जन्मभूमि कालड़ी छोड़ कर देश के चारों धाम की पदयात्रा न करते तो देश की सांस्कृतिक अखण्डता ही असंदिग्ध हो जाती। उस अखण्डता को जीवित रखने के लिए देश के लाखों, करोड़ों लोग निरन्तर चलते हुए इन चारों धाम की यात्राएं करने चले आते हैं एवं तीर्थयात्रा की परम्परा से देव दर्शन और देश दर्शन होना, दोनों साथ-साथ सिद्ध हो जाते। गंगोत्री के गंगाजल की काँवर भर कर यात्री सारे देश की यात्रा करते हुए जब रामेश्वर में पहुँच कर उस गंगाजल से भगवान् शिव का अभिषेक करते हैं या रामेश्वर के सागर के जल की काँवर लेकर हिमालय में केदारधाम में भगवान् शिव का अभिषेक करते हैं तो उन्हें अलौकिक आध्यात्मिक सन्तुष्टि और भारत की सांस्कृतिक अखण्डता की अनुभूति होती है।

यूरोप में राष्ट्र राजनीतिक इकाई को माना जाता है। सारे यूरोप की सभ्यता-संस्कृति लगभग एक समान होने पर भी राजनीतिक अनेकता होने के कारण वहाँ व्यक्तियों के 20 से अधिक राष्ट्र बन गये हैं। और, राष्ट्रों के और बढ़ने की सम्भावना सदा बनी रहती है। भारत में जहाँ सन् 1947 में 550 देसी राजे-रजवाड़े थे और उससे पूर्व हजारों राज्य रहे होंगे। भारत के सांस्कृतिक ऐक्य के चमत्कार से राजनीतिक इकाइयाँ अनेक होते हुए भी राष्ट्र सदा एक ही रहा है। इस सांस्कृतिक एकता के चमत्कार का संवर्द्धन किया हमारी तीर्थयात्रा परम्परा ने, भारत को बचाया संस्कृति ने और संस्कृति को जीवन्त रखा यात्रा-परम्परा ने। यदि राष्ट्र जीवित संस्कृति है तो संस्कृति की श्वसन क्रिया तीर्थयात्रा है। अतः आधारभूत रूप से सांस्कृतिक यात्रा ही करनी चाहिये। क्योंकि वह संस्कृति की साधना के लिए ही है। मात्र मनोरंजन के लिये यात्रा करना उतना फलदायी नहीं जितना कि इतिहास-दर्शन, देश-दर्शन व सांस्कृतिक आदान-प्रदान के उद्देश्य से यात्रा करना है।

संस्कृति संस्कारों की श्रेष्ठ परम्परा है। यह जीवनमूल्यों की पावन प्रणाली है। जीवन में कुछ आदर्श हैं जो जीवन को वास्तविक मूल्य प्रदान करते हैं। श्रेष्ठ आदर्श को जीवनमूल्य कहा जाता है। ऊँचे जीवनमूल्यों को इतना पवित्र एवं मूल्यवान माना जाता है कि उनकी रक्षा के लिए मानव अपने स्वयं के जीवन को भी हंसते-हंसते बलिदान कर देता है। जैसे देवहितार्थ एवं देशहितार्थ महर्षि दधीच

का अस्थिदान, जीव दया के लिये हरिश्चन्द्र का राज्य एवं अपने परिवार का बलिदान, पितृवचन की मर्यादा के लिए भगवान् राम का राज्य त्याग, प्रण रक्षा के लिए प्रताप की वह तपस्या, स्वाधीनता के मूल्य के लिये भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव, चन्द्रशेखर आजाद आदि के बलिदान धर्म की रक्षा के लिए हकीकतराय और गोविन्दसिंह के लाडलों का बलिदान जिसका जीवनमूल्य प्रदान करने वाले ये ही जीवनमूल्य है। यदि ये जीवनमूल्य ही नष्ट हो गए तो जीवन का मूल्य दो कौड़ी का भी नहीं बचता। इसलिये जीवनमूल्यों पर संकट आने पर जीवनमूल्यों की मर्यादा बचाने के लिये महापुरुष अपना जीवन तक बलिदान कर देते हैं। जीवनमूल्यों की परम्परा ही संस्कृति है। यात्रा द्वारा देश के उत्तर, दक्षिण, पूर्व व पश्चिम सब दिशाओं के लोग परस्पर मिलते हैं। विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। समान आस्थाओं का सम्मान करते हैं तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सीख सांस्कृतिक आदर्श की साधना करते है।

भारत पर सैकड़ों विदेशी आक्रमण एवं 1000 वर्ष के विदेशी शासन के उपरान्त भी भारत को बचाये रखने वाला यह सांस्कृतिक ऐक्य का तत्त्व ही है। हमारे देश में भाषाएं अनेक हैं किन्तु भाव एक है। रूप अनेक हैं, किन्तु जीव का आभ्यन्तर स्वरूप एक है। वेश, परिवेश अनेक हैं, किन्तु देश एक है, संदेश एक है। आकृतियाँ अनेक हैं पर संस्कृति एक है। पथ अनेक हैं पर लक्ष्य एक है। इस संस्कृति के ऐक्य के बिना आज भारत ही नहीं बचता।

इस प्रकार अपने देश में यात्रा द्वारा सांस्कृतिक ऐक्य की परम्परा है। इसी प्रकार विदेशों की सांस्कृतिक यात्रा द्वारा भी अन्तर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक मैत्री का मार्ग खुलता है।

इतिहास के उषाकाल से ही भारत ने संसार के समस्त देशों को अपना अध्यात्म और संस्कृति की सुधा को निःस्वार्थ भाव से बांटा है। इसी कारण भारत सांस्कृतिक दृष्टि से जगत्गुरु का सम्मान प्राप्त कर सका है। भारत के वेदविदों, मुनियों, भिक्षुओं, आचार्यों, और संस्कृति साधकों द्वारा विश्वभर में स्थापित सांस्कृतिक साम्राज्य के विस्मृत अध्याय को खोजना या टूटी हुई शिथिल पड़ी सांस्कृतिक कड़ियों को पुनः जोड़कर, अतीत के कल को आज से सजीव करना और आगे के अधिक सुसंस्कृत त्यागी काल का निर्माण करना सांस्कृतिक यात्रा का उद्देश्य होता है।

डॉ. राधाकृष्णन् ने कहा है कि जब आप किसी अपरिचित व्यक्ति के नेत्रों में झांकते हैं तो बोध होता है वह अपना बन्धु ही है। इससे आगे बढ़कर वेदान्त कहता है—दूसरे के हृदय में झांक कर देखो तुम्हें बोध होगा कि उसके हृदय मन्दिर में भी तुम्हीं विराजमान हो। गीता में कहा है कि जो इनके अन्तर में ही छुपे हुए अपने

आप को पहचान लेता है वह सर्वत्र आत्म दर्शन ही करता है। जिसमें सब आत्माओं की आत्मा विश्वात्मा जगदात्मा, सकल भूतान्तरात्मा, सर्वात्मा को पहचान लिया वह सर्वत्र परमात्मा का दर्शन करता है। तुलसीदासजी के शब्दों में—

सीयराम मय सब जग जानी
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

ऐसे परमात्म दर्शी व्यक्ति के लिये पराया और विदेशी, बचा ही कौन? गुरुनानक के शब्दों में—

ना कोई बैरी न ही बेगाना,
सकल संग हमारी बन आई।
बिखर गई सब तात पराई।।

सांस्कृतिक तीर्थंकर गुरुनानक ने चारों दिशाओं में घूमकर चार उदासियाँ करके जन-जन के हृदय में झाँककर जान लिया था कि संसार में कोई भी वैरी और बेगाना नहीं बचा। सबके साथ हमारी आत्मीयता बन गई और परायापन सदा के लिये भूल ही गये हैं। सांस्कृतिक सद्‌भावना यात्रा के चमत्कार से संसार भर में परायापन, विदेशीपन और वैरभाव दूर होकर सच्ची सांस्कृतिक और आध्यात्मिक आत्मीयता का विकास हो सकता है।

भारत ने सदा राजनीतिक अथवा कूटनीतिक संबंधों की अपेक्षा सांस्कृतिक संबंधों को अधिक महत्त्व दिया है। दो राष्ट्रों के बीच में कूटनीतिक अथवा राजनयिक मैत्री सम्बन्ध देश-काल, पात्र, परिस्थिति के परिवर्तन के साथ कूटनीतिक प्रहार एवं आकस्मिक आघात में भी बदल सकते हैं। द्वितीय महायुद्ध में रूस तथा जर्मनी के बीच प्रारम्भिक कूटनैतिक मैत्री अकस्मात् कूटनैतिक प्रहार में परिवर्तित हो गई। राजनयिक अथवा कूटनैतिक मैत्री सम्बन्ध किसी न किसी राजनीतिक स्वार्थ पर अवलम्बित होते हैं। उस स्वार्थ की पूर्ति हो जाने के बाद उन सम्बन्धों का कुछ महत्त्व ही नहीं बचता तथा स्वार्थ पूर्ति में बाधा हो जाने पर आज के स्वार्थ से परम मित्र कल स्वार्थ वश परम शत्रु बन जाते हैं। राजनयिक हस्तमिलाप स्वार्थ एवं अवसरवादिता का हस्तमिलाप है। जिस प्रकार से कुश्ती के दंगल में उतरने वाले दो मल्ल हाथ मिलाकर खेल शुरू करते हैं और दावंपेच करते हुए निरन्तर एक-दूसरे को चारों खाने चित, पछाड़ने की ताक में रहते हैं। उसी प्रकार से राजनयिक दौत्य-सम्बन्ध वाले देश ऊपर से कृत्रिम हाथ मिलाते हैं और छलना भरी मुस्कान से अन्तर के छुद्रभावों को छिपाने की चेष्टा करते हैं तथा निरन्तर दूसरे देश को अवसर मिलने पर धूल चटाने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। भारत की अन्य देश के प्रति न कभी कोई राजनीतिक ईर्ष्या थी और न उसने

राजनीतिक छल-प्रपंच या सौदेबाजी को ही कभी महत्त्व दिया है। भारत सदा अपनी सांस्कृतिक फुलवारी की सुमधुर सुवास बांटने तथा अन्यान्य देशों के जीवनमूल्यों के साथ सांस्कृतिक आदान-प्रदान कर मानवता को अधिक शान्ति एवं समृद्धि के स्वर्ग में लाने के लिये चेष्टा करता रहा है। मात्र मनोरंजन एवं आमोद-प्रमोद के लिए यात्रा करने वाले, ऐयाश और निरुद्देश्य यात्रा करने वाले लोग आवारा, लोफरबाज व हिप्पी हैं। सोद्देश्य सांस्कृतिक सद्‌भावना यात्राएं करने वाले तो धरती को सुख शान्ति का और सुप्त प्रेरणाओं को जगाकर भारत को पुनः जगत्‌गुरु के सिंहासन पर आसीन करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

हिन्दुत्व सत्य के अनुसंधान की सतत साधना है और यदि आज यह मृतप्राय, निष्क्रिय, विकास के प्रतिकूल हो गया तो इसका कारण है कि हम थक गये हैं और जैसे ही हमारी यह थकान दूर होगी, हिन्दुत्व सम्पूर्ण विश्व पर एक ऐसी प्रखर दीप्ति के साथ छा जायेगा जो सम्भवतः इसके पहले सभी के लिये अज्ञात होगा।

—गांधीजी

जय भारत–जय स्वतन्त्रता

अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान् संत इमर्सन ने कहा था :

'To what avail the plough or sail or land or life, if freedom fail'.

अर्थात् 'उस देश के किसान के हल अथवा उपजाऊ मिट्टी का क्या लाभ यदि वह देश अपनी स्वाधीनता खो चुका है।'

यह चेतावनी उन सबके लिए है जो थोड़ी सुख-सुविधा या जीवन के अन्य लाभ के लिये अपनी स्वतन्त्रता का सौदा कर लेते हैं।

ईसाई धर्म के मसीहा यीशु ने कहा था, 'यदि व्यक्ति स्वयं को गंवाकर सम्पूर्ण विश्व को भी पा लेता है तो सब व्यर्थ है।' स्वतन्त्रता को खो देना स्वयं को खो देने के समान है।

जैसे नेत्रों के लिए प्रकाश, फेफड़ों के लिए शुद्ध वायु और हृदय के लिये प्रेम अनिवार्य है उसी प्रकार मानव के लिये उसकी स्वतन्त्रता बहुमूल्य हैं। एक अन्य स्वतन्त्रता के पुजारी का कहना है, 'स्वतन्त्रता के बिना हमारा मस्तिष्क एक काल-कोठरी-सा है, जिसमें पराधीन विचार घुट-घुटकर अन्ततः मर ही जाते हैं।

स्वतन्त्रता का अधिकार

संविधान में जीवन के अधिकार के एकदम बाद स्वतन्त्रता का अधिकार लिखना उचित ही है। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था, 'जीवन जीने का पूर्ण मूल्य देकर ही स्वतन्त्रता मिलती है।' किन्तु यह स्मरण रहे कि यद्यपि स्वतन्त्रता का अधिकार जीवन के अधिकार के पश्चात् आता है, किन्तु यह अधिकार किसी प्रकार भी गौण नहीं है। स्वतन्त्रता के दीवाने देश की स्वाधीनता के लिये हंसते-हंसते अपने प्राण न्योछावर कर देते हैं। वे कहते हैं—'हे प्रभु! हमें स्वतन्त्रता का जीवन दो या फिर मृत्यु।' ऐसे वीर घुटने टेक कर जीने के स्थान पर पाँव पर खड़े-खड़े जीवन अर्पण कर देंगे। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का उद्घोष था—'स्वाधीनता (स्वराज्य) हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।' इस उद्घोष का सरल अर्थ है कि जीवन के अधिकार से ही स्वतन्त्रता का अधिकार पनपता है।

वेदों में भी स्वतन्त्रता का उच्च संदेश इस प्रकार दिया गया है—

जीवेम् शरदः शतम्।
अदीनास्याम शरदः शतम्।

अर्थात् 'हे प्रभु! हम शत वर्ष तक जीयें। पूरी आयु, हम स्वतंत्र रूप में किसी के अधीन न होकर जीवन बिताएँ।

प्रब्रवाम शरदः शतम्

हम यावत् जीवन वाक्-स्वतंत्रता का उपभोग करें।

स्वतन्त्रता का मूल्य

यदि स्वाधीनता और जीवन में संघर्ष हो और जीवन का अर्थ केवल सुख-वैभव हो तो स्वयं की स्वाधीनता के लिये सुख का परित्याग कर देना चाहिये—

आत्मार्थे पृथ्वीं त्यजेत्

अर्थात्—'स्वयं की स्वाधीनता के लिये पूरी धरती का साम्राज्य त्याग देना चाहिये।'

प्रसिद्ध साहित्यकार फ्रेंकलिन कहते हैं—'जो लोग अस्थाई सुरक्षा प्राप्त करने के लिये अपनी स्वाधीनता को त्यागते हैं, वे सुरक्षा एवं स्वाधीनता—दोनों के अयोग्य हैं। स्वाधीनता का मूल्य केवल नित्य चौकसी (सतर्कता) ही नहीं बल्कि स्वाधीनता की रक्षा के लिये आत्मबलिदान की उमंग भी है। पंजाब केसरी लाला लाजपत राय का कहना था—'स्वाधीनता का नन्हा पौधा केवल शहीदों के रक्त पर पनपता है।'

मोक्ष : गांधीजी का मत

गांधीजी की स्वाधीनता पर विचारधारा आध्यात्मिक थी। वे कहते हैं—'मैं सत्य की खोज में लगा हूँ। मुझे इसी जन्म में मोक्ष चाहिये। मोक्ष पाने को मैं अधीर हूँ। मेरी समाज-सेवा भी मुक्ति पाने का ही प्रयास है। मैं अपनी आत्मा को इस शरीर से मुक्त कराने के लिये प्रयत्नशील हूँ। अतः मेरी राष्ट्र भक्ति पूर्ण स्वाधीनता एवं मुक्ति प्राप्त करने की ओर उठा पहला कदम है।'

स्वाधीनता और संस्कृति

स्वाधीनता वास्तव में संस्कृति का प्राण है। हमारे राजनीतिक नेता यह समझाते हैं कि राजनीतिक स्वाधीनता ही मुख्य ध्येय है, जिसके मिलते ही वस्तुएँ अपने-आप जुड़ती चली जाएँगी। यूरोपीय विद्वान् देवे का मत है कि राजनीतिक स्वाधीनता सांस्कृतिक स्वाधीनता का ही प्रभाव है न कि इसका उलटा।

श्री अरविन्द : स्वाधीन व्यक्तित्व

योगीराज अरविन्द घोष, भारत की स्वतन्त्रता के महान् संत, जिनकी जन्म-शताब्दी भारत की स्वाधीनता के 25 वें वर्ष में पड़ती है, राष्ट्रवाद के विषय में कहते हैं—'राष्ट्रधर्म एक अवतार है, भगवान् का एक रूप है जिसकी कभी हत्या या ह्रास नहीं हो सकता। सर्व बंधनों से मुक्त राष्ट्र एक बड़ा यज्ञ है....मातृभूमि के पूजन के लिये आत्मसमर्पण ही स्वाधीनता का मूल्य है....यज्ञ की प्रखर सात ज्वालाओं में हमें अपना सर्वस्व, अपना रक्त, जीवन और खुशियाँ भी अर्पण करनी हैं।'

देश का बँटवारा समाप्त हो

15 अगस्त सन् 1947 को भारत का बँटवारा हो गया। श्री अरविन्द का हृदय द्रवित हो गया—'किसी भी उपाय से, कुछ भी यत्न करके भारत में अखण्डता आनी चाहिये। आपसी एकता, मैत्री, भारत की महानता एवं अखण्डता के लिये अत्यावश्यक है।'

भारतमाता की जय

भारत के उज्ज्वल भविष्य की परिकल्पना करते हुए श्री अरविन्द कहते हैं—'भारत के उज्ज्वल भविष्य का सूर्य उदय होगा, जिसका प्रकाश भारत की, एशिया की, सकल विश्व की सीमा लाँघकर बहुत दूर तक फैल जाएगा।'

स्वतन्त्रता के स्वर्ग में

'सभ्यता का राष्ट्रीयकरण'—यह लोकप्रिय राजनीतिक वाक्य नहीं है, किन्तु आधुनिक राजनीति के विद्यार्थी के लिए इस वाक्य की मूलभावना अज्ञात नहीं है। एकाधिकार राज्य (जहाँ एक ही राजनीतिक दल का पूर्ण अधिकार हो) के अर्थशास्त्री 'राष्ट्रीयकरण' शब्द का प्रयोग कई संदर्भों के संबंध में करते हैं। उनके लिए इसका अर्थ राज्य-नियन्त्रण या राज्य द्वारा एकाधिपत्य है। आधुनिक राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था में रेलवे का राष्ट्रीयकरण, बीमा का राष्ट्रीयकरण, व्यापार का राष्ट्रीयकरण आदि ऐसे वाक्य भ्रान्तिकारक शब्दजाल हैं। किसी भी स्वतंत्रताप्रेमी व्यक्ति के लिए यह विचार चुनौतीपूर्ण है कि क्या हमारी सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों पर राष्ट्रीय नियन्त्रण होना चाहिये? क्या राज्य को हमारी विचारधारा और हम क्या सोचते हैं इस पर अंकुश लगाना चाहिये? क्या इस प्रकार का शासन का नियन्त्रण हमारी आकांक्षाओं, मान्यताओं, भावनाओं, श्रद्धा और धर्मनिष्ठा पर तर्कसंगत या न्यायोचित होगा?

सभ्यता का मुख्य उद्देश्य मानव का विकास है—उसके मन का विकास और आत्मा का उत्थान। किसी राष्ट्र की सभ्यता और संस्कृति की कसौटी उसके जीवनमूल्य और मान्यताएँ हैं, जो मानव और समाज के विकास के लिये परमावश्यक होते हैं। इस प्रकार संस्कृति और जीवनमूल्यों में घनिष्ठ संबंध दिखाई देता है। क्योंकि संस्कृति का मुख्य उद्देश्य मानव का पूर्ण विकास करना है, अतः वह मानवता के हर अंग को छूती है जो कला, साहित्य, काव्य, दर्शन, संगीत और नृत्य के रूप में प्रखर होती है।

संस्कृति व्यक्ति विशेष का मानसिक-सांस्कृतिक विकास करती है न कि एक समुदाय का। सत्य का सच्चा स्वरूप जानने से उसके हृदय-उपवन में असंख्य पुष्प (ज्ञान और माधुर्य के) अपनी छटा बिखेरते हैं। मानव मन ही संस्कृति का प्रथम झूला है। मानव संस्कृति का इतिहास उन कवियों, कलाकारों, गम्भीर चिन्तकों के ताने-बाने से बना है, जिन्होंने सत्य, साधुता, सौन्दर्य का गहन चिन्तन किया और अपने अस्तित्व की चिन्ता किये बिना उचित-अनुचित का पक्ष समाज के सम्मुख

रखा। यह सब उन्होंने अंतरात्मा की ध्वनि, ललकार के लिए किया ताकि वे जीवन और आत्मा पर खरे उतरें। अतः पूर्ण स्वतन्त्रता संस्कृति का प्राण है। संस्कृति प्रत्येक मानव को ईश्वर की देन है, यह शक्ति और प्रकाश की एक चिनगारी है, जोर बाह्य अंकुश या नियन्त्रण को कभी सहन नहीं कर सकती।

एक कलाकार अपना जीवन जीता है—अनुभूति लेता है और गीत गाता है स्वतंत्र कोयल की तरह। उसे कोई सामाजिक बंधन या राजनीतिक नियन्त्रण मान्य नहीं है। उसकी आत्मा कोई बंधन या नियन्त्रण स्वीकार नहीं करती। वह अपनी लेखनी अंतरात्मा में डुबोकर गीतों और चित्रों के रूप में अपने गहन भाव प्रकट करता है। एक कवि स्वतन्त्रता और पावन सौन्दर्य का अवतार होता है। जब कलाकार की आत्मा को राज्य खरीद लेता है तो सत्य और सौन्दर्य अनाथ हो जाते हैं। कोई कवि या कलाकार अपनी विचारधारा पर बाह्य नियन्त्रण या बंधन स्वीकार नहीं कर सकता।

सरदार के. एम. पणिक्कर ने कहा है—'हर राज्य आज एकाधिकार की ओर जा रहा है—सब शक्तियों को अपने हाथ में रखना चाहता है। यह बहुमुखी नाग की तरह है जो आकाशवाणी द्वारा प्रचार-प्रसार करता रहता है; टेलिफोन पर हमारे वार्तालाप को सुनता है; हमारे जल, भोजन पर नियन्त्रण रखता है; हमारे सब क्रियाकलापों पर अंकुश रखता है। इस प्रकार व्यक्ति तो नगण्य हो गया है।' स्वतन्त्रता के सौन्दर्य के विषय में डॉ. राधाकृष्णन् कहते हैं—'स्वतन्त्रता का मुख्य उद्देश्य यह है कि भीड़ में व्यक्ति कहीं खो न जाए, उसकी आत्मा कहीं घुटन में दब न जाए। व्यक्ति की विचारधारा और दृष्टि धूमिल न हो।'

प्रकृति हमें समझाती है कि वृक्षों का सहारा लेने वाली लताएँ अपने तने पर कभी खड़ी नहीं हो सकतीं। वे कभी सुदृढ़ नहीं हो सकतीं। इसी प्रकार राष्ट्र का सहारा लेने वाले कलाकार और कवि अपने नैतिक अस्तित्व और चरित्र का बल बढ़ा न सकेंगे। वे तो राज्य के हाथों कठपुतली बन जाते हैं। वे अपने शासकों के इशारों पर उनकी इच्छानुसार पूँछ हिलाते रहते हैं।

भारतीय हिन्दी साहित्य के इतिहास में कुछ कलाकारों-कवियों ने राज्य का आलम्बन लिया था। लेकिन राज्य के सहयोग के बदले उन्हें आत्मा की स्वतन्त्रता की बलि देनी पड़ी। पृथ्वीराज चौहान के चचेरे भाई जयचन्द इतिहास में एक देशद्रोही और भ्रातृत्व पर कलंक के रूप में प्रसिद्ध है, किन्तु उनके राजकवि केदार भट्ट ने अपने ग्रन्थ 'जय मयंक जस चन्द्रिका' में जयचन्द को चन्द्रमा के प्रकाश की भांति उज्ज्वल दिखाया है। जयचन्द जो इतिहास में एक देशद्रोही है, इस कवि के शब्दों में चन्द्रमा के प्रकाश के विजेता के रूप में प्रस्तुत होते हैं, क्योंकि इस कवि की लेखनी और वाणी पर राजा का नियन्त्रण था। यह दुःखद सत्य है कि राज्य का

संरक्षण और समर्थन पाकर कलाकार, संगीतज्ञ और कवि केवल चाटुकार या भाट बनकर रह जाते हैं जिन्होंने चाँदी के कुछ टुकड़ों के लिये अपनी आत्मा को बेच दिया।

कोयल को कभी हम अपनी इच्छानुसार अमुक समय पर अमुक स्थान पर गाने के लिए बाध्य नहीं कर सकते। कोई अच्छा कवि या कलाकार शेले के स्काई लार्क की तरह होता है जिसका संगीत केवल आत्मा की प्रतिध्वनि के अनुसार ही प्रस्फुटित होता है। सच्चा कलाकार अक्सर धारा के विरुद्ध चलता है। वह अपनी स्वतन्त्रता, चरित्र एवं मौलिकता के लिए लोकप्रिय सामाजिक धारणाओं के विरुद्ध भी जा सकता है। यदि ये मानवता के प्रहरी अपनी अस्मिता और गौरव को सोने-चाँदी के कुछ टुकड़ों के लिए बेच दें तो मानवता का भविष्य अंधकारमय हो जायेगा। यदि सर्वशक्तिशाली राज्यसत्ता बल और प्रतिबंधों के प्रयोग से कवित्व, संगीत और कला पर राजनीतिक अंकुश लगाएगी तो मानव इतिहास का अंधकारमय दिवस दूर नहीं है।

कलाकार अपने संगीत और कला का स्वामी होता है। वह अन्तरात्मा से ऊपर किसी का स्वामित्व स्वीकार नहीं कर सकता। राज्यसत्ता जब कलाकार पर अपना नियन्त्रण लगाती है, तब वह संस्कृति एवं कला के लिये प्राणघातक होता है।

यदि सत्ता बुद्धि, कला, मौलिक चिन्तन पर नियन्त्रण लगाएगी तो समाज का भविष्य अंधकारमय ही होगा।

डॉ. रवीन्द्रनाथ ठाकुर स्वतंत्र चिन्तन के समर्थक थे। मानव की स्वतन्त्रता के लिए पिपासा रवीन्द्रनाथ इस गीत में व्यक्त करते हैं—

जहाँ मन भय से मुक्त है—भाल गर्व से ऊँचा उठा हो
जहाँ ज्ञान स्वतन्त्र, निरंकुश है
जहाँ विश्व संकीर्णता की दीवारों से
टुकड़ों में बँट नहीं गया....
ऐसे स्वतन्त्रता के स्वर्ग में
मेरे पिता....मेरा देश जागे....

रामगढ़ कैम्प में महाराजा अग्रसेन जयन्ती

हमारा परम सौभाग्य है कि हम लोग रामगढ़ कैम्प में महाराजा अग्रसेन जी की जयन्ती बड़ी धूमधाम से मना रहे हैं। उनके जीवन और संदेश के बारे में एक स्मारिका का भी विमोचन किया गया है। और उस महान् वंश के फूल, सजीव फूल होकर श्रद्धांजलि महाराजा अग्रसेन के चरणों में चढ़ा रहे हैं। बहुत ही आनन्द का विषय है। क्योंकि पूर्वजों के पावन स्मरण यही हमें पथ से विचलित होने से बचाता रहता है ठीक दिशा दिखाता है। समाज के संगठन को बनाये रखता है और अतीत से प्रेरणाएं लेकर वर्तमान में दुर्धर्ष कर्म करके भविष्य की भावी योजनाओं के लिये अवसर प्रदान करता है। इसलिये हम इस अवसर का समुचित लाभ उठायें। महान् प्रेरणाओं को प्राप्त करें। तो हमें इतिहास में जैसा वर्णन मिलता है कि महाराजा अग्रसेन महाभारत काल से भी पहले इस धराधाम में अग्रोहा नामक स्थान पर राजधानी स्थापित करके वहाँ एक आदर्श रामराज्य स्थापित किये हुए थे। उनकी संताने जहाँ-जहाँ संसार भर में बिखरी, देश भर में, विदेश में भी गए, ये लोग अग्रसेन की संतति होने से अग्रवाल कहलाये। जैसे ही परशुरामजी का क्षत्रियों पर कोप प्रारम्भ हुआ उस समय अनेक जातियाँ बिखरी और भाग गयी। और उन्होंने कुछ व्यवसाय भी बदल लिए। कुछ लोग जाकर बरेली, रायबरेली में स्थान है जायस वहाँ पर बसे। तो वहाँ पर से आने वाले लोग जायसवाल कहलाने लगे। ये मलिक मुहम्मद जायसी जो कवि हुआ है हिन्दी का वह जायस का रहने वाला था। तो जितने जायसवाल लोग हैं उनका मूल स्थान जायस है। अग्रवाल बंधुओं का मूल स्थान अग्रोहा है। राजस्थान में एक-एक गांव के नाम पर भी मोहर लगा कर अनेक नाम चलते हैं। इसलिये बहुत से लोग अपने नाम के बाद वाल लगाकर प्रसिद्ध करते हैं। कुछ लोग वालिया भी लगाते हैं। इस तरह स्पष्ट है महाराजा अग्रसेन की संतानें अग्रवाल के नाम से प्रसिद्ध हुई। इतिहास के किस कालक्रम में किस खण्ड में, किन कारणों से, कैसे, राजा की संतति व्यापार में लग गई? और ये प्रसिद्ध वैश्य समाज व्यापारी वर्ग बनकर देश में प्रसिद्ध हुआ। और हमारे सारे देश की व्यापारिक स्थिति को सम्हाले रखा। यह बहुत बड़ा अद्‌भुत तथ्य है। रहस्य है। और इनका राज्य कैसे लुप्त हो गया? और भविष्यत् के लिए राज्य न

करके केवल व्यापार में लग गये वह काफी खोज का विषय होना चाहिये। इनकी संतानों में भी जैसा कि श्रीमान गुप्ताजी ने बताया और ग्रंथों में भी वर्णन मिलता है इन्होंने अमरीका तक में विवाह किया। पाताल लोक में। वह भी अपने आप में बड़ा रोचक विषय है। इस पर भी बड़ी खोज करने की आवश्यकता है। दिल्ली में हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस में महामना मदन मोहन मालवीय जी एक समय प्रधान सम्पादक थे। उनके अन्तर्गत काम करने वाला एक पत्रकार था चमनलाल। वह स्वामी श्रद्धानंदजी (आर्य समाज के महान् नेता थे) का जामाता था तो उसने मालवीय जी से कहा मुझे कुछ नयी खोज करने का अवसर दिया जाए। तो उन्होंने उसको छः मास का अवकाश दिलाया हिन्दुस्तान टाइम्स से। वह लन्दन की Economic कांफ्रेंस में गया। और वहाँ से अमरीका चला गया। अमरीका में उसने एक पुस्तक लिखी। 15 अगस्त 1937 में वह पुस्तक प्रकाशित हुई। उस पुस्तक का नाम उसने रखा The end of an Empire एक साम्राज्य का अन्त। उसकी प्रथम पंक्ति में उसने लिखा, भारत से ब्रिटिश साम्राज्य का अन्त होने वाला है। इस पर उसको गिरफ्तार कर देश निकाला दे दिया गया। वह वहाँ से छोड़कर आ गया मैक्सिको में। मैक्सिको में आकर देखते ही उसकी बुद्धि चकरा गई। उसने देखा कि शेष अमरीका के प्रदेशों की तरह यहाँ के लोग उन जैसे रीति-रिवाज नहीं रखते हैं। उनके समान पहनावा नहीं उनसे भिन्न पहनावा है। उसने देखा कि मैक्सिको की स्त्रियाँ साड़ी पहनती हैं। उसको अचम्भा हुआ। उनके चेहरे अमरीका के गोरे-चिट्टे चेहरे से कुछ भिन्न हैं। कुछ गंदुमी रंग लिये हुए है। उनके चेहरे में भारतीयता की झलक नजर आयी। उसको एक घर में भोजन के लिये ले जाया गया तो टेबल-कुर्सी पर भोजन नहीं हो रहा है। भोजन के लिये चौका की व्यवस्था है। उसने देखा भोजन के लिये लकड़ी का पाटा आ गया। पाटे पर भोजन दिया गया है। उसे और भी आश्चर्य हुआ कि बेकरी की ब्रेड जिसे डबलरोटी कहते हैं और जो सारे यूरोप-अमरीका में चलती है वह वहाँ नहीं चलती। वहाँ आ गयी तंदूर की रोटी, चपाती उसने नाम सुना रोटली। अरे! गुजराती शब्द रोटली यहाँ कहाँ से आ गया? उन्होंने कहा, रोटला। बहुत हैरान हुआ। उसने खोज करनी शुरू की तुम लोग कौन हो? उन्होंने कहा हम 'मय' हैं। मय शब्द है उसको, वे लोग Maya (माया) कहते हैं। खोजते-खोजते पता चला मय दानव था। जिसकी पुत्री मंदोदरी रावण को ब्याही हुई थी। मय दानव बहुत बड़ा सरदार था दैत्यों का। मय जो अंग्रेजी में लिखा जाता है उसको माया (Maya) लिखते हैं। उसने उनके मंदिरों में जाकर देखा, म्यूजियमों में जाकर देखा तो सूर्य के मंदिर हैं। विष्णु की मूर्ति, शय्याशायी विष्णु को देखा, दुर्गा को देखा। तो देखकर हैरान हो गया। यह क्या शिव, गणेश यह क्या है? चर्चों में जाकर देखा तो चर्चों के कोने में कहीं स्वस्तिक का चिह्न है, कहीं ओम् लिखा है कहीं घण्टी

लटक रही है उसने पूछा तुम लोग कौन हो? उन्होंने कहा 'मय' हैं 'माया' हैं। उसने खोज करनी शुरू की। मैक्सिको, बुल्गेरिया, पीरू, कोलम्बिया, अर्जेण्टाइना—सबमें खोज करनी शुरू की। उसने एक पुस्तक लिखी Hindu America वह अमरीका में 30 डालर की बिकती थी। भारत में भारती विद्या भवन मुम्बई ने ढाई रुपये में छापा है। मैं जो बोल रहा हूँ उसके चित्र भी दिये हैं। History of मैक्सिको। मैक्सिकन सरकार ने छापी है—उसने पृष्ठ तीन पर लिखा है—सबसे प्रथम वो लोग जिन्होंने उस धरती पर पांव रखा है जिसे आज अमरीका कहा जाता है वे ही लोग थे जो भारत से दक्षिण पूर्व एशिया की ओर चले, वहाँ अपनी संस्कृति का प्रसार करने के लिए दक्षिण पूर्व एशिया के साढ़े तीन हजार द्वीपों में, इंडोनेशिया में प्रचार करने के बाद वे लोग प्रशान्त महासागर से सीधे अमरीका जा पहुँचे।

अब आप मेल बैठा कर देख लीजिये। राजा अग्रसेन के पुत्रों के विवाह यदि पाताल देश में हुए हैं तो भारत की संस्कृति वहाँ पहुँची। उसके प्रमाण मिल रहे हैं। उस पर उन्होंने पूरी रंगीन फिल्म बनायी हिन्दू अमरीका। उन्होंने पुस्तक छापी हिन्दू अमरीका। उस पर उसने पंडित नेहरू को व डॉ. राधाकृष्णन् को लिखने को कहा। पंडित नेहरू ने भूमिका लिखी। डॉ. राधाकृष्णन् ने भूमिका लिखी।

अतः जो कल तक ऐसे अध्याय थे जिन पर विश्वास नहीं होता था, जिसको लोग कल्पना कहते थे वे आज प्रकट होने लग गए। इसलिए यह इतिहास कहता है कि उनके बेटों ने अमरीका में विवाह किया, तो उसमें कोई अत्युक्ति नहीं है। अचम्भे की कोई बात नहीं है।

नाग शब्द जो है जाति का नाम है। दो प्रकार की जातियाँ थी। टेगों और टोटिल। टेगों जो किसी विशेष वस्तु से, किसी विशेष पशु से घृणा करती थी, परहेज करती थी। जैसे मुसलमानों के लिए सूअर टेगों है, गाली है। और टोटिल जाति कौन है? जो किसी पशु को पवित्र मानकर उसकी पूजा करती थी। नाग की पूजा करने वाले नाग कहलाने लगे। इसलिए नागालैण्ड के नाग नाग की पूजा करते हैं। छोटानागपुर के नागवंशी नाग के पुजारी हैं। नागपुर के रहने वाले लोग नाग के पुजारी हैं। इसलिए नागालैण्ड के रहने वाले या छोटानागपुर के रहने वाले हैं, नागों की परम्परा है। इसमें कौन अचम्भे की बात है। डॉ. कालीदास नाग इतने बड़े महान् विद्वान् थे, M.A.Ph.D. थे, हिन्दू महासभा All India के President थे। तो वो नाग 'सांप' थोड़े थे। वे तो मनुष्य ही थे। इसलिए ऐसे परम्परा वाले लोग नाग हैं। यदि आपको अवसर मिले तो रावदी या रांची से 11-12 मील की दूरी पर एक स्थान है वर्मा। वहाँ साल में एक बार मेला लगता है। अब मेला लगने वाला है। विजयादशमी के पांच दिन बाद मेला लगता है। विजयादशमी के पांच

दिन बाद जो आश्विन की पूर्णिमा आती है दो-तीन दिन का वनवासियों का आदिवासियों का छोटानागपुर का सबसे बड़ा मेला होता है। वहाँ जाकर देख लेवें। भिन्न-भिन्न चिह्न वाले सब वनवासी अपने वैसे रूप बनाये हुए, बंदर, भालू, सिंह ये सब रूप बनाये हुए, नाग सब झण्डे लिये हुए हो-हु नाचते कूदते हैं। उत्सव मनाते हैं।

इसलिए इस प्रकार की जातियाँ थी। इसलिए उसमें भी कोई अचम्भे वाली बात तो नहीं हो सकती है।

यदि कोई है सबसे बड़ी घटना वाली बात तो राजवंशी लोगों ने राज्य छोड़कर व्यापार का धंधा कब से अपनाया। सिर को देखो तो राजा के। इस पर बहुत बड़ी खोज करने की आवश्यकता है कि व्यापार के धंधे में कब से आ गए? यदि मान भी लिया कि उनकी संतानों ने व्यापार भी किया। तो बहुत श्रद्धा से, आदर से इस समाज को नमस्कार करता हूँ कि भारत की जाति प्रथा, जाति व्यवस्था, काफी बिगड़ गई और दयानन्द सरस्वती ने कहा भारत की वर्ण व्यवस्था जो कभी इसकी जीवन व्यवस्था थी वह वर्ण व्यवस्था आज इसकी मरण व्यवस्था बन गई है— उन्होंने यहाँ तक कह दिया है। मैं उतनी दूर तक तो नहीं जाऊंगा पर इतना अवश्य कहूँगा कि काफी विकृत हो गई है। हर जाति ने दूसरी जाति के काम-धंधों में हाथ डाल दिया। शर्मा, Shoe factory शुरू हो गई। शर्मा ने जूते का कार्य करना शुरू कर दिया है। वर्मा shoe factory बन गई। सब काम गड़बड़ा गया है और कई शूद्र लोगों ने कहा हम भी सेना के अधिकारी बनेंगे। सेना में भरती हो गये, सेना का क्षत्रिय का काम शुरू कर दिया। इसलिए सबने अपने-अपने धंधे छोड़ दिये। केवल एक समाज है जिसने अपने व्यवसाय को आज तक छोड़ा नहीं, व्यवसाय के प्रति सच्चा रहा तो वह अग्रवाल समाज है। यह अपने कर्म में पक्का है। दूसरे के कर्म में टांग नहीं अड़ाई। किसी के धंधे के प्रति ख्वाहमख्वाह ललचाई दृष्टि नहीं रखी। अपना धंधा छोड़ा नहीं। अपने कर्म के प्रति सच्चा है और अपने कर्म के प्रति इतना सफल है कि इसकी सफलता पर पूरा देश टिका हुआ है। इसने जो धन उपार्जन किया, व्यवसाय किया, हमारे धन की वृद्धि की। इसने जो धन कमाया, इसने जो व्यवसाय में हमारे देश की वृद्धि की उस पर देश की खुशहाली टिकी हुई है। यदि पूरे देश की धुरी को कोई थामे हुए है तो यह समाज थामे हुए है। इसने अपनी धुरी नहीं छोड़ी, अपना व्यवसाय नहीं छोड़ा। व्यवसाय के प्रति सचाई से, ईमानदारी से लगा हुआ रहा। दूसरी ओर देखा कहीं, झांका नहीं, नौकरी-चाकरी की ओर मुंह नहीं डाला, नहीं ललचाया अपने व्यवसाय में दत्तचित्त होकर तन-मन-प्राण से लगा और उसको सफल करके दिखाया यह उसकी महानता है। कोई भी इस कार्य में लगा हुआ व्यक्ति असफल नहीं हुआ। इन्होंने मिट्टी को सोना बनाकर दिखा

दिया। इसलिए इस देश को समृद्ध बनाने वाले, इस देश को धनवान बनाने वाले, इस देश को वैभवशाली बनाने वाले ये बंधु हैं महाराजा अग्रसेन की संतति जिन्होंने इस देश को व्यवसाय द्वारा खूब समृद्ध बनाया। यदि देश सोने की चिड़िया था तो इनकी बदौलत था। यदि आज भी कुछ धन इस देश के पास है तो इनकी बदौलत से। यदि देश भविष्य में उठ सकेगा तो इनके द्वारा उठ सकेगा। राणा प्रताप के पास कुछ नहीं बचा। वे स्वयं घास की रोटी खाते थे। घास की रोटी भी बिलाव लेकर चला गया, तो बच्चा रोने लगा तो बच्चे के रोने को देखकर राणा प्रताप की आँखों में आंसू आ गए। सब राजपूत तो साथ छोड़-छोड़ के अकबर के साथ जाकर मिल गये थे। राजपूत सैनिक ने देखा स्वयं राजा तो घास की रोटी खा रहा है, हमें क्या खिलायेगा? हमको देने के लिए वेतन तो है नहीं। स्वयं घास की रोटी पर जीता है। हम, बीबी-बच्चे घास की रोटी पर थोड़े जीएंगे। घास की रोटी पर कोई नौकरी नहीं करता इसलिए सब सैनिक भी साथ छोड़-छोड़ कर चले गए। 30-35 सैनिक बचे थे और तीन-चार सौ भील लोग बचे थे। राजपूत राजा लोग तो पहले ही साथ छोड़ कर जा चुके थे। उन्होंने कहा जिनका इतना बड़ा राज्य सारे भारत में फैला हुआ है, चतुरंगिणी सेना है सब राजपूत राजा भी उसके पास चले गए हैं, सब सैनिक भी चले गए हैं अब उससे लोहा लेना सम्भव नहीं है। इसलिए पहाड़ी पर चढ़कर अपनी चित्तौड़ की भूमि को सलाम किया। आंखों में आंसू बहाए। चित्तौड़ की भूमि 'मैंने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक तुम्हें स्वाधीन नहीं कराऊंगा तब तक में महलों में प्रवेश नहीं करूंगा। सोने-चांदी के पात्रों में भोजन नहीं करूंगा, मैं घास-पात की रोटी खाऊंगा। मेरी प्यारी चित्तौड़ भूमि! किस शक्ति से, किस बल से स्वाधीन कराऊं मेरे पास सैनिक नहीं बचे। मेरे पास कुछ साधन नहीं बचा। इसलिए चित्तौड़ की भूमि मैं तुझे प्रणाम करता हूँ। तुम्हें छोड़ रहा है, स्वाधीनता का पल्ला नहीं छोड़ता, अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ता। मैं तुझे छोड़कर जा रहा हूँ कि मेरे पास सैनिक एवं साधन नहीं बचे। निराश होकर, आंसू बहाकर प्रताप जा रहा है एक बूढ़े व्यक्ति ने आकर प्रताप के चरण थाम लिए। अब आप जाएंगे नहीं। स्वाधीनता के महान् सैनानी आप नहीं जायेंगे। कहाँ जा रहे हो प्रताप? उन्होंने पूछा कौन है चरणों में? भामाशाह। भामाशाह आप! हाँ मेरे पूर्वजों ने आपकी सेवा की थी। आप चित्तौड़ की भूमि को छोड़कर के जा रहे हैं मेरा धन किस काम आयेगा। सब धन आपको समर्पित कर रहा हूँ। इससे 16 हजार सैनिक 12 साल तक भोजन कर सकेंगे। प्रताप हैरान! इतना धन आप मुझे किस लिये दे रहे हैं? क्यों दे रहे हैं? यह धन आपका है। यह धन मेरा नहीं हैं। मैं नहीं ले सकता। इदं न मम् यह आपका ही है। भामाशाह आंसू भर के कहता है आपका है, चरण पकड़ कर कहता है आपका है। दुहाई आपके नाम की। देश की इज्जत की। यह आपका है इसे आप स्वीकार करें, इसे ठुकराये नहीं। इस प्रकार का इस देश का वैश्य, इस देश

का यदि अग्रवाल सेठ ऐसा होगा जो देश की स्वाधीनता के लिए अपनी और अपने पूर्वजों की सारी कमाई को राष्ट्र के चरणों पर चढ़ा देगा। तो फिर इस देश का बाल बांका कौन कर सकता है? यह महान् दिव्य लोग, इतना दिव्य समर्पण जो इनके मन में महाराजा अग्रसेन के काल से चला आया है। इस देश को, समाज को वैभवशाली समाज बनाकर रखा है। और जब तक इस परम्परा को जीवित रखेंगे तब तक हमारा और हमारे देश का बाल बांका कोई नहीं कर सकेगा।

हम लोग प्रायः सोचते हैं पश्चिम की चकाचौंध के सामने हम लोग पिछड़ गये हैं, यह हो गये हैं, वह हो गये हैं। घटिया हो गये हैं। मैं एक उदाहरण देता हूँ कि जो मैं स्वयं जानता हूँ, मेरे एक कोलकाता के मित्र हैं। वो आक्सफोर्ड में पढ़ने के लिये गये। तो वहाँ से पढ़-लिख कर आये। एक-दूसरे ऑक्सफोर्ड के मित्र प्रो. को Research कराने के लिये National लाइब्रेरी ले जाते थे। वहाँ से लौटते खिदिरपुर में किसी दूकान में चाय पीते थे। दूकान का मालिक धोती पहने हुए, यज्ञोपवीत पहने, बहुत गर्मी होने से पसीने से लथपथ गंजी उतार कर रख देता था। और गंजी पहना हुआ भी होता था तो वह पसीने से भरी हुई, ग्राहकों से पैसा लेने में और नौकरों को डांटने में लगा हुआ, छोटी सी दूकान थी। तो वह ऑक्सफोर्ड का प्रो. कहता था कैसी दूकान है? गन्दा भारत है, गरीब भारत है इन लोगों के कुछ नहीं हैं, न होटल रखना आता है और न कुछ रखना आता है। देखो, इंग्लैण्ड में जाकर देखो होटल। First class होटल है एक मक्खी नहीं, कूड़ा नहीं। कुछ भी कूड़ा-कचरा नहीं है। वहाँ इतनी आलीशान बिल्डिंग बनी होती है। यहाँ कुछ नहीं है। एक फूस की झोंपड़ी खड़ी कर ली है और वहाँ दूकान चला रहा है। यज्ञोपवीत पहने बैठा है तिलक लगा लेता है कहाँ का बनिया है जी। अजीब आदमी है। बड़ा घटिया आदमी है। हमारे यहाँ होटल का मैनेजर देखो कितना बढ़िया आदमी है। कितना सूट-बूट-टाई लगाकर रहता है। वहाँ होटल में मालिक है, मैनेजर है, वहाँ होटल में बेंड-बाजा बजता है। नंगा नाच होता है यह होता है, सब लोगों के लिये बढ़िया-बढ़िया सामान आता है। कितनी सफाई है। मैं हिन्दुस्तान से घृणा करता हूँ। रोज-रोज यह कहता था। दोनों ही भारतीय थे। पर एक इंग्लैण्ड का बुखार लेकर आया हुआ था। इसलिए इंग्लैण्ड का बुखार वाला रोज गालियाँ देता था। आलोचना करता था। धिक्कारता था। गन्दा भारत, गन्दा भारत।

एक दिन लाइब्रेरी में ज्यादा देरी हो गई। लौटकर आए तो सारा बाजार बंद हो गया। उन्होंने कहा भई आज तो नाश्ते का, भोजन का स्थान नहीं बचा। जिस होटल में रोज चाय-वाय पीते थे उन्होंने भी अपने दरवाजे आदि झुका दिये थे। मालिक ने कहा होटल बंद हो चुका। ऑक्सफोर्ड वाले प्रोफेसर ने झांक कर देखा तो भीतर अन्दर चूल्हे पर कुछ रोटियाँ बन रही थी। उसने रोटियों की ओर संकेत

करते हुए कहा रोटियाँ तो बन रही है। मालिक उन्हें भीतर ले गया और आदर पूर्वक स्वयं दो थाली में भोजन परोस कर लाया, उन्हें उस दिन बड़ी तृप्ति हुई। वे विस्मय में थे कि जो मालिक स्वयं गद्दी पर बैठे हुए नौकरों से काम कराता था वह स्वयं अपने हाथ से इतनी सेवा क्यों कर रहा है? भोजन के उपरांत जब ऑक्सफोर्ड वाले प्रोफेसर ने पूछा कि बिल कितना हुआ, तो मालिक ने हाथ जोड़कर कहा हमें लज्जित न करें। हमारा होटल बंद हो चुका। यह भोजन आपको अतिथि रूप में कराया। पैसे का नाम लेकर अतिथि धर्म को कलंकित मत कीजिये। प्रोफेसर ने बहुत कहा कि दूकान तो यही है, यहीं पर दोनों सामान बनते हैं। पर मालिक ने कहा कि दूकान की अपनी मर्यादा है। दूकान बंद हो चुकी है। पर भोजन दूकान के लिये नहीं हमारे निजी प्रयोग के लिये बन रहा था। इसका पैसा लेने से हमारा धर्म नष्ट हो जायगा। इस दृश्य से उस प्रोफेसर की आंखें श्रद्धा से गीली हो गई और उसने कहा—This is Wonderful India. इंग्लैण्ड में होटल में भोजन करने पर सगे भाई से भी चार्ज किया जाता है। किंतु भारत में नितान्त अपरिचित व्यक्ति को निष्काम भाव से भोजन कराना अतिथि धर्म माना जाता है। उस दिन उसे समझ आया कि भारत के निर्धनता के फटे चिथड़ों के नीचे भी भारत की दिव्य आत्मा छिपी हुई है। अतः उस दिव्यता को समझते हुए स्वयं के विषय में और देश के विषय में ग्लानि नहीं आत्मगौरव का भाव जगायें। कुछ काल के लिये हम दब अवश्य गये हैं। पर अब भारत उठ कर रहेगा।

हम भारत की दिव्य परम्परा, अपने पूर्वजों की पुण्य परम्परा को, वीर परम्परा को अपने हृदय में संजोते हुए आगे बढ़ें तो हमें यशस्वी होने से कोई रोक नहीं सकता। पुनः भारत के जगद्गुरुत्व में कोई आंच नहीं आ सकती। हम महान् भारत के महान् पुत्र-पुत्रियाँ सिद्ध होंगे। सारा विश्व पुनः हमें आदर्श के रूप में स्वीकारने को बाध्य होगा। अग्रसेन महाराजा की जय।

'हमें भारत एवं भारतीयता में अवश्यमेव विश्वास होना चाहिए, और ऐसा कभी नहीं होना चाहिए कि हम भारत माता के प्रति मात्र मौखिक प्रशस्ति के नारे भी लगाते रहे तथा साथ-साथ सदा उसे अमरीका, तुर्की, इंग्लैण्ड या रूस की भोंड़ी प्रतिलिपि बनाने का प्रयास भी करते रहें।'

योगी कृष्ण प्रेम

(पूर्व में, इंग्लैण्ड निवासी प्रो. रोनाल्ड निकसन)

नववर्ष मंगलमय हो

सारा ब्रह्माण्ड काल के हाथ में एक खिलौना है। हरक्लाइटस, बुद्ध और बर्गसन जैसे विद्वानों का मत है कि हम एक ही वस्तु को दो बार नहीं छू सकते या कोई शब्द दुबारा बोल नहीं सकते अथवा किसी क्षण में दुबारा जी नहीं सकते। इसका अभिप्राय है कि समय की गति इतनी तीव्र है कि कोई भी क्षण दुबारा नहीं आता। इसलिए हर क्षण एक नया क्षण होता है, हर दिन एक नया दिन और हर वर्ष एक नववर्ष होता है। हर परिवर्तन क्रिया की तरह समय के परिवर्तन के भी अपने अच्छे और बुरे पक्ष हैं। हम गुजरे हुए समय को उसका अन्त मानते हैं और आने वाले हर क्षण का त्योहार की तरह स्वागत करते हैं। भूतकाल को भुला देना हमें कुछ भारी-सा लगता है किन्तु इससे भविष्य का स्वागत करने के लिए हमें एक नई चेतना, सौन्दर्य और उल्लास मिलता है। अंग्रेजी के महान् लेखक 'लॉर्ड टेनिसन्' का मानना है कि वर्ष के अन्त में जब मन्दिरों और गिरजाघरों में घंटियाँ बजती हैं तो इन घंटियों का गुंजन नववर्ष का स्वागत भी करता है। समय की परिवर्तनशीलता के विषय में इस लेखक का कहना है कि भूतकाल जब पीछे हट जाता है उसका स्थान लेने के लिए वर्तमान अपने आप आ जाता है। भगवान् ने प्रकृति का यह नियम इसलिए बनाया है कि जीवन में सदैव नवीनता, ताजगी और उल्लास भरा रहे। प्रसिद्ध कवि 'शैले' अपने काव्य में बहुत सुन्दर ढंग से कहते हैं, 'यदि शीतकाल आ गया है तो क्या वसंत ऋतु बहुत दूर होंगी!'

पिछला वर्ष जाते-जाते ठण्डक और कार्य क्षीणता, तमस आदि क्रिसमस के हिमपात के अन्दर दब जाते हैं और दूर क्षितिज पर एक नई उमंग, आशा और प्रेम का संदेश लिए सुखदायक सूर्य का उदय होता है। हजारों वर्षों से मानव जाति की असंख्य पीढ़ियों ने नववर्ष के सूर्योदय का नव-जीवन, आशा, शौर्य एवं हर्ष के रूप में स्वागत किया है।

मानव जीवन में एक अजीब तमस या निष्क्रियता आ जाती है, जिससे वह वर्तमान से कुछ अधिक मोह करने लगता है। किन्तु सभी साहित्यिक, सामाजिक, आर्थिक उन्नति रुक जायेगी यदि मानव केवल वर्तमान से चिपका रहे। नवीनता

की इच्छा ही मनुष्य को प्रगति के मार्ग पर ले जाती है। करोड़ों दिन और रातें भूतकाल के गर्त में समा चुकी हैं, किन्तु नववर्ष का संदेश हम सब के लिए एक नई आशा की किरण लेकर आता है। हर नया वर्ष हममें एक नई आशा और मनोवैज्ञानिक शक्ति का संचरण करता है।

वर्ष का पहला दिवस कई और प्रकार से भी महत्त्वपूर्ण है। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री प्रिंसिपल बाधवाराम ने समझाया कि वर्ष के पहले महीने का नाम जनवरी एक लैटिन देवता 'जैनूस' के नाम पर पड़ा है। रोमन साहित्य के अनुसार यह देवता 'जैनूस' स्वर्ग के मुख्य द्वारपाल हैं। इस देवता के दो चेहरे हैं। एक सामने भविष्य को देखता है जबकि दूसरा भूतकाल की ओर देखता है। वर्तमान काल में कई लोग धर्म और प्राचीन संस्कृति को अन्धविश्वास मानकर इसका उपहास करते हैं। किन्तु जैसे भूतकाल में धर्म और संस्कृति ने मानवता का मानसिक भरण-पोषण किया वैसे ही ये शक्तियाँ भविष्य में भी मानवता को सक्षम और सबल बनाएँगी। जैनूस का स्वर्ग का द्वारपाल होना एक गहरा अर्थ रखता है। जैसे कोई मुख्यद्वार या गेट से भीतर और बाहर दोनों ओर देखता है, वैसे ही जैनूस का एक चेहरा भविष्य की ओर आशापूर्ण दृष्टि से देखता है तो पीछे का चेहरा भूतकाल की ओर ललचाई नजरों से देखता है। इसी प्रकार नववर्ष का प्रभात, जनवरी का प्रथम दिन आने वाले नये वर्ष को आशापूर्ण नजरों से देखता है, साथ ही गुजरे हुए वर्ष का सिंहावलोकन भी करता है।

नववर्ष के दिन हम भूतकाल का मूल्यांकन एवं भविष्य के लिये मानसिक रूपरेखा बनाते हैं। हमें पिछले वर्ष के कार्यकलापों का निष्पक्ष आकलन करना चाहिये ताकि पहले की गलतियों की नववर्ष में पुनरावृत्ति न हो। हमें अपनी मार्ग दिशा सोच-समझ कर स्थिर करनी है ताकि नववर्ष में जीवन यात्रा, सुखद, सुलभ और हितकारी हो। चैलसा के महान संत कार्लायल ने जो कहा था उसी भाव को भगवद्‌गीता में कर्मयोग के माध्यम से दर्शाया गया है—कर्म ही धर्म है। आइये, हम सब नववर्ष के सूर्योदय के समक्ष, सुसंस्कृति, सभ्य, कर्तव्यपरायण जीवन का व्रत लें ताकि सकल विश्व में ज्ञान का प्रकाश एवं प्रेम, करुणा और सेवा की सुगन्ध व्याप्त हो सके।

हिन्दू धर्म हमारा जीवनप्राण है। जन्म से मरण तक, सूर्योदय से सूर्यास्त तक, इहलोक से परलोक तक हमारे जीवन का प्रत्येक क्षण, हमारा सम्पूर्ण क्रिया-कलाप सनातन हिन्दू धर्म से नियोजित है।

—प्रो. ओबराय

महान् 'संक्रमण' का सांस्कृतिक पर्व : मकर संक्रांति

इस धरणी पर जन्म पाकर जिस महान् जाति ने अपने जीवन के उषाकाल में ही स्वदेश, संस्कृति, भाषा, उत्सव, त्यौहार की परिकल्पना की, सृष्टि द्वारा राष्ट्रीय जीवन की स्रोतस्विनी को प्रवाहित किया, विश्व की उस सनातन जाति की गौरवगाथा इस शस्य-श्यामला भारत भूमि के अणु-अणु में व्याप्त है। आज युगों के पश्चात् भी उसके उत्सवों में एक प्राणदायिनी शक्ति, कर्तव्यपथ पर बढ़ने के लिए सतत संघर्ष की प्रेरणा तथा उद्बोधन एवं नवजागरण का महान संदेश निहित है।

धरती माता का जन्मोत्सव

मकर संक्रांति केवल हिन्दू जाति का ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व का सर्वप्रथम उत्सव है। भारतीय धर्म-परम्पराओं एवं ज्योतिष गणनाओं के अनुसार मकर संक्रांति दिवस (माघ मास की सौर गणना का प्रथम दिवस) धरती माता के जन्म का पावन जयन्ती उत्सव माना जाता है। पृथ्वी की उत्पत्ति के विषय में प्रायः सभी धर्मों में बड़ी भ्रान्त कल्पनाएं हैं। कुरान शरीफ के अनुसार पृथ्वी सूर्य के जन्म से पहले ही वर्तमान थी। अल्लाताला ने दुनिया की तारीकी (अन्धेरे) को दूर करने के लिए ही चाँद और सूरज बनाए। ईसाई धर्म का पृथ्वी को चपटा मानना तो इतिहास-प्रसिद्ध है। पृथ्वी को गोल कहने वाले प्रसिद्ध नक्षत्र वैज्ञानिक गेलिलियो को आजीवन दारुण यातनाएँ देकर मारने वाले ईसाइयों की धर्मान्धता पर मानवता अश्रु बहा रही है। इसके विपरीत हमारे यहाँ भूगोल नाम ही पृथ्वी के गोल होने का परिचायक है। मनुस्मृति में केवल पृथ्वी को ही नहीं, वरन् समस्त सृष्टि (ब्रह्माण्ड) को भी अण्डाकार कहा गया है।

मकर संक्रांति धरती माता का जन्मोत्सव माना जाता है। इस दिन धरती सूर्य से पृथक् हुई थी। श्री रघुनाथ दत्त बन्धु ने अपनी पुस्तक 'सनातन धर्म शिक्षक' के चतुर्थ विभाग में पृष्ठ 65 पर त. ब्र. संकेत देकर सम्भवतः सामवेद के तांड्य ब्राह्मण से निम्नलिखित मन्त्र उद्धृत किया है—

तास्मात्तपनाद्वै क्षमोत्क्रम्यमघामाच्र्छत् (त. ब्र. 2/1/3)

अर्थात् उस प्रतप्त सूर्य से (तस्मात् तपनात्) पृथक् होकर घूमती हुई (उत्क्रम्य)

पृथ्वी (क्षमा) मघा नक्षत्र की ओर आई (मघामाच्र्छत्)। उक्त मंत्र के अनुसार मकर संक्रांति के दिन ही प्रतप्त अग्नि पिंड सूर्य से एक ज्वलन्त स्फुलिंग के समान पृथक् होकर हमारी धरती अस्तित्व में आई। पृथ्वी का सूर्य से उत्पन्न होना आज भूगोल का एक प्रामाणिक तथ्य है। हमारे त्रिकालदर्शी ऋषियों को इस तथ्य का ज्ञान होना एक बहुत बड़े गौरव का विषय है। इस विषय में विद्वानों को और अधिक गवेषणा करके तथ्यों को प्रकाश में लाना चाहिए।

धरती का सूर्य को नमस्कार तथा प्रदक्षिणा

उक्त विद्वान् की व्याख्या के अनुसार सूर्य से पृथक् होने पर धरती ने एक भक्त की भांति अपने जन्मदाता सूर्य के सम्मुख अपना शीश झुका दिया तथा सूर्य की गति से गतिमान हुई वह स्वयं भी घूमती हुई भगवान् अंशुमाली की प्रदक्षिणा करने लगी। आज भूगोल ने पृथ्वी की दैनिक और वार्षिक गतियाँ तथा उसके अक्ष का 67 अंश के कोण पर झुका होना स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार सृष्टि के आरम्भ से आज तक हमारी पृथ्वी सूर्य के चारों ओर दो अरब से अधिक चक्कर लगा चुकी है।

उत्तरायण तथा दक्षिणायन का विभाग

उत्तरी ध्रुव के झुके रहने के कारण 6 मास तक उत्तरी गोलार्द्ध सूर्य के अधिक समीप रहता है तब उत्तरी गोलार्द्ध में ग्रीष्म का प्रभाव अधिक रहता है। 6 मास तक उत्तरी ध्रुव सूर्य से तनिक दूर हो जाने के कारण उस उत्तरी गोलार्द्ध में शीत प्रधान ऋतु रहती है तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में ग्रीष्म ऋतु आ जाती है। इस प्रकार धरती के नमस्कार के कारण 6 ऋतुएँ बनती हैं। जब उत्तरी ध्रुव सूर्य के निकट रहता है तो उसे उत्तरायण कहते हैं तथा दक्षिणी ध्रुव के निकट हो जाने के काल को दक्षिणायन कहते हैं।

मकर संक्रांति के मंगलमय पर्व के दिन शीत प्रधान दक्षिणायन समाप्त होकर उत्तरायण आरम्भ होता है। इसका वर्णन स्कन्द पुराण के कुमारिका खण्ड में भी पाया जाता है।

शीत से ठिठुरे हुए जन समाज को नया प्रकाश तथा नई उष्णता मिलती है। शिशिर तथा शीत से म्रियमाण मानव को एक मधु ऋतु के आगमन के सन्देश से नव प्राण मिल जाता है। प्रत्येक अयन को आगे तीन ऋतुओं में विभाजित किया गया है।

उत्तरायण—मकर संक्रांति से आरम्भ—1. माघ व फाल्गुन—शिशिर। 2. चैत्र व वैशाख—बसन्त। 3. ज्येष्ठ व आषाढ़—ग्रीष्म।

दक्षिणायन—रक्षा-बंधन से प्रारम्भ - 4. श्रावण व भाद्रपदवर्षा। 5. आश्विन व कार्तिक-शरद। 6. मार्गशीर्ष व पौष—शीत-हेमन्त।

आजकल के भूगोल शास्त्री केवल चार ऋतुएँ मानते हैं, किन्तु इस प्रकृति के

पालने, हमारे देश में 6 ऋतुएँ हुआ करती हैं तथा यहाँ के जन समाज का जीवन उन ऋतुओं से समरस हो चुका है। भूगोलानुसार उत्तरी गोलार्द्ध में प्रकाश तथा उष्णता की अधिकता लगभग 22 दिसम्बर से प्रारम्भ हो जाती है, किन्तु उत्तरी गोलार्द्ध में बसने वाले हम लोग अनुभव कर सकते हैं कि यह तिथि 21 दिसम्बर की अपेक्षा 14 जनवरी (मकर संक्रांति) हो तो अधिक युक्तिसंगत होगा, क्योंकि माघी के पश्चात् ही ऋतु में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है, दिन बढ़ते हैं तथा रातें घटनी प्रारम्भ होती हैं तथा सूर्य के प्रकाश में उष्णता भी बढ़नी प्रारम्भ हो जाती है। पृथ्वी और सूर्य की एक कथा से एक महान् संदेश भी मिलता है। सूर्य पिता है पृथ्वी पुत्री। पृथ्वी ने अपने जन्मदाता सूर्य से कहा कि मैं तेरे अनुशासन को सर्वदा मानूंगी। उस समय से लेकर आज तक वह सूर्य के आकर्षण से बन्धी हुई, अपने ही संयत ग्रहपथ पर चलती हुई नियमित रूप से सूर्य की प्रदक्षिणा कर रही है। यदि कभी पृथ्वी अपने इस अनुशासन को त्याग दे तो लवमात्र में खण्ड होकर नष्ट हो जाए। इसी प्रकार से समाज में रहने वाले हम व्यक्ति पृथ्वी के समान हैं, तथा हमारा जन्मदाता समाज सूर्य के समान है। हमारा कर्तव्य है कि हम समाज को अपने से बड़ा मानें, उसे शीश झुकायें, उस की गति धारण करें, उसका अनुशासन स्वीकार करें, उसके द्वारा निर्दिष्ट पथ पर ही चलें, तथा सब कार्य करते हुए समाज के गिर्द ही घूमते रहें जैसे भगवान् अंशुमाली के गिर्द नवग्रह घूमते रहते हैं। यदि हम कभी समाज का अनुशासन भंग करने का प्रयास करेंगे तो आकाश में प्रतिदिन टूटने वाले असंख्य तारों के समान खण्ड-खण्ड होकर अपना अस्तित्व खो बैठेंगे।

जब पृथ्वी ने अपनी प्रथम परिक्रमा निर्विघ्न समाप्त कर ली तो वैदिक काल में ऋषियों ने पौष मासांत को अयन की समाप्ति का सूचक यज्ञ किया तथा बड़ा आनन्द-मंगल मनाया गया। 'लोड्ड' धातु का अर्थ है आनन्द मनाना। उसी का बिगड़ कर आज का लोढ़ी शब्द बना है। इस दिन द्विजाति लोग ग्राम्य तथा अरण्य के धान्यों में मीठा मिलाकर वेद मंत्रों द्वारा बड़ा भारी हवन किया करते थे। धीरे-धीरे वेद मन्त्रों का लोप हो गया तथा यह केवल हर्ष का द्योतक रह गया। इसलिए इस का नाम हर्ष की रात्रि होने से लोहड़ी पड़ गया। आज भी फुल्ले तथा चिड़वे रूपी धान्य, रेवड़ी रूपी मिष्टान्न देखकर मूल प्राचीन यज्ञ का अनुमान किया जा सकता है। इस यज्ञ की ज्वालाओं का सन्देश है—अपने मन के कलुष को, पाप को, तुच्छता को, स्वार्थ को त्याग की अग्नि में भस्मीभूत कर दो तथा अन्तर्बाह्य पवित्र बनो, हृदय में ध्येयाग्नि सदा जलती रहे तथा अरमानों की ज्वाला कभी न बुझने पाये। अपने हृदय में स्वदेश-भक्ति की चिनगारी तथा नेत्रों में माँ के वैभव का स्वप्न ले कर हम भारतमाता का भविष्य निर्माण करें। तभी सच्चा संक्रमण होगा।

6 मास का उत्तरायण तैंतीस कोटि देवताओं का दिन तथा 6 मास का दक्षिणायन देवताओं की रात्रि मानी जाती है। भूगोल में यह भी माना जाता है कि

उत्तरायण के समय उत्तरी ध्रुव पर 6 मास का दिन तथा दक्षिणायन के समय वहाँ पर 6 मास की रात्रि होती है। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि हमारे देवता लोग उत्तरी ध्रुव के निवासी होंगे। लोकमान्य तिलक का यह मत कि आर्य लोग उत्तरी ध्रुव के निवासी थे, भी अधिक समीचीन प्रतीत होता है। अस्तु; आज इसका एक सांकेतिक अर्थ भी है। 33 कोटि के देवता वास्तव में 33 कोटि भारतीय जनगण, देवी-देवों के तुल्य ही हैं। आओ, आज देव जागरण के इस पुनीत पर्व पर हम निद्रा में पड़े अपने कोटि-कोटि बन्धुओं को जगायें। आज कोट्यावधि देशवासियों को उद्‌बुद्ध करें, जागृत करें तथा उनमें नवीन प्राण, नवीन चेतना फूंकें एवं एक नव प्रबुद्ध, नव जागृत भारत का निर्माण करें।

प्राचीनकाल में गुरुकुलों में शिक्षा पाने वाले विद्यार्थियों का अध्ययन सत्र तथा अवकाश इत्यादि भी अयनों के अनुसार विभाजित था। प्रथम सत्र (दक्षिणायन) श्रावणी से गीता जयन्ती (5 मास)। शीतावकाश जयन्ती (पौष एकादशी) से मकर संक्रांति से गुरु पूजा (आषाढ़ पूर्णिमा) (5 मास) वर्षावकाश गुरुपूजा से श्रावण (श्रावणी पूर्णिमा) तक (1 मास)।

नए सत्र के प्रारम्भ का सूचक मकर संक्रांति का दिवस हमें अपने जीवन में संक्रमण कर जीवन का नया सत्र प्रारम्भ करने का सन्देश देता है। अपने राष्ट्रीय जीवन में एक नूतन परिवर्तन करने में ही संक्रांति की सार्थकता है।

मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी को महाभारत का महासमर प्रारम्भ हुआ था। उस दिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी ने अर्जुन को गीता का ओजस्वी सन्देश सुनाया। इसलिए इस दिन को गीता जयन्ती दिवस कहा जाता है। इसके पश्चात् 18 दिन तक निरन्तर भीषण युद्ध हुआ। गीता जयन्ती के लगभग 1 मास पश्चात् संक्रांति आती है। इन दिनों भीष्म पितामह शरशय्या पर पड़े हुए थे। उन्होंने शरशय्या पर ही लेटे हुए युधिष्ठिर तथा अन्य पाण्डवों को अमूल्य उपदेश दिया। वे दक्षिणायन में प्राण छोड़ना नहीं चाहते थे, क्योंकि उसमें मरने से मनुष्य चन्द्रलोक में जाता है तथा अपने कर्मों का फल भोगने के पश्चात् पुनः इस पृथ्वी पर जन्म लेता है। जब दक्षिणायन समाप्त होकर मकर संक्रांति के दिन उत्तरायण के सूर्य की स्वर्ण रश्मियाँ नभोमण्डल में अपना नव आलोक बिखेरने लगीं तो उस महामानव ने अपना शरीर छोड़ा। उनका ब्रह्मरंध्र फटा तथा एक दिव्य ज्योति निकल कर आकाश में सूर्य की ज्योति में विलीन हो गई। उस वीरव्रती भीष्म की पावन स्मृति का सूचक मकर संक्रांति का पर्व है। पितामह भीष्म के आदेशानुसार माघी के मंगलमय पर्व पर धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने राजपद ग्रहण किया। इस दिन भारत में एक विश्वविख्यात महासमर के पश्चात् अधर्म का नाश होकर धर्म का मंगलमय राज्य स्थापित हुआ तथा नभोमंडल में फहराती हुई पताका गुंजार उठी—

सत्यमेव जयते नानृतम्।

क्रिसमस भारतीय मकर संक्रांति का पर्व है

धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन मानवीय इतिहास का एक बड़ा रोचक अध्याय है। विश्व में एशिया ही धर्म की संस्कार भूमि है तथा भारत एशिया का हृदय ही है। अपने पाश्चात्य देशों के प्रवास में मैंने ईसाई जगत् का बहुत निकटता से अवलोकन किया। न्यूयार्क स्टेट यूनिवर्सिटी में मैंने एक शोध-पत्र में प्रमाणित किया कि महात्मा ईसा की विचारधारा पर भारतीय दर्शन का सुस्पष्ट प्रभाव है। इसी प्रकार फिलेडेलफिया तथा रोम में कई विश्वविद्यालयों, क्लबों तथा गिरजाघरों में मैंने ऐतिहासिक शोध द्वारा स्थापित किया कि ईसा के जन्म दिवस के रूप में प्रचारित क्रिसमस महोत्सव वास्तव में भारत का प्राचीन मकर संक्रांति (सूर्य-पूजा) महोत्सव ही है।

यह एक शुद्ध ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक शोध का विषय है, इसमें किसी धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक विद्वेष का कोई प्रश्न नहीं। इसलिए संसार के बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों में इन शोध-पत्रों का बुद्धिजीवी लोगों ने स्वागत किया है।

आज संसार के लगभग 70 ईसाई देशों में 25 दिसम्बर के दिन ईसाईयों के जन्मदाता ईसा का जन्म दिवस (क्रिसमस) मनाया जाता है। किन्तु प्रश्न उठता है कि ईसा के जन्म की वास्तविक तिथि क्या हैं?

क्या ईसा दिसम्बर की कड़ाके की सर्दी में पैदा हुए थे? क्या ईसा के जीवनकाल में किसी ने उनके जन्म-दिवस को जाना अथवा माना था? क्या उनके नाम से प्रचारित ईस्वी संवत् के लगभग 400 साल बाद तक भी कभी क्रिसमस का पर्व मनाया गया था? क्या ईसा के जन्म के पूर्व भी 25 दिसम्बर को कोई महापर्व मनाया जाता था? ये सब इतिहास के बहुत बड़े प्रश्नचिह्न हैं? जिनके सम्मुख ईसा-भक्ति (Christianity) से भी बढ़ कर चर्च भक्ति (Churchanity) बहुत अधिक भयभीत है।

ईसा की जन्मतिथि

आज तक विश्व का कोई इतिहासकार महात्मा ईसा की वास्तविक जन्मतिथि नहीं बता सका। इंग्लैण्ड के विश्वप्रसिद्ध दार्शनिक एवं मनीषी बर्ट्रेड रसेल लिखते

हैं, 'ऐतिहासिक दृष्टि से यह बहुत संदेहास्पद है कि क्या ईसा वास्तव में पैदा भी हुआ था या नहीं? यदि वह हुआ भी हो तो हम उसके वास्तविक जीवन के बारे में कुछ भी नहीं जानते।

(Why I am not a Christian, Bertrand Russel P. 21)

इसी प्रकार इंग्लैण्ड के विश्वप्रसिद्ध इतिहासकार आरनल्ड जे. टायनबी (Arnold J. Toynbee) ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ A Study of History के पृष्ठ 70 पर लिखा है—'इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि ईसा ईस्वी संवत् के प्रथम वर्ष में पैदा हुआ था। ईसा के प्रथम शती के प्रथम वर्ष में जन्म की यह मान्यता तो ईस्वी संवत् की छठी शताब्दी तक प्रचलित भी नहीं हुई थी।' इसी प्रकार प्रसिद्ध लेखक एच.जी. वेल्स (H.G. Wells) ने भी ईसा के वास्तविक इतिहास, उसकी वास्तविक जन्मतिथि आदि के विषय में गंभीर संदेह व्यक्त किये हैं।

ईसा के अस्तित्व के बारे में हमारे पास केवल बाइबिल के 4 समाचार हैं— मैथ्यू, आर्क, ल्यूक तथा जॉन द्वारा लिखित समाचार। इनमें कहीं भी ईसा की जन्मतिथि का संकेत नहीं है। इसके विपरीत ट्रुथ सीकर, अमेरिका के संपादक चार्ल्स स्मिथ के अनुसार चौथी शताब्दी तक बाइबिल अपने वर्तमान रूप में नहीं थी। 1647 तक यह विवाद चलता रहा कि बाइबिल के कौन से समाचार प्रमाणिक हैं तथा कौन से अप्रमाणिक। 1647 में वेस्ट मिन्स्टर असेम्बली ने 66 पुस्तकों का अनुमोदन किया। इन पुस्तकों का संग्रह बाइबिल का अधिकृत पाठ माना जाता है और अमेरिका में इसी का बहुत प्रचार है।

अतः बाइबिल के ईसा के जीवन संबंधी चार समाचारों का महत्त्व ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत कम हो जाता है। यदि उन्हें प्रमाण मान भी लिया जाए, तो भी बाइबिल के अन्तर्साक्ष्य के अनुसार ईसा का जन्मकाल का वर्णन यह संकेत देता है कि ईसा का जन्म दिसम्बर की कड़ाके की सर्दी में न होकर ग्रीष्म या वसन्त ऋतु में हुआ होगा, जब इजरायल के चरवाहे रात्रि भर जंगल में भेड़ों की रखवाली करते हुए गीत गाते तथा बंसी बजाते रहे होंगे। इसी प्रकार पनहारन कुएं से पानी भरकर ला रही थीं, जब एक अश्वशाला में ईसा के जन्म का वर्णन किया गया है। यह निश्चय ही इजरायल में 25 दिसम्बर को असम्भव है।

ईसा के दो महान शिष्यों पीटर और पाल (जिन्होंने ईसा को प्रत्यक्ष नहीं देखा था) के जीवनकाल में भी ईसा का जन्मोत्सव पर्व क्यों नहीं मनाया गया था। ईसा के बाद तीसरी शती में मिस्र के ईसाइयों ने 6 जनवरी को ईसा दिवस मनाना आरम्भ किया। किन्तु चर्च ने इसे मान्यता नहीं दी। दूसरी शती में तो कई लोग ईसा का जन्म 20 अप्रेल को तथा कुछ तो 20 मई को मनाते थे। 25 दिसम्बर की प्रथा प्रारम्भ होने के बाद भी विवाद चलता रहा।

अमेरिकन विश्वकोश में कहा गया है कि 'अनेक आधारभूत लोगों के मतानुसार चर्च के प्रारम्भिक शतकों में ईसा का जन्म दिन नहीं मनाया जाता था।'

क्रिसमस से पूर्व प्रचलित मकर संक्रांति पर्व

रोम में ईसाइयत को चौथी शती में सर्वप्रथम मान्यता मिली। उससे पूर्व रोम तथा सारे यूरोप में भी मित्र-पूजा (सूर्य पूजा) प्रचलित थी। रोम की राजधानी में एक बहुत बड़ा सूर्य मंदिर था, जिसे आदित्यालय कहा जाता था। उसी आदित्यालय से दितालय, ऐतालय, इतालय तथा इतालिया (ITALIA) शब्द बने। वहाँ प्रतिवर्ष 25 दिसम्बर को सूर्य पूजा महोत्सव प्रचलित था। भौगोलिक दृष्टि से अभी भी 23 या 24 दिसम्बर को वर्ष का सबसे छोटा एवं सबसे ठण्डा दिन होता है। उसके बाद नई उष्णता, नया जीवन, नया प्रकाश लेकर नये सूर्य का उदय उत्तरायण का सबसे बड़ा महोत्सव होता है। सारे यूरोप में 24 दिसम्बर की मध्य रात्रि के बाद 25 दिसम्बर को सूर्य देवता को बाल-रवि के रूप में पूजा जाता था। इसे आलंकारिक शैली में सूर्य का जन्म उत्सव भी कहा जाता था। ईसाई पादरियों को ईसा की जन्म तिथि अज्ञात होने के कारण सबसे प्रथम सन् 336 में रोम में 25 दिसम्बर को मित्र-पूजा के दिन को क्रिसमस के रूप में मनाया। यह रोम के राजा कांस्टेण्टाइन (Constantine Page 306-7) के राज्यकाल में हुआ, जो पहले स्वयं मित्र पूजक था तथा 313 ई. सन् में ईसाई बना और उसने रोम में मित्र-पूजा (सूर्य-पूजा) पर प्रतिबंध लगा दिया।

चैम्बर्स इनसाइक्लोपीडिया के अनुसार 'पांचवीं' शती के मध्य तक यरूशलम में क्रिसमस का पर्व कोई नहीं जानता था। ईसा की जन्मतिथि, मास और वर्ष के बारे में भी कोई नहीं जानता।'

ऐडविन बीवन (Edwin Bevan) ने अपनी पुस्तक (Christianity in the light of modern knowledge P. 103) पर लिखा है, 'इस बात में संदेह नहीं है कि चर्च ने मित्र पूजा (सूर्य पूजा) के धर्म से ही 25 दिसम्बर (सूर्य के जन्मोत्सव के दिन को) को ही क्रिसमस का उत्सव नियत करने का विचार किया।'

बाइबिल के अनुसार God ने प्रथम छ दिनों में सारी सृष्टि की और सातवें दिन विश्राम किया। और उस दिन हमें ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये। प्रथम छः दिन कहाँ से गिने? जितने भी कैलंडर हैं सबसे ऊपर (प्रथम में) रविवार लिखा होता है। प्रथम दिन Sunday है और इस क्रम में शुक्रवार छठा दिन होता है शनिवार सातवां दिन। इसलिये शनिवार को चर्च लगते थे सारे इजराइल में और सारे यूरोप में ईसाइयत के प्रवेश के पूर्व। यहूदी लोग आज भी शनिवार को चर्च लगाते हैं। सूर्य पूजा रविवार को होती है। सूर्य-मंदिरों में ईसाई पादरियों ने छलपूर्वक प्रवेश

कर रविवार को ही अपनी प्रार्थना-पूजा प्रारम्भ की। कालान्तर में सूर्य मंदिर नष्ट कर गिरजाघर में परिवर्तित कर दिये गये और सूर्यपूजकों को धर्मान्तरित कर ईसाई बना लिया गया। और ईसाइयों ने यहूदियों के सातवें दिन (शनिवार) की पूजा-प्रथा को त्याग कर उसके स्थान पर सूर्य पूजा (रविवार) के दिन को अपनी चर्च-प्रार्थनाओं के लिए पवित्र मान लिया। वे पूर्व दिशा की ओर मुंह करके प्रार्थनाएं करने लगे। मित्र-पूजा तथा ईसाइयत में अनेक समान बिन्दु हैं।

चार्ल्स स्मिथ ने अपनी पुस्तक Bible In The Balance में Henry Bradwick ने अपनी पुस्तक में तथा Arnold J. Toynbee ने अपने ग्रन्थ A Study of History में यही मत प्रतिपादित किया है कि क्रिसमस वस्तुतः मित्र-पूजा का सूर्य पूजा महोत्सव ही है तथा सूर्य का ज्योति मण्डल ईसा के मुख मण्डल के पीछे दिखाकर प्रारम्भ में पादरियों ने भोली-भाली जनता को यह कहकर ठगा कि यह ईसा ही सूर्य देवता है तथा इसकी पूजा ही सूर्य पूजा है। उसे (Sun God) सूर्य भगवान् के स्थान पर Son of God (भगवान का पुत्र) प्रचारित किया जाने लगा।

अयनों के चलन के कारण 100 वर्ष में उत्सव का दिन ऋतु के दिन से एक दिन आगे बढ़ जाता है।

100 वर्ष पूर्व 12 जनवरी को मकर संक्रांति के दिन स्वामी विवेकानंद का जन्म हुआ था। अब मकर संक्रांति पर्व 13-14 जनवरी को पड़ने लगा है। इसी प्रकार 1800 वर्ष पूर्व मकर संक्रांति पर्व 24-25 दिसम्बर को मनाया जाता था। 1800 वर्षों के उपरान्त पर्व की तिथि ऋतु परिवर्तन की तिथि 23 दिसम्बर से 18-19 दिन आगे बढ़ गई है इसलिए आज मकर संक्रांति की ऋतु तिथि 23 दिसम्बर होते हुए भी पर्व तिथि 13-14 जनवरी को मनाई जाती है।

सृष्टि के उषाकाल में गायत्री के मन्त्रोचारण द्वारा जिस भगवान् सूर्यनारायण का स्तवन किया गया, आर्यान (ईरान) से लेकर मिस्र तक जिस सूर्य-पूजा का प्रकाश फैला, जिस मित्र पूजा के विशाल स्मारक सारे यूरोप में ऋषि देश (रसिया Russia) से आंग्लदेश तक फैले, जिसका सबसे बड़ा ऋतुपर्व मकर संक्रांति आज तक परम पवित्र है उसी ज्योतिर्मय सूर्य भगवान की उधार ली हुई उद्धृत ज्योति से क्रिसमस का महापर्व जगमगा रहा है। क्या विश्वभर के ईसाई बन्धुगण सत्य का सम्मान करते हुए क्रिसमस पूजा के पर्व पर उसे अस्तित्व देने वाली भारत की अमर, अविनश्वर ज्योति की कृतज्ञ वन्दनायें करेंगे?

माधुर्य एवं सुवास का पर्व : वसन्त पंचमी

शुक्लां ब्रह्मविचार सार परमामाद्यां जगद् व्यापिनीम्,
वीणा पुस्तक धारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्।
हस्ते स्फटिक मालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थिताम्,
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्।।

●

कत लक्ष वरषेर तपस्यार फले
धरणीर तले
फुटियाछे आजि ए माधवी
ए आनन्द छवि
युगे युगे ढाका छिल अलक्ष्येर
वृक्षेर आँचले।

कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर की इन पंक्तियों में माधव वसन्त की हृदयहारी झाँकी है—'न जाने पृथ्वी की कितने लक्ष वर्ष की तपस्या के फलस्वरूप आज धरती पर मादक माधवी, वसन्त ऋतु प्रस्फुटित हुई है। यह आनन्द छवि युग-युग से पृथ्वी के गर्भ में ही वृक्षों के आँचल के नीचे अलक्ष्य रूप में छिपी पड़ी थी, जो आज वसन्त सुषमा के रूप में प्रकट हो उठी है।'

वसन्त प्रकृति के ललित शृंगार का पर्व है। यह जीवन का अमृत, धरती का यौवन, प्रेम की मादकता भरा माधव, फूलों के नृत्य लालित्य से भरपूर कुसुमाकर, मधु-मधुरिमा की स्रोतस्विनी बहाने वाला मधुऋतु तथा केशरी पाग सजा कर प्रकृति रूपी सुन्दरी को वरने के लिए आने वाला दूल्हा ऋतुराज है।

जहाँ संसार के अन्य देशों में केवल 4 ऋतुएँ ही होती हैं, प्रकृति के पालने, इस भारत देश में—वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शिशिर, हेमन्त और शीत—6 ऋतुएँ वर्ष भर के कालचक्र में घूमती हुई बारी-बारी से आती हैं तथा धरती पर अपना वैभव बिखेर जाती हैं।

सृष्टि का उदय—वसन्त सृष्टि का सर्वप्रथम उत्सव माना जाता है। आनन्दस्वरूप परमेश्वर से ही सारी सृष्टि उद्भूत हुई है। वसन्तोत्सव पर आनन्दामृतत्व परमपुरुष परमेश्वर के दर्शन प्रकृति के माध्यम से होते हैं। तैतिरीयोपनिषद् के अनुसार ब्रह्माजी ने आज ही के दिन सृष्टि की रचना की। कुछ अन्य भारतीय विद्वानों के अनुसार मकर संक्रांति पर्व पर हमारी धरती सूर्य से पृथक् हुई तथा वसन्त के दिन धरती पर चेतना सृष्टि प्रारम्भ हुई। अतः वसन्त चैतन्य का पर्व है।

प्रकृति-पुरुष की लीला का उत्सव—प्रकृति स्वतः जड़ है। किन्तु उसमें चैतन्य का समावेश होने से वह पुरुष की सहचरी बन जाती है। वसन्त उत्सव पर प्रकृति का रोम-रोम खिल उठता है। धरती के कण-कण से फूटने वाले सुन्दर पुष्प उस विराट् की अर्चना करते हैं। धरती स्वयं आकाश से मिलने के लिए आतुर हो उठती हैं। प्रकृति की चरितार्थता पुरुष के पावन मिलन में ही है। जो लोग पुरुष की सत्ता स्वीकार किए बिना प्रकृति का भोग करते हैं वे तो प्रकृति माता को लांछित करने वाले हैं। माता पालन के लिए है, भोग-वासना के लिए नहीं।

सरस्वती माता का उदय पर्व—वसन्त उत्सव सरस्वती-पूजा के नाम से भी विख्यात है। इस दिन सरस्वती माता का प्रादुर्भाव माना जाता है। सरस्वती ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी हैं। गीता में भगवान् कहते हैं—'ज्ञान के समान पवित्र अन्य वस्तु संसार में कोई नहीं है।' वेद कहता है—**'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'**। पुराणों के अनुसार इस दिन भगवान् विष्णु ने स्वयं सरस्वती माता को आशीर्वाद दिया। प्राचीनकाल में गुरुकुलों में नया प्रवेश पाने वाले छात्रों को आज के दिन पाठशालाओं में भेजा जाता था तथा वे सरस्वती कवच के पाठ के बाद अपना प्रथम पाठ सीखते थे।

पंजाब में सरस्वती नदी के पावन तीर पर धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र में सहस्रों ज्ञानसत्र होते रहे हैं। वहीं भगवान् के श्रीमुख से गीता-ज्ञानामृत भी प्रकट हुआ। सरस्वती की अर्चना विश्व भर में प्रचलित हुई। हमारी 'जगद्गुरु भारत प्रदर्शनी' में मंगोलिया से प्राप्त सरस्वती माता का वृहत् चित्र है। वहाँ ब्रह्माजी के समान सरस्वती भी चतुर्मुख है। एक ओर वह वीणावादिनी है, तो दूसरी ओर तारा के समान धर्मरक्षा के लिए ज्वलन्त खड्ग धारण किए हुए है। इसी प्रकार चीन में जेड Jade नामक श्वेत पत्थर की बनी हुई वीणावादिनी सरस्वती की मूर्ति का रंगीन चित्र प्रदर्शनी में संगृहीत है। सारे दक्षिण-पूर्व एशिया में भी भारतीय संस्कृति के प्रसार के साथ सरस्वती पूजन का भी सुन्दर प्रसार हुआ। रूस में लिथूनिया नामक राज्य में एक नदी का नाम 'सरोवती' है, जिसका मूल नाम सरस्वती ही था।

विद्वानों का सम्मान—प्राचीन भारतीय राजा-महाराजा आज के दिन अपने

समय के महान् कलाकारों एवं विद्वानों का सम्मान कर उन्हें बहुमूल्य भेंट देते थे। मानव की मूलभूत चेतना ही कला एवं साहित्य के रूप में प्रस्फुटित होती है। जैसे प्रकृति के अंतस् में छिपी हुई चेतना फूलों के रूप में प्रकट होती है उसी प्रकार मानव के अंतस् की चेतना साहित्य एवं कला के सुन्दर फूलों के रूप में फूट निकलती है। अतः वसन्तोत्सव पर मानव के हृदय-वसन्त के फूलों की सुवास प्राप्त करने के लिए काव्यकला गोष्ठियाँ होती थीं।

श्रीपंचमी

मद्रास तथा महाराष्ट्र में यह उत्सव श्रीपंचमी के नाम से विख्यात है। यह माना जाता है कि समुद्र मंथन से आज के दिन लक्ष्मी का जन्म हुआ। समुद्र मंथन की कथा का संदेश है कि लक्ष्मी परिश्रम से ही प्राप्त होती है। लक्ष्मी जो पद्म-सम्भवा है वह श्रमसम्भवा भी हैं।

लक्ष्मी बनाम सरस्वती—संसार में प्रायः देखा गया है कि जिन्हें लक्ष्मी का वरदान प्राप्त होता है, सरस्वती उन पर रुष्ट ही रहती है। बड़े-बड़े साहूकार प्रायः विद्याविहीन, निरक्षर भट्टाचार्य ही होते हैं तथा बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान् निर्धनता की छाया में पलते हैं। वास्तव में लक्ष्मी का वाहन उल्लू है तथा जो केवल सोने-चांदी के ठीकरों को ढोते फिरते हैं वे उल्लू के समान प्रकाश के प्रति अन्धे तथा मूर्खता के अवतार हैं। सरस्वती का वाहन हंस है जो पावित्र्य एवं विवेक का प्रतीक है। अतः सरस्वती भक्त संसार सागर में तैरने वाले हंस हैं जो नीर-क्षीर-विवेक कर सकते हैं। हंस निर्लिप्त आत्मा का प्रतीक है। अतः परम तत्त्व को पाने वाले महापुरुषों को परमहंस कहा जाता है। लक्ष्मी के भी दो रूप हैं—कुलक्ष्मी का वाहन उलूक है, सुलक्ष्मी का आसन कमल है। वह नारायण की सहचरी, लक्ष्मी, कमला, पद्मा, पद्मसम्भवा है। हंस के समान कमल भी निर्लिप्त आत्मा का प्रतीक है। अतः सच्चे अर्थों में लक्ष्मी के उपासक सरस्वती के भी प्यारे हैं। वसन्त सरस्वती तथा लक्ष्मी की सम्मिलित पूजा का पर्व है।

भाग्य बनाम श्रम—प्रारब्ध और पुरुषार्थ में पुराना संघर्ष चला आ रहा है, लक्ष्मी प्रारब्ध बनाने वाली है, अतः प्रायः अधिकांश लोग उसी का सहारा लेते हैं। योगीराज अरविन्द ने एक दृष्टान्त में इसे स्पष्ट किया है। लक्ष्मी जब धरती पर उतरी तो धरती ने उसे अधर में ही रोकते हुए कहा—शुभे! तुम मर्त्यलोक में आ तो रही हो किन्तु वहाँ की भांति सदैव वरदात्री मत रहना। तुमने हर याचना पर वहाँ वर दे-देकर स्वर्गवासियों को चिर आलसी बना दिया। लक्ष्मी ने कहा—मैं तो वहीं करूँगी जो करती आई हूँ। अपने बेटों की खबर तुम लेती रहना।'....धरती तुनक उठी—'यहाँ मेरी चलेगी, मेरा दूध पीने वाला खुद कमाएगा, तुमसे मांगेगा कभी नहीं।' लक्ष्मी मुसकराई और धरती पर उतर आई। और, धरती आज सौ-सौ आंसू

रोती है कि सौ में निन्यानबे धरा-सुत लक्ष्मी से ही मांगते हैं, पराक्रम से नहीं कमाते।

गाय, पृथ्वी तथा ज्ञान—एक पुराणकथा के अनुसार एक बार आज के दिन अनेक सन्त-महात्मा एकत्र होकर शिव के पास पहुँचे। शिव ने उपदेश दिया—गाय, पृथ्वी तथा सरस्वती ये तीनों माताएँ हैं, इनकी रक्षा करो, सब समस्याएं हल हो जाएंगी। वास्तव में गो रक्षा से कृषि की उन्नति होती है, खाद्य की समस्या हल होती है तथा राष्ट्र का स्वास्थ्य बढ़ता है, पृथ्वी की रक्षा से राष्ट्र का स्वातंत्र्य स्थिर रहता है तथा ज्ञान की रक्षा से मानव की सर्वविध उन्नति संभव है।

मदनोत्सव—वसन्त कामदेव का मादक उत्सव भी माना जाता है। बाइबिल तथा कुरान में एक शैतान की कल्पना की गई है जो खुदा का बड़ा शत्रु है तथा खुदा से निरन्तर संघर्ष में रत है। दोनों धर्म पुस्तकें हमें उपदेश देती हैं कि अपने नेक कर्मों द्वारा खुदा की मदद करनी चाहिए ताकि कहीं शैतान उसको पीठ न लगा दे। इसके मुकाबले में भारतीय संस्कृति में कामदेव स्वयं देवकोटि में गिने जाते हैं। गीता में भगवान् कृष्ण कहते हैं—'धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।' अर्थात् हे अर्जुन! जो काम धर्म के अनुकूल है, वह मैं ही हूँ। वे पुनः कहते हैं— 'प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः'—'प्रजनन करने वाले साधनों में मैं स्वयं कामदेव हूँ।' काम को भारतीय संस्कृति के चार आदर्शों, चार पुरुषार्थों—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में भी स्थान दिया गया है। किन्तु मानव को धर्म के सहित काम एवं अर्थ की संतुष्टि करते हुए अन्त में मोक्ष प्राप्त करना है। काम प्रथम सीढ़ी है तो मोक्ष अन्तिम। प्रथम सीढ़ी पर बैठा रहने वाला ध्येय तक नहीं पहुँच सकता। काम को सर्वस्व मानने वाला राम तक नहीं पहुँच पाता।

वसन्त पंचमी वह ऐतिहासिक दिन माना जाता है जब स्वयं कामदेव ने भगवान् शंकर पर काम प्रहार करने की धृष्टता की। उद्दाम एवं उदण्ड काम पर खुला हुआ शंकर का तृतीय नेत्र प्रत्येक कामांध व्यक्ति के लिए एक ज्वलन्त चेतावनी है। वसन्त कामदेव का सेनापति माना जाता है, पुरुष उसके बाण तथा स्त्रियाँ उसकी सैनिक हैं। फूलों, स्त्रियों एवं वसन्त की मादकता के भीतर भी जो स्थिरचित्त रह सकता है वह शिव है। भगवान् गीता में कहते हैं—'मासानाम् मार्गशीर्षोऽहम ऋतूनाम् कुसुमाकरः।' मैं मासों में मार्गशीर्ष का मास हूँ तथा ऋतुओं में कुसुमाकर वसन्त हूँ।'

बालक हकीकतराय—ऐतिहासिक दृष्टि से वसन्तोत्सव सियालकोट के धर्मी बालक हकीकतराय के बलिदान की पुनीत स्मृति दिलाने वाला है। भारत विभाजन के कारण लवपुरी (लाहौर) में बनी उसी शहीद की समाधि हम से छिन अवश्य चुकी है किन्तु भारत के कोटि-कोटि जनमानस में स्थित उस वीर की स्मृति समाधि पर पुष्प चढ़ाने के लिए ही मानो हर वर्ष वसन्त बहार आती है।

सद्‌गुरु रामसिंह का जन्मदिन—सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में पंजाब ने कोई शोभन कार्य नहीं किया। विशेष रूप से सिक्ख राज्यों ने विश्वासघात किया। उस कलंक को धोने के लिए पंजाब में नामधारी पन्थ का उदय हुआ। इन महान् क्रान्तिकारी-बलिदानी वीरों के पन्थ को जन्म देने वाले इस सद्‌गुरु रामसिंह का जन्म सन् 1815 में वसन्त के दिन पंजाब के प्रसिद्ध नगर लुधियाना में हुआ था। उन्होंने अपने पन्थ में धर्म की पवित्रता एवं देशभक्ति की महत्ता पर बल दिया। पंजाब में अंग्रेजों के शासन को ललकारने वाले नामधारी वीरों के कूका आन्दोलन के जन्मदाता यही थे। अमृतसर के बूचड़खाने को बन्द कर वहाँ के विधर्मियों को कूका वीरों ने कत्ल कर दिया था। उन्हें तोपों से बांधकर उड़ाया गया। इस प्रकार गो रक्षा के कार्य के लिए वे हंसते-हंसते बलिदान हो गए। एक अबोध बालक जिसके ऊपर से तोप का गोला निकल जाता था स्वयं एक पत्थर रखकर उस पर खड़ा हो गया ताकि तोप के गोले से वह भी शहीद हो जाय।

महाकवि निराला

आधुनिक हिन्दी साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ महाकवि, महाप्राण सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का जन्म भी वसन्तोत्सव के पावन पर्व पर ही हुआ था। जीवन में संघर्ष की असंख्य ठोकरें खा कर जिस साहित्य सेवी ने अपनी रसवन्ती एवं ओजवन्ती कला से साहित्य मन्दिर को सम्पन्न किया है, जिसने जीवन का विष पी-पी कर प्रतिदिन समाज को काव्यामृत पिलाया है उस महाकवि निराला का यश निराला ही था। वासन्ती गीतों को गाने वाला यह साहित्य-स्रष्टा हिन्दी जगत् को वसन्तोत्सव की ही भेंट था।

वसन्तोत्सव का संदेश है—मानवता की फुलवारी प्रेम, माधुर्य, वैभव, विज्ञान, स्वातंत्र्य एवं सौन्दर्य के मनोहारी फूलों से सदा झूमती रहे।

ज्ञान, सौन्दर्य, काव्य, कला, लालित्य एवं पावित्र्य की अधिष्ठात्री वीणावादिनी सरस्वती माता से यही अभ्यर्थना है।

'ईसा से अनेक शताब्दियों पूर्व, इंग्लैण्ड-वासी अपनी रंगी हुई देह पर कच्ची खाल धारण करते थे, और जंगलियों की भाँति जंगलों में घूमा करते थे, इतिहास के उस पुराने काल में भी भारत अत्यन्त उच्चकोटि की सभ्यता का आनन्द ले रहा था।'

—लार्ड मैकाले

पर्व की प्रज्ञा को चुनौती

कोटिशः वंदित, जनगण पूजित रामचरितमानस के अमर गायक श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी ने 'मुदमंगलमय संत समाज' की वन्दना करते हुए उन्हें संसार में चलते-फिरते तीर्थ की हृदयहारी एवं भावगर्भित उपमा दी है। मैं एक राष्ट्र के महान् उत्सवों को भी संस्कृति सुरसरी के पावन तीर्थ मानता हूँ क्योंकि वे अपने अविनश्वर संदेश द्वारा जाति को नव जीवन प्रदान करते हैं तथा आत्मगौरव-शून्य जाति के पुनरुद्धार का मार्ग भी प्रशस्त करते हैं। व्यक्तियों तथा जातियों को संकट-सागर से उबार कर उन्हें तारने के कारण हमारे राष्ट्रीय उत्सव पुण्यपावन तीर्थ ही हैं।

होली को मैं भारत की सांस्कृतिक सरिता का आनन्द तीर्थ मानता हूँ। जैसे गंगोत्री से निकलने वाली पावन गंगधारा में अनेकानेक छोटी-बड़ी नदियों का संगम होता रहता है तथा मंदाकिनी की अमृत धारा में विलीन होकर वे भी शुद्धोत्तम बन जाती हैं, उसी प्रकार होली के सर्व प्राचीन पर्व में इतने छोटे-बड़े पर्व घुल-मिल गए हैं कि आज संस्कृति सरिता के जल बिन्दुओं को पृथक्-पृथक् कर उनका काल निर्धारण करना कुछ दुष्कर कार्य बन गया है।

होली का महापर्व आया और चला गया। अनेकों के मुंह लाल, नीले, काले हुए, अनेकों के वस्त्रों पर ही नहीं मान-सम्मान पर भी कीचड़ उछाला गया, चारित्रिक संयम का बांध भी अनेक स्थानों पर टूटा और इसी प्रकार से वारुणी की लाली में भी अनेकों के कलेजे नहाए—और इसे ही हमने होली समझ लिया।

होली पर्व की ऐसी दुर्दशा देख कर अनेकानेक नेतागण खून के आंसू बहा चुके हैं। अनेकों ने उपदेश भी दिए कि होली का परिष्कार होना चाहिए, किन्तु परिष्कार या सुधार न हो सकने में बाधा क्या है? मैं समझता हूँ कि जब तक जनसाधारण को पर्व का यथार्थ महत्त्व समझ में नहीं आता और जब तक नेतागण आदर्श होली का आयोजन करके जनगण के सम्मुख एक मिसाल उपस्थित नहीं करते तब तक होली का परिष्कार कठिन है।

बहुत कम लोग उत्सव के उद्गम का विचार करते हैं। मेरा यह दावा है एक

इस पर्व के इतिहास में सांस्कृतिक महत्त्व की इतनी अधिक सामग्री मिलती है कि यदि देश के गवेषणात्मक प्रतिभा वाले विद्वान् इस ओर ध्यान देवें तो भारत के ही नहीं वरन् विश्व के सांस्कृतिक इतिहास का एक भूला हुआ अध्याय पुनः प्राप्त हो जाए। अतः यह पर्व देश की पुरातत्त्वान्वेषी प्रतिभा को चुनौती है।

चन्द्रमा जयन्ती—पं. हनुमान शर्मा ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक व्रत परिचय में फाल्गुन पूर्णिमा की महिमा का बखान करते हुए लिखा है कि इसी दिन चन्द्रमा प्रकट हुआ था। अतः इस उत्सव पर चन्द्रोदय के समय चन्द्रमा का पूजन करने का विधान है। यह एक नक्षत्र वैज्ञानिक खोज का सुन्दर विषय है। हमारे प्राचीन वाङ्मय में ज्योतिष को वेद का नेत्र कहा है। वेदों में अनेकानेक नक्षत्र वैज्ञानिक तथ्य बिखरे पड़े हैं जिनको देखकर पश्चिम के बड़े-बड़े वैज्ञानिक दांतों तले उंगली दबा लेते हैं। सूर्य से पृथ्वी का जन्म, पृथ्वी का सूर्य की परिक्रमा करना तथा पृथ्वी का गोलत्व इत्यादि महान् तथ्य वेदों में वर्णित मिलते हैं। वेदों में चन्द्रमा पृथ्वी के उपग्रह के रूप में वर्णित है, उसका पृथ्वी की परिक्रमा करना भी वेदों में प्रमाणित है। तैत्तरीय संहिता में लिखा है—

सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः। (तै. सं. 3/4/7/1)

अर्थात् चन्द्रमा सूर्य की रश्मियों से प्रकाशित होता है। महाभारत (शांतिपर्व अ. 100) में लिखा है—'यथा हिमवतः पार्श्व पृष्ठं चन्द्रमसो यथा। न दृष्टपूर्वे मनुजैः' अर्थात् जिस प्रकार हिमालय का पार्श्व देखने पर पृष्ठ नहीं दिखता वैसे ही चन्द्रमा का पूर्व भाग मनुष्यों को दिखाई नहीं देता। ये सब ऐसे विस्मयकारी नक्षत्र वैज्ञानिक सत्य हैं जिन्हें विज्ञान ने अभी कल ही खोजा है। किन्तु हमारे धर्मग्रन्थों में ये तथ्य अनादि काल से ही प्राप्त होते हैं।

भारत के नक्षत्र वैज्ञानिकों तथा ज्योतिषियों का परम कर्तव्य है कि इस विषय में पर्याप्त खोज करके कलानिधि चन्द्रमा का जयन्ती उत्सव खूब धूमधाम से मनाना प्रारम्भ करें। आज जब रूस कृत्रिम चाँद बनाने का उपक्रम कर रहा है तब क्या भारतवासी अपने पूर्वजों की असली चाँद के बारे में की हुई खोजों को भी भुला कर चन्द्रमा जयन्ती पर मुंह काला करके हिजड़ों के समान स्वांग भर कर ही होली मनाते रहेंगे?

सूर्य पूजा—कुछ विद्वानों के अनुसार यह सूर्य भगवान् की अर्चना का दिन है। इसके कारण के बारे में विद्वानों की सहमति नहीं है। पूर्णिमा वह पुनीत दिन है जब सूर्य की सम्पूर्ण किरणें चन्द्रमा पर पड़ सकती हैं तथा पूर्ण चन्द्र नवनीत के गोले के समान अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता है। होली रंगों का उत्सव है। सभी रंग सूर्य के श्वेत प्रकाश से ही निकले हैं। इन्द्रधनुष में प्रकट होने वाले सात रंग ही सूर्य के रथ

के सात घोड़े हैं। सूर्य पूजा संसार के अनेकानेक देशों में प्रचलित है। स्वस्तिक का चिह्न मूलतः सूर्य का चिह्न ही माना जाता है। भारत ने तो ईश्वर को भी सूर्यात्मा, सूर्य-नारायण, हिरण्यगर्भ, सविता इत्यादि नामों से गाया है। इस विषय में भी पर्याप्त अनुसन्धान करने की आवश्यकता है। क्या कोई इस चुनौती को स्वीकार करेगा ?

वसन्तोत्सव—महासूर्य से जन्म पाने के पश्चात् धरती सदा सूर्य के प्रति किसी अनिर्वचनीय प्रेम से खिंची रही है। आज तक वह सूर्य की परिक्रमा कर रही है, धरती के उत्तरी ध्रुव के तनिक झुके रहने के कारण ही धरती तल पर भिन्न-भिन्न ऋतुएं संभव हो सकी हैं। प्राचीन वाङ्मय के अध्ययन से पता चलता है कि पहले वसन्त उत्सव होली पर ही मनाया जाता था इसलिए इसे 'कामदहन' भी कहते थे। कुछ विद्वानों का मत है कि वसन्त का वास्तविक उत्सव होली (फाल्गुन पूर्णिमा) ही था। किन्तु जब से कामदेव ने माघशुक्ला पंचमी को भगवान् शिव पर आक्रमण करने के लिए उसी समय कृत्रिम वसन्त का वातावरण निर्माण कर दिया तब से वसन्त उत्सव वसन्त पंचमी नाम से रूढ़ हो गया और होली का उत्सव पृथक् हो गया। मध्यकाल में वसन्तोत्सव वसन्त पंचमी से लेकर फाल्गुन पूर्णिमा तक लगभग एक मास और 10 दिन मनाया जाता था। वसन्त में धरती अपने प्रियतम सूर्य के सम्मुख होते ही प्रेमाकुलता से रोमांचित हो जाती है तथा उस पर उगने वाले लता-तृण, वीरुत् इत्यादि उसके तन की रोमावलि के समान लहलहाने लगते हैं। लोकमान्य तिलक ने गीता के आधार पर यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि महाभारत काल में वसन्तोत्सव मार्गशीर्ष मास में पड़ता था। वेद में कुसुमाकर को— 'मुखं ऋतूनाम्' कह कर सृष्टि की सब से पहली ऋतु कहा गया है। यह भी माना जाता है कि धरती पर चेतन सृष्टि उसी दिन प्रारम्भ हुई। इस प्रकार होली या वसन्तोत्सव (फाल्गुन-पूर्णिमा) चेतन सृष्टि का सब से प्रथम उत्सव सिद्ध होता है। जब से मानव ने होश संभाला होगा उसने अपने चहुँ-ओर प्रकृति की रंगीन छटा को निखरे हुए पाया होगा। अतः मानव की प्रकृति में प्रथम आह्लाद का परिचायक यह होली उत्सव है। इस विषय में भी काफी अनुसन्धान की अपेक्षा है।

मनु जयन्ती—मानव-जाति के आदि वंशधर भगवान् मनु का जयन्ती उत्सव भी फाल्गुनी पूर्णिमा को माना जाता है। श्री रघुनन्दनदत्त बन्धु ने अपनी पुस्तक 'सनातन धर्म शिक्षक' के पृष्ठ 102 पर यह तथ्य वर्णित किया है। श्री ब्रह्मदत्त शर्मा के 14 मनुओं में से 5 की जन्म तिथियाँ पूर्णिमाओं पर पड़ती हैं। पुराणों के अनुसार भी वर्तमान मन्वंतर के आदिपुरुष वैवस्वत मनु का जन्म फाल्गुनी पूर्णिमा को हुआ था। यह बड़े गौरव का विषय है कि हम मानवों के आदिम-वंशधर मनु का जन्मोत्सव हमारे वाङमय में उल्लिखित है। मनु के पुत्र होने के कारण ही हम मानव, मनुज या मनुष्य हैं। अंग्रेजी का मैन शब्द भी मनु से निकला है। उस

आदिम पुरुष को ही पश्चिमी साहित्य Adam बाबा आदम कहते हैं तथा उसी की सन्तति आदमी हैं।

जल प्रलय के बाद केवल मनु ही शेष बचे थे अतः उन्हें शिष्ट (अवशिष्ट या बचा हुआ) माना जाता है उन 'शिष्ट' (मनु) को ही आचार नीति का आदिगुरु मानते हैं। उन 'शिष्ट' द्वारा प्रतिपादित आचार को ही 'शिष्टाचार' कहा जाता है। हमारे राज्य शासन, धर्म विज्ञान तथा दंड-विधान पर आज तक भी भगवान् मनु की 'मनु स्मृति' की अमिट छाप है। आज के कदाचार, दुराचार तथा व्यभिचार के युग में हमें अपने आदि पितामह मनु का सिखाया हुआ शिष्टाचार तथा सदाचार पुनः सीखना होगा। शास्त्र साक्षी हैं—'आचार हीनं न पुनन्तिवेदाः' अर्थात् आचारभ्रष्ट व्यक्ति को स्वयं वेद भी पवित्र नहीं कर सकते।

मानवता के मूल, भगवान् मनु की पावन जयन्ती के विषय में खोज करने के लिये क्या कोई मनु का बेटा पर्व की चुनौती स्वीकार करेगा?

प्रह्लाद विजय होलिका दहन—रावी के पार जो भारत का अंग कट कर आज पाकिस्तान कहा जाता है उसी पश्चिमी पंजाब में मूलत्राण (मुलतान) नगर को धर्म का त्राण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सत्युग में वहाँ असुर राजा हिरण्यकशिपु राज्य करता था। उसके धर्मात्मा पुत्र प्रह्लाद की गाथा किसने नहीं सुनी होगी। जो प्रश्न हमारी प्रज्ञा को चुनौती देता है वह यह है कि क्या प्रह्लाद की गाथा गाथा ही बनी रहेगी या कभी भारत के इतिहास में स्थान पायेगी। सतयुग कितने वर्ष पहले की कहानी है? असुर कौन थे? श्री रांगेय राघव के अनुसार वे असीरीया से आने वाले विदेशी आक्रमणकारी थे। ईरान के असुरों ने अपने ईश्वर को भी 'अहूर मजदा' (सबसे बड़ा अहुर) मान लिया था। श्री उमाकान्त आप्टे ने अपने ग्रन्थ 'हमारे राष्ट्र जीवन की परम्परा' में हिरण्याक्ष का अर्थ वह असुर जिसकी आंख (अक्ष) भारत के हिरण्य (सोने) पर लगी हुई थी।

उन्होंने वराह अवतार का स्थान काश्मीर में वाराहमूल (बारामूला) माना है। जनगण का जंगली शूकर के समान एकदम उमड़ कर हिरण्याक्ष को मार डालना ही वराह अवतार माना गया। उसी हिरण्याक्ष का छोटा भाई हिरण्यकशिपु भारत की सोने की चिड़िया को हथियाने आया था। प्रह्लाद का जन्म भारत में (मुलतान) में हुआ था। भारत का अन्न-जल खा कर वह भारत भक्त बन गया था। पिता द्वारा अनेकानेक यातनाओं के दिये जाने के उपरान्त भी उसने भारत भक्ति के प्रण को नहीं त्यागा। माया की होलिका उस को जलाने को उद्यत हुई, किन्तु वह स्वयं जल गई। भारत की धर्मप्राण जनता ने ही नर होते हुए भी सिंह-पराक्रम दिखाया तथा हिरण्यकशिपु का नाश किया। प्रह्लाद का आध्यात्मिक अर्थ भी बड़ा गम्भीर है। क्या कोई भारतीय प्रह्लाद की भारत भक्ति के प्रति कृतज्ञता के भाव से उक्त कथा का ऐतिहासिक शोध कर के भारत के इतिहास को समृद्ध बनाएगा।

ढूंढा राक्षसी और रघु—शास्त्र में कहा है कि इसी दिन महाराजा रघु ने बच्चों को सताने वाली ढूंढा नामक राक्षसी को भस्म कर दिया था। इस विषय में भी ऐतिहासिक अनुसन्धान की आवश्यकता है। ढूंढा कौन थी? उसके नाश का अर्थ क्या है?

नवान्न यज्ञ—होली को नई फसल की खुशी में किये गये यज्ञ का अवशिष्ट रूप भी माना जाता है। जौ की अधभुनी बालियों को भी होलक कहते हैं, यह भी भाषा विज्ञान तथा समाज शास्त्र के अनुसंधान का अच्छा विषय है।

चैतन्य महाप्रभु जयन्ती—फाल्गुनी पूर्णिमा के रजत प्रकाश में 16 वीं शती में भारत में रसावतार भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का जन्म हुआ था। यह कितने खेद का विषय है कि इतनी महान् आध्यात्मिक विभूति के जन्मोत्सव पर हम अश्लील एवं अशिष्ट कृत्यों में उलझे रहते हैं। महाप्रभु की जयन्ती का भी होली पर्व पर काफी प्रचार होने की आवश्यकता है। यह सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं को पर्व की चुनौती है।

शिवाजी जन्म का मूल—16 वीं शती में महाराष्ट्र में एक बार होली के पर्व पर बालक शाहजी तथा नन्ही बालिका जीजाबाई का होली का सुन्दर खेल देखकर सरदार लक्खू जी बोल उठा—'क्या जोड़ी क्या रूप।' इस खेल में ही उनके स्वयंवर की पूर्व-घोषणा हो गई। इन्हीं पवित्र दम्पती से भारत को भारतीयता के प्राणरक्षक छत्रपति शिवाजी महाराज मिले। आज कितने भारतीय माँ जीजाबाई के दुलारे शिवाजी का स्मरण भी होली पर करते हैं?

समानता का प्रिय पर्व—होलिका जलाने की शास्त्र की आज्ञा है कि अछूत के घर के बालकों द्वारा अग्नि मंगवा कर होली को दीप्यमान किया जाय। फिर इस दिन अछूतों से गले मिलने का भी विधान है। इससे प्राचीन वर्ण-व्यवस्था के बारे में दृष्टि मिलती है। काका कालेलकर ने अपनी पुस्तक 'जीवन का काव्य' में होली को 'गुलामों का त्योहार' कहा है। यह युक्ति संगत नहीं प्रतीत होता। यदि हम पर्व का संदेश समझें तो यह शक्ति एवं भक्ति, मुक्ति एवं भक्ति का पावन तीर्थस्थल है। क्या हम पर्व का पावन संदेश सुनेंगे? क्या हम महान् पर्व की महान् चुनौती को स्वीकार करेंगे?

अमृत कुंभ के सुधा बिन्दु

शाश्वत पर्व

इस वर्ष गोदावरी तीर पर, नासिक (पंचवटी) में कुंभ का विराट् महापर्व चल रहा है। कुंभ की गाथा चिर-प्राचीन गाथा है और कुंभ पर्व भारत का चिर नवीन एवं शाश्वत पर्व है। देवों एवं असुरों ने जब समुद्र मंथन किया तो उसमें से चौदह रत्न प्रकट हुए—उच्चेश्रवा घोड़ा, कामधेनु, कौस्तुभ मणि, चन्द्रमा, विष, दिव्यरथ, ऐरावत गज, पारिजात वृक्ष, वीणा, रम्भादि अप्सराएं, लक्ष्मी माता, धनवंतरि वैद्य और अमृत कुंभ।

सुधा बिन्दु

अमृत कुंभ को ले कर देवों और असुरों में छीना-झपटी के समय उसकी कुछ बूंदें धरती पर प्रयाग, हरिद्वार, नासिक एवं उज्जैन में गिरीं जहाँ बारी-बारी से प्रति बारह वर्ष पर कुंभ पर्व आता है तथा वहाँ के पावन जलों में अमृत का दिव्य स्पर्श प्राप्त होता है। कुछ पुराणों की कथा में अपनी माता विनता को उसकी सौत कद्रू (सर्पों की माँ) की पराधीनता से मुक्त कराने के लिए गरुड जी स्वर्ग से अमृत कुंभ ले कर आये थे। उसी अमृत कुंभ के कुछ बिन्दु धरती के चार स्थलों पर गिरने से कुंभ पर्व की परम्परा प्रारम्भ हुई। इन्द्र पुत्र जयन्त सर्पों द्वारा अमृतपान करने से पूर्व ही एक विशाल पक्षी का रूप धारण कर उस अमृत कुंभ को ले कर 12 दिन की उड़ान के पश्चात् पुनः स्वर्ग पहुँच गया। देवों का एक दिन मानवों के एक वर्ष के बराबर होता है। मानव सृष्टि में छः मास का उत्तरायण (मकर संक्रांति से रक्षा-बंधन) देवों का दिन का समय तथा छः मास का दक्षिणायन देवों की रात्रि है। इसीलिए जिस अमृत कुंभ की भू-स्वर्ग यात्रा में देवों को 12 दिन लगे उसका धरती पर पर्व प्रति 12 वर्ष पर मनाने की परम्परा चली आ रही है।

अनन्त की वंशी

पुराण काल की ये दिव्य-मधुर कल्पनाएं भी हमारे मानस को विकसित कर अनादि-अनन्त की वंशी की टेर के प्रति जागृत कर देती हैं। आधुनिक मनोविज्ञान

भी स्वीकार करता है कि उदात्त भावनाओं से मानव मन का परिष्कार होता है तथा दूषित भावनाओं से उसका विकार होता है। अपने प्रत्येक छोटे-बड़े कर्म को धर्म से जोड़कर, सभी परम्परागत प्रतीकों में नदियों, पर्वतों, तीर्थों एवं देश के कण-कण में दिव्यता की पावन भावना रख अपने समस्त क्रियाकलापों को, समूचे जीवन को प्रभु समर्पित करने का महान् प्रयास कुंभ पर्व है।

अनेकता में एकता का पुण्य प्रयोग

कुंभ पर्व पर जैसे लाखों लाख श्रद्धालु नर-नारी बिना निमन्त्रण के, देश एवं विदेश से भी अपने घर-घाट एवं सुख-सुविधा का त्याग कर त्याग, तपस्या एवं तितिक्षा का जीवन बिताने के लिए इतने विशाल जनसमूह में एकत्र होते हैं, वह भारतीय संस्कृति की श्रद्धा-परम्परा का अलौकिक चमत्कार एवं भारतीय समाज की शतियों के विदेशी आक्रमणों के उपरान्त भी जीवित रखने का रहस्य-दर्शन है। यह अनेकता में एकता का समाजशास्त्रीय पुण्य प्रयोग भी है। कुंभ हमारी चिर-प्राचीन जाति की संजीवनदात्री प्रयोगशाला है।

नक्षत्र वैज्ञानिक अर्थ

विश्व हिन्दू परिषद के भूतपूर्व महामंत्री श्री रविशंकर आप्टे ने समुद्र मंथन की पौराणिक गाथा का नक्षत्र वैज्ञानिक अर्थ लगाया है। लोकमान्य तिलक के मतानुसार आर्य लोग पहले उत्तरी ध्रुव के निवासी थे जहाँ छः महीनों का दिन और छः महीनों की रात्रि होती है। श्री आप्टे का मत है कि वहाँ उन्हें छः मास के रात्रि काल में केवल 14 नक्षत्रों का परिचय हुआ था। छः मास के लम्बे दिन के समय उन्हें कोई नक्षत्र दिखाई ही नहीं दे सकते थे। जब उत्तरी ध्रुव में हिमयुग आ जाने से वहाँ की जलवायु असह्य हो गयी तो आर्य लोग दक्षिण में भारत भूमि की ओर बढ़े। तब उन्हें आकाश रूपी महासमुद्र में बारी-बारी से क्षितिज पर 14 नए नक्षत्रों के दर्शन हुए जिन्हें काव्य की रोमांचक भाषा में 14 रत्न कहा गया—यथा कौस्तुभ मणि, पारिजात, लक्ष्मी, अप्सरा, वारुणि, धनवंतरि और अमृत कुंभ इत्यादि। अमृत कुंभ ले जाने वाले गरुड को वेदांग ज्योतिष में श्येन (बाज पक्षी) कहा गया है तथा यूनानी पुराण गाथा में उसे Raven (काक जाति का बड़ा पक्षी) लिखा गया है।

गोदा-गंगा

कुंभ स्थल महाराष्ट्र में गोदावरी के तीर पर (नासिक तीर्थ में) है। गोदावरी दक्षिण की गंगा है। पश्चिमी घाट के सह्याद्रि पर्वत की ब्रह्मगिरि चोटी त्र्यंबकेश्वर ज्योतिर्लिंग के पास से, पश्चिम समुद्रतट से मात्र 50 मील दूर से निकल कर गोदावरी पश्चिम की ओर न बह कर पूरे महाराष्ट्र एवं आन्ध्रप्रदेश की 900 मील की यात्रा करके अपना जल भार अथवा कर भार पूर्वी समुद्र की बंगाल की खाड़ी

में समर्पित कर देती है। ब्रह्मदेव की एक कल्पना में से जिस तरह सृष्टि का विस्तार होता है, वाल्मीकि की एक करुणामयी वेदना में से जिस तरह रामायणी-सृष्टि का विस्तार हुआ है, उसी तरह त्रयंबक के पहाड़-कगारों से टपकती हुई गोदावरी में से ही आगे जाकर राजमहेन्द्री की विशाल वारि-राशि का विस्तार हुआ है। आजकल राजमहेन्द्री में भी गोदावरी पुष्करम् का प्रति 12 वर्ष में मनाया जाने वाला प्रसिद्ध स्नानपर्व चलता है।

त्र्यंबकेश्वर ज्योतिर्लिंग

गोदावरी नदी को गौतमी भी कहते हैं। ऋषि गौतम ब्रह्मगिरि में रहते थे। 12 वर्ष तक सूखा पड़ने पर गौतम ने वरुण देवता की उपासना से एक ऐसा कुण्ड प्राप्त किया जिसके अशेष जल से गौतम के आश्रम की खेतियाँ लहलहाने लगीं। अन्य ऋषि चाहते थे कि गौतम अपनी तपस्या के बल से गंगा को खींच कर वहाँ लाये। उन्होंने एक माया की गाय गौतम के खेत में चरने के लिए भेज दी, जिसे हटाने के लिए गौतम ने ज्यों ही कुछ तिनकों से स्पर्श किया, त्यों ही वह माया की गाय मृतप्राय हो कर गिर पड़ी। गौतम ने इस पाप के मोचन के लिए भगवान् शंकर की तपस्या की। तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने ब्रह्मगिरि पर्वत पर दक्षिण गंगा प्रवाहित कर दी तथा स्वयं त्र्यंबकेश्वर ज्योतिर्लिंग के रूप में वहाँ स्थापित हो गए। भगवान शंकर ने अपनी गंगाजल वाली जटा का एक बाल गौतम को दिया और जब जल मृतप्राय गाय पर छींटा गया तो वह स्वस्थ-सजीव हो उठी। गो माता को नवजीवन प्रदान करने के कारण दक्षिण की गंगा गोदावरी अथवा गोदा गंगा कहलाई। ऋषि गौतम की प्रार्थना पर सब देवों ने स्वीकार किया कि प्रति 12 वर्ष पर जब बृहस्पति सिंह राशि में होगा और अमृत कुंभ का पर्व आएगा तब वे सब भी इसी तीर्थ में विराजमान होंगे।

पंचवटी (नासिक)

त्रेतायुग की पंचवटी का नाम ही नासिक है। महर्षि अगस्त्य विन्ध्याचल पार कर दक्षिणापथ में गए तथा पंचवटी पहुँच कर भगवान् श्रीराम के आगमन की प्रतीक्षा करते रहे। उस जनस्थान तक लंका के असुरों की मार पड़ती थी। राक्षस ऋषियों का रक्त पी कर उनकी सूखी हड्डियों के कंकाल फेंकते जाते थे जिससे श्वेत अस्थियों का एक पर्वत-सा बन गया था।

पुनि रघुनाथ चले बन आगे। मुनिवर वृन्द विपुल संग लागे।।
अस्थि समूह देखि रघुराया। पूछि मुनिन्ह लागि अति दाया।।
जानतहूं पूछिय कस स्वामी। समदरसी तुम अन्तरजामी।।
निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुवीर नयन छल छाए।।

निसिचर हीन करहुं मही, भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाई जाई सुख दीन्ह।।

भगवान राम के सुख-दुःख की साक्षी : गोदावरी

काका कालेलकर के शब्दों में, 'श्रीरामचन्द्र के अत्यन्त सुख के दिन इस गोदावरी के तीर पर ही बीते थे और जीवन का दारुण आघात भी उन्हें यहीं सहना पड़ा था।'

है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पंचवटी तेहि नाऊं।।

नासिका छेदन से नासिक

उसी पंचवटी में पाप लम्पटा शूर्पणखा की नासिका कट जाने से उसे नासिक नाम मिल गया। उसी पंचवटी में सीताहरण का दृश्य कितना हृदय विदारक है—

सीता कै विलाप सुनि भारी। भए चराचर जीव दुखारी।।
आश्रम देखि जानकी हीना। भए विकल जस प्राकृत दीना।।

समर्थ गुरु रामदास का तपस्या तीर्थ

छत्रपति शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास ने गोदावरी तीर पर गोबर के हनुमान् की स्थापना की थी। सम्भवतः उनकी भावना यही रही होगी कि यदि रामभक्त, बाल-ब्रह्मचारी हनुमान् पंचवटी में होते तो न सीता उन पर (लक्ष्मण के प्रति कहे कठोर वचन जैसा) तीखा वचन प्रहार करती और न रावण बजरंग बली के रहते सीता का हरण कर सकता। समर्थ गुरु रामदास ने पंचवटी के निकट टाकली स्थान पर एक गुफा में 12 वर्ष तपस्या की थी। वे दोपहर तक गोदावरी के जल में खड़े होकर जप करते तथा दोपहर बाद पंचवटी में मधुकरी (मांग) कर भगवान् राम को नैवेद्य लगाकर भोजन करते थे।

रामराज्य स्थापना की लालसा

काका कालेलकर गद्य काव्यमयी भाषा में गाने लगते हैं, 'माता गोदावरी', राम-लक्ष्मण-सीता से लेकर वृद्ध जटायु तक सब को तूने स्तन्यपान कराया है। तेरे किनारे शूरवीर भी पैदा हुए हैं और तत्त्व चिन्तक भी पैदा हुए हैं और संत भी पैदा हुए हैं तथा राजनीतिज्ञ भी। देशभक्त भी पैदा हुए हैं और ईश-भक्त भी। चारों वर्णों की तू माता है। मेरे पूर्वजों की तुम अधिष्ठात्री देवी हो। नई-नई आशाएं लेकर मैं तेरे दर्शन के लिए आया हूँ। दर्शन से तो कृतार्थ हो गया हूँ, किन्तु मेरी आशाएं तृप्त नहीं हुई हैं। जिस प्रकार तेरे किनारे रामचन्द्र ने दुष्ट रावण के विनाश का संकल्प किया था वैसा ही संकल्प मैं कब से अपने मन में लिए हुए हूँ। तेरी कृपा होगी तो हृदय में से तथा देश में से रावण का राज्य मिट जायेगा, रामराज्य की स्थापना होते मैं देखूंगा और फिर तेरे दर्शन के लिए आऊँगा।

वर्ष का प्रथम प्रभात

काल निरन्तर गतिमान है। सारा जगत् काल की ही लीला है। काल ही समस्त भावी की ओर बढ़ता हुआ उसे बलात् वर्तमान बनाता जा रहा है और प्रत्येक वर्तमान को निगल कर भूत के गर्त में फेंकता जा रहा है, विकराल काल सभी को लील रहा है। काल प्रवाह रूपी गरुड ही अपने दिन और रात्रि के दो बलवान डैनों से निरन्तर उड़ता हुआ, छोटे-छोटे सर्प रूपी कुण्डलित युगों को खाता जा रहा है। उस बलवान के (काल के) प्रहार से कौन बचा है?

बड़े-बड़े सम्राट् तथा साम्राज्य समय के बदलने के साथ ही काल-कवलित हो गए हैं। किन्तु काल के असंख्य प्रहारों को झेलते हुए तथा उत्थान और पतन की अनेक आंधियों और बवण्डरों से संघर्ष करने के उपरान्त भी हिन्दू संस्कृति काल का उपहास-सा करती हुई, अजर-अमर खड़ी है। इसका कारण यह है कि भारत के ऋषियों ने काल के भी 'महाकाल' को पहचान लिया था। ऋषियों ने आत्मा के अजरामर सुदृढ़ किले पर से काल पर दृष्टिपात किया, कालातीत बन कर काल की गणना की, इसीलिए उनकी काल गणना भी ठीक निकली तथा उनकी महान् मृत्युंजय संस्कृति भी काल पर विजयी हुई।

नववर्ष प्रतिपदा का मंगलमय पर्व विश्व के प्रथम सूर्योदय का पर्व है। आज से 2015 वर्ष पूर्व केवल परदुःखभंजक, प्रजावत्सल, महाराज शकारि विक्रमादित्य ने ही इसी दिन से सम्वत् प्रारंभ नहीं किया अपितु उस के पूर्व के सभी संवतों का प्रारम्भ भी इसी पावन दिवस से हुआ था। चैत्र मास हमारे पंचांग का प्रथम मास है, उसकी प्रतिपदा हमारे संवत्सर का प्रथम दिवस है। वैदिक काल में चैत्र मास को ही मधु मास कहते थे, क्योंकि इसी मास में वसन्त होता है। आधुनिक नक्षत्र वैज्ञानिकों के अनुसार पूर्ण वसन्त 21 मार्च को होता है। सौभाग्य से हमारा वर्ष प्रतिपदा दिवस भी इस वर्ष 21 मार्च को पड़ रहा है। वसन्त ऋतु को हमारे वैदिक वाङ्मय में 'मुखं ऋतुनाम्' अर्थात् सब से प्रथम ऋतु कहा गया है। इसी दिन जीव सृष्टि का आरम्भ भी माना जाता है। ज्योतिष के हिमाद्रि ग्रन्थ के अनुसार चैत्रे मासे जगद ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि शुक्लपक्षे समग्रन्तु, तदा सूर्योदये सति।

अर्थात् चैत्र मास, शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन सूर्योदय के समय ब्रह्माजी ने जगत् की रचना की।

इसलिए नववर्ष प्रतिपदा का सूर्योदय विश्व का प्रथम सूर्योदय है। उस हिरण्यगर्भ सूर्य के प्रथम दर्शन पर ही हमारे ऋषियों ने उस सवितादेव की महिमा में ऋचाओं का गान किया होगा।

ऋग्वेद के अनुसार संवत्सर के आदिप्रणेता स्वयं परब्रह्म परमेश्वर ही हैं। मण्डल के 10 के 19 वें सूक्त में कहा है—

ऋतञ्च सत्यञ्चाभिद्धारूपसोऽध्यजायत।
ततोरात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः।।
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतोवशी।।

अर्थात्, परमेश्वर के आत्मिक तेज से ऋत और सत्य प्रकट हुए, फिर प्रलय की रात्रि हुई फिर सब ओर समुद्र ही फैल गया। पर ईश्वर ने दिन और रात्रि बनाते हुए संवत्सर को जन्म दिया। यजुर्वेद के 27 वें अध्याय में तो स्वयं ईश्वर को ही 'संवत्सरोऽसि, परिवत्सरोऽसि' कह कर संवत्सर की वन्दना गाई गई है।

हमारे अलौकिक वाङ्मय में सर्व प्राचीन संवत् कल्पाब्द है, जिसे 1, 97, 29, 49, 059 वर्ष हो चुके हैं। सृष्ट सम्वत् को 1, 95, 58, 85, 059 वर्ष बीत चुके हैं। यह सचमुच बड़े विस्मय का विषय है कि आधुनिक भूगर्भ शास्त्रियों ने जो अभी कल ही भूमि को लगभग 2 अरब वर्ष पुराना बताया है वह हमारे इन प्राचीन सम्वतों के हिसाब से कितना ठीक बैठता है। इसी प्रकार वामन सम्वत्, श्रीराम सम्वत्, कलि सम्वत, सप्तर्षि सम्वत्सर, विक्रम सम्वत्, मालव सम्वत्, गुप्त सम्वत् तथा शक सम्वत्, प्रायः सभी चैत्र मास की प्रतिपदा से आरम्भ होते हैं। कहीं-कहीं वैशाखी वर्षारंभ माना जाता है। किन्तु अधिकांश प्रचलन प्रतिपदा का ही है।

आज नव संवत्सर का महान् ऐतिहासिक दिवस हमारे सम्मुख जाति की शतकोटि वर्ष पुरानी गाथा को चित्रित कर देता है। आज से 2015 वर्ष पूर्व नृपश्रेष्ठ शकारि विक्रमादित्य ने अपने महान् पराक्रम द्वारा बर्बर शकों को भारत से बाहर खदेड़ कर इस महान् देश की सीमाओं को सुरक्षित बनाया तथा सारे देश को एक चक्रवर्ती शासन में ग्रथित कर इस पुण्य भूमि पर सत्य, न्याय तथा धर्म का आदर्श राज्य स्थापित किया। उस महामहिम महापुरुष ने समस्त प्रजाओं को सुखी बनाया, सब का ऋण पाई-पाई का चुका दिया तथा अपने महान् दान द्वारा दीनों के दारिद्र्य को दूर किया। तब उस महाप्रतापी सम्राट ने विक्रम सम्वत् का प्रणयन

किया। शक्ति एवं शील का वह मूर्तिमान अवतार महाराज विक्रम हमारे हृदय में, हमारी नस-नस में बैठा हुआ आज भी हमें कर्तव्य का आलोक पथ दिखा रहा है। पिछली 20 शताब्दी में जिसके नाम के जादू ने हमें जीवित रखा है क्या हम उसके चलाए हुए सम्वत् को जीवित रख उसके प्रति कृतज्ञता का परिचय देंगे?

उस नववर्ष प्रतिपदा के दिन सम्वत् 1932 (सन् 1875 ई.) में श्रद्धेय ऋषिदयानन्दजी ने, मुंबई में वेद-ज्योति प्रसार के निमित्त प्रथम आर्यसमाज की स्थापना की। इस प्रकार आर्यसमाज के जीवन में भी यह दिन प्रथम सूर्योदय के प्रकाश का दिन है।

इसी परम पावन प्रतिपदा पर सम्वत् 1946 (सन् 1889) को राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के जन्मदाता परम पूजनीय डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार का जन्म हुआ। उन तपोनिष्ठ महात्मा ने अपनी आंखों में माँ के वैभव का स्वप्न तथा हृदय में महत्त्वाकांक्षाओं को प्रदीप्त करने वाली स्वदेश भक्ति की चिनगारी लेकर भारत माता का भवितव्य निर्माण करने के हेतु अपना सर्वस्व जीवन राष्ट्र-माता के चरणों में चढ़ा कर राष्ट्रीय चरित्र वाले नवयुवकों का ऐसा महान् संगठन तैयार किया जिस पर भावी भारत को सदा महान् आशा है।

आज इस वर्ष प्रतिपदा के पावन पर्व पर हम संवत्सर-स्वरूप परमेश्वर, संवत्सर संस्थापक महाराज (शकारि) विक्रम, आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द तथा धर्मनिष्ठ डॉ. हेडगेवार के चरणों में कोटि-कोटि श्रद्धांजलियाँ समर्पित करते हैं।

हम साइंस से बेपरवाही नहीं बरत सकते, क्योंकि साइंस आज के जीवन की बुनियादी हकीकत है। लेकिन उससे भी बढ़कर हम उन बुनियादी सिद्धान्तों को भी नहीं छोड़ सकते, जिन्हें भारत युगों से अपनाये हुए है। फिर, आइये, हम अपनी सारी ताकत और जोश के साथ उद्योगी उन्नति के रास्ते पर आगे बढ़ें और साथ ही यह भी ध्यान में रखें कि बगैर बर्दाश्त, दया, धर्म और ज्ञान के दुनियाँ की सारी दौलत और ताकत धूल में मिल सकती है। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि 'मुबारक हैं वे, जो लोगों में शान्ति, समझौता कराते हैं।'

—पंडित नेहरू

वनांचल में रामनवमी महोत्सव

राँची एवं समग्र छोटानागपुर का रामनवमी पर्व पर आयोजित झण्डा जुलूस सारे विश्व में अद्वितीय है। भारतीय नृतत्त्वशास्त्र के जनक श्री शरतचन्द्र राय अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'उराँव ऑफ छोटानागपुर' में लिखते हैं कि उराँव रामायण महाकाव्य में वर्णित वानर ही हैं। भगवान् राम ने इन्हीं वनवासियों को अपनाकर, इन्हीं की सेना सजा कर लंकाधिपति रावण को धूलि-धूसरित किया था।

चैत्र शुक्ला नवमी भगवान् राम का जन्म दिवस है। इस अवसर को भारत में सर्वत्र विशिष्ट उत्सव के रूप में मनाया जाता है। किन्तु छोटानागपुर, संथाल-परगना के वनवासी बहुल क्षेत्रों में तो रामनवमी का पर्व सोल्लास मनाया जाता है। वासन्ती दुर्गा पूजा के साथ ही रामनवमी के अवसर पर हनुमान्‌जी की विशेष पूजा की जाती है। चैत्र माह के प्रत्येक मंगलवार को महावीर मन्दिर सजाया जाता है। विभिन्न क्षेत्रों से लोग महावीर पताका के साथ एकत्र हो महावीर मन्दिर पर आंकारोट का प्रसाद चढ़ाते हैं।

राँची से लगे गुमला जिले में गुमला के निकट, टोटो से 10 मील भीतर जंगल में स्थित आंजन ग्राम है जो हनुमान्‌जी का जन्म स्थान माना जाता है। वहाँ अभी भी अंजनी माता की (गोदी में बालक हनुमान् को लिए हुए) मूर्ति है।

वनवासियों में वानर-गोत्र

छोटानागपुर के वनवासी अभी तक वानर के समान लांगूल लगाकर नृत्य करते हैं। इसे यहाँ की स्थानीय भाषा में 'तुलुंग' कहा जाता है। वनवासियों के अनेक गोत्र हनुमान् तथा वानर नाम के सूचक हैं, जैसे पवनवंशज, तिग्गा, हनुमान्, बजरंगगड़ी, वानरा, बरई, बसोर, मैना, खंगार आदि। सभी का अर्थ वानर ही है। इसी प्रकार सिहंभूम की भुंइयाँ जाति हनुमान्‌जी का वंशज होने का दावा करती है। वे अपने-आपको-पवनवंशज' ही पुकारते हैं। द्रविड़ वनवासियों में भी हनुमान् नाम प्रचलित है।

हनुमान्‌जी के बारे में कथा है कि उन्होंने सूर्यलोक जाकर सूर्य से विद्याध्ययन किया। शिक्षा ग्रहणकर वे वापस लौटे और वानरराज सुग्रीव के प्रधानमंत्री बने।

फिर बाद में सुग्रीव से श्रीराम की मैत्री हनुमान्‌जी ने ही करायी। उन्होंने ही लंका जाकर सीताजी का पता लगाया और लंका-दहन भी किया था। राम-रावण युद्ध में इनका प्रधान पराक्रम प्रकट हुआ था।

लंका-विजय के पश्चात् जब श्रीराम अयोध्या वापस आये तब से हनुमान्‌जी उनकी ही सेवा में रहने लगे। परन्तु श्रीराम के साकेत जाते समय हनुमान्‌जी साथ नहीं गये। उन्होंने कहा कि जब तक संसार में रामकथा रहेगी, मैं इसी धरा पर रहूँगा।

द्वापर में ये भीमसेन को मिले थे। महाभारत युद्ध में अर्जुन की पताका पर ये बैठे रहते थे, क्योंकि किरात ने अर्जुन से इनकी मित्रता करा दी थी।

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनुमानश्च विभीषणा।
कृपा परशुरामश्च सप्तैः चिरजीविणा।।

हनुमान्‌जी अमर हैं। जहाँ-जहाँ रामकथा होती है, ये अदृश्य रूप में उपस्थित होकर कथा का श्रवण करते हैं। ऐसी रामभक्तों की मान्यता है। इनके दो रूप मुख्य हैं। एक लाल वर्ण का और दूसरा कनक भूधराकार शरीर। वैसे उपासना में इनका उग्र, प्रचंड आदि अनेक रूपों का ध्यान वर्णित है।

वनवासी (वानर) जागरण का स्नेह : सूत्रीकरण

भगवान् राम का महानतम कार्य था भारत की विन्ध्यगिरि से नीचे बसने वाली वनवासी जातियों (वानर, ऋक्ष, भल्लूक, निषाद, भील, शबर आदि) को रावण के आसुरी प्रभाव से मुक्त कर भारतीय समाज के साथ एकात्म करना। उन्हीं में से उन्होंने हनुमान् जैसे वीर राष्ट्रभक्त निर्माण किए, जिनको समूची आर्य-जाति आज तक श्रद्धा से शीश नवाती है।

विद्यावान गुनी अति चातुर।
रामकाज करिबे को आतुर।।
प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया।
राम लखन सीता मन बसिया।।

सीता माता की वनवासियों के प्रति आत्मीयता

वनवास हेतु निकलने के अवसर पर श्रीराम ने सीताजी को वन के कष्टों का वर्णन करते हुए वनगमन से रोकना चाहा—

नर अहार रजनीचर करही। कपट वेषविधि कोटिक करहीं।
लागइ अति पहार कर पानी। विपिन विपति नहीं जाइ बखानी।।

यह सुन कर सीताजी वनवासी-जनों के प्रति आत्मीयता दर्शाते हुए उत्तर देती हैं—

वनदेवी वनदेव उदारा।
करिहहि सासु ससुर सम सारा।।
कन्द मूल फल अमिय अहारू।
अवध सौंध सत सरिस पहारू।।

उदार हृदय के वनदेवी और वनदेवता ही सास-श्वसुर के समान मेरी सार-संभार करेंगे। कन्द-मूल और फल ही अमृत के समान आहार होंगे और पहाड़ ही अयोध्या के सैकड़ों राजमहलों के समान होंगे।

कोल किरात कुरंग विहंगा।
मोहि सब सुखद प्रानपति संगा।।

वनवासियों से प्रेमालाप

भगवान् राम भी वनवासियों पर प्रेम वर्षण करते हुए मधुर वार्तालाप करते हैं—

राम सकल बनचर तब लोषे।
कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे।।

ग्राम्य-नारियाँ भी अपने व्यवहार की भूल-चूक के लिए सीता से क्षमा मांगती हैं—

स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी।
विलगु न मानब जानि गवाँरी।।

शबरी के जूठे बेरों में अमृत रस

भगवान् द्वारा वनवासी भीलनी का आतिथ्य स्वीकार करना सच्ची मानवता का सर्वश्रेष्ठ प्रसंग है—

स्याम गौर सुंदर दोऊ भाई।
सबरी परी चरन लपटाई।।
प्रेम मगन मुख वचन न आवा।
पुनि-पुनि पद सरोज सिरनावा।।
सादर जल लै चरन पखारे।
पुनि सुंदर आसन बैठारे।।

कन्द मूल फल सुरस अति दिए राम कहुं आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि।।

रामनवमी के अवसर पर आदिवासी वर्ग भी पूरी श्रद्धा-भक्ति से श्रीराम-हनुमान् की पूजा-उपासना सात्त्विक ढंग से करता है। इनका विश्वास है कि ये हमारे देव हैं और हमारा कल्याण करते हैं। कितने ही आदिवासी घरों में महावीर स्थल हैं और वहाँ महावीर जी का छोटा झण्डा वर्षभर फहराता रहता है। प्रत्येक रामनवमी में वे पुराने झण्डे को बदलते हैं। वहाँ प्रतिदिन धूप-गंध जलाते हैं। आदिवासी समाज का विश्वास है कि शुरू से ही राम हमारे हैं। हनुमान् (गाड़ी किली) किली भी इनका होता है। बन्दर हनुमान् किली वाले गौरव का अनुभव करते हैं। ये आदिवासी हनुमान्‌जी पर 'अंकुरी' भी चढ़ाते हैं। इनका विश्वास है कि हनुमान्‌जी के शरीर पर सिन्दूर का लेप लगाने से कल्याण होता है। पुरखिन दादी (सीता) खुश होती हैं, क्योंकि इन्होंने ही हनुमान्‌जी को श्रृंगार करने का सिन्दूर दिया था। अपना-अपना विश्वास जो है।

आदिवासी गीतों में हनुमान्‌जी की वीरता की चर्चा भी की गई है। संथाली मुण्डरी, उराँव, बिरहोडी बोलियों-भाषाओं में कितने ही गीत भरे पड़े हैं।

एक ओर साधनों के सम्बन्ध में मानवीय कुशलता और दूसरी ओर लक्ष्यों के सम्बन्ध में मानवी मूर्खता की जो दौड़ चल रही है, हम उसके बीच में हैं। यदि लक्ष्यों के सम्बन्ध में पर्याप्त मूर्खता बनी रहे, तो उनको हासिल करने के कौशल में हर वृद्धि अशुभकारी ही होगी। यह मानव-जाति अब तक अज्ञानता और अक्षमता के कारण बची रही है, पर यदि मूर्खता के साथ ज्ञान और क्षमता का योग हो जाये, तब तो उसके बचने की कोई निश्चितता नहीं।... निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि विज्ञान के बदौलत मनुष्य का ज्ञान तो बढ़ा पर उस अनुपात में विवेक नहीं बढ़ा। अतः ज्ञान के विकास के साथ-साथ विवेक का बढ़ना आवश्यक है।

—बर्ट्रेंड रसेल

वैशाखी पर्व का इतिहास

महान् भारत भूमि पर निवास करने वाली यह महान् हिन्दू जाति सदा उत्सव प्रिय रही है। इसीलिये इस जाति की वर्ष भर की व्यवहार-चर्या में उत्सव इस प्रकार जड़े हुए हैं जिस प्रकार इस नीले नभ के अनन्त दुकूल में जगमग-जगमग करते हुए तारों की मणियाँ जड़ी हुई हैं। सामान्य रूप से सारे भारत तथा विशेष रूप से पंजाब के लिये एक नवीन आनन्द एवं उत्साह का संदेश ले कर वैशाखी उत्सव आ गया है।

सौर वर्ष का प्रथम दिवस

धरती को प्रकाश देने वाले सूर्य तथा चन्द्रमा, दोनों को भारत की कालगणना में विशेष महत्त्व दिया गया है। भारत का पंचांग सूर्य तथा चन्द्रमा का मिश्रित पंचांग है। सूर्य के अनुसार चलने वाले वर्ष को सौर वर्ष तथा चन्द्रमा के अनुसार चलने वाले वर्ष को चान्द्र वर्ष कहते हैं। जितने समय में धरती सूर्य के चारों ओर एक परिक्रमा कर लेती है। उसे क्रान्ति-वृत्त कहते हैं। इस क्रान्ति-वृत्त को बारह समान भागों में बांटकर मास गिने जाते हैं। इस प्रकार प्रति मास में एक संक्रांति आती है। सौर मास के प्रथम दिवस को संक्रांति कहते हैं। वैशाखी मेष संक्रांति का पर्व है। इसी प्रकार कर्क संक्रांति और मकर संक्रांति उत्सव भी प्रसिद्ध हैं। इनमें मेष संक्रांति का महत्त्व इसलिए विशेष है क्योंकि इस दिन सौर वर्ष का आरम्भ होता है। चान्द्र वर्ष का आरम्भ वर्षप्रतिपदा (चैत्र शुक्ला प्रतिपदा) से होता है। पंजाब तथा बंगाल में वैशाखी से नव वर्षारम्भ मानने की प्रथा विशेष चलती रही है। इसीलिए अनेकानेक शुभ कर्मों का आरम्भ इसी दिन किया जाता है। बंगाल में लोग इस दिन घर पर सूर्य के रंग का भगवा झंडा फहरा कर नये वर्ष का स्वागत करते हैं तथा व्यापारी नया खाता प्रारम्भ करते हैं। पंजाब में तो वैशाखी उत्सव का स्वागत खूब नाच-गान तथा नृत्य-उत्सवों के साथ किया जाता है। इसीलिए वैशाखी मुख्यतया पंजाबियों का ही उत्सव बन गया है।

तिथियों में अन्तर

भारत में वर्षारम्भ की तिथि में कुछ परिवर्तन होता रहा है। पुरातत्त्ववेत्ताओं का कथन है कि कभी वसंतोत्सव से ही वर्षारम्भ माना जाता था। यह वसन्तोत्सव माघ

शुक्ला पंचमी के स्थान पर फाल्गुन पूर्णिमा (होली उत्सव) पर पड़ता था। वसन्त को 'मुखं ऋतुनां इह कुसमाकरः'—सब ऋतुओं का मुखिया, सर्वप्रथम ऋतु कहा है। यही वर्ष की पहली ऋतु होती थी। इसी ऋतु के निकट ही वर्षप्रतिपदा (चैत्र शुक्ला एकम) तथा वैशाखी दोनों उत्सव पड़ते हैं। इन दोनों का प्रचलन अभी तक है। चान्द्र मास सौर मास से कुछ छोटा होता है। इसलिए चान्द्र मास की तिथियाँ अधिक शीघ्रता से परिवर्तित होती हैं। पूर्णिमाओं अथवा प्रतिपदाओं के पर्व सदा परिवर्तित होते रहते हैं किन्तु वैशाखी (वैशाख संक्रांति) सदा 13 अप्रैल को तथा माघी (माघ संक्रांति) सदा 13 जनवरी को आती है। लगभग सौ वर्ष में इन सौर तिथियों में भी एक दिन का अन्तर पड़ जाता है। संवत् 1756 में वैशाखी पर्व पर जब गुरु गोविन्दसिंहजी ने खालसा पंथ की स्थापना की, तब तिथि 10 अप्रैल थी।

ऋतु उत्सव

जहाँ शेष भारत में गन्दम की फसल होली पर पक कर तैयार हो जाती है वहाँ पंजाब में फसलें होली से लगभग 20 दिन पश्चात्, वैशाखी पर, पक कर तैयार होती हैं। इस अवसर पर भारत का अन्नदाता किसान आनन्द से नृत्य करने लगता है। वर्ष की दो फसलों हाड़ी और श्रावणी में से यह हाड़ी ही मुख्य फसल है क्योंकि इसी फसल से प्रजा को वर्ष भर का भोजन प्राप्त होता है। सोने जैसी सुनहली की फसल कटकर घर में आने पर कृषक वर्ष भर के कर-भार से मुक्त हो जाते हैं तथा निश्चित होकर नाचते-गाते हैं—आई वैशाखी गई वैशाखी। पंजाब का भंगड़ा-नृत्य इसी पर्व की खुशियों की तरंगों से सजीव हो उठा है। इस दिन कृषक के रोम-रोम से हर्ष फूटता है। माता अन्नपूर्णा शस्य की देवी हैं। वैशाखी के 3 दिन पश्चात् अन्नपूर्णाष्टमी का पर्व आने वाला है। नवरात्र चल रहे हैं। गृह-गृह में अन्न की देवी के दर्शन प्राप्त हैं। अन्न का पूजन करके यज्ञ भगवान् में नवान्न की आहुति देकर अथवा गली-कूचे की छोटी-छोटी बच्चियों का अन्नपूर्णा के रूप में पूजन कर उन्हें नवान्न की भेंट देकर ही गृहस्थी नए अन्न का प्रयोग करते हैं। वेद की आज्ञा है—'केवलादो भवति केवलाधी।' केवल अपने लिए खाने वाला पाप को ही खाने वाला है।

मध्यकाल में जब स्वयं भारत माता की छाती अपने ही पुत्रों के रक्त से लाल हो गई, जब स्वयं भारत में ही भारतीयता का नाश होने लगा, जब पापी यवनों की तलवार हकीकत गुरु अर्जुन तथा गुरु तेग बहादुर के रक्त से खेलने लगी, उस समय संवत् 1756 में वैशाखी के पुण्य पर्व पर ही स्वयं मेरी आंखों के सामने गुरु गोविन्दसिंह जी ने आनन्दपुर नामक स्थान पर खालसा पन्थ की स्थापना की। सन्त-सेनानियों के इस सम्प्रदाय की स्थापना के समय उन्होंने घोषणा की—

सकल जगत में खालसा पन्थ गाजे।
जगे धर्म हिन्दू सभी द्वन्द्व भाजे।

आज पंजाब के दूषित वातावरण में कुछ पथ भ्रष्ट धर्म नेताओं ने गुरु गोविन्दसिंह की असली वाणी 'दशम ग्रन्थ' के पठन-पाठन को गुरुद्वारों में बन्द कर रखा है। इसी कारण आज का सामान्य सिक्ख अपने सम्प्रदाय का वास्तविक हेतु ही नहीं जानता।

गुरुजी हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए इतने आतुर थे कि उन्होंने भगवती दुर्गा की उपासना करके एक महान यज्ञ रचाया और वहीं पर खालिस आर्य वीरों का एक सम्प्रदाय निर्माण किया। उनका आह्वान है—

जे आरज तू खालस होवे।
हंसहंस सीस धर्महित खोवे।

स्वयं अपने पिता गुरु तेगबहादुर के बलिदान के विषय में गुरु गोविन्दसिंह लिखते हैं—

तिलक जंजू राखा प्रभु ताका।
कीन्हा बड़ा कलू में साका।
साधन हेतु इति जिन करी।
सीस दिया पर सी न उचरी।

गुरुजी के विवाह के समय उन्होंने स्वयं यज्ञोपवीत पहना हुआ था।

पीत मुनीत उपरना धोती जोती रवि नव छाजे।
पीत अनेऊ मनोबदन ससि पे बिजुरी भ्रांजे।

धर्म रक्षा के लिए गुरुजी शिवा भवानी से प्रार्थना करते हैं—

देहु शिवा वर मोहि इहै, शुभ कर्मन ते कबहूँ न टरूं।
न डरुं अरिसे जब जाय लरुं, निश्चय कर अपनी जीत करुं।।

मैंने स्वयं देखा है कि गुरु गोविन्दसिंह की काली माता पर अपार श्रद्धा थी। वह प्रायः गाते थे—

काल तुही, काली तुही, तुही तेग अरुतीर,
तुही निशानी जीतकी, तुही आज जगवीर।

पुनः गुरु गोविन्दसिंह जी शक्ति माता की स्तुति में लिखते हैं—

नमो उग्र दन्ती, अनन्त सवैया,
नमो योग योगेश्वरी योग मैया।
नमो केहरी वाहनी शत्रु हन्ती,
नमो शारदा ब्रह्म विद्या पढन्ती।

नमो ज्योति ज्वाला तुमै वेद गावैं,
सुरासुर ऋषीश्वर नहीं भेद पावैं

औरंगजेब के राज्य में गौ-हत्या देखकर गुरु गोविन्द तड़प उठते थे—

यहीं देह आज्ञा तुर्क गहि खपाऊं
गऊघात का दोख जगसो मिटाऊं
यहीं आस पूरण करौ तुम हमारी।
मिटे कष्ट गौउन छुटे खेद भारी।

गुरु गोविन्दसिंह की उस प्रतिज्ञा को सुनकर मेरी छाती गर्व से फूल उठती थी। अत्याचारी मुगलों के घोर अत्याचार के बावजूद भी गौ रक्षा के लिए ऐसी ज्वलन्त भावना थी। उसकी तुलना में आज स्वतंत्र भारत में एक ब्राह्मण (पं. नेहरू) के राज्य में प्रतिदिन लाखों गऊओं को कत्ल होते देख कर मैं चीख उठती हूँ।

आज एक प्रसिद्ध अकाली नेता कह बैठते हैं, 'मासा-मासा एक हैं, क्या सूअर क्या गाय' और गुरु गोविन्दसिंहजी की गाय के प्रति क्या भावना है? इस बुद्धि-भ्रष्टता के लिये क्या कहूँ?

'मेरे आंखों देखे दृश्य अनेक हैं पर सन् 1919 में 13 अप्रैल (वैशाखी) के दिन मैंने जो कुछ अमृतसर में देखा उसकी स्मृतिमात्र से आज भी आंखों में खून के आंसू उतर आते हैं। अब तक मैं खुशियों का त्योहार थी किन्तु उस दिन से मैं दारुण-व्यथा की कहानी बन गई। प्रथम महायुद्ध में जब अंग्रेजों ने भारतीयों को यूरोप के मोर्चों पर लड़ने के लिए भेजा तो आश्वासन दिया कि युद्ध की समाप्ति पर भारत को स्वाधीनता दी जाएगी। किन्तु भारतीयों की सारी सेवाओं के बदले उन्हें दिया गया—रौलट ऐक्ट। इस अमानवीय अत्याचार से मैं भी कांप उठी। 6 अप्रैल 1919 को देश भर में रौलट ऐक्ट के विरुद्ध हड़ताल हुई। अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर ने डॉक्टर सत्यपाल और डा. किचलू को किसी अज्ञात स्थान पर भेज दिया। सारे नगर में रोष फैल गया। उधर महात्मा गांधी पंजाब आ रहे थे। पलवल स्टेशन से उन्हें रोक कर वापस भेज दिया गया। पंजाब भड़क उठा। 10 अप्रैल से मार्शल ला लगा दी गई। 23 अप्रैल को मेरा दिन था। खालसा पंथ का जन्म दिन होने के कारण वैशाखी पर असंख्य लोग अमृतसर आते थे। इसलिए शहर के बीचों-बीच जलियांवाला बाग में 20 हजार स्त्री-पुरुषों की एक विराट् सभा की गई। जनरल डायर एक सेना की टुकड़ी लेकर पहुँच गया। वह साथ में हथियार बंद गाड़ी भी लाया था जो रास्ता तंग होने के कारण अन्दर नहीं जा सकती थी। जालिम डायर ने आते ही गोली चलाने का हुक्म दे दिया। लगातार गोलीवर्षा में 1600 कारतूस चलाए गए तथा फायरिंग तभी समाप्त हुई जब कारतूस समाप्त

हो गए। जनता के लिए बाहर निकलने का कोई मार्ग नहीं था। जो तनिक भागना चाहता उसे गोली से उड़ा दिया जाता। एक कुआँ लाशों से भर गया। 400 मुर्दा लाशों तथा 2000 जख्मी प्राणों को सिसकता देख कर मेरे भी अश्रु न रुक सके किन्तु जालिम डायर ने रात्रि भर जख्मियों को न दवा-दारू पहुँचने दिया और न पानी का घूंट। अनेकों सिसकते प्राण और तड़पती आत्माएं खून के कीचड़ में लथपथ पड़ी थीं। उधर शहर भर का बिजली-पानी बन्द कर दिया गया। जनता को कोड़े लगाने के लिए जगह-जगह घेरे बनाए गए। एक स्थान पर तो आने-जाने वाले बड़े-छोटे सभी लोगों को कीचड़ से भरी हुई गली में कीड़े की तरह रेंग कर चलाया जाता था। इस दुर्दशा पर अंग्रेज हंसते और खिल्ली करते। मेरे हृदय पर जैसे छुरियाँ चलती थीं। बंगाल में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने पंजाब की यह दुर्दशा सुन कर अपनी सर की उपाधि त्याग दी। उन्होंने लिखा, 'निहत्थे और साधनहीन लोगों पर मानवीय जीवनों को समाप्त करने वाली सरकार ने जिस प्रकार का घोर जुल्म किया है उसके कारण मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ कि मैं अपने करोड़ों भयग्रस्त देशवासियों के प्रबल विद्रोह को भाषा प्रदान करूं। वह समय आ गया है जब इस घोर अपमान के कारण यह आदर के पदक हमारी लज्जा को और भी अधिक लज्जाजनक बना देते हैं तथा मैं अपने उन देशवासियों की तरफ से जिनके साथ इन्सानियत से गिरा हुआ व्यवहार किया गया है। यही इच्छा करता हूँ कि मैं सरकार द्वारा दी हुई सब विशेष उपाधियों से मुक्त कर दिया जाऊँ।'

जलियांवाला बाग के हत्याकांड के बारे में सुनकर लाला लाजपतराय तुरंत अमरीका से भारत आने के लिए व्याकुल हो उठे किन्तु उन्हें सरकार ने आने की आज्ञा न दी। 7 वर्ष पश्चात् जब वह शेर भारत में पहुँचा तो उसने मुंबई के समुद्र तट पर ही गर्जना की, 'मेरे देश की बहिनो और भाईयो! मैंने विदेश में सुना है कि पंजाब ने जलियांवाला बाग में मार खाई है और वे पंजाबी शेर जिन्होंने फ्रांस के मैदान में अपनी संगीनों की नोक पर इंग्लैंड की नाक बचाई थी अपने ही घर के द्वार पर कुत्ते की तरह शिकार किए गए हैं। मैंने यह भी सुना है कि वह हत्यारा डायर अभी तक अपने स्थान पर आनन्द उड़ा रहा है। यदि कोई पंजाबी बच्चा यहाँ है तो वह मुझे बताए कि इसके लिए उसने क्या किया है?'

पंजाब केसरी के शब्द सुनकर मेरा गौरव तथा मैं उस ऐतिहासिक दिन की प्रतीक्षा करने लगी जब कोई भारतमाता का लाल इसका प्रतिशोध लेगा। जलियांवाला बाग के हत्याकांड के 21 वर्ष पश्चात् 23 मार्च 1940 के दिन लन्दन में जब पंजाब के एक वीर ऊधमसिंह सुनामी ने अपनी गोली से डायर की छाती चीर डाली तभी भारत माता के गौरव की लाज बची तथा मुझ वैशाखी का गौरव भी रक्षित हुआ।

सन् 1959 की वैशाखी तक भारत के नेता 'हिन्दी चीनी भाई-भाई' के नारे लगाते। सन् 1962 में चीन ने एक जोरदार हमला किया। विगत 5 वर्षों से हर साल जब नये साल का सन्देश लेकर मैं आती हूँ तो देखती हूँ कि भारतवासियों के जीते-जी चीन 16000 वर्गमील पर पंजा जमा कर बैठा है, गिरिराज हिमालय की घायल सीमाएं रक्त-नीर बहाकर देश के बेटों को पुकारती है, किन्तु स्वार्थमग्न बेटे न मेरा सन्देश सुनने को उद्यत हैं न हिमालय की पुकारें। आज पुनः मैं दारुण व्यथा से चीत्कार करती हुई आप लोगों से पूछती हूँ कि क्या राष्ट्रीय अपमान का प्रतिशोध लेने वाला, आततायियों को ध्वस्त कर माँ की लाज बचाने कोई शेर जागेगा?

वैशाखी के अनेकानेक महत्त्वों में यह भी गिनने योग्य है कि उत्तर भारत के सुप्रसिद्ध बैंक 'पंजाब नेशनल बैंक की' स्थापना भी इसी वैशाखी के पर्व पर हुई। इसके संस्थापकों में पंजाब केसरी लाला लाजपत राय प्रमुख थे। भारतीय शासन संविधान की दृष्टि से सन् 1935 का इण्डिया ऐक्ट जिसमें प्रान्तीय सरकारों को पर्याप्त स्वाधीनता प्रदान की गई, सन् 1935 की वैशाखी से लागू किया गया।

आज वैशाखी के पुण्य पावन पर्व पर विशाखा नक्षत्र को नमस्कार, वैशाख मास को नमस्कार, सौर वर्ष के प्रथम दिवस को नमस्कार, सूर्य नारायण को नमस्कार, मेष संक्रांति को नमस्कार, विषुवत् रेखा को नमस्कार, गंदुम की सुनहली खेती को नमस्कार, अन्नदाता कृषक को नमस्कार, अन्नपूर्णा देवी को नमस्कार, नवीन ऋतु को नमस्कार, खालसा पंथ को नमस्कार, दशमेश गुरु को नमस्कार, जलियांवाला बाग के शहीदों को नमस्कार, उनकी स्वातंत्र्य भावना को नमस्कार तथा इन सब की स्मृतियों को जगाने वाले वैशाखी पर्व को नमस्कार।

स्वयं से त्रुटि होने पर आत्मदण्ड की दृष्टि, मित्र से त्रुटि होने पर सहानुभूति की, क्षमा की दृष्टि और शत्रु से त्रुटि होने पर कठोर दण्ड की दृष्टि होनी चाहिए अन्यथा वह आपका सर्वनाश कर देगा।

—संस्कृत कहावत

'शठये शाठये समाचरेत'

—उपनिषद् वचन

रथ यात्रा : जगती के आंगन में भारतीय संस्कृति के महारथ के अमिट पद-चिह्न

श्री पुरीधाम विश्वभर में भ्रातृप्रेम का एकमात्र एवं अद्वितीय तीर्थधाम है। जहाँ अन्य तीर्थों में भगवान् श्रीकृष्ण, श्री राधिका अथवा रुक्मिणी के संग शोभायमान हैं, वहाँ पुरीधाम में वे अपने भाई बलभद्र एवं बहिन सुभद्रा के साथ विश्वभर को बंधुभाव का संदेश देते हुए विराजते हैं। हिन्दू समाज में जब तक भाई-बहिन के संबंधों की पवित्रता रहेगी तब तक हिन्दू समाज अमर रहेगा। पुरीधाम, समाज के सभी वर्गों में बंधुभाव की सत्प्रेरणा दे रहा है। वहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र एवं नगरवासी, ग्रामवासी व बनवासी सभी एकात्म हो जाते हैं।

सुभद्रा मंगलम्

इस बंधुभाव के तीर्थ का रहस्य क्या है? भगवान् श्रीकृष्ण अपनी बहिन सुभद्रा का विवाह भक्तराज अर्जुन से करना चाहते थे। अर्जुन एवं सुभद्रा—दोनों की परस्पर सहमति भी थी। किन्तु बलराम नहीं मानते थे। वे सुभद्रा का विवाह अपने गदायुद्ध के शिष्य दुर्योधन से करना चाहते थे। उनका तर्क था कि वे अपनी बहिन को राजघराने में देंगे, वनवासी पाण्डवों को नहीं। भगवान् कृष्ण का तर्क था कि दुर्योधन राजा अवश्य है पर पापी है, पाण्डव अर्जुन निर्धन बनवासी अवश्य है पर धर्मात्मा है। बलराम जी के इस विचार को सुभद्रा प्राणों के मूल्य पर भी स्वीकार करने को तैयार नहीं थी। अर्जुन द्वारा भगवान् कृष्ण एवं सुभद्रा—दोनों की सहमति से सुभद्रा को विवाहार्थ ले जाने पर बलरामजी ने अर्जुन का पीछा किया। भगवान् श्रीकृष्ण के बहुत समझाने पर बड़ी कठिनाई से बलरामजी स्वेच्छा से सुभद्रा का विवाह अर्जुन से करने को प्रस्तुत हुए। भगवान् कृष्ण ने श्रीबलराम को समझाया कि हम यदुवंशी होने से अपने पूर्वज राजा ययाति द्वारा राज्यशासन से वंचित होने के कारण कनिष्ठ क्षत्रिय बन गये हैं, किन्तु अर्जुन पुरुवंशी होने के कारण श्रेष्ठ क्षत्रिय है। वह वीर शिरोमणि भी है, यदि आप परास्त हो गये तो भी मेरे सम्मान को धक्का लगेगा कि मेरा बड़ा भाई मेरे शिष्य द्वारा परास्त हो गया है। यदि अर्जुन

पर संकट आ गया तो मुझे अपनी भक्त वत्सलता के कारण अर्जुन की रक्षा हेतु युद्ध में उतरना पड़ेगा तथा इस प्रकार दोनों भाइयों में युद्ध ठन जायगा। वह शोभन नहीं है। अतः विवेक की बात यही होगी कि हम दोनों भाई सम्मान पूर्वक दोनों कुलों की मान मर्यादा बचाते हुए स्वयं ही अपनी बहिन को रथ पर बिठाकर अर्जुन के यहाँ पहुँचा देवें। तब आषाढ़ शुक्ला द्वितीया को जब भगवान् श्रीकृष्ण एवं बलभद्र अपनी प्यारी बहिन को रथ में बिठाकर अर्जुन के घर कन्यादान हेतु ले जा रहे थे तब सुभद्रा ने पुलकित होकर भगवान् से प्रार्थना की कि वह दृश्य अमर हो जावे—'हे भगवान! आप राधा, रुक्मिणी या लक्ष्मी के साथ अनेक तीर्थों में प्रतिष्ठित हैं। एक भाई-बहिन के प्रेम का तीर्थ भी होना चाहिए।' भगवान् ने कहा—'पुरीधाम में हम बहिन-भाइयों के प्रेम का अमर तीर्थ प्रतिष्ठित होगा तथा आषाढ़ शुक्ला द्वितीया को हम बहिन-भाइयों के रथ-गमन की स्मृति में रथयात्रा महोत्सव होगा।'

भगवान् के दारु विग्रह का रहस्य

राजा चित्ररथ गंधर्व ने भरी सभा में अनेक ऋषि-मुनियों को नमस्कार करके भी गालव ऋषि को नमस्कार नहीं किया। भगवान् कृष्ण के पास गालव ऋषि की शिकायत पहुँचने पर उन्होंने कह दिया कि यदि आज संध्या तक राजा चित्ररथ ऋषि-चरणों में स्वतः शीर्ष नहीं झुकाएगा तो उसका शीर्ष-छेदन कर दिया जाएगा। नारदजी के परामर्श पर वह राजा अर्जुन की शरण में गया। अर्जुन ने उसे अभयदान दे दिया—'भय मत करो।' श्रीकृष्ण एवं अर्जुन—दोनों के वचनबद्ध होने के कारण बड़ा रोमांचक कृष्णार्जुन युद्ध हुआ। अर्जुन श्रीकृष्ण-भक्ति के बल पर ही भगवान् के सब वारों को काटता जाता था। संध्या होते ही भगवान् ने हथियार फेंक दिये तथा कहा—'आज मैं हार गया, मेरा भक्त जीत गया। मैं हस्तविहीन काष्ठ हो गया। कलियुग में मेरे दारु-विग्रह की ही पूजा होगी।'

बौद्धकाल में बौद्ध प्रभाव बढ़ जाने के कारण पुरीधाम में बुद्ध, तारा एवं कालभैरव की मूर्तियों की रथ-यात्रा चलने लगी थी। भगवान् शंकराचार्य ने ही इस धाम का पुनरुद्धार किया तथा पुनः श्रीकृष्ण, बलभद्र एवं सुभद्रा की मूर्तियों की रथयात्रा की परम्परा प्रारंभ की थी। पुरीधाम में ही उन्होंने सनातन धर्म के पुनरोदय का संकल्प किया तथा श्रीगोवर्धनमठ की स्थापना की। वहाँ से उन्होंने हिन्दूधर्म के पुनरुत्थान के महाभियान का शुभारम्भ किया।

चार युगों के चार धाम

धर्मप्राण भारत देश के पावन तीर्थों की रचना इस प्रकार की गयी है कि भारत दर्शन के साथ-साथ स्वतः ही भगवान् का दर्शन हो जाय। इसी प्रकार धार्मिक तीर्थाटन के बहाने देश दर्शन भी होकर देश की एकता एवं अखण्डता का पावन

संस्कार मानव मन में अमिट रूप से अंकित हो जाता है। देश और धर्म की ऐसी एकता संसार के किसी भी अन्य देशों में ऐसे सुन्दर रूप में प्रतिफलित नहीं हुई है। देश के चारों कोनों में स्थित चार धाम अनादि काल से देश की एकता एवं अखण्डता के प्राणवान प्रहरी के समान खड़े हैं। उत्तर में तुषारमण्डित हिमशिखरों में सतयुग का धाम बद्रिकाश्रम है जहाँ सतयुग में नारदजी को नर-नारायण के दर्शन होते थे। दक्षिण में त्रेता का धाम रामेश्वरम् है जहाँ भगवान् राम ने लंका-विजय हेतु पुल बांधा। द्वापर का धाम द्वारका है जिसे द्वापर युग में भगवान् श्रीकृष्ण ने देश को पश्चिमी आक्रमणों से बचाने हेतु बसाया। कलियुग का धाम पुरी है। जहाँ भगवान् कृष्ण दारु विग्रह में विराजते हैं, जहाँ शंकराचार्य ने हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान का शंख बजाया, जहाँ गौरांग कृष्ण श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु कीर्तन गाते-गाते भगवान् जगन्नाथ के विग्रह में ही समा गये, जहाँ गुरुनानक, रवीन्द्रनाथ, विवेकानन्द, अरविन्द, स्वामी प्रणवानन्द प्रभृति अनेकानेक संत-महात्मा, ऋषि-मुनि कलिकाल के धर्म की जागृति का संदेश देते रहे।

पुरीधाम को पुरुषोत्तम तीर्थ भी कहा जाता है। ब्रह्म पुराण में इस संबंध में 800 श्लोक मिलते हैं। मालवा (उज्जैन) के राजा इन्द्रद्युम्न इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि श्रीकृष्ण ही पुरुषोत्तम हैं। वह इस क्षेत्र की यात्रा पर अपनी सेना, विद्वत्मंडली एवं कृषक मण्डली सहित आकर बसा।

पुरी के दक्षिणी समुद्रतट पर एक वट-वृक्ष था, जिसके समीप पुरुषोत्तम की नीलमणि की मूर्ति बनी हुई थी। कालक्रम से वह बालुका से ढक गई और उसी में निमग्न हो गयी। इन्द्रद्युम्न ने वहाँ एक अश्वमेध यज्ञ करके एक बहुत बड़े मन्दिर का निर्माण करवाया। वह मूर्ति की खोज में था। स्वप्न के संकेतानुसार राजा ने एक वृक्ष को काटकर विश्वकर्मा (कलाकार) से तीन मूर्तियाँ बनवायीं तथा उन्हें स्थापित किया। इन्द्रद्युम्न के यज्ञ-स्नान के स्थान पर स्नान का बड़ा महत्त्व माना जाता है। इसे नीलांचल क्षेत्र भी कहा जाता है। आजकल इस विशाल मन्दिर में 120 देव-मन्दिर हैं, 13 शिव के, कुछ पार्वती के तथा एक मन्दिर सूर्य का है। जगन्नाथ मन्दिर समुद्रतट से 20 फुट ऊँचा एक छोटी-सी गोल पहाड़ी पर स्थित है जिसे नीलगिरि कहा जाता है। मन्दिर का शिखर 192 फुट ऊँचा तथा चक्रध्वज से मंडित है। मन्दिर के 4 खण्ड हैं—1. भोग मन्दिर (भगवान् के भोग लगाने का स्थान), 2. रंग मन्दिर (नृत्य-गान का स्थान), 3. सभामण्डप (तीर्थयात्रियों के बैठने का स्थान), 4. अन्तराल (गर्भगृह, श्रीजगन्नाथजी का सिंहासन)।

जगन्नाथजी का रथ 45 फुट ऊँचा, 35 वर्गफुट क्षेत्रफल का तथा 7 फुट व्यास के 16 पहियों से युक्त रहता है। उसमें 16 छिद्र रहते हैं और गरुड कलंगी लगी रहती है। सुभद्रा का रथ 12 पहियों से युक्त तथा पद्म-शिखर वाला होता है। बलराम का रथ 14 पहियों से युक्त तथा हनुमान् मुकुट से सुशोभित रहता है।

वनवासियों का श्रद्धा-तीर्थ

पुरीधाम वनवासी जनजाति बहुल क्षेत्र है। जिस प्रकार मिर्जापुर की विन्ध्यवासिनी, गुवाहाटी की कामाख्या तथा तिरुपति के बालाजी मूलतः वनवासियों के तीर्थ रहे हैं उसी प्रकार पुरीधाम भी मूलतः वनवासी श्रद्धा-तीर्थ था। वहाँ की अनगढ़ी, अधूरी मूर्तियाँ वनवासियों की अर्धविकसित मूर्तिकला की छवियाँ हैं। पुरी के वनवासी राजा ही भगवान् के विग्रह को स्पर्श करने के अधिकारी हैं। वे ही भगवान् की मूर्तियों को गर्भगृह से उठाकर रथों में पधराते हैं तथा रथ चलने से पूर्व वे ही अपने हाथ से सोने-चाँदी की सीकोंवाला झाड़ू लेकर पथ को बुहारते हैं तब रथ चलता है।

श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु का जगन्नाथ महाप्रभु में लय

चैतन्य महाप्रभु को नीलांचल तीर्थ जगन्नाथपुरी बहुत प्रिय था। उन्होंने भगवान् जगन्नाथजी की स्तुति में जगन्नाथष्टक स्तोत्र गाते हुए मानो अपना हृदय ही उड़ेल दिया।

श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु आषाढ़ शुक्ला द्वितीया, विक्रम संवत् 1590 को रथ-यात्रा के पुनीत दिवस पर पुरीधाम में श्री जगन्नाथ स्वामी की स्तुति गाते हुए भगवान् के विग्रह का आलिंगन कर उन्हीं में लीन हो गए। व्यक्ति का चैतन्य जब महाप्रभु में लय हो जाता है तब चैतन्य स्वयं ही महाप्रभु बन जाता है।

गुरुनानक द्वारा जगन्नाथ महाप्रभु की अलौकिक आरती

गुरुनानक देव अपनी पूर्वी दिशा की यात्रा में जगन्नाथपुरी पहुँचे। उनके साथ उनके दो शिष्य बाला (हिन्दू) एवं मरदाना (मुसलमान) थे। पुरी के पण्डों ने गुरुजी एवं बाला को मन्दिर के भीतर जाने के लिए निमन्त्रित किया किन्तु मरदाना के प्रवेश पर (जन्म का मुसलमान होने के कारण) आपत्ति की। गुरु महाराज ने मन्दिर के द्वार पर ही जगत् के नाथ की जगद्व्यापी आरती-वन्दना की—

गगनमय थाल, रवि-चंद दीपक बने,
तारका मंडला जनक मोती।
धूप मलयानलौं, पवन चंबरौ करे,
सगल बनराय फूलन्त जोती।
कैसी आरती होई भवखण्डना, तेरी आरती,
अनहदा शब्द बाजंत भेरी।।
सहस तव नैन, ननु नैन है तोहिको,
सहस मूरत बना एक तोही।

सहस पद विमल, ननु एक पद, गंध बिन,
सहस तव गंध इव चलत मोही।।
सब मैं जोत जोत है सोई,
तिनके चानण सब जग चानण होई।
गुरु साखी जोत प्रगट होई,
जो तिस भावे सो आरती होई।।
हरि चरण कम मकरन्द लोभित मनु
अनु दिनो मोही आहि पियासा।
किरपा जल के दे नानक सारंग कउ,
होई जाते तेरे नाम वासा।।

अर्थात् 'हे जगन्नाथ महाप्रभु! आपकी विराट् आरती के निमित्त आकाशरूपी थाल में सूर्य एवं चन्द्रमा दीपक बने हुए हैं और असंख्य तारे इस थाल में जड़े हुए मोती हैं। मलय चंदन की सुगन्धि तुम्हारी आरती की धूप है, वायु चंवर कर रहा है। हे ज्योति स्वरूप! वनों के सारे पुष्प आपकी पूजा हेतु खिले हैं। हे भवखण्डन! तुम्हारी आरती सीमित कैसे हो सकती है, अनहद शब्द आरती में नगाड़े के रूप में बज रहा है। हरि के चरण-कमलों में मेरा मन-भ्रमर सदैव बना रहता है। मुझे तुम्हारे प्रेम मकरन्द की प्यास बनी रहती है। हे प्रभु! मुझ पपीहे को अपनी कृपा का जल दो, जिससे तुम्हारे नाम में मेरा निवास हो।'

आज दुर्भाग्य की बात है कि कुछ उग्रवादी अकाली सिक्ख नेता इस सारी दिव्य सांस्कृतिक परम्परा का तिरस्कार कर हिन्दू समाज से कटकर भारत से अलग खालिस्तान का आंदोलन चला रहे हैं।

महाराजा रणजीत सिंह द्वारा जगन्नाथजी को कोहेनूर हीरा समर्पण

पंजाब के सुविख्यात महाराजा रणजीत सिंह ने अपना शरीर छोड़ते समय अपनी वसीयत में अपना सबसे प्रिय एवं सर्वाधिक मूल्यवान कोहेनूर हीरा भगवान् जगन्नाथजी के चरणों में समर्पित कर दिया था। किन्तु महाराजा की मृत्यु के पश्चात् अंग्रेजों ने मंत्रीगण को बहकाकर यह आपत्ति करवा दी कि हीरा राज्य की सम्पत्ति थी, न कि महाराजा की व्यक्तिगत सम्पत्ति। अतः महाराजा को हीरा दान का अधिकार ही न था। इस प्रकार अंग्रेज उस हीरे को ठगकर इंग्लैण्ड ले गये।

चाहे अंग्रेज लुटेरे जगन्नाथजी का हीरा लूट ले गये किन्तु महाराजा रणजीत सिंह का दान सदा अविस्मरणीय रहेगा। उन्होंने काशी-विश्वनाथ मन्दिर के लिए भी 21 मन सोने का दान किया था।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा जगन्नाथजी की आरती

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ जब पुरीधाम गये तो उन्हें गुरुनानक देव द्वारा विरचित विराट् आरती से इतनी प्रेरणा मिली कि उन्होंने उस आरती का लगभग पद्यानुवाद अपने एक बांग्ला गीत में गाकर जगन्नाथजी का वाक्-पुष्प-पूजन किया—

ताहारे आरती करे चन्द्र तपन,
देव मानव बन्दे चरण,
आसीन सेइ विश्व शरण,
तार जगत-मन्दिरे।। ताहारे....
अनादिकाल अनन्त गगन,
सेइ असीम महिमा मगन,
ताहे तरंग उठे सघन,
आनन्द-नंद नन्दरे।। ताहारे....
हाते लये छय ऋतुर डालि,
पाये देय धरा कुसुम ढालि,
कतई बरन, कतई गंध, कत गीत,
कत छन्द रे। ताहारे....
विहग गीत गगन छाय,
जलद गाय, जलधि गाय,
महापवन हरषे धाय,
माहे गिरिकन्दरे।। ताहारे....
कतकत शत भक्त प्राण,
हेरिछे पुलके गाहिछे गान,
पुण्य किरणे फुटिछे प्रेम,
टूटिछे मोह बंध रे। ताहारे....

धुर्वा का जगन्नाथ मन्दिर

हुतात्मा ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव के पूर्वज छोटानागपुर के नागवंशी राजकुल के राजा ठाकुर ऐनीनाथ शाहदेव की धुर्वा, राँची में राजधानी थी। वे पुरी तीर्थ की यात्रा पर गये थे। वे अपने साथ सुकरा उरांव नामक एक सेवक को भी लेते गये थे। राजा प्रतिदिन देव दर्शन एवं सत्संग हेतु चले जाते तथा श्री उरांव को भोजन-

रसोई पकाने हेतु पीछे डेरे पर छोड़ जाते। श्री उरांव ने एक सप्ताह तक निराहार रहकर भगवान् जगन्नाथजी की आराधना की। भगवान् ने रात्रिकाल में उसे दर्शन देकर अपने हाथों से सोने के कटोरे में उसे खीर खिलाई। प्रातःकाल मन्दिर के पट खुलने पर देखा गया कि भगवान् का सोने का कटोरा लुप्त हो गया है। राजा ने यह समाचार जब सुकरा उरांव को सुनाया तो उसने बताया कि रात्रि को जगन्नाथजी ने उसे सोने के कटोरे में खीर खिलाई थी और वह कटोरा उसने पीछे बाड़ी में फेंक दिया था। कटोरा बाड़ी में मिल जाने पर राजा एवं पण्डा लोगों ने उसे पहचान लिया। सभी ने आनन्द विस्मित होकर कहा—'हमने तो मात्र काष्ठ मूर्ति के दर्शन किए, सच्चे जगन्नाथजी का दर्शन तो आपको ही हुआ है।' भगवान् जगन्नाथ ने स्वप्न में राजा ऐनीनाथ शाहदेव को प्रेरणा दी कि राँची लौटने पर वह धुर्वा, बड़कागढ़ (जगन्नाथपुर) में श्री जगन्नाथजी का मन्दिर स्थापित करें ताकि निर्धन वनवासी वहीं पर रथ-यात्रा का दर्शन कर पुण्य लाभ कर सकें।

एक उरांव वनवासी सेवक की ईश्वर-भक्ति के चमत्कार से ही राजा ऐनीनाथ शाहदेव को मंदिर स्थापना की सत्प्रेरणा हुई, इसलिये जगन्नाथपुर मंदिर झारखंड के वनवासी बन्धुओं का भी सर्वोच्च महातीर्थ बन गया।

बिरसा भगवान् ने इसी मंदिर में श्री जगन्नाथ महाप्रभु के सामने स्वदेश एवं स्वधर्म की रक्षा हेतु पापी पादरियों से धर्म-युद्ध का संकल्प किया था और इसी हेतु अपने प्राण भी न्योछावर कर दिये।

विदेशों में रथ-यात्रा

जापान एवं कोरिया में अभी तक इसी आषाढ़ शुक्ला द्वितीया के दिन विशाल रथ-यात्रा निकलती है। बौद्ध देश होने के कारण रथ में बुद्ध, तारा एवं कालभैरव की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित होती हैं। भारत के समान ही लकड़ी के रथ, लकड़ी के चक्के, खींचने वाले भक्त, वर्षा की रिम-झिम। सभी कुछ पुरीधाम जैसा ही होता है।

थाई देश, कम्बुज, चम्पा आदि में भी प्राचीन काल से रथ-यात्रा की परम्परा चली आ रही है। मलेशिया, सिंगापुर की रथ-यात्रा में इसी दिन भगवान् कार्तिकेय (सुब्रह्मण्यम स्वामी, मुरूगन स्वामी) के बड़े भव्य रथ निकाले जाते हैं। यह परम्परा दक्षिण भारत से आयी है। जिस प्रकार भक्तजन जगन्नाथ स्वामी का रथ खींचने में अपने को कष्ट में डालने तथा स्वयं बलिदान तक हो जाने में गौरव मानते हैं, उसी प्रकार दक्षिण भारतीय भक्त दक्षिण भारत में तथा दक्षिण-पूर्व एशिया में बसे हुए कावड़ उठाते हैं। अपने शरीर के मुख, कंधे के भीतर से सूआ पिरोकर, उससे रस्सी बांध, देवता के रथ को खींचते हैं।

इंडोनेशिया का बाली द्वीप लगभग 100 प्रतिशत हिन्दू द्वीप है। वहाँ की रथ यात्रा में विष्णु (जगन्नाथजी) विराजते हैं तथा इंडोनेशिया के शेष द्वीपों में बुद्ध, तारा एवं कालभैरव की त्रिमूर्ति है।

अमरीका एवं पश्चिमी देशों में आज जो विराट् रथ-यात्रा महोत्सव मनाए जा रहे हैं, वे सब पूज्य श्री भक्तिवेदान्त स्वामीजी की तपस्या का ही सुफल है। श्री चैतन्य गोड़ीय मठ के भक्त डॉ. अभय चरण कोलकाता में डॉक्टर थे। उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु की इस वाणी को पढ़ा कि एक दिन सारे विश्व में श्रीकृष्ण नाम गूंजना चाहिए। वे संन्यास लेकर भक्तिवेदान्त स्वामी नाम धारणकर सन् 1966 में एक भगवद्गीता, एक करताल एवं आठ डालर की विदेशी मुद्रा लेकर अमरीका जा पहुँचे। उन्होंने एक अमरीकी के साथ रहकर गीता व्याख्यान एवं संकीर्तन प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे प्रभुपाद के दिव्य विचारों से अमरीका में ही 14,000 से अधिक अमरीकन घर-गृहस्थी त्याग कर, मांस-शराब त्यागकर, शिखा-सूत्र, तिलक धारणकर, 'हरे-कृष्ण आंदोलन' में जीवनदानी संन्यासी बन चुके हैं। दुनिया में 150 से अधिक श्रीकृष्ण मन्दिर स्थापित हो चुके हैं तथा अमरीका, यूरोप, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड के प्रत्येक बड़े नगर में विराट् एवं विशाल रथ-यात्रा महोत्सव हो रहे हैं।

अमरीका में न्यू वृन्दावन एवं नवीन पुरी नगर स्थापित हो चुके हैं तथा बोस्टन, लंदन, न्यूयॉर्क एवं बर्लिन की गलियों में कीर्तन गूंज रहा है। इस प्रकार जगती के आंगन में जगन्नाथ महाप्रभु की रथयात्रा के बहाने भारतीय संस्कृति की दिग्विजय के महारथ के चरण-चिह्न स्थापित हो रहे हैं।

मुझे फिक्र है कि हमारे देशवासी कल-कारखानों और मशीनी तकनीक से बलवान बनकर अपनी-अपनी दौलत और ऐश के फेर में पड़कर कहीं अपने ही को खो न बैठें। अगर ऐसा हुआ, तो यह बड़े दुःख की बात होगी, क्योंकि इसके माने ये होंगे कि भारत युगों से जिन आदर्शों पर चलता आया है, और इस जमाने में गांधीजी ने जिनकी मिसाल कायम की है, उन सबको भुला देगा। शक्ति जरूरी है, पर ज्ञान उससे भी ज्यादा जरूरी है। जिस शक्ति को ज्ञान का सहारा हो वही शक्ति अच्छी होती है।

—पंडित नेहरू

गुरु पूर्णिमा

वेद विश्व का प्रथम ज्ञानलोक है। उस पावन प्रकाश को विधिवत् सम्पादित करके मानवता की भावी पीढ़ियों के लिए सुलभ बनाने वाले भगवान् वेदव्यास विश्व के प्रथम एवं महानतम ज्ञान-सम्पादक हैं। विश्व के सर्वोच्च दर्शन वेदान्त के द्रष्टा होने के कारण वे विश्व के प्रथम कोटि के महानतम दार्शनिक हैं, महाभारत जैस ग्रन्थराज के रचयिता होने के कारण वे विश्व के प्रथम विश्वकोश निर्माता हैं, पुराणकर्ता के रूप में वे विश्व के प्राचीनतम एवं महानतम पुराणेतिहासकार हैं। विश्व के सबसे बड़े महाकाव्य महाभारत के स्रष्टा कवि के रूप में विश्व के महानतम महाकाव्यकार हैं, श्रीमद्भगवत् महापुराण के रचयिता के रूप में वे भक्ति के महानतम आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इस प्रकार भगवान् वेदव्यास विश्व के महानतम गुरुओं में पूज्यतम पद पर प्रतिष्ठित हैं। उनकी पूजा वास्तव में ज्ञानगंगा की ही पूजा अथवा समस्त गुरु-परम्परा की पूजा है।

प्राचीन भारत में ऐसी प्रथा थी कि श्रावणी अर्थात् श्रावण मास की पूर्णिमा के अवसर पर, जब वर्षा का वेग कम होने लगता था, वेदादि शास्त्रों के पठन-पाठन का क्रम चालू होकर ग्यारह मास अर्थात् आषाढ़ मास की पूर्णिमा पर्यन्त बराबर नियत रूप से चलता रहता था, एक मास के वार्षिक अवकाश के उपलक्ष्य में आषाढ़-पूर्णिमा को विशेष पर्व के रूप में मनाया जाता था। उसी का नाम व्यास पूजा रखा गया था। उस अवसर पर प्रत्येक छात्र अपने पूज्य व्यास अर्थात् गुरु के प्रति अपनी विशेष श्रद्धा को प्रकट करता हुआ कुछ न कुछ दक्षिणा भेंट करता था।

गुरु शब्द दो अक्षरों के मेल से बना है—गु+रु (गु अर्थात् अंधकार से रु अर्थात् प्रकाश की ओर ले जाना)। वेदों में ज्योतिस्वरूप परमेश्वर से प्रार्थना की गई है—तमसो मा ज्योतिर्गमय (हे भगवान्! मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाओ)। मानव देहधारी गुरुओं का भी यही कर्तव्य है कि वे अपने शिष्यों को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जावें।

गुरु की महिमा

धार्मिक, नागरिक एवं राष्ट्रीय क्षेत्र में ध्वज का वही महत्त्व है जो मानव शरीर

में शिखामणि का है। बिना ध्वजा के पूजा, मंदिर, प्रासाद, भवन एवं राष्ट्र भी शीश विहीन या शिखा-विहीन प्रतीत होते हैं।

ध्वज का अर्थ है, 'ध्वजति, उच्छ्रितो भवति इति ध्वजः' जो उत्तुंग, उन्नत, उठा हुआ फहरता है वही ध्वज है।

पताका का अर्थ है 'पत्यते ज्ञायते कस्यचित् भेदीऽनमा' जिससे किसी विशेष भेद (प्रकार, श्रेणि) की पहचान हो सके वह चिह्न, प्रतीक या लक्षण। जैसे सेना की भिन्न-भिन्न वाहिनियों की अपनी पताकाएं होती हैं।

केतः, केतुः, केतनम्—का अर्थ भी झण्डा, चिह्न-प्रतीक है, जैसे कामदेव को मकरध्वजः और मकर केतन कहते हैं।

ध्वज एवं केतुः का अर्थ—मुख्य, प्रेरक, प्रधान, नेता, मार्गदर्शक भी होता है, जैसे रामायण में भगवान् राम को रघुकुल केतु, रघुवंश में मनुवंश केतु कहा गया है।

पंचतंत्र में कहा है—

किं तेन जातु जातेन मातु यौवन हारिणा।
आरोहति न या स्वस्य वंशस्याग्रे ध्वजो यथा।।

'मातृ यौवन हारी उस नर के जन्म से जग को लाभ ही क्या? ध्वज समान जो अपने वंश का नाम न ऊँचा कर पावे।

ध्वज का पूजा-होमादि में भी इतना महत्त्व है कि शिवसर्वरच में लिखा है कि ध्वज रहित भवन में सब जप, तप, पूजा-होमादि व्यर्थ हो जाते हैं।

ध्वजेन रहितो विप्र प्रासादस्तु वृथा भवेत्।
पूजा होमादिकं सर्वं जपाद्यं यत् कृतं नरैः।।

ध्वज का पर्याय वैजयन्ती शब्द भी है जिसका अर्थ ही विजय-पताका है। अतः ध्वज सदा मंगल, विभूति विजय का प्रतीक है।

भारतीय परम्परा में प्रायः सभी देवों, सन्तों एवं वीरों के ध्वज होते हैं। भगवान् विष्णु गरुडध्वज हैं। गरुड जो वाहन रूप में उनके चरणों के नीचे रहता है, उसे ही मान देकर भगवान् ने अपने सिर से भी ऊपर अपने झंडे में स्थान दिया। इसी प्रकार शिव वृषभ वाहन भी हैं और वृषभ केतु भी, गणेश जी मूषक वाहन और मूषक केतु भी, कार्त्तिकेय मयूर वाहन भी और मयूर ध्वज भी, दुर्गा सिंह वाहिनी भी और सिंह ध्वजा भी प्रसिद्ध है। महाभारत के युद्ध में अर्जुन के ध्वज पर हनुमान्‌जी प्रतिष्ठित थे। सन्तों-महात्माओं के ध्वजों पर ॐ, स्वस्तिक, धर्मचक्र, श्रीचक्र, कमल, हवन कुंड, कमंडलु, सुदर्शन चक्र आदि के प्रतीक होते हैं। नेपाल के राष्ट्रीय ध्वज में भगवे झंडे पर सूर्य एवं चन्द्रमा के चिह्न बने हैं। सन् 1947 से पूर्व प्रायः सभी हिन्दू

रियासतों में भगवे झंडे पर भिन्न-भिन्न प्रतीक अंकित रहते थे। वीरों के सैनिक ध्वजों में उनके प्रिय अस्त्र-शस्त्रों के चिह्न रहते थे। स्वातंत्र्य वीर सावरकर ने हिन्दू महासभा के भगवा ध्वज पर ॐ, स्वस्तिक, यज्ञाग्नि और तलवार के चिह्न नियत किये थे। ऑर्गनाइजर की भेंटवार्ता में सेफूद्दीन जिलानी ने कहा 'पैगम्बर मुहम्मद ने भी आन्दोलन स्वस्तिक चिह्न ध्वज को लेकर किया था।' हिटलर के ध्वज में भी स्वस्तिक चिह्न अंकित रहता था।

भारत का प्राचीनतम सर्वमान्य ध्वज भगवा ध्वज ही है। वेद में इन्द्र के झंडे को भगवत् ध्वज दंड कहा गया है, जिसका अर्थ है भगवान् का झण्डा। उसका रंग स्वर्ण गैरिक कहा गया है, उसमें गेरु मिट्टी का रंग तथा सोने की चमक दोनों हैं। भग का अर्थ है तेज, प्रकाश, ज्योति, ऐश्वर्य। भगवान् को भग (तेज) से युक्त होने पर भगवान् कहा जाता है—

ऐश्वर्य्यस्य समग्रस्य वीर्य्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययो श्चैव यस्मां भग इतींगना।।

'भग' (छः विशेषताओं) से युक्त होने के कारण परमेश्वर को भगवान् कहते हैं। वे हैं जगत् का समस्त ऐश्वर्य (सामर्थ्य), समस्त धर्म, समस्त यश, समस्त शोभा, समस्त ज्ञान और समस्त वैराग्य।

भगवान् के समान भगवान् का झंडा भी तेज, ओज, ऐश्वर्य, ज्ञान, वैराग्य आदि का प्रतीक है। वेदों में स्थान-2 पर भग की महिमा का गायन है। ऋग्वेद 1/62/7 में लिखा है—

भगो ना मेने परमे व्योमन्नधारयत् रोदसि सुदंसा : ('उस उत्तम प्रशंसा वाले भग (तेज) ने व्योम में, सूर्य के समान उन दोनों, पृथ्वी और आकाश को धारण किया।) अथर्ववेद का मंत्र है—

भगो मा भगेनावतु, प्राणायापानयायुषे वर्चस,
ओज से तेजसे स्वस्तये, सुभूतये स्वाहा।।

(अ./19/45/9)

ऐश्वर्य सम्पादक गुण के द्वारा भग देवता मेरे रक्षक हों। वे प्राण, अपान, आयु, वर्चस, ओज, तेज, मंगल, सुभूति के लिए भी मेरी रक्षा करें। (अ./19/45/9)

अथर्ववेद में देवों की असुरों पर विजय की भावना इस मंत्र में प्रकट हुई है—

धूमाक्षी सं पततु कृधुकर्णी व क्रोशतु।
त्रिषन्धे सेनया जिते अरुणाः सन्तु केतवः।

(अ.11/10/7)

('धूम से शत्रु सेना के नेत्र आच्छादित हो जायें। वे गिरने लगें। उनकी श्रवण शक्ति रणघोष से नष्ट हो जाए। जब त्रिसंधि देवता शत्रु विजय हेतु अरुण ध्वज लहरावें तब असुर रोने लगें।)

अरुण सूर्यनारायण का सारथि माना गया है। जैसे महारथी से पूर्व सारथि का दर्शन होता ही है उसी प्रकार सूर्य भगवान् के सात अश्वों (सात रंगों एवं सात दिनों) वाले रथ को चलाने वाले सारथि अरुण की भगवी लालिमा का दर्शन होता है। अतः अरुण ध्वज को सूर्य ध्वज भी कहते हैं।

प्रत्यक्ष सूर्योदय से पूर्व ही जो अरुण की भगवी लालिमा प्राची दिशा में प्रस्फुटित होती है। उसे ही उषाकाल कहा जाता है। जब प्रातःकाल सूर्यनारायण अपने शुभागमन की पूर्व सूचना देते हुए प्राची दिशा में अपनी स्वर्ण गैरिक पताका फहराते हुए आते हैं तब वैदिक ऋषि गायत्री, सावित्री, सूर्या, उषा का स्तवन कर भगवान् का अभिनंदन करते हैं। वह भागवत मुहूर्त या ब्राह्ममुहूर्त का काल है।

मानव देहधारी गुरुओं को समूचे राष्ट्र का गुरु मानने में निम्नलिखित कठिनाइयाँ पैदा होती हैं—

क. मानव पूर्ण नहीं होता। कुछ न कुछ अभाव उसमें रहता है।

ख. मानव अल्पजीवी होता है। यदि उसे राष्ट्र-गुरु मान लिया जावे तो उससे पूर्व के राष्ट्र-नागरिकों का राष्ट्र-गुरु कौन होगा तथा उसका स्वर्गवास होने के उपरान्त नागरिकों को जीवित गुरु का मार्गदर्शन कैसे मिलेगा?

ग. मानव मन की वृत्तियाँ बदलती रहती है। यदि गुरु ही बदल गया या पतित हो गया तो पूरे राष्ट्र का क्या होगा?

घ. वास्तव में जीवित गुरु का शरीर तो निमित्त मात्र होता है, वास्तविक गुरु तो गुरु का ज्ञान ही होता है, जिसका कोई शरीर नहीं।

विचार करने पर प्रतीत होता है कि भारत के युग-युग के इतिहास में समस्त गुरुओं के उपदेश का एकसमान तत्त्व रहा—त्याग, यज्ञ, बलिदान। बिना वैराग्य, विवेक, समर्पण के ज्ञान का उदय असम्भव है। अतः राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने सूक्ष्म विचार कर ज्ञान और वैराग्य के प्रतीक भगवा ध्वज को ही (तत्त्वतः ज्योति और यज्ञ भावना को ही) पूरे राष्ट्र का गुरु माना है।

भगवा रंग बड़ा पूज्य एवं प्रेरक रंग है—

क. यह नारंगी का रंग है जो अन्दर और बाहर से (छिलका, फाडी और रस में) एक ही भगवे रंग का है। अन्दर-बाहर से भिन्न-भिन्न भाव वाला दुरात्मा होता है। महात्मा वही है जो बाहर-भीतर से एक हो, जिसकी कथनी-करनी में एकता हो।

ख. यह अग्नि का रंग है, संन्यास का रंग है। संन्यास आश्रम में

व्यक्ति अपने व्यक्तिगत जीवन की सभी एषणाओं का हवन करके समष्टि जीवन का श्रीगणेश करता है। वह परमार्थ के लिए स्वार्थ को, समष्टि के लिए व्यष्टि को होम कर देता है।

ग. अग्नि का भोजन अंधकार है और प्रसाद प्रकाश है। कोयले को धोने के लिए यदि संसार भर का सारा साबुन लगा देवें तो भी वह कभी सफेद नहीं होगा। किन्तु यदि वह अग्नि में डाल दिया जावे तो अग्नि उसके सारे कालेपन को खाकर उसे अपने समान देदीप्यमान कर देती है। इसी प्रकार सच्चा गुरु शिष्य के अन्धकार को दूर कर उसे अपने समान तेजस्वी बना देता है।

घ. मानव को माया के बंधन में बांधने वाले दो प्रमुख कारण हैं—

(i) अहंता—अपने ठीक स्वरूप का अज्ञान तथा भ्रमवश शरीर, इन्द्रिय या मन-बुद्धि को ही आत्मा मान लेना। इससे अहंकार बढ़ता है।

(ii) ममता—जो वस्तुएं अपनी नहीं है, उसके प्रति मोह-ममता की भावना रख कर उन्हें अपना मानते रहना। इससे स्वार्थ बढ़ता है।

ङ. भगवा ध्वज अपनी स्वर्ण-गैरिक-तेजस्वी ज्योतिच्छटा से अज्ञान का नाश करता है तथा अपनी यज्ञ ज्वालाओं से हमारे स्वार्थ को भस्म कर हमें परमार्थी बनाता है।

सवितृदेव की ज्योति से अज्ञान का नाश होता है तथा यज्ञ ज्वालाओं से स्वार्थ भस्म होता है।

अहंता और ममता का नाश हो जाने पर जीवन ज्योतित एवं यज्ञमय बन जाता है। ऐसा जीवन इहलोक में समुत्कर्ष एवं परलोक में परम निःश्रेयस का लाभ कर धन्य-धन्य हो जाता है। ऐसे राष्ट्रार्पित जीवनव्रती सज्जनों से राष्ट्र का भाग्य बदल जाता है तथा भारतमाता के परम सौभाग्य का दिन आ जाता है।

इस भगवा ध्वज के तार-तार में अनेक ऋषि-मुनियों का तप-तेज, अनेकों ज्ञानी गुणियों का प्रखर ज्ञान, बलिदानी वीरों का महान् बलिदान, जौहर की ज्वालाओं एवं संगठन संजीवन की प्रेरणाओं का इतिहास अनुस्यूत है।

इसीलिए शिवाजी ने भगवे झण्डे को गुरु रूप में प्रतिष्ठित किया।

कांग्रेस ने पंडित नेहरू की अध्यक्षता में एक बैठक नियत की थी। उसने भी मत दिया था कि भारत का ध्वज भगवा ही हो सकता है। किन्तु मुसलमान तुष्टीकरण की नीति के कारण बाद में तिरंगा झंडा स्वीकार किया गया। तिरंगा झण्डा वर्तमान शासन द्वारा तथा उससे पूर्व कांग्रेस द्वारा स्वीकृत राजकीय ध्वज है जिसका समादर करना चाहिए। किन्तु 40 वर्ष पुराने इस ध्वज की तुलना में भारतीय राष्ट्र का युग-युग से पूजित राष्ट्रध्वज, भगवा-ध्वज ही है, जिसे पुनः राष्ट्रव्यापी श्रद्धा समर्पित करना परमावश्यक है।

विद्या, वीरता-विजय एवं वैभव का मंगल-पर्व रक्षा-बंधन

भारतीय संस्कृति मानव की निगूढ़ दिव्य शक्तियों एवं मानवीय मूल्यों का समुचित विकास करके उसे देवोपम गरिमा के योग्य बना देने की सुगम साधना है। मानव तथा मानवीय समाज दोनों ही संस्कार ग्रहण करते हुए धीरे-धीरे सुसंस्कृत बनते हैं। अतः हमारे राष्ट्र जीवन में धार्मिक एवं नैतिक संस्कारों का महत्त्व अत्यधिक है, जिन्होंने युगानुयुग इस महादेश की कोटि-सन्तानों को धर्म, नीति एवं कर्तव्य की शाश्वत प्रेरणा देकर हमारे राष्ट्र को चिरन्तनजीवी बना दिया है। संस्कृति का कार्य ही संस्कार देना है। विश्व भर में मानव को उच्चतम संस्कार दे कर उसका उच्चतर परिष्कार करने वाली भारतीय संस्कृति संसार-भर में महानतम है।

हमारे समाज के इतिहास में वह पुज्यवेला धन्य रही होगी जब से हमारी जाति में रक्षा-बंधन की पावन परम्परा का सूत्रपात हुआ होगा। हम भारतीयों का जीवन के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण है जो हमारी जाति को चिरन्तन जीवन प्रदान करता है। आज भी श्रावण शुक्ला पूर्णिमा के दिन कर्तव्य की गूढ़ गांठों से बंधी हुई हमारे कर की राखी पुनः लोकोत्तर दृष्टिकोण का संदेश सुनाती है?

मातृवत परदारेषु, पर द्रव्यपुलोष्ठवत।
आत्मवत सर्वभूतेषु-यः पश्यति स पश्यति।।

संसार की सभी पराई स्त्रियों को जो माँ-बहिन समझता है। सभी पराए धन को कचरे के तुल्य समझता है, सभी जीवों में अपनी ही आत्मा देखता है वही वास्तव में देखता है। जिसको ऐसी दृष्टि नहीं मिली वह तो अंधा है।

वेद ज्ञान का आलोक पर्व

रक्षा-बंधन का प्राचीन नाम श्रावणी, उपाकर्म तथा ऋषि-तर्पण पर्व भी है। वेद विश्व का अनादि वाङ्मय है तथा जो पर्व वेद मूलक है, वह पर्व भी अनादि है। हमारा यह महान् गौरव है कि जब शेष सारा संसार अंधकार एवं अज्ञान की पगडंडियों पर मार्ग टटोल रहा था, जब अमरीका का पता तक नहीं था तथा

डारविन के यूरोपीय पूर्वजों ने अपनी बंदर की पूंछ काट कर इन्सान की उपाधि प्राप्त नहीं की थी तब भारत के ऋषि हाथ में वेद ज्ञान की मशाल लेकर सारे विश्व को प्रकाश का दान कर रहे थे।

प्राचीन भारतीय परम्पराओं के अनुसार इस दिन ब्रह्माजी ने वेद गाये थे। स्कंद-पुराण के अनुसार आज के दिन श्रवण नक्षत्र के आरंभ में भगवान् विष्णु का हयग्रीव नामक अवतार हुआ। इस हयग्रीव जयन्ती के दिन भगवान् ने ऋग्वेद और यजुर्वेद की संख्या में सामवेद की अभिवृद्धि की। भगवान् ने यह सामघोष प्रथम बार वितस्ता (झेलम) और सिन्धु के पवित्र संगम पर किया।

श्रातष्यां श्रवणे पूर्वं
जातो हयशिरा हरि,
जगाम सामवेदं तु सर्वं
किल्विश नाशनम्।
सिन्धु नदी वितस्तायां
प्रवृत्तस्तत्रं संगमें,
श्रवणर्क्षे ततस्तत्र स्नानं
सर्वार्थ सिद्धिदम्।।

(स्कंद पुराण)

स्कंद पुराण का आदेश है कि वेदगान के पुण्यतीर्थ सप्त सिंधु प्रदेश में झेलम तथा सिंधु के संगमों पर स्नान करने से सर्वार्थ सिद्धि होती है। भारत के कोटि-कोटि नर-नारी की भी सर्वार्थ सिद्धि तभी होगी जब वे भारत को पुनः अखण्ड बना कर वेदों की भूमि पर जाकर वितस्ता (झेलम) तथा सिन्धु नदी के पवित्र जल से स्नान करेंगे।

यह पर्व वेदाध्ययन के आरम्भ का पर्व है। वैदिक ज्ञान के आरम्भ का उपक्रम होने से यह उपाकर्म कहलाता है। वैसे भी यह गुरु के निकट जाने का कर्म (उपाकर्म) है।

ऋषि-तर्पण के रूप में यह वेदों के मंत्रद्रष्टा ऋषियों के तर्पण का पर्व है। जिन ऋषियों ने हमें यह महान् ज्ञान-भण्डार दिया उनके प्रति हमारा एक महान् ऋण है। उन ऋषियों का तर्पण कैसे किया जाए? वे तो आप्तकाम हैं। उन्हें कोई कामना नहीं। अतः तृप्ति की आकांक्षा नहीं। केवल अपना कर्तव्य पालन करने के लिए ऋषि-ऋण उन ज्ञानदाता ऋषियों का तर्पण ज्ञान-साधना से ही किया जाता है। मनु भगवान् का आदर्श चुकाने के लिए है—

स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन्।

अर्थात् ऋषियों की स्वाध्याय से अर्चना की जाय। अतः यह वेद के स्वाध्याय का पावन ज्ञान पर्व है।

शिक्षा सूत्र

प्राचीन काल में शिष्य लोग गुरुकुलों में गुरु की सेवा में रह कर शिक्षा प्राप्त किया करते थे। उनकी शिक्षा का नया सत्र रक्षा-बंधन से प्रारंभ होता था। रक्षा-बंधन (उपकर्म) से पौष पूर्णिमा तक 6 मास का एक शिक्षा सत्र होता था तथा इसी प्रकार दूसरे 5 मास का दूसरा शिक्षा सत्र होता था। रक्षा-बंधन से 1 मास पहले गुरु पूर्णिमा के दिन शिष्यगण गुरु को गुरु-दक्षिणा भेंट करके एक मास के वर्षावकाश पर अपने-अपने घरों को चले जाते थे। इस दिन वे पुनः गुरु के चरणों में लौट कर नये वर्ष की नई कक्षाओं का अध्ययन प्रारंभ करते थे।

दक्षिणायन पर्व

ज्योतिषियों के मतानुसार रक्षा-बंधन के दिन तक पृथ्वी सूर्य के गिर्द अपनी वार्षिक गति का आधा भाग समाप्त कर लेती है। जैसे मकर संक्रांति से उत्तरायण प्रारम्भ होता है। वैसे ही रक्षा-बंधन को उत्तरायण समाप्त हो कर दक्षिणायन का प्रारम्भ होता है। इस दिन द्विज लोग नदी पर जा कर पंचगव्य सहित स्नान करके अपने आप को मानसिक प्रायश्चित्त द्वारा निष्पाप बना कर नया यज्ञोपवीत धारण करते थे। इस दिन वेद की ध्वनि से ग्राम, नगर, वन-उपवन गूंज उठते थे। इस विद्या के लिए सत्य संकल्प का यह ज्ञान प्रधान उत्सव संसारभर में अनूठा है।

व्रतेन दीक्षा माप्नोति, दीक्षाप्नोति दक्षिणाम।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति, श्रद्धा सत्यमाप्नुते।।

श्रावणी पर्व

श्रवण नक्षत्र तथा श्रावण मास हिन्दू जाति में बड़े महत्त्व का है। श्रवण नक्षत्र में वेद श्रवण का बड़ा महत्त्व है। श्रावण मास में शिव पूजन किया जाता है। श्रावण में अनेक प्रकार के नए जीव-जन्तु पैदा होते हैं। जो पशुपति की प्रजा हैं। अतिवृष्टि से सरिताएं रजस्वला हो जाती हैं। अतः रक्षा-बंधन से पहले नदियों में स्नान वर्जित होता है। इस दिन पुनः स्नान किया जाता है। शिव का सहस्रधारा पूजन किया जाता है।

जब धरती (प्रकृति) जलप्रलय के भय से भयभीत हो जाती है तब वह पुरुष (शिव) को पुकारती है प्रकृति-पुरुष के मधुर मिलन का पर्व श्रावणी है। प्रकृति-पुरुष के इस लीला उत्सव में बालिकाएं झूला झूलती हैं और सावन के गीत गाती हैं।

श्रावण मास का त्रेता युग के प्रसिद्ध मातृ-पितृ भक्त बालक श्रवण कुमार से भी संबंध बताया जाता है। मातृ-पितृ भक्त श्रवण कुमार का जिन्होंने अपने कन्धों पर बिठाकर माता-पिता को इच्छित तीर्थयात्रा कराई और दशरथ के शब्द भेदी बाण से मारा गया। मातृ-पितृ भक्त श्रवणकुमार का चरित्र युगों से भारतीय सन्तानों को एक महान् प्रेरणा प्रदान करता रहा है।

वीरता-विजय और धर्म का पर्व

अथर्ववेद में मानव की विजय के लिए उसके हाथ में गुरु द्वारा मंत्र पूत रक्षा सूत्र के बांधने का विधान है। उसके लिए कोई पर्व विशेष निश्चित नहीं था। आज भी किसी महान् अनुष्ठान के लिए 'व्रतेन दीक्षामाप्नोति' का गायन करते हुए गुरु शिष्य के हाथ में तथा शिष्य गुरु के कर (हाथ) में मांगलिक सूत्र बांधते हैं। इससे परस्पर गुरु तथा शिष्य दोनों ही एक पवित्र व्रत में बंध जाते हैं।

हमारी जाति के इतिहास के उषाकाल में ही जब असीरीया निवासी विदेशी, विधर्मी असुरों ने देवभूमि भारत पर आक्रमण किया तो भीषण देवासुर संग्राम हुए। एक बार असुर बड़े बलवान निकले, उन्हें पराजित करना कठिन हो गया। उस समय देवराज इन्द्र की कलाई में उसकी पत्नी इंद्राणी ने अबलाओं के मान-सम्मान की रक्षा के व्रत का स्मरण कराने वाला मंगल कामनाओं एवं पवित्र प्रार्थनाओं से अभिमन्त्रित रक्षा सूत्र बांधा तथा उन्हें युद्ध भूमि में भेज दिया। इस बार इन्द्र के वज्र धारी हाथ में बंधा हुआ पावन रक्षा सूत्र बार-बार इन्द्र को अपने महान् कर्तव्य का स्मरण कराता रहा तथा इस प्रकार उसके सम्पूर्ण शौर्य को प्रकट करने में हेतु बना। इन्द्र की विजय में धर्म की विजय और भारतीयता की विजय थी।

भाई-बहिन के स्नेह का पर्व

भारतीय संस्कृति में बहिन का सम्बन्ध प्रेम एवं पूजा के समन्वय से बना है। भगवान् वेदव्यास का कथन है—

न हि भगिनी समो मान्या न हि मातृरूया गुरु।

अर्थात् बहिन के समान कोई मान के योग्य नहीं है और माता के समान कोई गुरु नहीं है। आज श्रावण पूर्णिमा के दिन बहिन-भाई के हृदय में पावन प्रेम हिलोरें लेता है।

स्नेह पर्व की पावन राखी
तेरे अमर सूत्र में बंध कर
भाई देता वचन बहिन को
अन्तिम सांसों तक रक्षा का

शक्ति तथा शील का पर्व

भारत में क्षत्रिय किसी कसाई का नाम नहीं है। वह अत्याचारी नहीं, शूरवीर है। वीरता को धर्म की पुकार ही जगा सकती है। अतः भारत ने रक्षा-बंधन पर्व में शक्ति तथा शील के समन्वय का सर्वोच्च आदर्श रखा है। धर्मपालन में दीनों, अबलाओं, असहायों की रक्षा के लिए जो अपने प्राण भी दे सके वही सच्चा वीर है। वही सच्चा क्षत्रिय है। शक्ति द्वारा कभी भी हमने निर्बल पर अत्याचार नहीं किया। रक्षा-बंधन मानवता के परिष्कार का अनूठा पर्व है।

ऐतिहासिक रक्षा-बंधन

कहा जाता है कि सिकन्दर की पत्नी रैक्सोना ने रक्षा-बंधन के दिन पोरस को राखी भेजी। इसलिए युद्ध भूमि में पोरस अपने भाले से सिकन्दर का कलेजा चीरने लगा तो अपने कर की राखी को देखकर अपने हाथ खींच लिए। इस प्रचलित कथा का ऐतिहासिक आधार चाहे अभी तक प्राप्त नहीं फिर भी इसमें रक्षा-बंधन का महत्त्व भरा हुआ है।

कर्णवती द्वारा हुमायूं को राखी भेजना इतिहास प्रसिद्ध है। जब महाराणा प्रताप के पौत्र राणा राजसिंह को रूपनगर की राजसुता चारुमती ने राखी भेजी तो वह तुरंत सेना सहित उस की रक्षा के लिए दौड़ा हुआ आया और औरंगजेब को पराजित कर चारुमती के सम्मान की रक्षा की। जब लार्ड कर्जन ने बंग-भंग की घोषणा की तो समूचा बंगाल इसके विरुद्ध खड़ा हो गया। रक्षा-बंधन के दिन सारे देशवासियों ने बंगाल की एकता की रक्षा का व्रत लिया, परस्पर राखी बांधी। इस प्रकार बंग प्रदेश अखण्ड रहा।

रक्षा-बंधन ब्राह्मणों का पर्व माना जाता है वस्तुतः रक्षा-बंधन हमारा एक राष्ट्र व्यापी सांस्कृतिक आन्दोलन है जिसमें समाज के सभी वर्ण एवं वर्ग परस्पर स्नेह के साथ-साथ परस्पर रक्षा का संकल्प लेते हैं। समाज की अज्ञान से रक्षा विद्वान् ब्राह्मण करे, अन्याय से रक्षा बलवान क्षत्रिय करे, अभाव से रक्षा धनवान वैश्य करे, प्रमाद से रक्षा श्रमिक शूद्र करे। इस प्रकार उच्च सौहार्द भाव से सभी बन्धु रक्षासूत्र से बंधकर समाज की रक्षा के लिये कृत संकल्प हो जाय, रक्षा-बंधन का यह दिव्य संदेश कितना महान् है।

जो उदारता, क्षमा, दया-विवेक के, वैदिक शास्त्र के सांचे-ढांचे में न ढली हो वह स्वयं को और देश को पतन और पराधीनता में ले जाती है।

—प्रो. ओबराय

कर्म एकादशी महापर्व

भारत एक धर्मप्राण देश है तथा भारतीय समाज एक उत्सव-प्रिय समाज। भारतीय समाज नगरवासी, ग्रामवासी तथा वनवासी तीन स्तरों में विकसित हुआ है। किन्तु सभी स्तरों पर एक ही महान् संस्कृति का स्वर्णिम सूत्र पूरे समाज को एकात्मता में बांधने में सहायक हुआ है। भारतीय जीवन की एकात्मता हमारे धार्मिक एवं सामाजिक उत्सवों की एकरूपता में भी प्रतिफलित हुई है।

भारतीय सम्वत्सर का भाद्रपद मास एक उत्सव प्रधान मास है। जहाँ भाद्र-कृष्णाष्टमी, भगवान् श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव है। वहाँ भादों के कृष्ण पक्ष में उत्सवों की एक मालिका ही सुशोभित है।

1. भाद्रपद शुक्ला 3—हरितालिका तीज—इस दिन भगवती उमा (पार्वती) ने भगवान् शंकर को वरण करने के लिए व्रत किया था। इस दिन नारियाँ अपने सौभाग्य की रक्षा के लिए व्रत करती हैं। वे नदी तीर पर बालू से शिव एवं पार्वती की प्रतिमा बनाकर उसका पूजन करती हैं तथा उमा (पार्वती) के समान ही अखण्ड सौभाग्य की कामना करती हैं।

छोटानागपुर में करमा (कर्म एकादशी) पर्व के निमित्त घर-घर में जवा (यव, जौ) बोने के हेतु देवियाँ नदी तीरों से स्वच्छ, पवित्र मिट्टी आज के दिन ही लाती है। फिर नवरात्र के नौ दिनों के समान ही तृतीया से एकादशी तक बांस की नई टोकरी या पत्तल में मिट्टी-गोबर भरकर उसमें कूप जल तथा हल्दी पानी देकर उस सुनहली जौ की खेती को अंकुरित किया जाता है। इन नौ दिनों में देवियाँ पूर्ण सदाचार का व्रत धारण करती हैं तथा मांस-मछली आदि का सेवन नहीं करती।

2. भाद्रपद शुक्ला 4—गणेश चतुर्थी—इस दिन गणों के ईश, विनायक गणपति का जन्मोत्सव मनाया जाता है। प्रकृति रूपी पार्वती माता को जिस प्रकार गणपति जैसे प्रथम-पूज्य पुत्र की प्राप्ति हुई उसी प्रकार छोटानागपुर में करमा एकादशी की व्रत कथा कहते हुए पहान (कथाकार) कुमारियों से पूछता है कि—'हे पार्वती! तुमने क्या पाया?' वे उत्तर देती हैं, 'ककड़ू लेकन कोड़ा होनले नमाना' अर्थात् हमने कद्दू जैसा बड़ा (गणपति जैसा विशाल) लड़का प्राप्त किया है।

3. भाद्रपद शुक्ला 5—ऋषि पंचमी—इस दिन ध्रुव की प्रदक्षिणा करने वाले सप्तर्षियों (महर्षि कश्यप, भरद्वाज, अत्रि, गौतम, जमदग्नि, वसिष्ठ और विश्वामित्र) का पूजन किया जाता है। छोटानागपुर में देवियाँ डलियाँ में अंकुरित जवा की पावन खेती में श्रद्धा जल चढ़ाती हैं।

4. भाद्रपद शुक्ला 8—राधा अष्टमी—इस दिन आत्मा की अमर आराधना की प्रतीक भगवती राधिकाजी का जन्मोत्सव मनाया जाता है। छोटानागपुर में भी करमा पूजा के पखवाड़े में भक्ति एवं आनन्द का रस सर्वत्र तरंगित होता है।

5. भाद्रपद शुक्ला 8—दधीचि जयन्ती—देवराज इन्द्र को वृत्रासुर दैत्य पर विजय प्राप्त करने के लिए अपनी अस्थियाँ दान करने वाले ऋषि दधीचि को श्रद्धांजलि समर्पित की जाती है। छोटानागपुर में भी इन्द्र पूजा की प्रथा है।

6. भाद्रपद शुक्ला 9—संत श्रीचन्द्र जयन्ती—गुरुनानक जी के ज्येष्ठ पुत्र उदासीन सम्प्रदाय के महान् संस्थापक संत श्रीचन्द्रजी का जन्म इसी दिन हुआ था।

7. भाद्रपद शुक्ला 10—दशावतार पूजा—इस दिन भगवान् विष्णु के दस अवतार (मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि) के पूजन का विधान है। छोटानागपुर में करमा एकादशी का पूर्व दिवस होने के कारण इस दिन नृत्य-संगीत का अलौकिक रंग छा जाता है। वन-पर्वत मान्दर की ताल तथा करमा के स्वागत गीतों से गूंज उठते हैं।

8. भाद्रपद शुक्ला 11—कर्म एकादशी—एकादशी भगवान् विष्णु की प्रिय तिथि है। करमा एकादशी पर विशेष रूप से कुछ विशेष वृक्षों अथवा तृणों (करम वृक्ष-कुश, तृण, झुंट आदि) का झूर स्थापित कर उसे विष्णु भगवान् की प्रकट विभूति मान कर षोडशोपचार पूजन किया जाता है। वृक्ष जड़ पृथ्वी में चैतन्य का जीवन स्पन्दन है। वृक्ष मानव के मलिन मल को पचा कर उसे अमृत फल देता है, मलिन दुर्गंधपूर्ण वायु को पचा कर मानव को नवजीवन का नव श्वास प्रदान करता है। अतः वह सृष्टि के पालक भगवान् विष्णु का सुन्दर प्रतीक है। भारतीय लोकमानस ने वट वृक्ष, अक्षय वट अश्वत्थ (पीपल), तुलसी, आम्र, जम्बू, देवदारु, कल्प वृक्ष आदि को देवत्व की गरिमा से मण्डित किया है।

(ख) करमा एकादशी कथा—राजा द्विज शर्मा के दो पुत्र थे :—

1. कर्म (जिसकी पत्नी कर्कशा), 2. धर्म (जिसकी पत्नी सुशीला थी।)

धर्म की पत्नी करमा एकादशी व्रत करती है। कर्म की स्त्री न व्रत करती है न नियम। नित्य झगड़ा करती है। उसके कर्म (भाग्य) घर छोड़ कर भाग जाते हैं।

राजा कर्म शर्मा स्वयं अपने कर्म (भाग्य) को खोजने जाते हैं। वन में जिस मित्र के पास ठहरे उसके ऊपर भी विपत्ति आ गई। जिस आम्र वृक्ष के नीचे गये

उसमें भी कीड़े पड़ गये। राजा का भाग्य रूठ गया था। राजा व्याकुल होकर यमुना तट पर गिर पड़ा। उसके (कर्म) देव ऋषि का रूप धारण कर प्रकट हुए। उन्होंने राजा से कहा, 'तुम धर्म पर चलते हुए करमा एकादशी व्रत करो। इससे सब पापों से मुक्त हो जाओगे।'

(ग) दार्शनिक अर्थ—इस कथा का दार्शनिक अर्थ बड़ा सुन्दर है। जब हम धर्म को और सृष्टि के पालक विष्णु भगवान् को भूलकर कोई कर्म करते हैं तो कर्म (भाग्य) हम से रूठ जाता है, हमें शरण देने वाले मित्रों पर भी विपत्ति आती है, हमें छाया देने वाले वृक्षों तक को कीड़े लग जाते हैं और गाय रूपी माता के पास दूध होने पर भी हम बछड़े तरसते रह जाते हैं। अतः मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपना प्रत्येक कर्म प्रभु को समर्पित कर दे, जिससे प्रत्येक कर्म धर्म बन जाये।

कथा की समाप्ति पर उपवास करने वाली सभी देवियाँ करम डाल (झूर) पर पुष्प एवं अक्षत समर्पित करती है।

(घ) करमा के नृत्य गीत—भारत की वनवासी जातियों में एक मुण्डारी कहावत चलती है, 'सेन गे सुसुन, काजी गे दुरांग' अर्थात् 'हमारी हर चाल नृत्य है तथा हर वाणी संगीत।' करमा पर्व पर प्रकृति के साथ तदाकार हुए हमारे वनवासी बन्धुगण अपने मनोहारी नृत्य-संगीत से सारे वन प्रान्तर को गुंजायमान कर देते हैं—

सातों भइया सातो करम गाड़य,
सातों गोतोनी सेवा करय हो।।सातों भइया।।
बड़ भइया मान्दर टांगय, छोट भइया पायल धरई।
डण्डा पटोरा भुइंयां लोरय हो।।डण्डा पटोरा।।

(ङ) करम डाइर मित्रता—कर्म डार (झूर) को भगवान् विष्णु के समान साक्षी मान कर वनवासी देवियाँ आपस में अखण्ड पवित्र मित्रता का व्रत लेती हैं। इसी प्रकार पुरुष पुरुषों से मित्रता का व्रत लेते हैं। वे इस व्रत को जीवन भर निभाते हैं तथा मित्र का नाम न बोल कर उसे करम डाइर कह कर बुलाते हैं।

9. भाद्रपद शुक्ला 12—वामन द्वादशी—यह वह महान् दिन है जिस दिन भगवान् विष्णु ने वामन अवतार धारण कर राजा बलि से दान का वचन लेकर तीनों लोक (पृथ्वी, अन्तरिक्ष और आकाश) अपने तीन पग में माप लिए। इस दिन छोटानागपुर में करम डाल (झूरदेव) का नदी या सरोवर आदि में विधिवत विसर्जन किया जाता है। नृत्य-संगीत की मधुर सृष्टि से यह दिवस भी स्वर्गिक आह्लाद से पूरित हो उठता है।

10. भाद्रपद शुक्ला 14—अनन्त चतुर्दशी—इस दिन भुजंग शयन भगवान् विष्णु के विलक्षण आसन, भगवान् अनन्त (शेषनाग) का पूजन किया जाता है।

भगवान् विष्णु का शेषशायी रूप प्रशान्त ब्रह्म का चित्र है तथा उनको गरुड वाहन रूप गतिशील, कर्मशील, सृष्टिकर्ता ईश्वर का प्रतीक है। इसी दिन जैन धर्म के तीर्थंकर महावीर स्वामी को अनन्त ज्ञान प्राप्त हुआ था। इस दिन छोटानागपुर के वनवासी बन्धु इन्द पूजा (इन्द्र पूजा) महोत्सव मनाते हैं। इन्द बोंगा देवराज इन्द्र ही है जो (वृत्रासुर दैत्य द्वारा) मेघों में बन्दी जलों को मुक्त कर धरती को शस्य श्यामला बना देते हैं। भगवान् विष्णु को उपेन्द्र (इन्द्र का भाई) भी कहा गया है।

11. भाद्रपद पूर्णिमा—(क) सत्यनारायण कथा—पूर्णिमा भगवान् विष्णु के सत्यनारायण स्वरूप का पूजन पर्व है। इस दिन भाद्रपद के उत्सवों की परिपूर्णता सम्पन्न होती है।

(ख) पितृ-पक्ष—इसी दिन से पितृ पक्ष पखवाड़ा प्रारम्भ होता है। भारत के श्रद्धालु जनगण अपने पूर्वजों, पितरों को श्राद्ध कर्म द्वारा अपनी श्रद्धा समर्पित करते हैं।

(ग) अप्पय दीक्षित जयन्ती—16 वीं शती में इसी दिन दक्षिण भारत के एक अलौकिक संत-मनीषी अप्पय दीक्षित का जन्म हुआ था, जिन्होंने समाज को अपने महान् पाण्डित्य का प्रसाद संस्कृत के 104 अमूल्य ग्रन्थों में दिया। उनका चतुर्शताब्दी महापर्व इसी भाद्रपद पूर्णिमा को संसार भर में मनाया जा रहा है।

अलौकिक तथा दिव्य अप्पय दीक्षित को श्रद्धांजलि, हरितालिका तीज को श्रद्धांजलि, भगवान् गणपति को श्रद्धांजलि, सप्तर्षिगण को श्रद्धांजलि, भगवती राधिका, महर्षि दधीचि, संत श्रीचन्द्र, भगवान् वामन, भगवान् अनन्त आदि सभी विभूतियों को श्रद्धांजलि तथा सबसे ऊपर कर्म-एकादशी महापर्व को हमारी सतत शाश्वत भावांजलि!!!

ज्ञानालोक की अर्चना का पर्व : ऋषि पंचमी

मानव-मन की अन्धकारमयी विकराल रात्रि के घनीभूत तमस को भेद कर जब सबसे पहले आलोक की प्रथम रश्मि फूट निकली होगी, वह क्षण धरती का सबसे बड़ा पर्व हुआ होगा और, जिनके मन में वह आलोक का उज्ज्वल झरना उमड़ पड़ा होगा, वही मानवता का पथ प्रदर्शन करने वाले महान् ऋषि बन कर पूजित हुए होंगे। इन्द्रिय और मन का निग्रह करके मौन साधना करने वाले मुनियों को अपने भीतर ही जब परम तत्त्व का दर्शन हो गया तो वे बोले बिना नहीं रह सके। उनकी आत्मा का संगीत ही उनकी वाणी से वाग्धारा सरस्वती बन कर निस्सृत हुआ और वे अनन्त मौन में लीन रहने वाले मुनि ब्रह्मदर्शी ऋषि बन गए। महामुनि यास्क का कथन है—

'ऋषयो मन्त्र द्रष्टारः।'

अर्थात् वेदमन्त्रों का दर्शन कराने वाले तत्त्वद्रष्टा महापुरुष ही ऋषि हैं। भारत उन्हीं आलोकद्रष्टा ऋषियों की गौरवशाली सन्तान है, मानवता को सबसे प्रथम आलोक प्रदान करने वाले ऋषियों के हम वंशज हैं। इन्हीं महान् स्मृतियों को जगाने वाला तथा भविष्य में कर्तव्य का उज्ज्वल पथ दिखाने वाला ऋषि पंचमी पर्व भाद्रपद मास की शुक्ला पंचमी को आता है।

यह पर्व ऋषि-पूजन का पर्व है। वंश ब्रु वंश भी इसी दिन होता है। अपनी प्राचीन वंशावली का ज्ञान प्राप्त कर हमारे मन में गौरव जाग उठता है कि हम किन अलौकिक-अवतारी महापुरुषों की सन्तति हैं, किस वंश वृक्ष की हम एक लघु शाखा हैं, इन पंक्तियों के लेखक को जब भारद्वाज गोत्र का स्मरण हो आता है तो सहसा उसकी आंखों के सम्मुख एक दृश्य नाच उठता है कि उसका उन पुण्यश्लोक प्रातःस्मरणीय भरद्वाज ऋषि से सम्बन्ध है जो सप्तर्षिमण्डल के एक प्रमुख ऋषि बन कर आज विश्व के नभोमण्डल में चमक रहे हैं। त्रिवेणी तट पर जिसका आश्रम था जहाँ स्वयं प्रभु रामचन्द्र महाराज वनवास काल में उनके अतिथि बनकर रहे थे। इन पावन स्मृतियों से तन-मन-प्राण पुलकित हो जाता है तथा आत्मा संकल्प करता है कि कभी भी जीवन के आचार-व्यवहार द्वारा भरद्वाज ऋषि के

पवित्र गोत्र पर लांछन न आने पावे। ऐसी पुनीत स्मृतियाँ मानव को पथभ्रष्ट होने से बचा लेती हैं तथा पतितों एवं भ्रष्टों के लिए भी पुनः उन्नति की उज्ज्वल आशा प्रदान करती हैं।

ऋषि पंचमी ऋषियों की अर्चना का पर्व है। ऋषियों का तर्पण किस वस्तु से किया जाए? ऋषि तो आप्तकाम, पूर्णकाम मुक्त पुरुष हैं। जब उन्हें कोई कामना ही नहीं तो उसकी तृप्ति कैसी और तर्पण कैसा? वास्तव में हम अपनी तृप्ति के लिए ही ऋषि-तर्पण करते हैं। इससे हमारी असीम कृतज्ञता का प्रकाश होता है तथा हमारे अपने ही हृदय की तृप्ति होती है।

सप्तर्षि मण्डल की चर्चा में ज्योतिष, इतिहास, धर्म और अध्यात्म का सुन्दर समन्वय है। हरिद्वार से ऋषिकेश के मार्ग में सप्तर्षि मन्दिर का वह ऐतिहासिक स्थान है जहाँ सात महान् ऋषियों कश्यप, भरद्वाज, अत्रि, गौतम, जमदग्नि, विश्वामित्र और वसिष्ठ ने पुण्यसलिला भागीरथी गंगा का स्मरण कर प्रार्थना की कि वे (भगवती गंगा) उन सातों के आश्रमों के आगे से बहे। इस पर गंगामाता सात पृथक्-पृथक् धाराओं में बंट कर बहने लगी थी और आज तक वहाँ 7 धाराओं में ही बहती है। इस प्रकार नभ के सप्तर्षि मण्डल के सात नक्षत्रों ने भी आकाशगंगा को सात भागों में विभक्त किया था। सातों ऋषि भू, भुवः, स्वः, महा, जनः, तपः और सत्य के प्रतीक हैं तथा सृष्टि से सातों भुवनों, सातों द्वीपों, सातों समुद्रों तथा सातों वनों के प्रतिनिधि स्वरूप हैं। जैसे सप्त सिन्धु प्रदेश के सातों महान् ऋषि एक ही परम ब्रह्म की अर्चना करते थे वैसे ही सप्तर्षि मण्डल के सात नक्षत्र एक ही ध्रुव नक्षत्र, निश्चल, स्थायी तत्त्व की परिक्रमा करते रहते हैं।

कश्यप ऋषि मारीच ऋषि (जो ब्रह्माजी के मानसपुत्र थे) की महान् सन्तति हैं। दक्ष प्रजापति ने अपनी 13 कन्यायें इन्हें ब्याह दी। अदिति से समस्त देवता तथा बारह आदित्य हुए। दनु से दानवों का जन्म हुआ। सिंघका से व्याघ्र हुए। क्रोधा से असुर, विनता से गरुड, अरुणादि 6 पुत्र हुए। महामुनि कश्यप तथा अदिति के तप से प्रसन्न होकर भगवान् ने 3 बार इनके यहाँ अवतार लिया। इन सबका बहुत बड़ा नक्षत्र वैज्ञानिक अर्थ हो सकता है जो विद्वानों की खोज का विषय है। भरद्वाज मुनि तो देवगुरु बृहस्पति के भाई हैं। प्रयाग में इन्हीं के आश्रम में हजारों ब्रह्मचारी विद्याध्ययन करने आते थे। महर्षि अत्रि ब्रह्माजी के मानसपुत्र और प्रजापति हैं। इन्होंने भी भगवान् राम का वनवास में अतिथि सत्कार किया। इनकी पत्नी अनुसूया ने सीता को पातिव्रत्य धर्म का सुन्दर उपदेश दिया था। स्वयं त्रिदेवों ने इनके घर में जन्म लिया। विष्णु के अंश से भगवान् दत्तात्रेय हुए, ब्रह्मा के अंश से चन्द्रमा का जन्म हुआ तथा शंकर के अंश से दुर्वासा ऋषि का जन्म हुआ।

गौतम ऋषि महान् वैदिक ऋषि हैं। प्रचलित गाथाओं के अनुसार इनकी

पत्नी अहल्या पाषाण हो गई थी, जिसका भगवान् राम ने उद्धार किया था। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार के अनुसार न्याय दर्शन के रचयिता 'गौतम' वैदिक ऋषियों से भिन्न हैं।

जमदग्नि ऋषि भगवान् परशुराम के पिता थे तथा ऋषि विश्वामित्र के बहनोई थे। उनका तप, त्याग, ज्ञान एवं शौर्य अद्वितीय था।

विश्वामित्र ऋषि तो समूचे आर्यावर्त्त में सर्वाधिक प्रसिद्ध ऋषि हैं। वे वेदमाता गायत्री के द्रष्टा हैं। यज्ञ रक्षा के लिए वे राम-लक्ष्मण को लाए थे। क्षत्रियत्व से ब्राह्मणत्व प्राप्त करने के लिए जो इन्होंने महान् तप किए तथा उस मार्ग में जो-जो बाधायें आयीं वह एक अत्यन्त शिक्षाप्रद, रोमांचकारी इतिहास है।

महामुनि वसिष्ठ तो रघुकुल के महान् गुरु हैं। उन्होंने भगवान् राम का राजतिलक किया। प्रभु रामचन्द्र को योगवासिष्ठ में जो महान् ब्रह्मज्ञान गर्भित उपदेश महामुनि वशिष्ठ ने दिया है उसकी तुलना का उच्च ज्ञान तो त्रैलोक्य में भी मिलना कठिन है।

अपने ज्ञानालोक से वसुन्धरा को तथा अपने प्रभापुंज से स्वर्गलोक (अन्तरिक्ष) को ज्योतित करने वाली उन जगवन्दित ज्योतियों को, उन ज्योति विग्रह ऋषियों को हमारे ज्ञान पिपासु प्राणों की सर्वस्वांजलि सादर समर्पित हो।

सनातन भारत निर्जीव नहीं है। और न उसने अपना अन्तिम रचनात्मक शब्द ही कहा; वह जीवन्त है और उसे अपने लिये तथा मानव जाति के लिये अभी भी कुछ करना शेष है।

—ऋषि अरविन्द

शिक्षक दिवस

हे राष्ट्र-निर्माता एवं विश्व सभ्यता के दीक्षाता शिक्षक, तुम्हें प्रणाम हो। जैसे व्यास-पूजा गुरु पूजा का पावन दिवस है, आज 5 सितम्बर (डॉ. राधाकृष्णन जयन्ती) शिक्षक-समाज की प्रतिष्ठा एवं कर्तव्यनिष्ठा का दिन है।

हे लौकिक कर्तव्यों की शिक्षा देने वाले शिक्षक एवं अलौकिक दीक्षा देने वाले गुरु, सारी मानवता आपकी ऋणी है। हे शिक्षक! आप ज्ञान के समुद्र है। किन्तु यदि शिष्य रूपी पात्र झुके नहीं तो ज्ञान की अनन्त जलराशि की एक बूंद भी उसे प्राप्त नहीं हो सकेगी। इसीलिए आज शिक्षक दिवस पर समग्र शिष्य समुदाय आपकी झुक-झुककर वन्दना कर रहा है।

हे महान् भारत के महान् शिक्षक, कभी तूने अपनी प्रतिभा के प्रकाश तथा अपनी त्यागमयी तपस्या द्वारा भारत को जगद्‌गुरुत्व के उच्चासन पर प्रतिष्ठित कर दिया था।

महर्षि अगस्त्य जैसे आदर्श शिक्षक बनकर आपने दुर्लंघ्य विंध्याचल को पार कर दक्षिणावर्त्त में प्रवेश किया, तमिल व्याकरण का संपादन किया, मदुरा में 'तमिल संगम' की स्थापना की, समुद्र पार कर मलाया तथा इंडोनेशिया में भारतीय संस्कृति की विजय-वैजयन्तियाँ फहराईं। तक्षशिला विश्वविद्यालय के शिक्षक के रूप में आप ही व्याकरणाचार्य पाणिनि एवं साम्राज्य-निर्माता चाणक्य के रूप में पूजित हुए थे, ऋषि आत्रेय एवं वैद्यराज जीवक के रूप में आपने ही तक्षशिला को आदर्श शिक्षा-केन्द्र बना दिया था। दुर्भाग्य से उस विश्वविश्रुत विश्वविद्यालय को हूण आक्रान्ताओं ने उजाड़ दिया।

हे शिक्षक वृन्द! तक्षशिला के एक हजार वर्ष बाद बिहार में नालन्दा विश्वविद्यालय पुनः आप शिक्षकों के तपःतेज से चमक उठा। जहाँ देश-विदेश के ज्ञान पिपासु शिष्य आपके चरणों में बैठकर ज्ञान-साधना करते थे। दर्शन, तर्कशास्त्र, तत्त्वज्ञान, इतिहास, व्याकरण, संस्कृत, पाली, ज्योतिष, गणित, संगीत, ज्यामिति, तंत्र-चिकित्सा—सभी विषयों के पारंगत विद्वानों से विभूषित तथा 8 खण्डवाले विशाल 'रत्नोदधि' पुस्तकालय से सुशोभित नालन्दा विश्वविद्यालय

विश्व का अद्वितीय शिक्षा-तीर्थ बन गया था। नालन्दा के आप शिक्षकों ने ही एशिया में भी सांस्कृतिक दिग्विजय का चमत्कार कर दिखाया था। आचार्य शान्तरक्षित तिब्बत में, आचार्य अभयंकर गुप्त मंगोल देश में, चीनी यात्री ह्वेनसांग एवं इत्सिंग नालन्दा के शिष्य बनकर पुनः उत्तर एशिया में शिक्षक एवं आदर्श लोकशिक्षक बनकर प्रतिष्ठित हुए। विक्रमशिला विश्वविद्यालय के कुलपति आचार्य अतिश दीपंकर श्रीज्ञान का नाम आज समस्त उत्तर एशिया का बच्चा-बच्चा पूजा भाव से जपता है। यह भारत के आदर्श शिक्षक का ही गौरव है।

हे भारत के तपस्वी-मनस्वी शिक्षक! जब पाटलिपुत्र के राजा सुदर्शन के अज्ञानी एवं मन्दबुद्धि राजपुत्रों को शिक्षा देना असम्भवप्राय ही हो गया था, तो विष्णुशर्मा के रूप में आपने बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से उन्हें उत्तम शिक्षा दी। बच्चों की कबूतरों में रुचि देखकर आपने कबूतर पालने का घरौंदा बना दिया। कबूतरों की संख्या बढ़ने पर आपने बच्चों को गिनती सिखाई। कबूतरों की भिन्न-भिन्न पहचान के लिए उन पर वर्णमाला के अक्षर लिखकर वर्णमाला सिखा दी। फिर अक्षरों से शब्द और शब्दों से वाक्य। संख्याओं का जोड़-घटाव कबूतरों के घोसलों से प्रारंभकर धीरे-धीरे वास्तुकला तथा भवन-निर्माण प्रविधि सिखाई; फिर पशुओं की कथाएं सुनाते-सुनाते बच्चों को नीति और राजनीति की सर्वोच्च विद्या हितोपदेश एवं पंचतंत्र की रोचक कथाओं के माध्यम से पढ़ा दी। हे मूढ़ से मूढ़ को भी ज्ञानसम्पन्न बना देने वाले शिक्षक वरेण्य आपको मानवता का अशेष नमस्कार समर्पित हो।

हे भारत के आधुनिक आदर्श शिक्षक कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर, लोकमान्य तिलक, महामना मालवीय, योगीराज अरविन्द एवं डॉ. राधाकृष्णन—आपने पुनः भारत माता का मुख समुज्ज्वल किया।

हे वर्तमान पीढ़ी के शिक्षकगण! आज भारत को उठाने या गिराने का पूर्ण दायित्व आपके ऊपर है। प्राचीन काल में भारत ने आचार्य पैदा किये, जो अपने आचरण द्वारा शिक्षा देते थे। आज के कॉलेजों में मात्र व्याख्याता रह गए हैं, जो केवल व्याख्यान भर कर सकते हैं, किन्तु अपने प्रत्यक्ष आचरण द्वारा जाति को संस्कार एवं प्रेरणा देने में असमर्थ हैं। हे भारत भाग्य-विधाता शिक्षक समुदाय! देश ने अपनी सबसे मूल्यवान निधि (जीवित जागृत संस्कारक्षम युवापीढ़ी) को आपके हाथ में सौंप दिया है। यह आपके हाथ में है कि आप अपने जीवन की खुली पुस्तक से, अपने आदर्श आचरण से, अपने सात्त्विक समर्पण से, अपने आदर्श की ज्योति से उनके जीवनदीप को ज्योतित कर दें और इस राष्ट्र के वैभव का पुनरावर्त करें। इसके विपरीत यदि आप शिक्षा को मात्र व्यवसाय मान कर व्यावसायिक ईर्ष्या-द्वेष से दग्ध मन वाले परस्पर निन्दा, चुगली, चरित्रहनन में

लीन, शिक्षक के कर्तव्य को विस्मृतकर स्वार्थ भ्रष्ट कदाचार और क्षुद्र राजनीति की छल-छूतियों से दूषित होकर देश की युवापीढ़ी के सम्पर्क में आते हैं, तो आप पाठ्यपुस्तक से चाहे जो पाठ पढ़ाते रहें, आप अपने जीवन की खुली पुस्तक से राष्ट्र की भावी पीढ़ी को कुसंस्कारित कर समूचे राष्ट्र को पतन के महागर्त में धकेलने वाले बन जायेंगे।

हे शिक्षक वृन्द! शिक्षकों की महानता से शिक्षा का मान बढ़ता है और देश का अभ्युदय होता है और, शिक्षकों की क्षुद्रता से शिक्षा-क्षेत्र कलंकित होकर देश का महापतन होता है। हे सरस्वती के वरदपुत्र! हे जाति के संस्कार गुरु! एक बार आप अपने गौरव में प्रतिष्ठित हो जाएं तो सारा देश निश्चय ही गौरव गान गाता हुआ खड़ा हो जायेगा, और समूची मानवता के लिये मंगल महोत्सव आ जायेगा।

'यदि पृथ्वी पर कोई ऐसा देश है, जो स्वयं को 'मानव जाति का पालना' कहने की घोषणा का अधिकार रखता है अथवा जो कम-से-कम प्रारम्भिक सभ्यता का द्रष्टा है, जिसकी सभ्यता की किरणों ने प्राचीन विश्व के सभी भागों को आलोकित किया है, जिसके ज्ञान के वरदान ने मनुष्य को 'द्विज' बनाया है, अथवा बर्बर से सभ्य बनाया है, वह देश वास्तव में भारतवर्ष है।

—क्रूजर (Creuzer)

शक्ति पूजा का दार्शनिक एवं सांस्कृतिक विवेचन

कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भारत महादेश को 'महामानवेर महासागर' कहा। विश्व की अनेक निराश्रित जातियों को यहाँ आश्रयस्थल मिला है। अतः भारत को अनेकानेक संस्कृतियों का पावन संगम-स्थल माना गया। किन्तु क्या भारतीय संस्कृति की सरिता केवल उधार लिए हुए जल से ही भरी हुई है? नहीं, ऐसा मानना तो सत्य का हनन करना होगा। जैसे अमर तरंगिणी—तरंगिणी सुरसरिता अपनी हजारों मील की लम्बी यात्रा में अनेकानेक नदी-नाले आत्मलीन करती हुई, उन्हें भी गंगा बनाती हुई निरन्तर प्रवहमान है वैसे ही भारतीय संस्कृति की मन्दाकिनी अपने भीतर आर्य एवं आर्येतर संस्कृतियों के श्रेष्ठ गुणों को आत्मसात् करती हुई निरन्तर जीवन रस से तरंगित हो रही है। डॉक्टर राधाकृष्णन के मतानुसार आज का हिन्दूधर्म आर्य एवं द्राविड़ संस्कृतियों के एकाकार हो जाने से बना है। श्री रामधारीसिंह दिनकर ने भारतीय संस्कृति में आर्य, द्राविड़, आग्नेय, आस्ट्रिक, यूनान, मंगोल, शक, मुस्लिम तथा यूरोपीय तत्त्वों का सम्मिश्रण बताया है। किन्तु मेरा यह निर्भ्रांत मत है कि चाहे इस प्रकार की बीसियों जातियों का प्रभाव भारतीय संस्कृति पर पड़ा हो, पर भारत की आत्मा सदा भारतीय ही रही है तथा बाहर की संस्कृतियों का प्रभाव केवल संस्कृति के बाहरी कलेवर पर ही पड़ा है। वैदिक ऋषि हवन, यज्ञ आदि करते थे, पूजा-अर्चा द्रविड़ों से आई, तिलक, कुंकुम, रोली, चन्दन, सिन्दूर लगाने की प्रथाएं द्रविड़ तथा आग्नेयों से आई। किन्तु इससे धर्म की आत्मा में कोई अन्तर नहीं पड़ा, केवल बाहर की प्रक्रिया बदल गई। जिस एक अनादि-अनन्त सत्ता के निमित्त हवन में हवि दी जाती थी, उसी के निमित्त पत्र, पुष्प, फल-जल चढ़ाया जाने लगा, उसी एक अविनाशी सत्ता की आरतियाँ उतारी जाने लगीं, उसका नाम स्मरण कर जप यज्ञ किया जाने लगा। इस प्रकार धर्म के पहनावे, कलेवर बदलते गए किन्तु धर्म की आत्मा सदा एकरस रही। भारत के 'भारत' रहने का यही महान् रहस्य है तथा भारतीय संस्कृति के अजर-अमर रहने का यही अद्भुत भेद है।

आज दुर्गा-अष्टमी अथवा अन्नपूर्णाष्टमी का परम पावन पर्व है। मानव की सहज जिज्ञासा होती है—इसका मतलब? सामान्य उत्तर है, 'शक्ति पूजा का दिन।' प्रश्न उठता है यह शक्ति पूजा कब से आरम्भ हुई? शक्ति की दुर्गा रूप में उपासना कितनी पुरानी है? क्या यह आर्य धर्मानुकूल है अथवा प्रतिकूल? क्या यह प्रथा हमने किसी विदेशी से तो नहीं सीखी?

भारतीय संस्कृति के चार अध्याय में श्री दिनकर ने यह मत स्वीकार किया है कि आस्ट्रिक परम्पराओं में बैल पर चढ़े हुए देव तथा सिंह पर चढ़ी हुई देवी की कल्पना थी। अतः भारतीयों ने शिव एवं शक्ति का स्वरूप उनसे ही ग्रहण कर लिया होगा। मोहनजोदरो एवं हड़प्पा में शिव, रुद्र एवं मातृ-पूजन सम्बन्धी सामग्री निकली है। उन्हें देखकर कई विद्वानों का अनुमान है कि शक्ति पूजा आर्यों से पूर्व द्रविड़ों में प्रचलित थी। कइयों ने वैसी ही एक मातृशक्ति की मूर्ति सुमेरिया में प्राप्त कर यह अनुमान लगा लिया है कि मोहनजोदरो की सिन्धु सभ्यता सुमेरियन या बेबिलोनियन सभ्यता से प्रभावित थी किन्तु भारतीय पुरातत्त्व विभाग दिल्ली के डायरेक्टर डॉ. रामचन्द्रन ने अपने गहरे अनुशीलन के आधार पर यह निर्विवाद सिद्ध कर दिया है कि मोहनजोदरो की सिन्धु सभ्यता पूर्ण रूप से ऋग्वैदिक सभ्यता है। वहाँ से प्राप्त हुई मुद्राओं पर चित्रित चित्रों को उन्होंने ऋग्वेद के मन्त्रों का ही चित्र-संस्करण बताया है। अति प्रसिद्ध पशुपति का चित्र ऋग्वेद के एक मन्त्र के एक-एक शब्द से मिलता है।

ऋग्वेद विश्व के पुस्तकालयों की प्राचीनतम पुस्तक है। उसमें भगवान् शिव को त्र्यम्बक (त्रिनेत्र) कह कर उनकी वन्दना में 'त्र्यम्बकम यजामहे' इत्यादि ऋचायें हैं। यजुर्वेद में तो—

नमः शंभवाय च, मयोभवाय च।

नमः शंकराय च, मयस्कराय च।

नमः शिवाय च, शिवतराय च।

यह यजुष गा कर वैदिक ऋषियों ने भगवान् शिव को स्पष्ट ही आर्य जाति का उपास्य देव घोषित किया है। इसी की शक्ति 'दुर्गा' या 'उमा' की भी वेद मन्त्रों में बार-बार वन्दना की गई है। कृष्ण यजुर्वेद में लिखा है—

तामाग्निवर्णों तपसा ज्वलन्तीम्, वैरोचनीं कर्म फलेषु जुष्ठाम।
दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये, महेऽसुरान्नाशचित्र्यैते नमः।।

अर्थात् मैं उस अग्नि वर्ण वाली, अग्नि के समान तेजस्वी, अपने तप के तेज से जाज्वल्यमान, स्वयं प्रकाशमान, ईश्वर के साथ रमण करने वाली, कर्मों के फल को प्रदान करने वाली दुर्गा देवी की शरण ग्रहण करता हूँ। भवसागर से पार करने

वाली उस देवी शक्ति को नमस्कार है।

शक्ति की वन्दना तो वैदिक वाङ्मय में सर्वत्र गूंज रही है।

ऋग्वेद के अष्टम मण्डल में ऋचा है—

'त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो ब्रभूविथा, अधा ते सुम्नभीमहे' अर्थात् हे ईश्वर, मैं तेरी शरण में आता हूँ। तू ही मेरा पिता है तू ही मेरी माता है।

ऋग्वेद के मण्डल 3 में जगन्माता के वात्सल्य को प्रकट करने के लिए कहा गया है—

जैसे गौएं—'बछड़ों को प्रेम से चाटती हैं, वैसे ही हे महान् शक्ति मेरा और आपका प्रेम हो।'

केनोपनिषद् में जब इन्द्र अपनी विजय के पश्चात् गर्वित हो जाता है तो एक यक्ष प्रकट होता है। यक्ष इन्द्र से कहता है कि इस तिनके को हिला कर दिखाओ। सारे देवता अपना पूरा बल लगा कर भी उस तिनके को न हिला सकते हैं न उड़ा सकते हैं न ही जला सकते हैं। इस पर अन्तरिक्ष में भगवती उमा प्रकट होती है जो इन्द्र को समझाती है कि देवी शक्ति के बिना एक तृण भी नहीं हिल सकता।

मार्कण्डेय पुराण में तो दुर्गा सप्तशती के पूरे 700 श्लोकों का अनुपम साहित्य है। अपने राज्य रूपी रथ से भ्रष्ट होकर राजा सुरथ विरथ बन कर मेधा मुनि के आश्रम में पहुँचते हैं। अपनी समाधि रूपी शांति को खो समाधि वैश्य भी व्याधि वैश्य बन कर भटकता हुआ मेधा मुनि के आश्रम में पहुँचता है। राज्य से भ्रष्ट या सम्पत्ति के भ्रष्ट होने पर मनुष्य को मेधा (बुद्धि) की शरण में ही जाना पड़ता है।

बुद्धि ही संकट में बचाती है। इसी मेधा को चमकाने के लिए हम गायत्री मंत्र में प्रार्थना करते हैं। वैदिक ऋषि भी इसीलिए गाते थे—

मेधां सायं मेधां प्रातर्मेधां मध्यदिनंपरि।
मेधां सूर्यस्य रश्मिर्भिवचसा वेशयामहे।।

'हे मेधा! सायं हो या प्रातः, हम दोपहर के सूर्य की किरणों द्वारा एवं वाणी की शक्ति द्वारा तुझे अपने भीतर धारण करते हैं।' इसी मेधा मुनि ने उन दोनों व्यक्तियों को मन की शान्ति के लिए दुर्गा सप्तशती की कथा सुनाई। इच्छानुसार नाम का दैत्य बड़ा भयंकर था। सब देवता उससे हार चुके थे। पृथक्-पृथक् करके सब ने अपना सामर्थ्य आजमा लिया था। अन्त में भगवान् विष्णु के सुझाव पर सभी ने अपने-अपने अंश का दान दिया और सब की संघशक्ति के रूप में देवी दुर्गा का अवतार हुआ। उसने दुर्ग राक्षस को मारा। सुन्द, उपसुन्द को मारा, महिषासुर को मारा, रक्तबीज को मारा तथा पुनः देवों को विजय दिलाई। अतः

यह महाशक्ति राष्ट्र की सामूहिक शक्ति का सुन्दर प्रतीक है। 'संघे शक्ति कलौयुगे।'

उस शक्ति की वन्दना में कहा गया—

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्ति समन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते।।

जो चराचर के घट-घट में व्यापक विश्व की एकमात्र शक्ति है, उसी महाशक्ति को दुर्गा नाम से पूजा गया। यही ब्रह्मशक्ति, नारायणी, गौरी, शिवा, उमा, भवानी और काली है। लक्ष्मी और सरस्वती भी इसी शक्ति के दूसरे रूप हैं।

देवी भागवत में तो उसका सर्व रूप और निखर आया है—

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

इसी शक्ति को श्रद्धा, धी, विद्या, ज्ञान, आत्मा सभी कुछ कह डाला गया। शक्ति-सम्प्रदाय में इस शक्ति को विश्व की आद्याशक्ति माना गया। भारत भर में फैले हुए शक्तिपीठ शक्तिस्वरूपा भारतमाता के विराट् रूप के दर्शन कराते हैं। छत्रपति शिवाजी महाराज इसी भवानी के भक्त थे। उसी माता से उन्होंने अपना महान् खड्ग प्राप्त किया था। गुरु गोविन्दसिंहजी ने अपने चण्डी नाटक में लिखा है—

नमो उग्रदन्ती अनन्त सवैया,
नमो जोग जोगेश्वरी जोग मैया।
नमो केहरी-वाहिनी शत्रु-हन्ती,
नमो शारदा ब्रह्म विद्या पढ़ंती।

गुरुनानक ईश्वर को माता रूप में सम्बोधन करते हुए कहते हैं—

सुत अपराध करत हैं जेते,
जननी ध्यान धरत नहीं तेते।
तू जननी, हौं बालक तेरा,
काहे न खण्डसि औगुन मेरा।।

श्री रामकृष्ण परमहंस ने उसी कालीमाता की आशिष् से वह परमहंस पद पाया था। उसी माता का संकेत करके स्वामी विवेकानन्द लिखते हैं—

सारी दुनिया द्वारा ही क्यों, स्वयं अपने द्वारा भी तिरस्कृत सुत (पुत्र) के होंठ जब सूखने लगते हैं, तो जैसे वज्रहृदया माँ के भी स्तनों से वात्सल्य फूट पड़ता है,

वैसे ही पतित से पतित व्यक्ति के लिए भी सत्य का हिमाचल अपने वक्ष में ज्ञान की गंगा छिपाए रहता है।'

योगीराज अरविन्द ने उसी दुर्गा माता को भारतमाता के साथ तदाकार देखा तथा बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने वन्दे मातरम् में कहा 'तु मि माँ शक्ति तु मि दुर्गा।'

आश्विन मास की दुर्गाष्टमी दुर्गति नाशिनी दुर्गा के प्रादुर्भाव का दिन है तथा चैत्र शुक्ला अष्टमी (आज का दिन) अन्नपूर्णाष्टमी है, जो माँ शत्रुओं का नाश करके हमारी रक्षा करने वाली है, वही अन्न भण्डार से अपने पुत्रों का लालन-पालन भी करने वाली है। फसल पक कर गृहों में आ रही है। वह फसल, अन्न की खेती साक्षात देवी अन्नपूर्णा है। इस रूप में माता साक्षात शस्य-श्यामला भारत का ही रूप है।

गृह-गृह में 9 दिन श्रद्धा का नन्दा दीप जलता है। अष्टमी के दिन देवी का पूजन होता है। हमारी माताएँ अपने गले में दुपट्टा डालकर छोटी-छोटी बच्चियों के चरण धोती हैं, उनको तिलक करती हैं। उनका पूजन-वन्दन कर उन्हें कंजक (नवान्न की भेंट) समर्पण करती है। क्या जिस देश में वर्ष में दो बार नन्ही-नन्ही बालिकाओं का साक्षात माता जगदम्बा के रूप में पूजन होता हो, उस देश के वासी का नारी के प्रति कोई तुच्छ भाव हो सकता है? आज के पावन पर्व पर माता जगदम्बा को प्रणाम, अन्नपूर्णा को प्रणाम, भारतमाता को प्रणाम, नारी-जाति को प्रणाम, मातृशक्ति को प्रणाम।

सनातन धर्म ही हमारे लिये राष्ट्रीयता है। यह हिन्दू राष्ट्र सनातन धर्म को लेकर ही जन्मा है, उसी को लेकर यह चलता है और उसी को लेकर यह पनपता है। जब सनातन धर्म की हानि होती है, तभी राष्ट्र की अवनति होती है और यदि सनातन धर्म का विनाश सम्भव होता तो सनातन धर्म के साथ-साथ इस राष्ट्र का भी विनाश हो जाता। सनातन धर्म ही राष्ट्रीयता है।

—ऋषि अरविन्द घोष

राष्ट्रीय विजय का महापर्व : विजयादशमी

एक महान् राष्ट्रीय विजय का सात्त्विक आह्लाद राष्ट्र को चिरन्तन जीवी बनाने में समर्थ होता है। राष्ट्रों का जीवन विजय की संजीवन-प्रदायिनी भावना के हिंडोले में झूलता रहता है। निरन्तर प्रगति एवं प्रकर्ष विजय एवं विकास के डोरों से झूलता हुआ राष्ट्र अपनी गगनचुम्बी पेंग में ख्याति के सुनहले आकाश को भी चूम लेता है। किन्तु जिन राष्ट्रों की विजिगीषुवृत्ति मर जाती है वे राष्ट्र भी धीरे-धीरे काल के गाल में चले जाते हैं। बिना स्वाभिमान के राष्ट्र की मान-मर्यादा मिट्टी में मिल जाती है। दूसरी ओर, एक जीवित-जाग्रत स्वाभिमानी सत्त्व सम्पन्न राष्ट्र अपने मान बिन्दुओं की रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहता है। जिस राष्ट्र का मान लुट गया उसके पास बचाने योग्य और कुछ नहीं बचा। हमारी विजयिनी हिन्दू जाति ने तो पराजय को पाप माना है। वेद भगवान् का भी विजय के लिए महान् आदेश है—

प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो, हनो वृत्रं
जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम्।।

(ऋग्वेद 1.80.3)

'हे वीर! आगे बढ़, शत्रु पर वार कर उसे परास्त कर दे। तेरे शस्त्र को कोई रोक नहीं सकता। शत्रु को झुका देने वाला बल तुम में विद्यमान है। देख, तेरी जिन प्रजाओं को शत्रु ने पकड़ कर कैद कर लिया है उन्हें शत्रु के हाथ से जीत ले। स्वराज्य का आराधक बन।

वेद के इसी महान् सन्देश को अपने राष्ट्र के इतिहास एवं संस्कृति में साकार करने वाला विजयादशमी का महान् पर्व हमारा राष्ट्रीय विजय पर्व है।

महिषासुर मर्दिनी दुर्गा का पर्व

बहुत प्राचीन काल में माँ दुर्गा ने इस दिन महिषासुर नामक बहुत भयंकर राक्षस पर विजय पाई थी। महिषासुर राक्षस बहुत अत्याचारी था। देवताओं ने उस

पर विजय प्राप्त करने के लिए बहुत यत्न किया, किन्तु उसे विजित न कर सके। सब देवताओं ने मिल कर विष्णु भगवान् से प्रार्थना की। भगवान् ने कहा कि सभी देवतागण सम्मिलित रूप में अपनी शक्ति का अंश दें तभी महिषासुर को विजित किया जा सकता है। सभी देवताओं की सम्मिलित शक्ति से महाशक्ति दुर्गा का अवतार हुआ। विष्णु भगवान् ने उसको चक्र दिया, शंकर ने त्रिशूल दिया और इन्द्र ने अपना वज्र दिया। नौ दिनों तक वह शक्ति राक्षसों से युद्ध करती रही और उसने दुर्स, सुन्द, उपसुन्द, रक्तबीज इत्यादि कई राक्षसों का संहार किया। दसवें दिन उस दुर्गा माता ने भैंसे के आकार वाले महिषासुर राक्षस का वध कर दिया। इसीलिए आश्विन शुक्ल पक्ष की पहली तिथि से नवीं तिथि तक देवी के नवरात्र मनाए जाते हैं और दसवें दिन दुर्गा माता की विजय का पर्व विजयादशमी मनाया जाता है।

बंगाल, महाराष्ट्र और दक्षिणी भारत में विजयदशमी को दुर्गा पूजा उत्सव के नाम से मनाया जाता है। कोलकाता नगर काली माता के नाम पर बसा हुआ है और मुंबई नगर मुम्बा देवी के नाम पर। पंजाब में नैना देवी, ज्वालामुखी, जम्मू-कशमीर में वैष्णो देवी, क्षीर भवानी इत्यादि कई देवी के स्थान हैं। कालिका में काली माता का मन्दिर है और चण्डीगढ़ चण्डी माता के नाम से प्रसिद्ध है।

कई विद्वानों का मत है कि असुर असीरीया देश के निवासी थे और देवतागण भारत के निवासी थे। जब असुरों ने भारत पर आक्रमण किए तभी देवासुर संग्राम हुए। भारत के मैसूर नगर के विषय में प्रसिद्ध है कि महिषासुर ने वहाँ अपना आधिपत्य जमा कर उसे अपनी राजधानी बना लिया और दुर्गा माता ने वहीं पर ही इसका संहार किया। मैसूर का दशहरा भारत भर में प्रसिद्ध है। वहाँ पर रामलीला के स्थान पर दुर्गा लीला होती है।

भिन्न-भिन्न देवियाँ वास्तव में एक ही शक्ति के नाम हैं। वही दुर्गा, विजया, गौरी, काली, अन्नपूर्णा, शारदा, सरस्वती, लक्ष्मी और उमा है। दुर्गा या रणचण्डी युद्ध की देवी है। इसे ही दशमेश गुरु ने चण्डी या भगवती कह कर स्तुति की है—

नमो उग्रदन्ती अनन्त सवैया, नमो जोग जोगेश्वरी जोग मैया।
नमो केहरी वाहिनी शत्रु-हन्ती, नमो शारदा ब्रह्म विद्या पढ़न्ती।।
नमो ऋद्धिदा सिद्धिदा, बुद्धि, दैनी, नमो कालके कालकी काल छेनी।
नमो ज्योति ज्वाला तुम्हें वेद गांवें, सुरासुर ऋषीश्वर नहीं भेंद पावें।।

दुर्गा की महिषासुर पर विजय ईश्वरीय शक्ति की आसुरी शक्ति पर विजय है, सत्य की झूठ पर और पुण्य की पाप पर विजय है। शक्ति-पूजा में ईश्वर को माता मान कर पूजा जाता है। पिता कठोर मन वाला होता है, माता का हृदय कोमल

होता है। स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है, 'सारे संसार द्वारा भी तिरस्कृत कुपुत्र के ओष्ठ जब सूखने लगते हैं तो जिस प्रकार वज्र-हृदया माता के स्तनों से वात्सल्य प्रस्फुटित हो उठता है उसी प्रकार पतित से पतित प्राणी के लिए भी सत्य का हिमाचल अपने वक्ष में ज्ञान की गंगा छिपाए रखता है।'

अन्नपूर्णा के दर्शन

काका कालेलकर के विचारानुसार मानव सभ्यता की सर्वप्रथम और बड़ी विजय है—खेती की कला का विकास। सम्भवतः इसीलिए ही विजयादशमी से पूर्व नवरात्र में घर-घर में खेती बोई जाती है और उसकी पूजा की जाती है। लगातार नौ दिन नन्दादीप जलता रहता है। अष्टमी को छोटी-छोटी कन्याओं को बुला कर उनके चरण धोए जाते हैं और सभी माताएं अपने गले में दुपट्टा डाल कर उनके सामने अपना मस्तक झुकाती हैं और नवान्न की भेंट देती हैं। वही महाशक्ति जो दुर्गा रूप में युद्ध में रक्षा करती है वही अन्नपूर्णा बन कर भण्डार भरती है।

नौ रात्रियाँ और दसवां दिन

इस नवरात्र उत्सव के दसवें दिन दशहरा आता है। इस उत्सव का पहला भाग नौ रात्रियों का है तथा दसवें दिन जो उत्सव करना है वह दिन का करना है। स्वाभाविक ही यह प्रश्न निर्माण होता है कि 'नौ रात्रियाँ और दसवां दिन' ऐसा क्यों? श्रीयुत दामोदर सातवलेकर ने लिखा है कि पहले नौ अहोरात्रियों में केवल रात्रियों का उल्लेख है तथा दसवें अहोरात्र में केवल दिन का ही उल्लेख है। यह ऐसा क्यों? रात्रि तथा दिन का भेद यह है कि रात्रि में अन्धेरा हुआ करता है, मार्ग नहीं दिखाई पड़ता, चलने में रुकावट निर्माण होती है तथा डर लगता है, परन्तु दिन में मार्ग स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

मनुष्य के अभ्युदय मार्ग में नौ रात्रि जैसी कठिनाइयाँ हैं और वे दूर हुईं, तो मार्गदर्शन के लिए प्रकाशमय दसवां दिन आता है, इससे जाकर मनुष्य को विजय प्राप्त होती है।

वीरता एवं विजय का पर्व

विजयादशमी क्षत्रियों का विशेष उत्सव है। भारत में क्षत्रियों की रचना धर्म के रक्षक के रूप में हुई है न कि हिंसक अत्याचारी के रूप में। चौमासे में क्षत्रियों की विजय यात्रा और वैश्यों की व्यापार यात्रा दोनों बंद रहती हैं। आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दसवीं तिथि को जब आकाश में श्रवण नक्षत्र के उदय होने पर विजय योग होता है तो क्षत्रिय अपने दल सहित विजय यात्रा के लिए निकलते हैं। इसी को सीमोल्लंघन कहा जाता है। शिवाजी की सेना के वीर भी इसी दिन अपनी पगड़ियों में नई खेती की कोंपलें खोंस कर शत्रु को विजित करने के लिए निकलते

थे। राजपूतों में इसी दिन अपने राज्य की सीमा से बाहर जाकर शत्रु को विजित करने की रीति थी। आज तक भी इस दिन शस्त्र पूजा की प्रथा चली आती है। प्राचीन वैदिक मर्यादा के अनुसार इस दिन सेना के चारों अंगों (हाथी, घोड़े, रथ और पैदल) को यज्ञशाला के सामने खड़ा करके आरती उतारी जाती थी।

शमी वृक्ष की पूजा का विधान

भारत में विजय केवल लोहे की ही नहीं होती थी, अपितु धर्म की विजय को ही सच्ची विजय माना जाता था। सूर्यवंशी राजा रघु ने सारी धरती की दिग्विजय कर के विश्वजित् यज्ञ किया जिसमें अपना सर्वस्व दान कर दिया। जंगल में रहते हुए राजा रघु के पास ब्रह्मचारी कौत्स पहुँचा। वह अपने गुरु को 14 करोड़ स्वर्णमुद्रा दक्षिणा में देना चाहता था। सर्वस्वदानी राजा रघु ने कंगाल होते हुए भी कुबेर को कहा और कुबेर ने एक शमी के वृक्ष से मुहरें बरसा दीं। ब्रह्मचारी कौत्स 14 करोड़ स्वर्णमुद्रा लेकर जाने लगा तो राजा रघु ने कहा—'ये सभी मुहरें तुम्हारे लिए ली गई हैं, तू सभी ले जा, मैं तो बनवासी हूँ। कौत्स ने कहा—'मैं आवश्यकता से अधिक एक भी मुहर अपने हाथ में नहीं लूंगा। 'तुम्हारे-तुम्हारे'—के इस झगड़े के पश्चात् वह धन प्रजा को लुटा दिया गया। कहा जाता है कि शमी वृक्ष से आज के दिन मुहरें बरसी थीं। इसीलिए आज के दिन शमी वृक्ष का पूजन होता है। उसके गोल-गोल पत्ते भी मुहर के समान दिखाई देते हैं। दियासलाई इत्यादि के आविष्कार से पहले शमी की टहनियों को रगड़ कर अग्नि प्रकट की जाती थी।

प्रभु रामचन्द्र की विजय-यात्रा

परम्परा से विजयादशमी का उत्सव रामचन्द्रजी की लंका विजय की स्मृति के रूप में मनाया जाता है। कुछ विद्वानों का मत है कि रावण का संहार आज के दिन नहीं हुआ। चौमासे के चार मास भगवान् राम पम्पासर में सुग्रीव के पास रहे। तत्पश्चात् हनुमान को सीता की खोज में भेजा। सीता का लंका में पता लग जाने पर आज के दिन भगवान् राम ने अपनी वानर सेना सहित पम्पासर से लंका की विजय-यात्रा आरम्भ की। इसीलिए यह राम का लंका विजय दिवस नहीं, विजय-यात्रा का दिवस है। नवरात्र में राम लीला होने के कारण रावण की मृत्यु प्रायः दशमी को दिखाई जाती थी। इस प्रकार विजयादशमी के साथ रावण, कुंभकरण और मेघनाद की मृत्यु का प्रसंग जुड़ गया है।

शत्रु का पुतला जलाने की प्रथा

'भविष्योत्तर पुराण' में विजयादशमी के दिन शत्रु का पुतला बना कर उस के हृदय को बाण से बेधने का विधान लिखा है। सम्भव है कि पीछे से यह पुतला रावण का रूप समझा जाने लगा हो और उसको रामलीला के राम के हाथ से वध

कराने की प्रथा चल पड़ी हो! भगवान् राम ने लंका पर चढ़ाई कर के सदा के लिए सारे संसार को यह चेतावनी दे दी कि जो कोई कभी भी भारत की किसी ललना की ओर कुदृष्टि से देखेगा उसे रावण के समान कुल समेत नष्ट कर दिया जावेगा और उसकी सोने की लंका फूंक कर राख कर दी जावेगी।

बुद्ध जयन्ती

बहुत कम लोगों को ज्ञात है कि विजयादशमी का पर्व करुणावतार भगवान् बुद्ध का जन्म दिवस होने के कारण भी गौरवान्वित हुआ है। वैशाख पूर्णिमा को उन्हें बोध प्राप्त हुआ था। अंत में उसी दिन उन्हें महानिर्वाण भी प्राप्त हुआ था। श्रीयुत काका कालेलकर ने भी अपने ग्रन्थ 'जीवन का काव्य' में यही मत प्रकट किया है। जिस प्रकार दुर्गा माता ने महिषासुर पर विजय प्राप्त की, राम ने रावण पर विजय प्राप्त की और भगवान् बुद्ध ने मार (कामदेव) पर विजय प्राप्त की।

स्वामी मध्वाचार्य जयन्ती

विजयादशमी के महान् पर्व पर ही द्वैत-दर्शन के प्रसिद्ध आचार्य स्वामी मध्वाचार्यजी का जन्म भी माना जाता है। आचार्य प्रवर तेरहवीं शताब्दी में मद्रास के मंगलोर जिले में उत्पन्न हुए थे और उन्होंने वेदान्त की द्वैत परक व्याख्या कर के आचार्य की पदवी को प्राप्त किया।

इस प्रकार विजयादशमी उत्सव पर शस्त्रों की झंकार के साथ त्याग, ज्ञान और करुणा की रागिनी भी बजती है। विजय के गीतों के साथ धर्म और नीति का सन्देश भी गूंज रहा है। शक्ति एवं भक्ति, बल एवं बुद्धि के समन्वय का यह एक अनूठा उत्सव है। विजय के इस महान् पर्व पर हम अपने अन्तर एवं बाहर के सभी शत्रुओं को विजय करने का शिव-संकल्प करें, व्यक्तिगत जीवन एवं राष्ट्रीय जीवन में विजिगीषुवृत्ति को जगाएं तथा व्यक्ति को इन्द्रियजय से प्राप्त मोक्ष एवं राष्ट्र को अरिमर्दन द्वारा सुलभ अखण्ड मुख सौख्य, सामर्थ्य एवं स्वातंत्र्य का परममंगलकारी दर्शन कराने का अटल व्रत धारण करें।

राष्ट्र क्या है? हमारी मातृभूमि क्या है? यह भूखण्ड नहीं है, वाग्विलास नहीं है और न कोरी मानस-कल्पना है। वह महाशक्ति है जो राष्ट्र का निर्माण करने वाली कोटि-कोटि जनता की व्यष्टि की शक्तियों का समष्टि रूप है।...वह तीस कोटि जनता की व्यष्टियों की जीवन्त समष्टि है।

—श्री अरविन्द

राष्ट्र की जिजीविषा एवं विजिगीषा का महापर्व

श्री दुर्गा पूजा (विजयादशमी) राष्ट्र का महानतम विजय पर्व है। वृत्रासुर पर इन्द्र की विजय, महिषासुर पर दुर्गा की विजय, रावणासुर पर राम की विजय का स्मारक यह महापर्व हमें राष्ट्र की जिजीविषा (जीने की इच्छा) एवं विजिगीषा (जीतने की इच्छा) का सन्देश देता है। क्या भारत राष्ट्र जीवित रहेगा या यूनान, मिस्र, रोम, बेबिलोनिया जैसे अनेक प्राचीन-ऐतिहासिक राष्ट्रों के समान यह भी जीवित राष्ट्र न रहकर अतीत-इतिहास का विषय मात्र रह जायगा? क्या यह राष्ट्र अधर्मी, अन्यायी, आततायी शक्तियों पर विजय प्राप्त करेगा या स्वयं अत्याचारी, क्रूर, आक्रामकों की कुटिल-कठोर ठोकरें खा-खा कर पतित-पराभूत, परतन्त्र ही होता रहेगा? इस महान् विजय पर्व पर प्रत्येक भारतीय को प्रामाणिकता से, निष्पक्ष, गंभीर चिंतन कर अपने राष्ट्र की जिजीविषा एवं विजिगीषा का विचार करना चाहिए। यह जीने और जीतने का संकल्प ही दुर्गापूजा-विजयादशमी का महानतम वरदान है। दुर्गा पूजा के इस सारतत्त्व को छोड़कर केवल उसके बाह्य आडम्बर, साज-सज्जा, मेला-तमाशा, खान-पान, उत्सव-पटाखा पर राष्ट्र की अधिकांश जनशक्ति, मनःशक्ति, धन-शक्ति एवं काल-शक्ति का व्यय केले के सुस्वादु खाद्य फल को छोड़कर केवल उसका छिलका चबाने के तुल्य है।

हिन्दू का नाश हिन्दुस्तान का विनाश

संस्कृति ही राष्ट्र की आत्मा है, देश का भूखण्ड तो उसका बाह्य शरीर मात्र है। बिना आत्मा के शरीर के मृत होने के समान जहाँ भारतीय संस्कृति विस्मृत या विलुप्त हो जाती है वहाँ भारत भारत ही नहीं बचता, स्वदेश विदेश बन जाता है। कभी गान्धार (अफगानिस्तान) भारत का ही अंग था। गान्धारी भारतीय नारी थी विदेशी नहीं, संस्कृत के महानतम वैयाकरण ऋषि पाणिनि भारतीय ऋषि थे अभारतीय नहीं, किन्तु हिन्दू संस्कृति के लोप होते ही वह अपना देश पराया शत्रु देश बन गया जिसने बार-बार भारतमाता पर क्रूर आक्रमण किये। सोमनाथ, कांगड़ा, मथुरा के मंदिरों को तोड़ा, देश को लूटा, नारी जाति का सम्मान लूटा, पृथ्वीराज की आंखें निकाली तथा भारत पर विदेशी संस्कृति जबर्दस्ती थोपने के लिए क्रूरतम कर्म किए।

आज हमारे जीते-जी, हमारी आंखों के सामने, हमारी नसों में जवानी का गर्म खून बहते हुए भी, हमारी मातृभूमि का एक-चौथाई भाग सन् 1947 में कट कर अलग हो गया। आज पाकिस्तान एवं बांग्लादेश भारत के लिए परदेश, विदेश ही नहीं वरन् शत्रु देश बन गये हैं। इतिहास साक्षी है कि हिन्दू का अल्पसंख्यक होना हिन्दुस्तान के लिए संकट एवं हिन्दू संस्कृति का नाश हिन्दुस्तान का विनाश बन जाता है।

मीनाक्षीपुरम चेतावनी

आज मीनाक्षीपुरम में निर्धन हिन्दुओं का सामूहिक धर्मान्तरण राष्ट्र के ऊपर आने वाले एक बहुत गम्भीर संकट की चेतावनी है। अरब देशों ने लंदन की एक गोष्ठी में विचार किया कि आगामी 20 वर्षों में फारस की खाड़ी का तैल भंडार धीरे-धीरे भारत के पश्चिमी तट की ओर चला जायगा। परिणामस्वरूप तैल भंडार सूख जाने से अरब देश कंगाल हो जायेंगे तथा भारत तैल भंडार से धनवान बन जायगा। उन्होंने विचार किया कि 20 साल पश्चात् उनकी संतानें क्या केवल बालू खाकर जीवित रह सकेंगी? पहले उन्होंने योजना बनायी कि भारत के पश्चिमी तट के साथ-साथ कुछ बड़े उपजाऊ भूखण्ड खरीदे जाएं और उन्होंने बहुत बड़ी जायदाद खरीद भी ली। उन्होंने पुनः विचार किया कि भूमि में धन का विनियोग करने के स्थान पर यदि व्यक्तियों में धन का विनियोग किया जाय तो अधिक लाभकारी होगा। उन्होंने तर्क दिया कि वे एक-चौथाई भारत का इस्लामीकरण करने में पहले ही सफल हो चुके हैं। यदि वे भारत के 8 करोड़ हरिजनों (हिन्दुओं) को प्रलोभन देकर मुसलमान बना लेते हैं तो वे पुनः 20 करोड़ हो जायेंगे तथा वे भारत में किरायेदार के रूप में न रहकर स्वयं एक बहुत बड़ा इस्लामी देश प्राप्त कर देश के शासक बन जावेंगे। आज देश के 15 जिले मुस्लिम बहुल हो चुके हैं, 30 जिले क्रिश्चियन बहुल बन चुके हैं। काश्मीर मुस्लिम बहुल प्रदेश बन चुका है, नागालैण्ड, मिजोरम, मेघालय, पाण्डिचेरी, गोआ, केरल का अधिकांश भाग क्रिश्चियन बहुल हो चुका है।

विजयादशमी मनाने वाले हिन्दू को विचार करना है कि क्या भारत बचेगा और क्या भारत विजयशाली होगा? यह गंभीर प्रश्न है। जिसका उत्तर इन्द्र, दुर्गा एवं श्रीराम के भक्तों को देना है। तभी उनकी दुर्गा पूजा सार्थक होगी अन्यथा निरर्थक पूजा करते-करते दुर्गाभक्तों एवं रामभक्तों की संख्या घटती चली जायगी। यह हिन्दुस्तान ही मिट जायगा तो दुर्गा पूजा कहाँ होगी? क्या आज ढाकेश्वरी देवी के मंदिर (ढाका) में गो-वध की घटनाओं से, कन्याकुमारी को ईसाई तीर्थ कल्लीमेरी (ईसा माता मेरी) का तीर्थ बनाने के प्रयास से हिन्दू की आलस्य निद्रा भंग होगी?

भारतीय संस्कृति की आलोक मधुर पर्व-मालिका : दीप माला

दीपमालिका हमारा राष्ट्रीय ज्योतिपर्व है। वेद की पावन ऋचा है—'तमसो मा ज्योतिर्गमय।' प्रत्येक प्राणी अन्धकार से प्रकाश में आने के लिए छटपटाता रहता है। ज्योति की भूख, प्रकाश की लालसा, आलोक की आकांक्षा प्रत्येक आत्मा की प्रबलतम आन्तरिक प्रेरणा है। मानवात्मा की इसी महान् प्रेरणा के आलोक में कोटि-कोटि दीपों से जगमगाता हुआ दीपमालिका का प्रकाशमान पर्व आया है। यह अंधकाररूपी वृत्रासुर पर इन्द्र की विजय का दिन है, तमसरूपी नरकासुर पर ज्योतिस्वरूप श्रीकृष्ण की विजय का दिन है। असुरराज बलि की आसुरी माया को अपने त्रिपाद से कुचलने वाले त्रिविक्रम वामन के विक्रम का भी दिन है, रावण के पापाचार की अमावस्या का नाश कर सूर्य वंशावतंस रघुकुल गौरव रामचन्द्ररूपी सदाचार सूर्य के अपने सहस्र रश्मि आलोक के साथ उदय होने का पुण्य-पावन पर्व है।

जहाँ हमारी जाति के अन्य पर्व तो एक-एक प्रकाशमान दीपक के तुल्य हैं, वहाँ दीपमालिका का पर्व तो हमारे सांस्कृतिक पर्वों की माला, पर्व-मालिका ही है। जितने अधिक पर्व इस उत्सव के साथ सम्बद्ध हो गए हैं, उतने कदाचित ही किसी अन्य दिवस के साथ हुए हैं।

गोवत्स द्वादशी

कार्तिक अमावस्या से दो दिन पूर्व कार्तिक कृष्णा द्वादशी को 'गोवत्स द्वादशी'—का पावन पर्व आता है इस दिन गौ एवं बछड़े की पूजा की जाती है। गाय तो भारतीय संस्कृति की मूर्तिमान सात्त्विकता है। यह उसी की पूजा है। वत्स को चाटती हुई गाय का दर्शन तो एक हृदयस्पर्शी काव्य है। वात्सल्य का मूल्य इसी दृश्य में है।

धन त्रयोदशी (धन्वंतरि-जयन्ती)

कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को भगवान् विष्णु के ही अंशावतार माने जाने वाले,

आयुर्वेद के प्रख्यात ज्योतिर्धर भगवान् धन्वंतरि का जन्मोत्सव मनाया जाता है। जीवधारियों को सम्पूर्ण जीवन में निरोग एवं निरामय रखने के शिव-संकल्प से जिन्होंने अपने आयुर्वेद शास्त्र का प्रकाश किया उन भगवान् धन्वंतरि का आज के दिन पूजन किया जाता है।

नरक चतुर्दशी

कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी को नरक चतुर्दशी पर्व मनाया जाता है। आज से 5100 वर्ष पूर्व द्वापर युग में इसी दिन भगवान् कृष्ण ने प्राग्ज्योतिषपुर (गुवाहाटी) के अत्याचारी राजा नरकासुर का संहार करके उसकी कैद में पड़ी हुई 16,000 भारतीय ललनाओं को मुक्त किया। समाज के अन्य लोगों द्वारा तिरस्कृत होने के कारण जब वे ललनाएं कहीं की भी न रहीं तो भगवान् ने उन्हें रानी का मान देकर अपने रनिवास में आदर का स्थान दिया तथा समाज के रूढ़िवादी लोगों के सम्मुख आत्मत्याग का महान् आदर्श रखा। नरकासुर के वध के पश्चात् द्वारका लौटने पर लोगों ने दीपमालिका से भगवान् श्रीकृष्ण का अभिनन्दन किया।

हनुमान् जयन्ती

कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी को ही अनेक लोग हनुमान जयन्ती भी मनाते हैं। कुछ अन्य शास्त्रों के मतानुसार हनुमान जयन्ती चैत्र पूर्णिमा को पड़ती है। वैसे हनुमान जी जैसे ब्रह्मचारी, वीरप्रवर, स्वामीभक्त सेवकों के पावन स्मरण के लिए प्रत्येक दिन ही पवित्र है। उन वज्र के समान अंगों वाले बजरंगबली के अनेकानेक गुणों पर विचार कर उन्हें आत्मसात् करने के लिए यह सुन्दर अवसर है।

लक्ष्मी जयन्ती

कार्तिक अमावस्या का पर्व तो लक्ष्मी पूजा का पर्व है। यह समुद्र मंथन से लक्ष्मी के उदय का पर्व माना जाता है। समुद्र-मंथन का लाक्षणिक अर्थ बड़ा गम्भीर है। परिश्रम से ही भाग्य-लक्ष्मी प्रकट होती है। 'कराग्रे वसते लक्ष्मी' अर्थात् मनुष्य के हाथों में (पुरुषार्थ में ही) लक्ष्मी का निवास है। मनुष्य के मन में भी दैवी सम्पद और आसुरी सम्पद का समुद्र मंथन चलता रहता है। उसी में से 14 रत्न निकलते हैं। विष को देख कर जो घबरा जाते हैं वे अमृत को नहीं पा सकते। धैर्य रखने वाले लक्ष्मी के दर्शन भी प्राप्त करते हैं तथा अमृतत्व लाभ भी करते हैं। योगीराज अरविन्द घोष ने एक लघुकथा में कहा है—'लक्ष्मी जब धरती पर उतरी तो धरती ने कहा—तू धरती पर पग मत रखना। स्वर्ग के देवों को अपना वरदान दे-देकर तूने उन्हें आलसी बना दिया है। मेरे बेटे अपने पुरुषार्थ की कमाई खायेंगे। निकम्मे बैठकर तेरा मुँह नहीं ताकेंगे। लक्ष्मी ने कहा—हे धरती बहन! तू अपने बेटों को आप सँभाल रख लेना। मैं तो अवश्य आऊँगी। यह कह कर लक्ष्मी धरती पर उतर

आई और, आज धरती फूट-फूट कर रोती है, क्योंकि धरासुत लक्ष्मी से ही मांगते हैं, अपने पुरुषार्थ का नहीं कमाते।

लक्ष्मी के दो वाहन हैं। कुलक्ष्मी रूप से वह उलूकवाहिनी है अतः चाँदी-सोने के ढेर को ही लक्ष्मी समझ कर सिर पर ढोने वाले को दिन के प्रकाश में भी सत्यरूपी सूर्य के दर्शन नहीं होते। सुलक्ष्मी रूप में वही कमला, कमलासना है, पद्मसम्भवा है। सच्ची चारित्र्य-लक्ष्मी के उपासक संसार में रहते हुए भी कमल के समान निर्लिप्त रहते हैं। जहाँ सच्ची लक्ष्मी है, वहीं लक्ष्मीनारायण भगवान् हैं।

कालिका शोध शान्ति

कालिका पुराण के अनुसार महाकाली जब असुरों का संहार कर चुकीं तो क्रोधावेश में प्राणीमात्र का भी संहार करने लगी। उसे रोकना किसी के वश की बात नहीं थी। अतः भगवान् शंकर स्वयं महाकाली के सामने मार्ग रोक कर खड़े हो गये। आवेश में महाकाली स्वयं शंकर के वक्षस्थल पर चढ़ गयीं, किन्तु शिव के तपोःपूत शरीर का स्पर्श करते ही उनका क्रोध शान्त हो गया। इसी उपलक्ष्य में दीपोत्सव मनाया जाने लगा।

भगवान् वामन का विजय-पर्व

प्राचीन काल में असुरों ने (जो संभवतः असीरीया देश के निवासी थे) बार-बार आक्रमण किये। भारत के सोने (हिरण्य) पर नजर रखने वाले हिरण्याक्ष ने हमला किया ते भारतीय जनगण ने जंगली सूअर (वराह) के समान आवेश में आकर उसे वाराहमूल (बारामूला, काश्मीर) में मार दिया। उसके भाई हिरण्यकशिपु ने मूलत्राण (मुल्तान) में अपना राज्य जमा लिया। उसके भारत भक्त पुत्र प्रह्लाद का साथ देकर जनगण ने नृसिंह शक्ति के रूप में जागृत हो उसे विदीर्ण कर डाला। उसके पुत्र प्रह्लाद को जनगण ने आदर का स्थान दिया। तत्पश्चात् विरोचन तथा उसके पुत्र बलि का राज्य आया। प्रह्लाद के पौत्र बलि का राज्य सुराज्य तो था किन्तु स्वराज्य नहीं था। शिक्षा में ब्राह्मणों के स्थान पर विरोचन की चलाई हुई पद्धति का मान था। व्यापार असुरों के हाथ था, सेना में भी भारतीयों को योग्य स्थान नहीं मिलता था। बलि ने भारत की भाग्यलक्ष्मी को बन्दी बना लिया था। अतः नर नारायण ने (कुशाग्रबुद्धि ब्राह्मण) का रूप धारणकर बलि को छल से पातालवासी बनाकर भारत की भाग्यलक्ष्मी को मुक्त किया। इसी उपलक्ष्य में, जहाँ भारतीय जनगण के हृदय के आशादीप जगमगा उठे वहाँ प्रकट दीपों द्वारा भी दीपावली का पर्व मनाकर हर्ष व्यक्त किया गया।

भगवान् राम के अभिनन्दन में दीपोत्सव

प्रचलित परम्परा के अनुसार भगवान् श्रीरामचन्द्र के लंका विजयोपरांत

अयोध्या वापस लौटने पर कोटि-कोटि हर्ष मुकुलित हृदयों ने दीवाली द्वारा उनका अभिनन्दन किया। वाल्मीकि रामायण इस विषय में मौन है किन्तु तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस में इसका सविस्तार वर्णन है। प्रभु रामचन्द्र के अयोध्या लौटने का समय कोई भी रहा हो, इस महान् राष्ट्रीय विजय पर प्रकाशित हर्ष को दीपावली के साथ संयुक्त करके भारतीयों ने दीपमालिका का गौरव भी बढ़ा दिया है। इसी प्रकार भगवान् कृष्ण की नरकासुर पर विजय के साथ भी इस आलोक पर्व का अविच्छिन्न संबंध हो गया।

विक्रमादित्य का विजय-पर्व

प्रचलित गाथाओं के अनुसार विक्रम संवत् के प्रणेता वीरवर विक्रमादित्य ने आततायी शकों पर विजय प्राप्त करके आज के दिन दीपमालिका के आनन्दोत्सव को मनाया। कोई सम्राट् अशोक का विजय दिवस भी इसे मानते हैं।

ज्योतिर्विज्ञान में ज्योतिपर्व

ज्योतिष में भी इस पर्व का बड़ा महत्त्व है। सूर्य तुला राशि में चला जाता है, तुला का संबंध व्यापार से होने के कारण यह व्यापारियों का एक महान् पर्व है। कार्तिक अमावस्या वर्ष की सबसे अधिक अंधकारमयी रात्रि है। इसे सबसे अधिक प्रकाशमान बना देने के मानवीय उपक्रम का नाम ही दीवाली है। शारदीय नवशस्येष्ठी यज्ञ भी किया जाता है। यज्ञाग्नि में नवान्न को भेंट करके ग्रहण किया जाता है। दीपों के जलाने से तथा यज्ञाग्नि से अनेक रोगाणुओं का नाश होता है।

भगवान् महावीर निर्वाण दिवस

जीव दया के मूर्तिमान अवतार भगवान् महावीर का महानिर्वाण भी इसी ज्योति-पर्व पर हुआ। अतः जीवन में तप एवं सर्वभूत दया का व्रत लेकर ही इन्हें (महावीर स्वामी को) उचित सम्मान दिया जा सकता है।

गुरु हरगोविन्द मुक्ति दिवस

मध्यकालीन मुगलों ने जो भारतीय धर्म पर अनेकानेक अत्याचार किये, उसी परम्परा में गुरु अर्जुन देव को तप्त लोहे के तवों पर जलाने के पश्चात् जहाँगीर ने उनके सुपुत्र छठे गुरु हरगोविन्द जी को ग्वालियर के किले में बन्दी बना लिया। बाद में जब उनकी मुक्ति का आदेश हुआ तो कहा गया कि जितने व्यक्ति उनके चोगे को पकड़ लेवें वे भी मुक्त कर दिये जाय। गुरु महाराज ने 52 कलियों वाला चोगा बनवाया तथा उनकी एक-एक कली को पकड़ कर 52 अन्य राजा जो किले में बंदी थे वे भी मुक्त कर दिये गये। इसी उपलक्ष्य में अमृतसर के स्वर्णमंदिर में आज के दिन दीपावली मनाई गई थी।

स्वामी दयानन्द सरस्वती निर्वाण दिवस

आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द को उनके निजी रसोइए ने विष दे दिया किन्तु स्वामीजी ने उसे अपने पास से धन देकर भाग जाने का संकेत दिया। स्वामीजी ने कहा—'मैं लोगों को बन्धन से मुक्त कराने के लिए आया हूँ, बंधवाने के लिए नहीं।' आज दीपावली के पर्व पर जब कोटि-कोटि दीपक जल उठे, स्वामीजी का दीप निर्वाण हो गया। उनके मुख पर अन्तिम शब्द थे—'हे प्रभु! तेरी इच्छा पूर्ण हो।'

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर निर्वाण दिवस

बंगाल के लोकप्रख्यात, विद्यामार्तण्ड श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का निर्वाण भी इसी प्रकाशमान पर्व पर हुआ। भारत के युवकों को उनके जीवन से विद्या का अनुराग, अध्यवसाय, मातृभक्ति एवं सच्चरित्रता—जैसे सद्गुणों को ग्रहण कर उन्हें भावांजलि चढ़ानी चाहिए।

स्वामी रामतीर्थ जयन्ती

स्वामी रामतीर्थ की जीवन-गीतिका की दृष्टि से दीपमालिका का पावन पर्व वह त्रिविध धन्य दिवस है जब वह महान् विभूति इस धरती पर अवतीर्ण हुई, जब वह ब्रह्मज्योति से मिलने के लिए परम व्याकुल हुई तथा जब ब्रह्मलीन हो गयी। सन् 1906 की दीपमालिका पर जल समाधि लेने से पूर्व उन अलौकिक तत्त्वदर्शी ने जो मृत्यु को चुनौती दी है वह उनके शाश्वत-गौरव की परिचायक है।

गोवर्धन पूजा

दीपावली के दूसरे दिन गोवर्धन पूजा का पर्व होता है। व्रज के मन्दिरों में जहाँ अन्नकूट होता है वहाँ गो जाति के वर्द्धन के कारण गोवर्धन पर्वत की भी पूजा की जाती है।

बलि पूजन

उसी दिन राजा बलि का पूजन भी होता है।

चित्रगुप्त पूजा

यमराज के 18 यमों में एक यम चित्रगुप्त हैं। वे मनुष्यों के पाप-पुण्य का लेखा-जोखा रखते हैं। वे कायस्थ जाति के आदिपुरुष माने जाते हैं। उनकी पूजा का प्रचलन भी पुराना है।

यम द्वितीया

यह भैया दूज का पवित्र पर्व कार्तिक शुक्ला द्वितीया को आता है इस दिन यम

ने अपनी बहिन यमुना द्वारा तिलक करवाया था। आज बहिनें भाइयों को विजय-तिलक करती हैं। इसके अगले दिन भगिनी तृतीया (यमुना तृतीया) का पर्व आता है। इस दिन भाई बहिन की पूजा करता है।

इस प्रकार अनेकानेक पर्वरूपी दीपकों से जगमगाता हुआ दीपमालिका का पर्व एक अद्‌भुत पर्व-मालिका ही है। सभी पर्वों को प्रकाशित करने वाले दीपक के उस आलोक मधुर प्रकाश को हमारे प्रकाश-पिपासु प्राणों का प्रणाम!

आज दीपावली को मानव मात्र के मंगल, सुख, शांति, समृद्धि असत् पर सत् की विजय का, अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाला, मृत्यु से अमृत की ओर ले जाने वाला उत्सव मानकर विश्वस्तर पर मान्यता मिल रही है। आज विश्व की अनेक संसदों में जिसमें ब्रिटेन-अमरीका के संसद भवन भी दीपमाला से जगमगा रहे हैं।

विज्ञान में की गयी प्रगति जिसे सामान्यतः यूरोप के लोगों द्वारा प्रतिपादित समझा जाता है, वास्तव में वे शताब्दियों पहले भारत में ही विकसित हुई।

—ब्रिटिश इतिहासकार ग्रांट डफ

विज्ञान का जनक पश्चिम नहीं, भारत है

नेतरहाट विद्यालय में डॉ.ओबराय का व्याख्यान

तीसरी शती के ईसा पूर्व के यूनानी वैज्ञानिक आर्किमिडिज़ से लेकर 17 वीं शती के ब्रिटिश वैज्ञानिक न्यूटन तक पश्चिम में लगभग 2000 वर्षों तक जब विज्ञान मर चुका था तब भी भारत में आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, जीवक वैद्य, वैद्यराज चरक, सुश्रुत (शल्य चिकित्सक), शालिहोत्र, बोधायन, लगध, मेधातिथि, ब्रह्मगुप्त, नागार्जुन, उमास्वाति जैसे महान् वैज्ञानिक विश्व को महान् वैज्ञानिक ज्ञानालोक बांट रहे थे। इन शब्दों में विगत दिवस नेतरहाट विद्यालय में एक विशेष व्याख्यान में भारत की वैज्ञानिक प्रतिभा पर बोलते हुए संस्कृति विहार, रांची के निदेशक डॉ. हरवंश लाल ओबराय ने भारतीय वैज्ञानिक परम्परा का महत्त्व दर्शाया।

प्रो. ओबराय ने कहा, 'जहाँ पश्चिम में 17 वीं शती में धरती को गोल कहने पर गैलिलियो को कारागार में तड़पा-तड़पा कर मारा गया, कोपरनिकस को डराया, धमकाया गया, ब्रूनो को रोम के चौराहे पर जीवित जलाया गया, जीनो नामक दार्शनिक, वैज्ञानिक को घर समेत अग्नि में फूंक डाला गया, हियोफिया नामक रोमन महिला को ज्यामिति पढ़ाने के अपराध में नंगा कर उसे रोम के बाजारों में कोड़े मार-मार कर मार डाला गया, वहाँ भारत की वैदिक-परम्परा में ही भूगोल (भूमि गोल), खगोल, ब्रह्माण्ड, अखण्ड मण्डलाकारम् शब्द ही भारत को विज्ञान का जनक घोषित कर रहे हैं।

विद्वान् वक्ता ने अपने सचित्र भाषण में बड़े रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक चित्र एवं मानचित्र भी दिखाए।

महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ. मिथिलेश कान्ति ने धन्यवाद ज्ञापन में कहा कि प्रायः लोग यही धारणा बनाए रहते हैं कि भारत तो सुन्दर काल्पनिक साहित्य एवं उदात्त चिन्तनदर्शन की ही जन्मभूमि है। डॉ. ओबराय के व्याख्यान ने सिद्ध कर दिया है कि भारत विज्ञान का भी जनक रहा है। भविष्य में हम विद्वान् वक्ता के सान्निध्य में भिन्न विज्ञानों में भारत की उपलब्धियों पर एक व्याख्यानमाला का आयोजन करेंगे।

आधुनिक कालगणना में भारत की देन

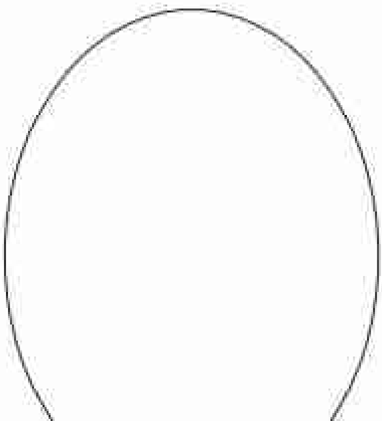
काल की गति अगम्य है। जहाँ सारा विश्व काल की क्रीड़ा मात्र है, वहाँ वह अन्त में काल के गाल में समा भी जाता है। अतः काल विश्वलीला का कला-स्रष्टा भी है तथा कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों को पचा जाने वाला विकराल कालभैरव भी। भारतीय मनीषियों ने काल तथा महाकाल में अन्तर किया है। जो काल सापेक्ष है, सान्त है, बुद्धिगम्य है, उसी काल को गणनयोग्य माना गया है। जो अनादि, अनन्त, निरन्तर प्रवहमान, सर्वदा निरपेक्ष कालधारा है, उसे महाकाल, कालातीत, अकाल, कालेश्वर इत्यादि नामों से पुकारा गया है। वह कालातीत महाकाल ही सृष्टि की सान्त कालधारा का नियामक है।

गणना काल के सान्त घेरे के भीतर ही हो सकती है। अनन्त महाकाल गणना से नितान्त परे है। गणना के विज्ञान को गणित कहते हैं। विश्व सभ्यता के इतिहास में सारा संसार गणित, ज्योतिष, दर्शन, आयुर्वेद इत्यादि के क्षेत्र में सदा भारत का ऋणी रहेगा। भारतीय विचारकों ने देश-काल, वस्तु एवं पात्र की विधिवत् गणना के लिए भारतीय अंकों का विकास किया; एक से नौ तक अंक; शून्य की कल्पना; इकाई, दहाई, सैकड़ा, हजार इत्यादि का पद्म, महापद्म एवं शंख इत्यादि तक का स्थान; मूल्य निर्धारण, दशमलव प्रणाली का विकास, भिन्न की लेखन प्रणाली, अनुपात नियमों का विकास, यज्ञवेदी के आकार-प्रकारों से ज्यामिति का विकास, भिन्न की गणना के लिए बीजगणित का विकास इत्यादि करके भारत को गणना अथवा गणित के क्षेत्र में विश्वगुरु के आसन पर आसीन किया। रोमवासियों की गिनती केवल एक हजार तक जाती थी, जिसे मिल्ली (Mille) कहा जाता था। इटैलियन शब्द 'मिलियन' का अर्थ केवल एक हजार ही था, किन्तु आज अंग्रेजी भाषा में मिलियन का अर्थ दस लाख हो गया है जो एक हजार का भी हजार गुना है। यूनानियों की सबसे बड़ी संख्या 'मीरीयेड' (Myriad) या दस हजार तक थी। भारत में 'ललितविस्तर' नामक ग्रन्थ में अंक दस की 53 वीं शक्ति (10^{53}) का वर्णन है। 'शीर्ष प्रहेलिका' नामक ग्रन्थ में 194 स्थान मूल्य वाले अंकों की संख्या का वर्णन है।

बारह राशियाँ

भारतीय कालगणकों ने आकाश मण्डल के नक्षत्र समूहों को बारह समान अंशों में विभाजित किया। यदि हम 12 अरों वाले छाते को आकाश में खोलकर खड़े हों तथा छाते की निकली हुई धुरी को ध्रुवतारे की ओर लक्ष्य करें तो छाते के बारह अरों द्वारा सारा आकाशमण्डल 30-30 अंश के कोण वाले 12 समान वृत्तखण्डों में विभक्त हो जाएगा। एक-एक वृत्तखण्ड के भीतर पड़ने वाले नक्षत्रों की राशि को परिचित वस्तुओं या जीवों के आकार की समानता के आधार पर 12 राशियों को 12 नाम दिये गये हैं यथा—1. मेष (ग्रीक भाषा में Aries) 2. वृष (Taurus) 3. मिथुन (Gemini) 4. कर्क (Cancer) 5. सिंह (Leo) 6. कन्या (Virgo) 7. तुला (Libra) 8. वृश्चिक (Scorpio) 9. धनु (Sagittarius) 10. मकर (Capricorn) 11. कुंभ (Aquarius) और 12. मीन (Pisces)।

ऋग्वेद में सूर्य के 12 अरों वाले वार्षिक गति चक्र का वर्णन है। इसकी व्याख्या द्वादश राशि-चक्र के रूप में ही की गयी है। 12 राशियों के कालातीत को चक्र का क्रान्ति वृत्त कहा जाता है। धरती की अपेक्षा से जब सूर्य क्रान्ति-वृत्त में एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करता सा दिखाई देता है तो उसे मास संक्रांति कहा जाता है। प्रतिवर्ष 13 अथवा 14 जनवरी को जब सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है तो उसे मकर संक्रांति कहा जाता है। मकर का आकार एक मछली जैसा होता है, जिसे यूनानी भाषा में Capricorn कहा गया है। इसी प्रकार मकर रेखा को Tropic of Capricorn तथा कर्क रेखा को Tropic of Cancer कहा गया है। 12 आदित्यों का अर्थ है 12 राशियों में बारी-बारी से प्रवेश करने वाले सूर्य के 12 रूप।



वर्ष की 12 राशियों के विभाजन के आधार पर ही वर्ष को 12 मास में विभाजित किया गया है जिसे आज सारे सभ्य संसार ने स्वीकार कर लिया है। चेल्डिया, बेबीलोनिया तथा यूनान में भारतीयों द्वारा कल्पित द्वादश राशि-चक्र को वैसा ही स्वीकार कर लिया तथा राशियों के लिए समानार्थक नाम भी दिये। वर्ष

के 12 वें भाग को संस्कृत में मास कहा गया है जिसे लैटिन में Mensum कहा गया है। आज अंग्रेजी में Mensal तथा Mensual का अर्थ भी मासिक ही है। इस प्रकार 12 मास तथा मास के लिए नाम भी भारत की देन है।

भारत में वर्ष

भारत में वर्ष दो प्रकार का माना गया है—1. धरती द्वारा सूर्य की परिक्रमा के आधार पर सौर वर्ष तथा 2. चन्द्रमा द्वारा धरती की 12 परिक्रमा पूर्ण करने के आधार पर चान्द्र वर्ष। रोम में पहले चान्द्र वर्ष चलता था। अरब में अभी भी चान्द्र वर्ष ही चलता है। यूनान का ओलम्पियाद संवत् (Olympiad Era) भी 360 दिन का चान्द्र वर्ष ही था। वर्तमान पाश्चात्य देशों में सौर वर्ष का प्रचलन है। संस्कृत के 'सौर' शब्द से ही लैटिन के 'Solar' शब्द की व्युत्पत्ति मानी जाती है। संस्कृत में सूर्य का एक अन्य नाम है मित्र। सारे यूरोप में ईसाइयत के प्रवेश से पूर्व सूर्य-पूजा (मित्र पूजा) प्रचलित थी। इस मित्र पूजा के धर्म को Mithraism कहा जाता था। स्वयं रोम में सूर्य देवता का महाविशाल मन्दिर था जिसे आदित्यालय कहा जाता था। जिस प्रकार आदित्यवार का नाम बिगड़कर ऐतवार और इतवार हो गया है, उसी प्रकार आदित्यालय का नाम 'ऐतालय' और 'इतालय' रूढ़ हो गया। उस विश्व प्रसिद्ध मन्दिर, आदित्यालय (इतालय) से पूरे देश का नाम 'इतालिया' प्रसिद्ध हो गया।

भारत में वर्ष को 'संवत्सर' नाम दिया गया है। इसका अर्थ है कि वर्ष का आरम्भ केवल उसी दिन से होना चाहिए जिस दिन वत्सर (वार) सम हो अर्थात् सारे भूमण्डल में दिन और रात बराबर हो; गर्मी-सर्दी बराबर हो; ऋतु में भी सुखद साम्य हो। यह स्थिति केवल वसन्त सम्पात (21 मार्च) को ही संभव है। तैत्तिरीयोपनिषद में कहा गया है—मुखं ऋतुनामिह कुसमाकरः' अर्थात् कुसुमाकर (वसन्त ऋतु) ही सब ऋतुओं की मुखिया है। मुखिया के रूप में वसन्त वर्ष के कालचक्र में सबसे प्रथम होता है। भारत के विक्रम संवत् एवं शक संवत्—दोनों अब भी वसन्त सम्पात से प्रारम्भ होते हैं। एक समय था जब भारत द्वारा प्रचलित वसन्त सम्पात से नववर्षारम्भ की प्रथा सारे संसार में प्रचलित थी। ईसा के जन्म से 332 वर्ष पूर्व जनमे रोम के मित्र पूजक (सूर्य पूजक) राजा जूलियन ने रोम में जो जूलियन कैलंडर प्रारम्भ किया वह मार्च से प्रारम्भ होकर फरवरी में समाप्त होता था। कैलंडर शब्द रोमन भाषा के केलेन्द (Calend, Kalend) शब्द से बना है, जिसका अर्थ है धार्मिक एवं नागरिक पर्व-त्योहारों के लिए काल का विभाजन।

नामों में अलौकिक साम्य

भारत में भी संवत्सर का प्रयोजन यागादि धार्मिक कृत्यों के लिए होता था। रोमन का केलेन्द शब्द सम्भवतः संस्कृत के 'कालांश' शब्द से कालान्तर में

व्युत्पन्न हुआ है। दोनों में अर्थ साम्य एवं उद्देश्य साम्य अलौकिक है। विक्रमादित्य के संवत् प्रवर्तन से आठ वर्ष पश्चात् (45 ई. पू.) रोम के सुप्रसिद्ध सम्राट जूलियस सीजर ने रोम के संवत् में यह सुधार किया कि वर्ष 365 दिन 6 घंटे का माना जाए, जिससे प्रति चौथे वर्ष अन्तिम मास फरवरी में एक दिन बढ़ा दिया जाए। उस समय तक भारत के समान वर्षारम्भ वसन्त समाप्त (25 मार्च) से होता था। दिसम्बर दसवां मास था, इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के 'दशम' (लैटिन : Deca) से है। इसी प्रकार नवम्बर मास का नामकरण संस्कृत के 'नवम्' शब्द से है। अक्टूबर आठवां मास था तथा इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के अष्ट शब्द से है। सेप्टेम्बर का अर्थ है सातवां मास तथा यह संस्कृत के सप्तम शब्द से बना है। छठा मास हैक्सेम्बर (Hexamber) जिसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के 'षष्ठ' (लैटिन : Hex) से है। पांचवें मांस को पेंटम्बर कहा जाता था। जिसका नामकरण संस्कृत के पंच शब्द से स्पष्ट ही है। जूलियस सीजर का जन्म इसी मास में हुआ था इसलिए उसने पेंटम्बर का नाम बदलकर 'जुलाई' कर दिया। जूलियस सीजर ने प्रति चौथे वर्ष फरवरी के 30 दिन रखने का आदेश दिया था। उस समय मई, जुलाई, सितम्बर, नवम्बर और जनवरी के 31 दिन माने जाते थे। फरवरी के सामान्य दिन 29 दिन तथा लीप वर्ष में 30 दिन। अन्य मासों के 30 दिन चलते थे। सन् 325 ई. में रोम के शासक ऑगस्टस को ज्ञात हुआ कि रोम के पादरियों ने प्रति चौथे वर्ष में फरवरी का एक दिन बढ़ाने के बजाय प्रति तीसरे वर्ष एक दिन बढ़ाने की प्रथा चला दी थी। ऑगस्टस का जन्म छठे मास में हुआ था इसलिए उसने हैक्सेम्बर का नाम अगस्त कर दिया। उस समय तक अगस्ट मास में 30 दिन हुआ करते थे। ऑगस्टस ने अपने नाम के गौरव की रक्षा के लिये अगस्त में भी 31 दिन कर दिए तथा अन्तिम मास फरवरी से एक दिन उधार लेकर अगस्त में बढ़ा दिया। उसने लीप वर्ष के एक दिन बढ़ाने की प्रथा भी तब तक के लिए खण्डित कर दी जब तक पादरियों की गलत प्रथा के कारण पैदा हुई भूल का सुधार न हो जाए। 1582 ई. में रोम के पोप ग्रेगरी XIII ने ऑगस्टस से साढ़े बारह शती पश्चात् पुनः रोम के कैलंडर में सुधार किया। जूलियस सीजर ने सोचा था कि वर्ष 365 दिन 6 घंटे का होता है किन्तु ग्रेगरी ने विचार किया कि 1 वर्ष 365 दिन, 5 घंटे, 48 मिनट 46 सेकण्ड का होता है अतः 128 वर्षों में जूलियस कैलंडर के अनुसार एक दिन बढ़ जाएगा। ग्रेगरी ने वर्ष को 10 दिन पीछे धकेलने की घोषणा रोम के सम्राट से करवा दी। अतः वर्ष 1582, 365 के स्थान पर 355 दिन का रह गया। पोप ने वर्ष को 1 जनवरी से प्रारम्भ करने की घोषणा करवाई जिसका संसार भर में प्रबल विरोध हुआ। इंग्लैण्ड तथा इंग्लैण्ड के अमरीकी उपनिवेशों में 1732 ई. तक नववर्ष 25 मार्च से ही प्रारम्भ होता रहा। अतः जहाँ ग्रेगेरियन कैलंडर में दसवां मास (दिसम्बर) 12 वां मास बन गया था, वहाँ 18 वीं शताब्दी के मध्यकाल तक

ब्रिटेन तथा ब्रिटिश साम्राज्य उसे दशम मास ही मानता रहा। 1923 ई. तक रूस के ग्रीक चर्च तथा बलकान राज्यों में वर्ष मार्च से फरवरी तक ही चलता रहा। 25 दिसम्बर को प्राचीन रोम में सूर्य पूजा का महानतम महोत्सव मकर संक्रांति मनाया जाता था। राधाकृष्णन के मत में रोम में ईसाइयत के प्रवेश के पश्चात् उसी सूर्य पूजा महोत्सव को क्रिसमस के रूप में प्रचारित किया जाने लगा।

सप्ताह के सात दिनों के नाम जिस क्रम में भारतीय गणितज्ञों ने नियत किए थे, उसी क्रम में उसे सारे संसार ने मान लिया है। सूर्य तथा पृथ्वी के बीच ग्रह-पथ वाले बुध और शुक्र 'अन्तश्चर' कहलाते हैं तथा पृथ्वी के ग्रह-पथ से बाहर घूमने वाले ग्रह मंगल बृहस्पति और शनि 'बहिश्चर' कहलाते हैं। अब यदि एक बिन्दु से भिन्न-भिन्न दिशाओं में सात रेखाएं निकाली जाएं तथा उन पर सूर्य, शुक्र, बुध, चन्द्र, शनि, बृहस्पति, मंगल आदि क्रमशः लिखे जाएं और सूर्य से दाहिनी ओर चक्र में 24 होरा (Hour) अर्थात् घंटा गिना जाये तो स्वाभाविक ही 25वां होरा चन्द्रवार (Monday) को पड़ेगा। इसी प्रकार चन्द्र से गिनती पर अगला 25वां होरा मंगल (Mars-Tiu) में पड़ेगा। लैटिन में इसे Dies Martis (मंगल दिवस) कहते थे जिसे एंग्लो सैक्सन में Tiws-Day कहा गया। इसी प्रकार क्रम में अगला दिन बुध (Mercury-Woden) बनेगा। इससे अगला बृहस्पति (Jupeter-Thursday) बनेगा। इससे अगला शुक्र (Venus-Freya) बनेगा। शुक्र को वेद में कहा गया है—अयं वेनश्च शुक्रः। सप्ताह का अन्तिम दिन शनैश्चर (शनैः-शनैः चरति, Saturn) पड़ेगा। संस्कृत दिव, दिवस से यूरोपीय भाषाओं में Day, Dien, Den Dies इत्यादि शब्द बने हैं संस्कृत के नक्त शब्द से यूरोपीय भाषाओं में Nacht, Night, Noct इत्यादि शब्द बने हैं। मध्याह्न से Midday, प्रतिदिन से Perday नवदिवस से New Day (फारसी में नवरोज) इत्यादि शब्द कालगणना पर भारतीय प्रभाव के सुस्पष्ट परिचायक हैं। थाईलैण्ड के नववर्ष को साँक्रान्त कहते है जो मेष संक्रांति (13 अप्रेल) को पड़ता है। इण्डोनेशिया, कम्बोडिया, लाओस, अफगानिस्तान, ईरान आदि के नववर्ष दिवस अभी भी वसन्त सम्पात (21 मार्च) के निकट पड़ते हैं। सूर्य तथा चन्द्रग्रहण के काल का निर्णय आज भी भारतीय कालगणना के अनुसार सर्वशुद्ध माना जाता है। इस प्रकार विश्व की आधुनिक कालगणना में भारत की जो देन है वह सर्वाधिक गौरवमयी है।

'हम कई मायनों में भारत के ऋणी हैं जिसने हमें गिनती सिखायी जिसके अभाव में कोई भी सही वैज्ञानिक अन्वेषण सम्भव ही नहीं हो पाता'।

—आइन्स्टाइन

भारतीय आयुर्विज्ञान का सार्वभौम महत्त्व

भारत को व्यापक स्तर पर 'संस्कृति का घर' कहा जाता है। लेकिन निश्चयात्मक विज्ञान के क्षेत्र में भी भारत का योगदान यद्यपि तुलनात्मक रूप से कम जाना जाता है लेकिन फिर भी वैभवशाली है। आधुनिक काल के शिक्षित युवाओं के मस्तिष्क पर यह गलत जानकारी अंकित है कि जिस तरह से विज्ञान पश्चिमी सभ्यता का योगदान है उसी तरह धर्म और संस्कृति पूर्व का योगदान है।

प्रो. मैकडॉनल के अनुसार विज्ञान के क्षेत्र में भी भारत का यूरोप पर यथेष्ट एवं पर्याप्त ऋण है। प्रथमतः यह तथ्य है कि भारत ने संख्यात्मक अंकों का आविष्कार किया जिनका उपयोग विश्वभर में किया जाता है। इन अंकों के आधार पर गणना की दशमलव प्रणाली का प्रभाव न केवल गणित विज्ञान बल्कि सभ्यता के विकास पर भी महत्त्वपूर्ण है। आठवीं और नवीं शताब्दी के दौरान भारतीय अरबों के गणित और बीजगणित में शिक्षक बने और उनके माध्यम से पश्चिमी सभ्यता के भी गुरु बन गये।

भारतीय आयुर्विज्ञान को आयुर्वेद कहा गया था, जिसका अर्थ होता है, आयु का विज्ञान न कि केवल औषधि तथा चिकित्सा का विज्ञान।

डॉ. एलेक्सिस कैरल, जिन्हें चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में नोबल पुरस्कार (1912) से सम्मानित किया गया था तथा जो न्यूयार्क के रोकफेलर आयुर्विज्ञान शोध संस्थान में 30 वर्षों से अधिक समय तक कार्यरत थे, उनके अनुसार, 'आधुनिक औषधि-विज्ञान अपने दावों के अनुरूप मानव रोगों और कष्टों का समाधान उपलब्ध नहीं करा पाया है। हम विकृत बीमारियों से पहले के मुकाबले अधिक अनुपात में मर रहे हैं तथा चिरकालिक रोगों से पीड़ित, मृत्यु हमारे ऊपर मंडराती है।'

भारतीय आयुर्विज्ञान एक ऐसे समय में, जब पृथ्वी पर किसी भी राष्ट्र को इस विज्ञान का पता नहीं था, पूर्ण रूप से विकसित रूप में विद्यमान था। चरक कहते हैं कि 'आयुर्वेद स्वस्थ एवं भव्य जीवन की बुद्धि एवं विज्ञान है।'

भारत में आयुर्विज्ञान इतना अधिक विकसित था कि इस क्षेत्र में भी इतिहास के स्वर्णयुग में अग्रणी रहा और, विश्वगुरु का सम्मानित दर्जा प्राप्त कर लिया था।

हिन्दू आयुर्विज्ञान का एशिया पर प्रभाव

तथ्यतः आयुर्वेद औषधि-विज्ञान न होकर जीवन का विज्ञान है। लेकिन आधुनिककाल के शिक्षित युवक को आसानी से समझाने की दृष्टि से भारतीय आयुर्विज्ञान अथवा हिन्दू आयुर्विज्ञान शब्द का प्रयोग सही होगा। आयुर्वेद, वेद की शाखा के रूप में यह विश्वास करता है कि जीवन शरीर, मन और आत्मा की रहस्यपूर्ण पादार्थिक समष्टि है। पश्चिमी आयुर्विज्ञान मन को बहुत हद तक नकारता है और आत्मा के अस्तित्व को यह कतई स्वीकार नहीं करता जो जीवन का मूल साधन है।

श्रीलंका, थाईलैण्ड, मंगोलिया और तिब्बत में आयुर्वेद को अभी भी राष्ट्रीय आयुर्विज्ञान प्रणाली माना जाता है। तिब्बती, मंगोलियाई, थाई और इण्डोनेशियाई भाषाओं में हमें आयुर्वेद के विरल अनुवाद उपलब्ध होते हैं। हमारे 'संस्कृति विहार' म्यूजियम में मंगोलिया से प्राप्त एक चित्र में धन्वन्तरि को अमृत का घड़ा उठाये हुए दिखाया गया है। धन्वन्तरि के आयु एवं आयुर्वेद के साथ जुड़ाव के कारण मंगोलिया भाषा में उन्हें 'आयुषी' कहा गया है। हमें शल्य-क्रिया के कई विरल यंत्र इत्यादि भी मिले हैं, जो सुश्रुत के अनुसार तिब्बत में शल्य-क्रिया इत्यादि के लिये प्रयोग किये जाते थे। भारत में औषधि-विज्ञान का संस्कृत ग्रन्थ 'अमृत अष्टांग हृदय-गुह्योपदेश तंत्र', जो भारत में आठवीं शताब्दी में गायब हो गया था, तिब्बत में ग्यूशी (Gyushi) के नाम से उपलब्ध है। एक समय में पूरे दक्षिण-पूर्व एशिया, उत्तर एशिया तथा मध्य-पूर्व में आयुर्वेद अत्यधिक प्रसिद्ध था।

मध्य-पूर्व पर प्रभाव

सातवीं शताब्दी में चरक संहिता और सुश्रुत संहिता का अरबी भाषा में अनुवाद किया गया था। फरिश्ता (Farishta) जो एक प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकार थे उन्होंने लिखा है कि 'आठवीं सदी में अरब लोगों को हिन्दू औषधि-विज्ञान के लगभग 16 ग्रंथों की जानकारी थी।'

पण्डित नेहरू ने 'डिस्कवरी ऑफ इण्डिया' भारत : एक खोज में लिखा है कि 'अरबों के द्वारा बहुत से भारतीय चिकित्सकों को अरब देशों में बुलाया गया था। बगदाद के सर्वाधिक लोकप्रिय खलीफा हारून-अल-रशीद की बीमारी के दौरान मानक नाम के एक भारतीय चिकित्सक को भेजा गया था। मानक बगदाद में बस गया था तथा वहाँ उसे एक बड़े अस्पताल का मुख्य चिकित्सक बनाया गया था। बहुत से अरबी विद्वानों ने मानक के अतिरिक्त छः अन्य भारतीय चिकित्सकों के बगदाद में रहने का उल्लेख किया है। बगदाद में औषधिशास्त्र, गणित, खगोलशास्त्र तथा दर्शन का अध्ययन कराने के लिए ब्राह्मण विद्वानों को आमंत्रित

किया जाता था। बहुत वर्षों तक बगदाद भारतीय चिकित्सा शास्त्र तथा दर्शन का महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहा। 1258 ई. में हलाक द्वारा बगदाद पर आधिपत्य जमाने के साथ भारतीय प्रभाव समाप्त हो गया।

पण्डित नेहरू कहते हैं कि विद्वानों के समूह अपनी पुस्तकों के साथ बगदाद से काहिरा तथा स्पेन की ओर गये और इससे वहाँ पर अध्ययन और कला का पुनर्जागरण काल प्रारम्भ हुआ। इस तरह से चिकित्साशास्त्र, गणित तथा खगोलशास्त्र में अरबी विद्वान यूरोप के शिक्षक बने। भारतीय सभ्यता और अध्ययन इस तरह अरबों के माध्यम से यूरोप पहुँचा।

ग्रीस तथा मिस्र

औषधि की ग्रीक (यूनानी) प्रणाली मानव की चार दशाओं (पित्त, कफ, वसा तथा रक्त) में विश्वास करती है जबकि आयुर्वेद प्रथम तीन में विश्वास करता है। भारत व ग्रीकों के संबंधों में पारस्परिक आदान-प्रदान हुआ। लेकिन भारतीयों ने ग्रीस और मिस्र से लेने के बजाय उन्हें ज्यादा दिया। रोगनाशक एवं रोगनिरोधक— दोनों ही तरह के आयुर्विज्ञान तथा शल्य क्रिया, जो यूरोप तथा विश्व के अन्य भागों में पारसियों, अरबों, मिस्रवासियों, ग्रीकों तथा रोम वासियों के माध्यम से फैला, वस्तुतः भारत में पैदा हुआ।

गैरीसन के अनुसार 'सिकन्दर के समय में भारतीय चिकित्सकों एवं शल्य-चिकित्सकों को उनके उच्च ज्ञान एवं तकनीक के कारण बहुत प्रसिद्धि प्राप्त थी। 'डॉ. ए.एल. बैशम की प्रसिद्ध कृति 'वंडर दैट वाज इण्डिया' में कुछ विद्वानों के अनुसार 'अरस्तू भी पारसियों और अरबों की भांति अपने आपको ऋणी मानता था।'

डॉ. रायले ने यह सिद्ध किया है कि 'पश्चिमी औषधशास्त्र का जनक हिप्पोक्रेटस ने अपने 'मैटेरिया मेडिका' को भारत से प्राप्त किया।

बसरा के अमीर बाहुजहीज ने 869 ई. में अपनी कृति में लिखा है कि 'चिकित्सा-विज्ञान के क्षेत्रों में हिन्दू अत्यधिक आगे हैं। उन्हें कुछ गंभीर बीमारियों के कुछ विशिष्ट रहस्य पता हैं!

इजराइलस्थविर पुत्र : थेराप्युते

भारत के बौद्ध-भिक्षुओं को 'स्थविर' (वृद्ध-पुरुष) कहा जाता है। जब अशोक ने भगवान् बुद्ध के संदेश को विदेशों में प्रसारित करने हेतु युवकों से अपील की तो इन युवा भिक्षुओं को 'स्थविर पुत्र' कहा गया। वे इजराइल तक गये तथा वहाँ अहिंसा के संदेश के साथ बीमारों को चिकित्सकीय सेवा भी उपलब्ध कराई। वे अपने कंधों पर दवाओं का थैला लटकाकर चलते थे तथा बीमार और पीड़ितों

को दवाएं वितरित करते थे। बाइबिल में उन्हें 'थेराप्युत' कहा गया है। उनका निरामिष भोजन, भिक्षु जीवन, ध्यान, प्रार्थना, एकांतता, ब्रह्मचर्य तथा सेवा भाव बौद्ध धर्म के गुण थे। उन्होंने ईसा मसीह के जन्म से पूर्व ईसाई मत के लिये मानसिक वातावरण तैयार किया। थेराप्युतो की वजह से चिकित्साशास्त्र में 'थेराप्युटिक' तथा 'थिरैपी'—जैसे शब्दों का समावेश हो गया है।

जर्मनी

जर्मनी में प्राच्यविद्या शोध संस्थानों तथा पुस्तकालयों में हिन्दू चिकित्साशास्त्र की बहुत-सी पांडुलिपियाँ आज भी सुरक्षित हैं।

डॉ. बुबलर (Dr. Bubler) द्वारा संपादित 'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ इंडो-आर्यन-रिसर्च' (वोल्यूम-पार्ट 10) के क्रम में डॉ. जै. जौली का औषधशास्त्र भी शामिल है।

डॉ. हेनरिक जिमर ने सही लिखा है कि चरक, सुश्रुत तथा वागभट प्राचीन समय की त्रिमूर्ति है जिन्हें बाद के युगों में चिकित्सा के क्षेत्र में तीन महानतम कहा जाता है। (हिन्दू औषधशास्त्रि, पृष्ठ 60)

हौम्योपैथी के जनक सैम्युअल हैनीमैन भी हिन्दू औषधशास्त्र से अत्यधिक प्रभावित थे।

फ्रांस

फ्रांस के चिकित्सक डॉ. पी. कार्डिए के संग्रह में ऋग्वेद, अथर्ववेद, उपनिषद् सहित अन्य ग्रन्थों और विधि की पुस्तकों पर टीकाएं बहुत ही प्रसिद्ध है।

रोम

प्लास्टिक सर्जरी भारत में सफलतापूर्वक प्रचलित रही। फ्रांस का एक यात्री वीन 1835 ई. में भारत आया और उसने जम्मू तथा हिमाचल के कांगड़ा क्षेत्र का भ्रमण किया। वहाँ नाक की तथा शरीर के अन्य भागों की प्लास्टिक सर्जरी का चलन देखकर वह अत्यधिक आश्चर्यचकित हुआ। पन्द्रहवीं शताब्दी में एक इटालियन चिकित्सक ने प्लास्टिक सर्जरी भारतीय से सीखी थी तथा रोम में उसने उसका खूब प्रयोग किया। जब उसकी मृत्यु हुई तो उसे ईसाई की तरह से दफनाया नहीं गया क्योंकि उसने शल्यविद्या एक हिन्दू (गैर-ईसाई) से प्राप्त की थी।

पुर्तगाल तथा हालैण्ड

पुर्तगाल के गार्सियो-दो-ओरता ने सोलहवीं शताब्दी में हिन्दू औषधशास्त्र का अध्ययन किया और 17 वीं शताब्दी में हालैण्ड के डच बंटियस (Duch Buntius) द्वारा हिन्दू औषधशास्त्र को जाना गया और फिर उत्तर-पश्चिम यूरोप ले

जाया गया। 19 वीं शताब्दी में पश्चिमी विद्वानों से इसे प्रोत्साहन मिला। फ्रांस में हिन्दू औषधशास्त्र के ऊपर लेखन हुआ और 1864-1889 ई. के मध्य प्रकाशित औषधविज्ञान के विश्वकोश में इसे स्थान मिला।

इंग्लैण्ड

विलियम हंटर ने लिखा है कि 'भारतीय औषधशास्त्र विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र का लेखा-जोखा देता है। यह शरीर के ढांचे का विवरण देता है, इसके अंग-प्रत्यंग, मांसपेशियों, रक्तवाहिनियों और ऊतकों का भी विवरण देता है। हिन्दुओं का मैटेरिया मेडिका खनिजों, सब्जियों तथा पशु क्षेत्र से संबंधित अनेक दवाओं को शामिल करता है जो बाद में यूरोप के विद्वानों द्वारा स्वीकार कर ली गयी। उनका औषध निर्माण विज्ञान औषध निर्माण की प्रवीण प्रक्रियाओं और औषधियों को खिलाने तथा उनके वर्गीकरण को विस्तृत निर्देश प्रदान करता है। शरीर की स्वच्छता की प्रक्रिया तथा शरीर के पोषण पर इसका विशेष ध्यान था।'

वेबर के अनुसार 'भारत में आयुर्विज्ञान की पुस्तकों और विद्वानों की संख्या काफी बड़ी है। शल्यक्रिया में भी भारतीयों को विशिष्ट प्रवीणता प्राप्त है और इस क्षेत्र में यूरोपीय शल्य-चिकित्सक उनसे बहुत कुछ सीख सकते हैं जैसा कि उन्होंने राइनोप्लास्टरी के क्षेत्र में पहले भी सीखा है।'

श्रीमती ई. एलफिंस्टन के अनुसार—'भारतीयों की शल्यक्रिया उनके औषधविज्ञान की ही तरह विलक्षण है।'

श्रीमति मैनिग के अनुसार हिन्दुओं के शल्य-चिकित्सा के यंत्र इतने पैने होते हैं कि बालों को भी लम्बवत् काट सकते हैं।

लॉर्ड एम्पथिल (1869-1935 ई.) जो एक समय मद्रास के गवर्नर थे, उनके अनुसार मुझे ठीक से निश्चित यह पता नहीं पर सामान्य तौर पर ऐसा माना जाता है कि चिकित्सा का विज्ञान भारत में पैदा हुआ। लेकिन यह सत्य है कि विज्ञान प्रथम यहाँ से अरब और फिर यूरोप को निर्यात हुआ।

प्रो. एच. एच. विल्सन, जो प्रसिद्ध प्राच्यविद् एवं भाषाशास्त्री थे, उनकी महान् कृतियों के माध्यम से हिन्दू औषधशास्त्र पश्चिम तक पहुँचा। उन्होंने 1823 ई. से अपने निबन्ध आयुर्विज्ञान और शल्यचिकित्सा पर लिखे। 1837 ई. में प्रो. रायले का निबन्ध 'हिन्दू औषधशास्त्र की प्राचीनता' शीर्षक से लंदन में प्रकाशित हुआ।

वाइज, स्टेंजलर्स, हैजलर्स, वुल्लर्स, रायले जैसे—आधुनिक औषधशास्त्र के विद्वानों तथा भारत में गोन्डल के महाराजा, गणनाथसेन, जैमिनीभूषणराय, कप्तान श्रीनिवास मूर्ति, डॉ. एन. बनर्जी, अगास्थे, के. एस. महास्कर, आर. डब्ल्यू. चौपड़ा जैसे विद्वानों ने चरक संहिता तथा सुश्रुत संहिता पर अच्छे अध्ययन प्रस्तुत किये

जिसमें उन्होंने आयुर्वेद तथा अन्य भारतीय औषधियों की महत्त्वपूर्ण बातों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है। उन्होंने प्राचीन प्रणालियों की वैज्ञानिकता पर ध्यान आकर्षित किया है।

अमरीका

अथर्ववेद की ऋचाओं का ह्विटनी द्वारा अनुवाद सर्वप्रथम प्रकाश में आया तथा उसके बाद चरक, सुश्रुत तथा वागभट की संहिताओं के अनुवाद प्रकाशित हुए। जूलियस जॉली का प्रबन्ध अत्यधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। जॉली ने अपनी कृति Indische Mediuim (भारतीय औषधिशास्त्र) में उपलब्ध सामग्री का समग्र सर्वेक्षण प्रस्तुत किया है।

स्वच्छता-संहिता

सन् 1905 में लॉर्ड एम्पथिल ने मद्रास में कहा—'अब हमें पता लग रहा है कि हिन्दू शास्त्रों में स्वच्छता संहिता का समावेश भी है। मनु, जिसे विधि-प्रदाता कहा जाता है, उनको महानतम स्वच्छता-संहिता देने वाला विद्वान भी माना जाना चाहिये। विश्व ने ऐसा महान् पूर्व में नहीं देखा।'

प्रो. वेबर के अनुसार 'वैदिक समय में पशु शरीर-रचना विज्ञान पूरी तरह समझ लिया गया था और इसके प्रत्येक भाग का एक विशिष्ट नाम हुआ करता था। अमरकोष के मानव शरीर-संबंधी अध्याय में जिस तरह से बीमारियों का उल्लेख है, उससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में चिकित्सा-विज्ञान काफी आगे जा चुका था।'

प्रो. विल्सन के अनुसार 'संस्कृत में चिकित्सा विज्ञान-संबंधी साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है जिनमें से कुछ कृतियों का अरबी लेखकों ने उल्लेख किया है तथा 9 वीं शताब्दी में बगदाद में कुछ ग्रन्थों का अनुवाद भी उपलब्ध था। यह साहित्य चिकित्सा-विज्ञान की सभी शाखाओं, जिसमें शल्य-क्रिया भी शामिल है, पर उपलब्ध था। ऐसे बहुत से उदाहरण मिलते हैं, जिनमें कई तरह की व्याधियों का समुचित समाधान किया गया था।' लार्ड एम्पथिल ने एक अन्य स्थान पर कहा है कि 'भारत के लोगों को कर्नल किंग का धन्यवाद व्यक्त करना चाहिये जिसने उन्हें इस ज्ञान से अवगत कराया कि उनके पास रोगनिरोधक एवं रोगनाशक चिकित्सा सिद्धान्त प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे। एक ऐसे समय में जब यूरोप असभ्य समाजों की श्रेणी में आता था। मुझे पता नहीं कि यह माना जाता है अथवा नहीं कि चिकित्सा-विज्ञान का प्रादुर्भाव भारत में हुआ, लेकिन यह सच है कि इस विज्ञान को सबसे पहले भारत से अरब दुनिया और फिर वहाँ से यूरोप में निर्यात किया गया। लगभग 17 वीं शताब्दी के आने तक यूरोप के चिकित्सा-शास्त्रियों ने

विज्ञान को अरब दुनिया के चिकित्सकों की मदद से समझा जबकि कई सदी पहले इसी विज्ञान को अरब के चिकित्सकों ने भारत के महान् चिकित्सक धन्वंतरि, चरक एवं सुश्रुत आदि से सीखा।

सर डब्ल्यू. हंटर का कहना है कि हिन्दू औषधशास्त्र का विकास स्वतन्त्र रूप से हुआ जबकि अरबी औषधशास्त्र बगदाद के खलीफा (950-960 ई.) के आदेश पर संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद के आधार पर हुआ। यूरोपीय औषधशास्त्र 17वीं शताब्दी तक अरबी अनुवाद पर आधारित रहा, जिसमें भारतीय चिकित्साशास्त्रियों, यथा—चरक इत्यादि के नाम लगातार आते हैं। (अबुसीना, अबरासी एवं अबुसराबी आदि के अनुवाद)

कोसोमाडिकोरस ऐसा पहला व्यक्ति था जिसने यह घोषणा की कि तिब्बत की तनलुर चरक सुश्रुत व वाग्भट के ग्रन्थों के अनुवाद हैं।

श्रीमती मैनिग के अनुसार यूनानियों ने बाद में बगदाद में हिन्दू चिकित्साशास्त्रों की जानकारी प्राप्त की और इलाज के तरीकों को भी सीखा। सिरेपियन, जो कि अरब संसार के प्रारम्भिक लेखकों में गिना जाता है, ने भारतीय चिकित्सक चरक का उल्लेख किया तथा उन्हें चिकित्साशास्त्र का महान् वैज्ञानिक बताते हुए माइरोबोलान्स को चरक के विवरणों का हिस्सा बताया।

एक और अन्य अरबी चिकित्साशास्त्री, जिसेरेज ने चरक को उद्धृत करते हुए उन्हें पादपों और दवाओं के संदर्भ में अधिकृत विवरण देने वाला बताया है।

डॉ. फरनैल, जो मद्रास में सेनेटरी कमिश्नर के पद पर कार्यरत थे, उन्होंने अपने अप्रेल 1882 ई. के एक व्याख्यान में हिन्दू औषधशास्त्र के दावों का समर्थन करते हुए कहा कि भारतीय चिकित्सा-पद्धति दुनिया में सर्वाधिक प्राचीन एवं विकसित चिकित्सा-पद्धति थी। शुद्ध जल के सेवन का महत्त्व स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि प्राचीन हिन्दू न केवल अन्य सभी मामलों में दूसरों से श्रेष्ठ था बल्कि वह इसलिए भी अधिक श्रेष्ठ था कि उन्होंने शुद्ध जल के महत्त्व को पहचाना और सभी तरह के जल-प्रदूषण को पूरी तरह निषिद्ध किया। 1879 ई. में उन्होंने अपने एक अन्य सम्बोधन में बताया कि हिन्दू चिकित्साशास्त्री चिकित्सा विज्ञान की सभी शाखाओं में अतुल्य थे, एक ऐसे समय में जब ब्रिटेन के लोग असभ्य थे और संभवतः नंगे घूमते थे। कोलकाता के एक समाचार पत्र 'द इंग्लिश मैन' में 1880 ई. में लिखा कि भारतीय चिकित्साशास्त्र के संस्कृत ग्रन्थों को पढ़ने के बाद कोई भी यह निष्कर्ष निकाले बगैर नहीं रह सकता कि ज्ञान और जानकारी के संबंध में प्राचीन हिन्दू न केवल यूनानियों और रोमनों से आगे थे बल्कि मध्यकालीन यूरोप से भी बहुत आगे थे।

एलफिंस्टन का कहना है—'उन्हें सल्फ्यूरिक एसिड, नाइट्रिक एसिड, मोरेटिक एसिड, कॉपर ऑक्साइड, लोहा, जस्ता, टीन, जिंक, लोहे का सल्फरेट, तांबा,

मर्करी तथा ऐसे ही अन्य कई तरह के धातु और अधातु बनाने आते थे। इन वस्तुओं को तैयार करने का इनका तरीका कई मामलों में अद्‌भुत हुआ करता था। औषध-निर्माण के क्षेत्र में उनके प्रयोग बहुत निर्भीक थे। वे दुनिया के ऐसे प्रथम राष्ट्र थे, जिन्होंने खनिजों का प्रयोग औषध-निर्माण क्षेत्र में किया। मर्करी और आर्सेनिक जैसे पदार्थों का उपयोग कर उन्होंने उपचार-पद्धति विकसित की। उन्होंने धूमीकरण हेतु सिन्दूर का उपयोग बहुत पहले प्रारम्भ कर दिया था जिसके माध्यम से वे वेगवान् तथा सुरक्षित लालाश्रवण का परिणाम उत्पन्न करते थे। उन्होंने टीकाकरण की व्यवस्था को बहुत पहले प्रारम्भ कर दिया। ऐसा महसूस होता है कि औषधविज्ञान की उनकी जानकारी बहुत विस्तृत थी। सामान्य वस्तुओं की उनकी जानकारी से हमें आश्चर्य नहीं होता, जिनके बार में उन्होंने यूरोप को प्राथमिक शिक्षा दी, यथा—अस्थमा में धतूरे का धूम्रपान तथा कीड़ों के विरूद्ध कोविच का उपयोग।

कोलोनल किंग ने स्पष्ट सबूत उपलब्ध कराएं हैं कि प्राचीन भारत में जातिप्रथा-संबंधी व्यादेश बीमारी के संक्रमणीय अभिकर्ताओं के अस्तित्व के विश्वास पर आधारित था। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि हिन्दू और मुसलमान—दोनों ही चेचक से बचाव के लिए चेचक के वायरस से टीकाकरण किया करते थे तथा यह कि टीकाकरण जेनर की महान् खोज से पूर्व भी यूरोप में इस विधि का प्रयोग हो चुका था जिसे मध्य-पूर्व में (कॉन्स्टेन्टिनोपल) तथा लगभग पूर्व एशिया तक औषधविज्ञान की जानकारी से प्राप्त किया गया था। यह स्थिति ईसाकाल से प्रारम्भ की है। लॉर्ड एम्फथिल ने भारत के प्रसिद्ध चिकित्साशास्त्री धन्वंतरि को उद्धृत किया है—'फुंसी से निकले हुए तरल पदार्थ को गाय के थन पर लेकर अथवा किसी व्यक्ति के कंधे व कोहनी के बीच में रखकर नस्तर से इतनी जोर से दबाएँ कि वहाँ रक्त प्रकट होने लगे, इस तरह उस तरल पदार्थ को व्यक्ति के खून से मिला देने से चेचक का बुखार प्रादुर्भूत होगा। साधारण रूप से इसी को 'टीकाकरण' कहा जाता है। इस तरह से ऐसा महसूस होता है कि प्राचीन हिन्दुओं ने जेनर की महान् खोज की उद्‌घोषणा पहले से ही कर दी थी।

पूरे विश्व में हमें कोई भी ऐसा प्रारूप नहीं दिखता जिसमें हम चेतना के एक से ज्यादा रूप प्राप्त कर सकें, यदि है तो वो भी इसलिये कि हम क्षणभंगुर मनुष्यों की अनगिनत संख्या को देखकर ऐसा महसूस करते हैं। जबकि यह सर्वथा भ्रामक तथा गलत सोच है....इस द्वन्द्व का एक ही समाधान है और वह उपनिषदों की सूक्तियों में ही निहित है।'

एडविन श्रोडिंजर

अखिल भारतीय दूरभाष पारियात्र कर्मचारी संघ रांची अधिवेशन, 1982 स्वागत समिति के अध्यक्ष का भाषण

समादरणीय सभापति महोदय, माननीय मुख्य अतिथि महोदय, मान्य प्रतिनिधिगण एवं प्रिय बंधुओं!

सान्ध्य स्वस्ति स्वागतम्।

अखिल भारतीय दूरभाष पारियात्र कर्मचारी संघ के रांची में आयोजित अखिल भारतीय अधिवेशन में देश के कोने-कोने से समागत प्रतिनिधियों, खुले अधिवेशन के सभापति एवं मुख्य अतिथि एवं उपस्थित आप सब महानुभावों का मैं स्वागत समिति के अध्यक्ष के नाते रांची की ऐतिहासिक नगरी में अभिनंदन, अभिवंदन करता हूँ। थाईदेश में एक उषा का मंदिर है, जो सात खण्ड ऊँचा है। उसके सात खण्डों के नाम—भू लोक, भुवः लोक, स्वः लोक, महालोक, जनःलोक, तपःलोक और सत्यम्लोक है। प्रातःकाल प्राची दिशा में उषा की लालिमा छिटक जाने पर वे वेद के उषा सूक्त से सुनहरी उषा का स्तवन करते हैं और परस्पर एक-दूसरे का अभिवादन करते हैं—उषा-स्वस्ति। वे Good Morning न बोलकर संस्कृत का अभिवादन उषा स्वस्ति ही कहते हैं। दिन को परस्पर मिलने पर दिवा स्वस्ति, संध्या को भेंट होने पर सांध्य स्वस्ति और रात्रि को अंतिम अभिवादन निशा स्वस्ति कहते हैं। मैं आज की पावन संध्या में आप सबको सांध्य स्वस्ति कहकर अभिवादन करता हूँ और सभा की समाप्ति पर आपको निशा-स्वस्ति कहकर आपसे विदा लूंगा।

हैलो बनाम हरि बोल—अमरीका में मैंने हरेकृष्ण आंदोलन (इस्कान) के बोस्टन केन्द्र में दूरभाष से संपर्क किया। मैंने संबोधन में ज्यों ही हैलो कहा तो उधर से उत्तर आया—'हरि बोल'। तीनों बार हैलो कहने पर उत्तर में हरि बोल की ध्वनि

ही आई। हैलो कहने वाला मैं भारतीय हिन्दू था और हरि बोल उत्तर देने वाला एक अमरीकन नवयुवक मि. चार्ल्स ब्राउन था, जो 1963 में बोस्टन यूनिवर्सिटी में मेरे से भारतीय दर्शन पढ़ता था और अब हरेकृष्ण आंदोलन में एक हिन्दू साधु जनार्दन दास बन गया था। उसने अपने अंग्रेजीनुमा हिन्दी उच्चारण में दूरभाष पर ही एक दोहा गाया—

श्वास श्वास में हरि जपो वृथा श्वास मत खोय,
ना जाने यहि श्वास को, आवन होय न होय।

इसलिये हैलो के शौकीन आप सब दूरभाष संचालकों, पर्यवेक्षकों एवं उपभोक्ताओं को मैं प्रेमपूर्वक 'हरिबोल' कहता हूँ।

भाव प्रकाशन का माध्यम भाषा—यदि मनुष्य के पास भाषा न होती तो वह अपना भाव प्रकाश कभी नहीं कर पाता। भाषा मूलतः भाषण की वस्तु है लेखन की नहीं। चारों वेद श्रुति मात्र थे जो सुने गये और सुनाये गये। वाल्मीकि रामायण भी वाल्मीकि ने लव-कुश को सुनाई और उन्होंने राम दरबार में सुनाई। सबसे प्रथम ग्रंथ जो लिखा गया वह है महाभारत जो वेदव्यास ने लिखाया और लिपिविद्या के आविष्कारक गणेशजी ने लिखा। इस प्रकार लिपिविद्या बहुत बाद में विकसित हुई। वैसे तो गूंगे भी कुछ मात्रा में भाव-प्रकाशन कर सकते हैं किन्तु केवल मूक-सांकेतिक भाषा में वे जीवन की अत्यावश्यक बातों एवं समस्याओं का कुछ संकेत मात्र कर सकते हैं। साहित्य के ललित भाव एवं दर्शन के सूक्ष्म तत्त्व वे मूक संकेतों द्वारा प्रकट नहीं कर सकते।

भाषा एवं दूरभाष—भाषण द्वारा हम आमने-सामने वाले व्यक्ति के प्रति भाव प्रकाशन कर सकते हैं। दूर बैठे व्यक्तियों से संपर्क तो दूरभाष द्वारा ही हो सकता है। प्राचीनकाल के ऋषि-मुनि एवं योगी अध्यात्मिक साधना द्वारा दूसरे के मन के भावों को जानने और दूर बैठे व्यक्ति से बातचीत करने में सफल होते थे। कुछ योगी एवं मनोवैज्ञानिक साधक आज भी इस सिद्धि को प्राप्त करते हैं। स्वयं मेरे अपने जीवन में कुछ ऐसे महापुरुष आये हैं जिनके संदेशों एवं संकेतों को मैंने हजारों मील की दूरी पर सही-सही प्राप्त किया। परामनोविज्ञान द्वारा सूक्ष्म शरीर और उसकी इन्द्रियातीत अनुभूति पर नये-नये वैज्ञानिक प्रयोग चल रहे हैं। इसे क्लेरोवायेंस, टेलिपैथी, मेंटल वायरलेस आदि नामों से पहचाना जाता है। क्योंकि यह सिद्धि सर्वजन सुलभ नहीं है, साधना एवं तपस्या साध्य है इसलिये अमरीका के वैज्ञानिक एलेक्जोडा ग्राहम वैल ने 1892 में दूरभाष के यंत्र का आविष्कार किया तथा न्यूयार्क से शिकागो तक 1000 मील दूर दूरभाष पर बातचीत करने में सफलता प्राप्त की।

प्राचीन भारतीय परंपरा—प्राचीन काल से भारत के बच्चे दो डिब्बों को धागे से जोड़कर घरेलू दूरभाष द्वारा सूत्र-संचार के खेल-खेलते रहते थे। योग्य वैद्य नाड़ी-परीक्षा एवं हृदय स्पन्दन-परीक्षा के द्वारा शरीर के अंदर के रोगों एवं विकारों को साफ-साफ जान लेते थे। मनुष्य के गले की कण्ठी पर बाहर से हाथ अथवा स्टैथोस्कोप जैसा यंत्र रखकर उसके बिना प्रकट बोले ही उसकी मन ही मन में बोली गई फुसफुसाहट को सुन लेते थे।

वर्तमान दूरभाष की त्रुटि ये है कि दुःख अथवा सुख का कोई भी गोपनीय समाचार गोपनीय नहीं रह सकता क्योंकि बोलने वाले के निकट खड़े लोग सब सुन लेते हैं। सैनिक अधिकारियों की रणभूमि की आवश्यकता यह होती है कि गोपनीय आदेश केवल वही व्यक्ति सुन सके जिसके लिये संदेश भेजा जा रहा है।

समय की बचत जीवन की बचत—जीवन कालखण्ड से ही निर्मित है। समय की बचत जीवन की बचत है और समय का नाश जीवन का नाश है। दूरभाष द्वारा तुरंत संवाद प्रेषण के फलस्वरूप समयशक्ति, धन की बचत, शीघ्र कार्य निष्पादन, व्यापार वृद्धि समाचारों का सद्य प्रकाशन, प्रशासन में चुस्ती, लोकसंपर्क, व्यक्तिगत जीवन एवं लोक व्यवहार में दक्षता आदि अनेक लाभ प्राप्त होते हैं। जो दूरभाष पहले सामाजिक प्रतिष्ठा की वस्तु माना जाता था वह आज सफल जीवन का अनिवार्य साधन बन गया है। वह आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति के युग में अनिवार्य कड़ी है।

दूरभाष के अभाव में समस्याएं—रामायण काल में राजा दशरथ के स्वर्गवास का समाचार अयोध्या से कैकयदेश में भरतजी के पास विशेष दूत द्वारा भेजना पड़ा। भरत के आने तक राजा दशरथ के शव को तेल में डुबोकर रखना पड़ा। काश! उस समय अयोध्या और कैकयदेश के बीच ट्रंककॉल की सुविधा होती। आज के युग में देश अथवा विदेश में कोई विशेष घटना घटती है तो समाचार दूर संचार माध्यम द्वारा संसार के कोने-कोने में पहुँचाया जा सकता है। यह बड़े विस्मय की बात है कि आज से 1950 वर्ष पूर्व हजरत ईसा मसीह के क्रॉस पर मरने का समाचार फलस्तीन में नियुक्त रोमन गवर्नर पाइलेट ने रोम के तत्कालीन सम्राट थेबियस सीजर तक को नहीं भेजा, जिससे इस रोमांचकारी घटना का कोई उल्लेख रोमन साम्राज्य के प्राचीन सरकारी अभिलेखों में बिल्कुल नहीं मिलता। व्यक्तिगत दूत को यह समाचार फिलिस्तीन से रोम तक पहुँचाने में स्थल मार्ग अथवा जल मार्ग द्वारा कम से कम एक मास समय लग जाता। तथा गवर्नर पाइलेट ने इस घटना को इतना

महत्त्वपूर्ण नहीं समझा कि इस सूचना मात्र पर इतनी शक्ति, समय एवं धन बरबाद किया जाये। इसी से कुछ इतिहासकारों ने ईसा के वास्तविक अस्तित्व में संदेह उत्पन्न कर दिया है। इससे स्पष्ट होता है कि दूरभाष एवं दूरसंचार का इतिहास संरक्षण के कार्य में भी कितना महत्त्व है।

मुझे लगता है पाश्चात्य विज्ञान को जीवित रखने के लिये पूरब से कुछ रक्त संचार की आवश्यकता है क्योंकि पश्चिमी विज्ञान आध्यात्मिकता की कमी के रोग से ग्रस्त है।

—एडविन श्रोडिंजर

अन्यत्र नोबेल पुरस्कार विजेता परमाणु वैज्ञानिक श्रोडिंजर छांदोग्य उपनिषद् (छठा अध्याय) को उद्धरित करते हैं जिसके अनुसार 'आप वह असीम आत्मा हैं।' 'तत्त्वमसि'। उसी प्रकार प्रोफेसर J.B.S. हाल्डेन, एक नास्तिक ब्रिटिश माइक्रोबायोलोजिस्ट जब जर्मनी में अपने मित्र की माइक्रोबायोलॉजी की प्रयोगशाला में गये वहाँ पर भी उन्होंने वही उपनिषद् संदेश—'तत्त्वमसि' को लिखा हुआ देखा। उन्होंने कहा, यदि कोई भी यह सत्य आत्मसात् कर ले तो वह संसार का सबसे सुखी व्यक्ति होगा।

मनुष्य के सूक्ष्म शरीर पर नवीनतम अन्वेषण

मनुष्य की प्रकट चेतना के परे जो सूक्ष्म, विराट और गहन अवचेतना क्षेत्र वर्तमान है वह अगम, अगाध, आश्चर्यजनक और रहस्यमयी शक्तियों का सागर है। मनुष्य का वास्तविक व्यक्तित्व इन्हीं निगूढ शक्तियों पर आधारित है। उसका वह अतिचेतन तथा अवचेतन व्यक्तित्व जाग्रत तथा सुषुप्त जीवित तथा मृत अवस्थाओं में भी नाना छायात्मक रूपों में अपने को व्यक्त करने में समर्थ है। सन् 1886 में मनुष्य की अतिचेतना से संबंधित इन घटनाओं की सत्यता की खोज के लिये 33 विद्वानों की एक समिति निर्मित की गयी। इस समिति ने अपनी खोज द्वारा कई आश्चर्यजनक तथ्यों का पता लगाया। सर विलियम कुक ने भी इस विषय में भारी खोज की। वह मानसिक शक्ति के प्रभाव से अपनी पत्नी को सामने कुर्सी पर बिठाकर उसी के आकार की एक अन्य आकृति को उत्पन्न कर सकते थे। सर विलियम कुक ने उस प्राणधारी प्रतिमा को छुआ तथा उसका फोटो लिया। उन्हें इस बात पर अत्यन्त अचम्भा हुआ कि उस आकृति के शरीर का तापमान भी था तथा नाड़ी भी चलती थी। जब सर विलियम कुक ने यह घटना समाचार-पत्रों में प्रकाशित करायी तो उन्हें मूर्ख कहा गया। कालांतर के पश्चात् विश्व ने उनको एक महान वैज्ञानिक के रूप में पहचाना। एक अन्य वैज्ञानिक विलियम बैरट ने भी इसी विषय में विशेष ख्याति प्राप्त की।

जनसाधारण की धारणा है कि भूत या प्रेत केवल मृतक का ही हो सकता है। किन्तु प्रेतात्मिक अन्वेषण से जीवित प्राणी का भी 'भूत' होना सिद्ध हुआ है। किसी जीवित व्यक्ति की प्रेतात्मा को प्रकट करके उसके सामने खड़ा किया जा सकता है। प्रेतात्मवादी विद्वान इस बात में सफल हुए हैं कि एक मेज के इर्द-गिर्द बैठे हुए आठ व्यक्तियों की मण्डली में से ही एक नवां व्यक्ति पैदा कर दें। वह पूरा-पूरा जीवित व्यक्ति दिखायी देता है। वह कुर्सी पर बैठता है आपसे हाथ मिलाता है तथा आपके साथ बैठकर चाय का कप पी सकता है। किन्तु ऐसा भूत अधिक देर तक नहीं ठहर सकता। ये सब वैज्ञानिक तथ्य हैं जो प्रत्यक्ष प्रयोगों द्वारा प्रमाणित हो चुके हैं? हम प्रायः कहते हैं कि 'भूत कहाँ है? भूत तो मनुष्य के मन के भीतर से निकलता है।' यह बात अंशतः सत्य है। प्रेतात्मवादियों का भी यही मत है कि भूत

में आत्मा तो है किन्तु शरीर तत्त्व अथवा पदार्थ नहीं है। यदि वह आपके शरीर का कुछ पदार्थ ले ले तो आप भूत से डरने लगेंगे। यदि आप मानसिक बल से डटे रहें तो भूत आपके शरीर से पदार्थ न ले सकेगा, न साकार ही बन सकेगा। अतः आपके लिये कोई भूत न होगा। भूत उसी को दिखायी देता है जो मन का शिथिल है तथा भूत को अपने शरीर के पदार्थ का कुछ अंश ले लेने देता है। जब अपने मानसिक बल द्वारा आप किसी भूत को मेज पर बैठे आठों व्यक्तियों के शरीर का कुछ सूक्ष्म पदार्थ दे दें तो उन आठों को साक्षात भूत दिखायी देने लगेगा।

सूक्ष्म व्यक्तित्त्व

एक नवयुवक ने अपना फोटो उतरवाया तथा फोटोग्राफर को कहा कि मुझे सोमवार प्रातः आठ बजे निश्चित रूप से फोटो तैयार मिले। फोटोग्राफर ने निश्चित तिथि पर देने का वचन दिया। 4 दिन पश्चात् जब सोमवार प्रातः 8 बजे का समय हुआ तो वह युवक फोटोग्राफ़र की दूकान पर पहुँच गया। उसकी भुजा झुला कर कहने लगा : मेरा फोटो लाओ, मुझे जल्दी जाना है। फोटोग्राफर ने उत्तर दिया : तनिक ठहरिए, मेरा नौकर घर से चाबियाँ लेने गया है। दो-एक मिनट में आता होगा। अभी दूकान खोल कर देता हूँ। नवयुवक ने पुनः आवेश में कहा : 'मेरा फोटो लाओ, मुझे जल्दी जाना है।' इतना कहकर नवयुवक कहीं लुप्त हो गया। फोटोग्राफ़र ने तनिक पीछे मुड़कर देखा तो युवक नहीं था। उसने समझा कि एकदम से कहीं चला गया होगा। थोड़ी देर में फोटोग्राफर फोटो लेकर युवक के घर देने के लिये गया। किन्तु उसे यह जानकर महान् शोक और विस्मय हुआ कि नवयुवक घर में मरा पड़ा है और साथी लोग रोना-धोना कर रहे हैं। वह बालक के पिता से मिला तथा उन्हें सारी बात सुनायी। उसने कहा : 'तुम झूठ बोलते हो, वह बहुत सख्त बीमार था और आज प्रातः 8 बजे तो वह ऊर्ध्वश्वास ले रहा था। वह तुम्हारी दूकान पर कैसे जा सकता है। उसे दो बार मूर्च्छा आयी तथा उसके चारों ओर डॉक्टर खड़े थे। 8 बजकर 10 मिनट पर उसकी मृत्यु हो गयी।

फोटोग्राफर ने पुनः कहा : 'श्रीमानजी, आप मानें अथवा न मानें मैं ईश्वर को साक्षी मान कर कहता हूँ कि यह नवयुवक आज प्रातः पूरे आठ बजे मेरी दूकान पर आया, उसने मेरे कंधों पर हाथ रखा तथा मेरी भुजा झुलाकर दो बार कहा : 'मेरा फोटो लाओ, मुझे जल्दी जाना है।' अब लड़के का पिता तथा फोटोग्राफर दोनों बड़े विस्मय में डूब गये। वास्तव में सत्य यह था कि वह नवयुवक अकस्मात् मृत्यु के मुंह में जाने वाला था। अतः मरने से पूर्व वह अपनी एक अधूरी आकांक्षा पूरी करना चाहता था। इसीलिये उसका सूक्ष्म शरीर उसी का रूप धारण कर फोटोग्राफ़र के पास पहुँच गया था। घर में पड़ा हुआ उसका शरीर इसी कारण दो बार मूर्च्छित हो गया था।

भुतहा मकान

एक स्त्री अपने पति को सदा नया मकान ढूंढ़ने के लिये तंग किया करती थी। एक दिन पति बेचारा हारकर पड़ोस वाले गांव में मकान ढूंढ़ने गया। गांववालों ने कहा कि 'यहाँ कोई मकान खाली नहीं है। केवल एक खाली है किन्तु इसमें रात को एक चुड़ैल अथवा भूतनी आया करती है। आपकी इच्छा हो तो यही ले लो।' पति बेचारा इतना तंग आया हुआ था कि उसने उसे ही स्वीकार किया। जब वह अपनी पत्नी को संग लेकर उस गांव में पहुँचा तो साथी लोग उंगली उठाकर कहने लगे : अरे, यही वह स्त्री है जो इस मकान में डायन बनकर आया करती है। प्रत्येक ग्रामीण ने बार-बार यही कहा। वास्तव में वह स्त्री नया मकान लेने की इतनी अधिक इच्छुक थी कि उसका सूक्ष्म शरीर भूत बनकर वहाँ पहुँच जाया करता था!

इसी प्रकार से एक व्यक्ति ने किसी स्थान पर रात्रि के 12 बजे जाने का कार्यक्रम निश्चित किया था। वह लगभग 9 बजे उस कार्यक्रम में पहुँचने का दृढ़ संकल्प करके चारपाई पर सो गया तथा नौकर को ढ़ाई घंटे पश्चात् उठाने का निर्देश दे दिया। किन्तु वह नौकर भी सो गया तथा स्वामी को ठीक समय पर न उठा सका। किन्तु संकल्प शक्ति के प्रभाव से उस व्यक्ति की साकार प्रतिमा सूक्ष्म शरीर में उस बैठक में पहुँची हुई थी। उसने सब विषयों में अपना मत दिया तथा अन्य सदस्यों से वाद-विवाद भी किया। जब वह प्रातः उठा तो ऐसा अनुभव हुआ कि रात को स्वप्न में उसने वह बैठक होते देखी है। किन्तु अन्य सदस्यों से बातचीत करने पर उसे ज्ञात हुआ कि वह किसी विचित्र रूप से रात की बैठक में पहुँचा हुआ था। इस प्रक्रिया को सूक्ष्म-व्यक्तित्व-निक्षेप कहते हैं।

अचेष्टित उच्चारण तथा लेखन एक ऐसी क्रिया है जो मानवीय अवचेतना की देश कालातीत ज्ञान-शक्ति को प्रमाणित करती है। कुछ व्यक्ति किसी विशिष्ट मानसिक अवस्था में बिना किसी सचेत प्रयत्न के कुछ ऐसी बातें बोलने या लिखने लग जाते हैं जिसकी कोई अनुभूति स्वयं उन्हें नहीं होती। इस प्रकार की वाणी या लेख बड़े-बड़े ज्योतिषियों की भविष्यवाणियों से भी बढ़कर सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार से कोई व्यक्ति अपनी संकल्प शक्ति के द्वारा किसी दूरस्थ स्थान पर शारीरिक रूप से उपस्थित हुए बिना भी कोई कार्य कर सकता है।

मृत पत्नी का फोटो

पाश्चात्य देशों में आत्मिक अन्वेषण इतनी प्रगति कर चुका है कि जिन बातों को हम केवल मन का वहम तथा निराधार मानते थे वही आज सत्य सिद्ध हो रही हैं। यदि इस देश में आत्मिक चमत्कारों से संबंधित तथ्य बटोरे जायें तो कई बड़े-बड़े पोथे तैयार हो सकते हैं। अभी हाल ही की घटना है कि जगन्नाथपुरी में एक

व्यक्ति ने दूसरा विवाह किया तथा अपनी नयी पत्नी के संग एक फोटो खिंचवाया। किन्तु महान् आश्चर्य की बात है कि चित्र में उन दोनों के बीच उसकी पुरानी पत्नी बिल्कुल स्पष्ट खड़ी हुई दिखायी दी। वास्तव में पुरानी पत्नी का चित्र नयी पत्नी से भी अधिक साफ था।

संसार में सभी सूक्ष्म वस्तुएं प्रायः अदृश्य होती हैं। किन्तु उनका प्रभाव दृश्यमान स्थूल वस्तुओं से भी अधिक होता है। कई लोग स्वप्न में चलते रहते हैं। यद्यपि उनकी शारीरिक आंखें बन्द होती हैं। किन्तु उनकी सूक्ष्म चेतना संबंधी आंखें खुली रहती हैं। अतः वे एक लम्बा रास्ता चल जाते हैं किन्तु कुएं अथवा गड्ढ ों में नहीं गिरते। उनका सूक्ष्म व्यक्तित्व उनका पथ-प्रदर्शन करता रहता है।

पिछले कुछ दिनों की बात है कि रांची में रहने वाली एक यूरोपीयन नारी बीमार पड़ गयी। सब डाक्टरों ने निराशापूर्ण उत्तर दिया। अंत में एक अंग्रेज योगी ने समाधि लगाकर उसका रोग खोजा तथा उसे स्वस्थ कर दिया।

ये हैं सहस्रों तथ्यों में से कुछ तथ्य जो मनुष्य की आत्मिक तथा सूक्ष्मचेतना संबंधी शक्ति की रहस्यमयता की ओर हमारा ध्यान खींचते हैं।

काल्पनिक छाया का शरीरीकरण

आजकल एक अन्य प्रकिया 'मैटीरियेलिजेशन' (शरीरीकरण) पर अनेक प्रयोग किये जा रहे हैं। शून्य में से ही कुछ मानव प्रतिमा उत्पन्न की जा सकती है। जो एक प्राणधारी जीव के समान व्यवहार करती है। यह प्रतिमा सिगरेट अथवा चाय तक पीने लगती है और सब प्रकार से जीवित मनुष्य का सा आचरण करती है। इस अलौकिक चमत्कार का मूल यह है कि मानवीय अवचेतना की कल्पना से आकार पायी हुई वह छायामूर्ति उपस्थित व्यक्तियों के सजीव तत्त्व ग्रहण करके साकार हो जाती है। इस पदार्थ तत्त्व को एक्टोप्लाज्म कहते हैं। इस प्रकार की शरीरधारी आत्मा से बहुत महत्त्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त हुई हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि मनुष्य के मरण के पश्चात् भी कुछ वस्तु जीवित रहती है यह मनोवैज्ञानिकों की भाषा में मनुष्य का व्यक्तित्व है तथा अध्यात्मवादियों तथा योगियों की भाषा में आत्मा है।

रविवार 7 जनवरी 1951

धर्मयुग वर्ष 2, अंक-1 में प्रकाशित

चिन्ता के कारण

हरेक चीज की तरह चिन्ता के भी कुछ कारण होते हैं। इन कारणों को दो मुख्य भागों में बांटा जा सकता है। (अ) बाह्य कारण—जोकि मनुष्य के बाहरी भौतिक हालात से उत्पन्न होते हैं।

(ब) व्यक्तिगत कारण या मानसिक हालात—जिनकी जड़ें मनुष्य के मस्तिष्क में होती हैं।

(अ) बाह्य कारण

(1) जीवन के बोझ और समस्याएं—आम तौर से चिन्ताओं की शुरुआत जीवन की समस्याओं और बोझ के कारण होती है। चिन्ता और समस्याओं के बीच सम्बन्ध इतना घनिष्ठ है कि चिन्ता शब्द जीवन की समस्याओं और बोझ का पर्यायवाची हो गया। मनुष्य में सोचने की क्षमता और बुद्धिमत्ता दी गई है जिससे कि वह परिस्थिति का सामना कर सके व नई समस्याओं का सामना कर सके. परन्तु जब समस्या जटिल होती है और व्यक्ति या तो मानसिक रूप से कमजोर या भावनात्मक रूप से अस्थिर होता है तो वह उनके प्रति चिन्तित हो जाता है। यह चिन्ताएं ज्योंही अनुचित और बेवजह होती हैं, त्योंही ये आ जाने वाली चिन्ता का रूप ले लेती हैं। आधुनिक जीवन निरन्तर मनुष्य के दिमाग पर दबाव उत्पन्न करता है। ये बोझ और चिन्ताएं उदाहरणार्थ परिवार के लिए रोटी कमाना, रोज़गार प्राप्त करना, बेटी, का विवाह, बीमारी का भय, जीवन को खतरे का भय आदि व्यक्ति को चिन्ताएं प्रदान करती हैं।

(2) सामाजिक सम्बन्धों की असफलता—मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। जब उसका सामाजिक सम्बन्ध असफल हो जाता है तो वह चिन्तित हो उठता है। सामाजिक रिश्तों के लिए परिवार पहला और सबसे गहन प्रशिक्षण क्षेत्र है। विवाह एक प्राथमिक सामाजिक सम्बन्ध है। इस प्रकार व्यावहारिक संबंधों में चिन्ता का एक स्वाभाविक कारण है। जान केनेडी के अनुसार चूंकि एक स्त्री का केवल मात्र भविष्य विवाह है, अतः इसी में वैवाहिक सम्बन्धों का विनाश एक पुरुष की तुलना में स्त्री के लिए अधिक चिन्ता का कारण है। पुरुष अधिक चिन्तित होता है जब वह

रोजगार खो देता है या व्यापार में असफल हो जाता है या लोगों के सामने बेइज्जत होता है।

(क) वासना की समस्या—फ्रॉयड के अनुसार चिन्ता का मुख्य कारण वासना की भूख है। यद्यपि फ्रॉयड इसमें पूर्णतया सही नहीं हो सकता, जब वह अत्यधिक ध्यान वासना पर केन्द्रित करता है और तब यह कहा जा सकता है कि वासना की कुण्ठा चिन्ता का मुख्य कारण है। मानसिक रूप से कुंवारे, नपुंसक, पति-पत्नी, निराश प्रेमी और सन्तानहीन माता-पिता हरेक की अपनी चिन्ता होती है।

(ख) इसी प्रकार सामाजिक रिश्ते और मित्रता में असफलता भी चिन्ता का कारण है।

(3) गिरता स्वास्थ्य—कुछ व्यक्ति गिरते स्वास्थ्य के कारण चिन्तित हो उठते हैं। परन्तु अधिकतर लोगों का स्वास्थ्य चिन्ताओं के कारण गिर जाता है। इस प्रकार कमजोर स्वास्थ्य चिन्ता के कारण की तुलना में उसका प्रभाव अधिक है। जो लोग एक मामूली तकलीफ में चिन्तित होना शुरू कर देते हैं वे चिन्ता के कारण सर्वप्रथम शारीरिक अक्षम हो जाते हैं। कुछ लोगों का परम ध्यान स्वच्छता और स्वास्थ्य सम्बन्धी बचाव पर पागलपन की हद तक केन्द्रित रहता है। वे हर वक्त छूत की बीमारी के भय में, गन्दगी के कीटाणुओं से, गन्दे लोग और लगभग हर वस्तु से भयभीत रहते हैं कि इसके कारण कहीं बीमारी नहीं हो जाए। इस प्रकार का अत्यधिक भय चिन्ताओं के लिए खुला निमन्त्रण है।

(4) असफलता—असफलता की बात हजारों स्त्री-पुरुषों पर मंडराती रहती है। भय से संदेह उत्पन्न होता है और संदेह साहस को दबा देता है और किसी नए कार्य की शुरुआत को लकवाग्रस्त कर देता है। अधिकांश जवान पुरुष-औरतें अपने आप को चिन्ता की नारकीय अग्नि में जलाते रहते हैं क्योंकि उन्हें असफलता का भय है और बहुत से असफल लोग अपने जीवन का अन्त आत्महत्या से कर लेते हैं।

(5) अभाव (इच्छाएं)—हर एक व्यक्ति में कुछ अभाव होता है, परन्तु अगर एक व्यक्ति में अभाव की भावना में वृद्धि होती है या उन इच्छाओं के सन्तुष्टीकरण में कमी होती है तो निश्चित वह चिन्तित होगा। वस्तुनिष्ठ कारण कहा जाए कि जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की कमी चिन्ताओं का एक कारण है। परन्तु किसी वस्तु की भूख का व्यक्तिगत दृष्टिकोण चिन्ता का ज्यादा भयानक कारण है। बजाए इसके केवल मात्र आवश्यकता। टैगोर कहते हैं कि—'चाह एक गहरी खाई के मुंह के समान है, वह एक लालच का ऐसा आक्रामक बल और चाह का अन्दरूनी भाव है जोकि मानसिक शान्ति के लिए ज्यादा खतरनाक है बनिस्बत इसकी कामनाएं।'

हमारा जीवित समाज जिसे हर कदम पर नृत्य करना चाहिए, हर वाणी में संगीत हो, हर अंग सुन्दर हो, जिसकी तुलना तारों और फूलों से हो, जो अपना सामंजस्य ईश्वर की सृष्टि से करले वह एक अनन्त लालच के शिकन्जे से बच जाता है। पर हम सामान्यतः ऐसा नहीं कर पाते जिसके परिणाम स्वरूप हम एक अनन्त लालच के शिकन्जे में कस जाते हैं। जैसे एक अत्यधिक भार से चरमराती झटके खाती बैलगाड़ी हो, जो उस सड़क पर ले जाती है जहाँ पदार्थों की प्राप्ति के बाद कुछ भी नहीं है, जो जीवन की हरियाली रूपी जमीन पर पहिए के बदसूरत गड्ढे बनाती चलती है, एक किनारे लग कर अपने गंवारपन के बोझ से टूट कर गिर जाती है और कहीं नहीं पहुँच पाती है। शोपेनहॉवर ने सही टिप्पणी की है, 'हम शायद ही कभी सोचते हैं कि हमारे पास क्या-क्या है, परन्तु हमेशा यही सोचते हैं कि हमारे पास क्या कमी है। यही इस पृथ्वी पर सबसे बड़ी त्रासदी है। शायद इसी के कारण मानवता को सबसे ज्यादा तकलीफ उठानी पड़ी जितनी कि मानव-इतिहास में युद्धों और बीमारियों से नहीं मिली।' एक मनुष्य की आकांक्षाओं का दूसरे से टकराव सामाजिक असामंजस्य उत्पन्न करता है और एक ही व्यक्ति के अन्दर इच्छाओं का संघर्ष उसे मानसिक असामंजस्य की ओर ले जाता है। विस्तृत छाई हुई चाह के चेहरे पर कुण्ठा बड़े-बड़े अक्षरों में लिखी होती है क्योंकि वह व्यक्ति की क्षमता से बाहर होती है।

(6) आजीविका की समस्या तथा अन्य आर्थिक समस्या—ईसा ने कहा था 'मनुष्य मात्र रोटी के लिए नहीं जीता।' परन्तु दुर्भाग्य वश औसत व्यक्ति रोटी के लिए ही ज्यादा चिन्तित है बजाए जिसस क्राइस्ट के। कल की रोटी कहाँ से उपलब्ध हो, यही मनुष्य की प्रमुख समस्या रही है और प्रमुख चिन्ता रही है।

(क) आर्थिक पतन—दुर्भाग्यवश मनुष्य ने अपने आपका धन सम्पत्ति से इतना तादात्म्य कर लिया है कि धन की हानि को वह जीवन की हानि मान लेता है। अगर व्यापार में असफल हो या नौकरी चली जाए या धन का अपहरण हो जाए या बैंक दिवालिया हो जाए तो एक अल्प दृष्टि के व्यक्ति का हृदय भारी हो कर पैर ठण्डे पड़ जाते हैं। धन की कमी आज की एक प्रमुख कठिनाई हो गई है, नतीजतन औसतन व्यक्ति एक विशिष्ट चिन्तायुक्त व्यक्ति हो गया है।

(ख) मालिक द्वारा प्रताड़ना—एक अनुचित और अत्यधिक कठोर मालिक अपने अधीनस्थ के लिए चिन्ता का कारण हो जाता है क्योंकि वह अनचाही प्रताड़ना देता है। समय-समय पर उसका कड़वाहट भरा व्यवहार अधीनस्थ कर्मचारी को भयभीत कर देता है। वह एक दौड़ते हुए घोड़े पर चाबुक चलाता है, इस प्रकार अधीनस्थ का जीवन तकलीफदेह बना देता है। कुछ लोग हर वक्त चिन्तित रहते हैं कि कहीं ऐसा न हो कि उनका मालिक उनसे नाखुश हो जाए।

उनके लिए आजीविका कमाना मौत की सजा के हुक्मनामे से ज्यादा खराब होता है।

(7) व्यापारिक समस्याओं की छाया घर के वातावरण पर—यह न केवल मूर्खतापूर्ण बल्कि मारक भी है कि व्यक्ति अपने आफिस या व्यापार की समस्या लेकर घर जाए। व्यापार की समस्याओं को दूकान या फैक्ट्री को बंद करने के साथ ही बंद कर देना चाहिए। कार्यालय की समस्या को आफिस की फाइल ताले में बंद करने के साथ बंद कर देना चाहिए। व्यक्ति को अपने घर हलके दिमाग के साथ तमाम व्यापारिक चिन्ताओं से मुक्त होकर आना चाहिए वरना चिन्ता का शिकारी कुत्ता उसका विश्राम के समय भी पीछा करता रहेगा।

(8) क्षमता से अधिक परिश्रम—निरन्तर कार्य के लिए दिमाग की ऊर्जा सीमित होती है, इसलिए कार्य और विश्राम का जीवन में बराबर विभाजन होना चाहिए। मनोवैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि सीमित मात्रा में सीखना अर्थात् सुविधाजनक विश्राम के अन्तराल के बाद सीखना। इससे ज्यादा समय व ऊर्जा की बचत होती है, बजाए बिना विश्राम के सीखने के। जब दिमाग को हम उसकी क्षमता के विरुद्ध काम में लगाए रखते हैं तो दिमागी मशीन अव्यवस्थित हो जाती है तथा मस्तिष्क में धुंधलापन छा जाता है और सहनशक्ति समाप्त हो जाती है तब मस्तिष्क अक्सर विद्रोह कर बैठता है। परन्तु आवश्यकता से भी अधिक परिश्रम से भी ज्यादा खतरनाक है आवश्यकता से अधिक हमारे स्नायुतंत्र का परिश्रम। जिसके कारण 'एन्जाइटी न्यूरोसिस' हो जाता है।

(9) कमजोर नस्ल—चिन्तित माता-पिता चिन्तित बच्चे उत्पन्न करते हैं। अगर माता-पिता आर्थिक, सामाजिक और पारिवारिक समस्याओं को बच्चों की उपस्थिति में अत्यधिक महत्त्व देते हैं तो वे अपरोक्ष रूप से चिन्तित सन्तानों को जन्म देते हैं। वे उनके युवा मस्तिष्क में अन्दर भय व चिन्ता के मारक बीज बो देते हैं। चिन्ता एक बाहर से उपलब्ध प्रयास है जो कि चिन्तित माता-पिता से प्राप्त होता है। कहावत है 'छोटे घड़ों के बड़े कान होते हैं' और इसी तरह छोटे बच्चों के कान बहुत तीक्ष्ण होते हैं, आंखें बहुत जिज्ञासु होती हैं, वे देखते हैं कि उनके बुजुर्ग क्या देखते और कहते हैं? इस प्रकार वे अपने आप उनसे व्यवहार का प्रशिक्षण प्राप्त कर लेते हैं।

(ब) व्यक्तिगत कारण—

(1) जटिल भय—'चिन्ता वेश बदले हुए रूप में भय है और भय का सामना आत्मविश्वास से करना चाहिए' (स्वामी शिवानन्द ने कहा है जो कि हिमालय के सर्वोच्च सन्त हैं)। स्वामी विवेकानन्द, विश्वविख्यात भारतीय साधु लिखते हैं—'या तो इस दुनिया में या धर्म की दुनिया में यह सत्य है कि भय एक निश्चित पतन

और पाप का कारण है। भय ही तकलीफें और दरिद्रता लाता है, भय मौत लाता है, भय ही बुराइयों को उत्पन्न करता है।'

भय तमाम दानवीय बुराइयों का जनक है। यह स्वयं द्वारा उत्पन्न दानव मनुष्य का प्रमुख शत्रु है। जब दिन के अन्दर भय हमारी आवश्यक बुराई बन जाता है तो यह रात्रि में हमारी मानसिक ऊर्जा और हमारी मानसिक शांति का भारी विनाश करता है, यह दिमाग को तनावग्रस्त, स्नायु रोग ग्रस्त और हमें पूर्णतया हिला डालता है, इन अन्तहीन चिन्ताओं के कारण। एक रोगी जिसे एक स्वस्थ कुत्ते ने काटा है परन्तु वह भयभीत है कि उसे एक पागल कुत्ते ने काटा है। चिन्ता के कारण वह व्यक्ति हाइड्रोफोबिया के लक्षण स्वयं विकसित कर लेता है और उस हताशा भरे दौर (फिट्स में) में वह अपने आप को गोली मार लेता है।

एक बच्चे को भय की अवस्था में रखना निश्चित रूप से एक अपराधी को जन्म देना है। बचपन का अविवेकशील भय बाद में जटिल भय के रूप में विकसित होता है। भय ज्यादा मनुष्यों को मारता है बनिस्बत बीमारी और युद्ध की तुलना में। एक महामारी के प्रकोप के समय उचित बीमारी से मरने की तुलना में उस बीमारी के भय से ज्यादा लोग मरते हैं।

जब एक व्यक्ति में भय विकसित हो जाता है तो वह हर वस्तु से भय खाने लगता है। यहाँ तक कि अपनी छाया से भी भयभीत हो जाता है। वह भयभीत होने से डरा-डरा रहता है।

(2) भावनात्मक बल का पथभ्रष्ट होना—भावना जीवन को अग्रसर करने का मुख्य बल है। यह मनुष्य जीवन के लिए उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि रेलवे इंजन के लिए भाप महत्त्वपूर्ण है। बिना भावनात्मक सहायता के कोई भी न तो मजबूती से जी सकता है न ताकतपूर्वक कार्य कर सकता है। साफ-साफ सोचना और गहराई से महसूस करना—ये जीवन में विजय के दो सिद्धांत हैं। परन्तु जब भावनात्मक बल का दुरुपयोग होता है या वह पथभ्रष्ट होता है तो वह अपने विरुद्ध कार्य करने लगता है न कि बाधाओं के विरुद्ध। क्रोध एक बहुत शक्तिशाली भाव है जिसका उपयोग हम शत्रु को समाप्त करने में लाभप्रद ढंग से कर सकते हैं। परन्तु यदि एक मनुष्य भावनात्मक रूप से अस्थिर है और अपने भय को काबू में रखने के बजाय स्वयं भय के काबू में हो जाता है तो उसका क्रोध किसी और को मारने की बजाय स्वयं उसी को मार डालता है। बेकाबू क्रोध एक भयानक हत्यारा है। व्यक्ति स्वयं को मार डालता है किसी और के बजाय। भावनात्मक बल का पथभ्रष्ट होना एक तोप के मुंह को स्वयं अपनी तरफ मोड़ने के समान है। भावनात्मक बोझ हमारे मस्तिष्क और हमारे शरीर, दोनों के लिए असहनीय है। एक मस्तिष्क जो अचानक भावना की रुकावट या सहज प्रवृत्ति के कुचले जाने की

वजह से तकलीफमय और परेशान होता है वह एक बॉयलर के समान विस्फोटक भाव जैसा होता है या एक बारूद के ढेर के समान होता है।

(3) अपराधबोध और अपराध के कारण मानसिक जटिलता—कमजोर दिमाग जिसमें एक स्वच्छ चारित्रिक दृष्टि की कमी होती है उसके अन्दर एक अजीब अपराध की भावना होती है यहाँ तक कि निर्दोष मामलों के सम्बन्ध में भी। वह उन पर भूत की तरह मंडराता रहता है और उन्हें चिन्तायुक्त पागलपन की ओर धकेल देता है। अपराधबोध तनाव, संघर्ष, असामंजस्य और स्नायुदुर्बलता उत्पन्न करता है। स्वामी रामतीर्थ के शब्दों में 'पाप का अर्थ है पथभ्रष्ट ऊर्जा।' वे लोग जो वास्तव में कुछ अपराध करते हैं उनके पैर निरन्तर कांपते रहते हैं और भय रहता है कि कहीं ऐसा न हो कि वे पुलिस द्वारा पकड़ लिए जाएं। परन्तु यहाँ कुछ ऐसे भी लोग हैं जो जटिल अपराधबोध से ग्रस्त हैं, बिना वास्तव में कोई अपराध किए। यह विरोधाभासी बात है जो अपराध के लिए मजबूर हैं उनकी भावनाएं अपराध के प्रति बहुत कम बोध महसूस करती है। वे सबसे अधिक दयनीय शिकार होते हैं चिन्तारूपी भेड़िये का।

(4) हीन भावना—बुजुर्गों द्वारा बच्चों में हीन भावना उत्पन्न करना एक जहर का इन्जेक्शन देने से भी ज्यादा जहरीला है। काटने वाली आलोचना करना, बार-बार गलतियाँ निकालना, निरन्तर उसे निरर्थक, भीरु, असफल जताना—यह तमाम चीजें जवान लोगों के मस्तिष्क में हीन भावना भरने का प्रयास है। ऐसा व्यक्ति अपने आपको हमेशा हीन मानता है और अक्सर चिन्तित रहता है कि वह सफल नहीं हो सकता। एक पौराणिक संस्कृत साहित्य के श्लोक के अनुसार 'जो व्यक्ति अपने आपको स्वयं धिक्कारता है और स्वयं से नफरत करता है उसे यश की उपलब्धि शायद ही हो सकती है।'

(5) उच्चता बोध ग्रस्त—उच्चता बोध के सम्बन्ध में और उसके स्वभाव के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों में मतभेद है, कुछ का यह मानना है कि यह मात्र हीन भावना को ढकने का लबादा है। यहाँ उच्चता बोध से हमारा अर्थ अपने आदर को बढ़ा-चढ़ा कर प्रदर्शित करना और जो कि ऐसे लोगों को चिन्ता युक्त कर डालता है। एक व्यक्ति जो उच्चता के बोध से ग्रस्त है वह अपने आप को अपनी वास्तविक स्थिति से ऊँचा मानता है। बनावटीपन जीवन की एक सबसे बड़ी कमजोरी है। यदि एक व्यक्ति अपने आप को ज्यादा धनी दिखाने का प्रयास करता है जितना कि वास्तव में वो नहीं है तो वह किसी और को धोखा न देकर स्वयं अपने आप को धोखा दे रहा है। हमारा झूठा घमण्ड और दिखावा हमें अधिक तकलीफ पाने को बाध्य करता है फिर भी हम इसे बाहरी दिखावे को बनाए रखते हैं। एक दिखावा करने वाला व्यक्ति वास्तव में लोग क्या सोचते हैं इससे भयभीत

रहता है और वह अपने बाहरी घमण्ड के दिखावे को बनाए रखने की बहुत बड़ी कीमत चुकाता है।

(6) परवाह न करने का दिखावा करना—व्यर्थ बनावटी दिखावे से व्यक्ति के अंदर एक बेपरवाही के दिखावे की त्रासदी उत्पन्न होती है। एक व्यक्ति वास्तव में किसी चीज के प्रति चिन्तित महसूस करता है परन्तु झूठे घमण्ड के दिखावे के कारण वह बहाना करता है कि उसे कोई लेना-देना नहीं है। यह केवल मात्र बाहरी मुखौटा है चिन्ता के एक राक्षसी चेहरे का। इससे अधिक एक चिन्ता के कीड़े की उत्पत्ति की जमीन है।

(7) खतरे की आशंका—अनजाने खतरे की आशंका का हर वक्त भय, एक ऐसे चिन्तित व्यक्ति को भविष्य के प्रति काल्पनिक आशंका का भय बनाए रखता है जो निश्चित नहीं होता। कोई सम्भावित हानि, असफलता या अनादर का भय एक व्यक्ति को हजार गुना ज्यादा तकलीफ देता है, बनिस्बत भविष्य में वास्तविक खतरे की तुलना में। भविष्य हो सकता है कि भूतकाल से ज्यादा अच्छा हो या वर्तमान से भी ज्यादा अच्छा हो परन्तु हमारी तकलीफ की आशंका इसे तकलीफदायी बना देती है। कुछ लोग वास्तव में अपंग हो जाते हैं मात्र इस कारण से कि वह छोटे से इलाज के लिए किसी शल्य चिकित्सक के पास नहीं जाते। जीवन के शुरुआत में क्योंकि वे तकलीफ से आशंकित हो जाते हैं। हम में से अधिकतर उस खतरे की आशंका के कारण भयानक तकलीफें भोगते हैं जो खतरा कभी भी घटित नहीं होता। निरन्तर अरुचिकर सम्भावनाओं का विचार करते रहने से हमारे जीवन की खुशियाँ ज्यादा नष्ट होती है।

(अ) मनन—तकलीफदायक अनुभवों का जो भूतकाल में घटित होती थीं या संभावित संकटों के बारे में या भविष्य के विनाश के बारे में निरन्तर मनन करना मनुष्य के विचारों की एक अत्यधिक दुर्भाग्यपूर्ण त्रासदी है। चिन्ताओं का कठफोड़वा एक मनन करने वाले के हृदय में निरन्तर ठक-ठक चोट मारता रहता है।

(8) निकम्मापन, अनिर्णय और हिचकिचाहट—आलस्य से मस्तिष्क उदासीन हो जाता है और मस्तिष्क को खाने वाले चिन्तारूपी कीड़ों को आमन्त्रित करता है, और जल्द ही पापरूपी मकड़ी एक निकम्मे जीवन में अपने जाल रूपी कक्ष का निर्माण शुरू कर देती है।

कमजोर इच्छाशक्ति वाले लोग जोकि अनिर्णय व हिचकिचाहट के कारण तकलीफ पाते हैं, वे आसानी से चिन्ता का शिकार हो जाते हैं। कर्मशील रहने में खुशी मिलती है, अनिर्णय से तकलीफ होती है और हिचकिचाहट के कारण चिन्ता की धारा घेरे रहती है। एक अस्थिर और अनिर्णयशील दिमाग लगातार चिन्ता के पागलपन की हद तक घूमता रहता है और जीवन को एक जीवित नरक बना देता है।

(9) आवश्यकता से अधिक ध्यान देना—उचित परवाह करना मानसिक स्वास्थ्य की निशानी है। लापरवाही एक दिमाग की कमजोरी की निशानी है। अत्यधिक ध्यान देना एक दिमागी बीमारी है। आवश्यकता से अधिक परवाह करना और अत्यधिक चिन्तित होना, बजाए इसके कि दिमाग सतर्क और सतर्क हो, दिमाग चिंता के कारण अपंग हो जाता है। एक माँ जो अपने बेटे के लिए अत्यधिक चिन्ता करती है वह सामान्यतया उसे जरूरत से ज्यादा मातृत्व देती है और उसे आत्मनिर्भर होने से वंचित करती है, इस प्रकार उसे चिन्ता रूपी भयानक भेड़िये का शिकार बना देती है।

(अ) अत्यधिक मानसिक जागरूकता—जागरूकता एक चारित्रिक अच्छा गुण है परन्तु अत्यधिक जागरूकता एक मानसिक बीमारी है, अत्यधिक जागरूकता या अत्यधिक चारित्रिक विचारशीलता, एक भय या अपराधबोध का नतीजा है, 'कहीं ऐसा न हो कि मुझसे कुछ गलत हो जाए', और इस कारण अत्यधिक चिन्ता होती है। हम एक अपूर्ण दुनिया में रहते हैं और हम आशा करें कि दूसरा व्यवहार कुशल होगा। और उसके किसी तुच्छ नियम को तोड़ने पर हम झल्लाएं या गुस्सा करें तो यह व्यक्ति स्वयं अपने लिए अनावश्यक सिरदर्द और चिन्ता आमन्त्रित करता है।

(10) सन्देह और अन्धविश्वास—'हमारे संदेह देशद्रोही हैं, अक्सर हम जो अच्छाई जीत सकते हैं उसे खो देते हैं, क्योंकि हम उनके प्रयास करने में भयभीत होते हैं।' (शेक्सपियर, साहित्यकार)

'हार सन्देह की जुड़वां बहिन है'—एक अन्य विचारक ने कहा है। वे दोनों एक साथ पाए जाते हैं। शक दरवाजे पर गलत का प्रश्नचिह्न लगाता है, उसका साथी हार (या पराजय) कदमों की आहट करता हुआ आता है।

सन्देह एक अत्यधिक कपटी दुश्मन है जो छुपकर घात लगाए रहता है, वह हमारी आशाओं को फाड़ डालता है, हमारी महत्त्वाकांक्षाओं को बीमार कर देता है और हर मोड़ पर हमारा रास्ता रोक देता है। चालाकीपूर्वक हमारे कान में फुस-फुसाता है, 'तुम सफल नहीं हो सकते।' सन्देह हर सम्बन्धों के लिए जहर है। बचपन की भूतों और भालुओं की कहानियाँ, चुड़ैलों और भूतनियों की कथाएं अतिसंवेदनशील मस्तिष्क में घुसा दी जाती हैं। बच्चों के शिशुकालीन खेलों में, जो उसके दिमाग में उपद्रव मचाती हैं और हर कदम पर एक विरोधी छाया के रूप में चलती हैं। लार्ड पॉलिंग ब्रांक के शब्दों में 'संदेह केवल मात्र जीवन का आधारहीन दुर्भाग्य है।' इमर्सन ने सही कहा है—'संदेहवृत्ति एक धीमी आत्महत्या है।'

(11) कल्पना के दोष—कल्पना का उपयोग एक काव्य के लिए उपहार है, जोकि कला के सृजन की ओर ले जाती है, परन्तु कल्पना का दुरुपयोग एक

मस्तिष्क का पाप है जो जीवन जीने की कला के लिए अभिशाप और मौत है। अधिकतर लोग पालने से कब्र तक अपनी यात्रा एक मण्डराते हुए भय को लिए हुए परेशान होते हुए पूरी करते हैं। जोकि मात्र एक कल्पना का दलदल है, और इतना ही अवास्तविक है जितना कि साबुन का बुलबुला है। 10 में से 9 मामलों में ऐसा भय है जो कभी घटित नहीं होता। 'हजारों तकलीफमय आत्माएं आज कल्पना के बन्धन की जंजीरों में जकड़ी हुई हैं।' डा. डब्ल्यु एल सेडलर ने कहा है, 'उन्हें कोई वास्तविक शारीरिक बीमारी नहीं होती है उनकी बीमारी वास्तव में केवल मानसिक अपंगता है।'

(अ) अनिश्चित भविष्य—कुछ लोग यह कल्पना करते रहते हैं कि उनका भविष्य अनिश्चित है, वे एक निरन्तर भय में जीते हैं कि कहीं ऐसा न हो कि रोजगार चला जाए, धन लूट लिया जाए या मकान जल जाए। स्वामी रामतीर्थ के अनुसार 'गलत निर्देशित कल्पना या विचार मनुष्य को बांधते हैं जबकि सही दिशा में निर्देशित उसे मुक्त करते हैं।'

(ब) दिन में सपने लेना—वर्डस्वर्थ के अनुसार 'जिसमें बल की कमी होती है वह वास्तविक रूप में काम करने की जगह दिवास्वप्न में खोया रहता है, वह काल्पनिक बीमारियाँ आविष्कृत कर लेता है और काल्पनिक खतरे खड़े कर चिन्ता करता है।

(12) भीरुता और निराशा—आत्मनिर्भरता की कमी, निराशा और हतोत्साह—ये चिन्ता के जीवन भर के साथी होते हैं। एक निराशावादी जो चीजों के नकारात्मक पक्ष को ही देखता है, उसे इस जीवन रूपी सड़क पर चिन्तारूपी अनगिनत कांटे चुभते रहते हैं। निराशावादियों के लिए जार्ज बर्नार्ड शॉ ने एक अच्छी चोट करने वाली बात कही है—'निराशावादी वह व्यक्ति है जो यह सोचता है कि हर कोई (उस जैसा ही) खराब व्यक्ति है इसके लिए वह उनसे घृणा करता है।'

एक हताश व्यक्ति ढेरों चिन्ताएं पाले रखता है जिसका नतीजा यह होता है कि उसका पोषण होने के बजाए वह क्षीण होता जाता है। हमें कभी नहीं भूलना चाहिए कि 'जिसका साहस खत्म हो जाता है उसकी नाव डूब जाती है अर्थात् डरा सो मरा।'

(अ) स्वयं पर दया—तमाम दया में सबसे अधिक दयनीय स्वयं पर दया करना है। दया दैवीय वस्तु हो सकती है किन्तु स्वयं पर दया आत्मघाती है। जो लोग अपने आप पर दया करते हैं, वे चाहे मुलायम गद्दों पर लेटे हों, वे अपने स्वयं के भाग्य पर दया करते रहते हैं। वे स्वयं विचारित जहर से तकलीफ पाते हैं और विनाशकारी मानसिक प्रक्रिया से यंत्रणा पाते हैं।

(13) मानसिक दबाव व तनाव—थोड़ा सा तनाव भी ऐसा है जैसे चुटकी भर जहर है। यह मनुष्य को तनाव ग्रस्त और चिन्तित रखता है। आधुनिक व्यक्ति के जीवन में बहुत सारा लोहा आग में तप रहा है जिसका मस्तिष्क घृणा, ईर्ष्या, स्वार्थ से विदीर्ण हो रहा है। वह ठीक एक काँच के मकान में दौड़ते पागल कुत्ते के समान है। उसके स्नायुतंत्र निरन्तर खिंचे रहते हैं, उसका मस्तिष्क तमाम चिन्ताओं से ग्रस्त रहता है। वह एक गुस्सैल दिमाग पाता है जिसे उसे काबू में रखना मुश्किल पाता है।

(अ) झल्लाहट (चिड़चिड़ापन)—अगर एक व्यक्ति मामूली बातों पर अक्सर झल्लाता है तो यह उसकी दिमागी कमजोरी का एक निश्चित चिह्न है। हालांकि चिन्ता भी झल्लाहट पैदा करती है, जबकि झल्लाहट खुद भी एक मानसिक वातावरण पैदा करती है जो चिन्ता के लिए बहुत उपयुक्त है।

(ब) जल्दबाजी लाती बर्बादी—जल्दबाजी के कारण चिंता उत्पन्न होती है, जल्दबाज लोग स्नायु दुर्बलता से त्रस्त, झल्लाहट भरे, क्रोधी और चिन्तित हो जाते हैं। मार्डन के अनुसार 'एक जल्दबाज दिमाग एक उलझन भरा दिमाग होता है और जो व्यक्ति अनिश्चित है वह गलतियों को ही टटोलता है, अपना प्रयास व्यर्थ में ही गंवाता है। जल्दबाजी चिन्ता की जुड़वां बहिन है।'

(14) आत्मकेंद्रिकता—एक व्यक्ति अत्यधिक अपने बारे में सोचता है, अपने स्वास्थ्य, अपनी निद्रा, अपनी खुराक या कोई और वस्तु के बारे में सोचता है जो उसे कही गई, की गई या न की गई है वह उसके लिए एक चिन्ता का स्रोत हो सकती है। वह निराशा भरे चिन्तित विचारों से घिरा तकलीफ पाता है और सोचता है कि हर कोई उसके विरुद्ध षड्यंत्र कर रहा है। एक अकेलेपन व आत्मकेंद्रित व्यक्ति एक ऐसा असामाजिक प्राणी होता है जो कि भययुक्त निराशा से भरे विचारों से घिरा रहता है और वह किसी भयानक बीमारी का रोग पाल लेता है जिसे हम 'सिजोफ्रेनिया' कहते हैं। (विचार, भावना व व्यवहार में असामंजस्य)

(15) कुंठा भरी नाराजगी में बड़बड़ाना—किसी गलत के प्रति शिकायत मानसिक जागरूकता का चिह्न है। परन्तु एक शिकायती और नाराज मानसिकता एक मानसिक विकृति को दर्शाता है। एक कमजोर एवं रोगी मस्तिष्क ज्यादा कुंठित होता है। नाराजगी व्यक्ति को उच्च तनाव में ले जाती है, उच्च रक्तचाप, हृदय रोगी बनाती है। अपने प्रति किए गए बुराई और दुर्भाग्य को बारम्बार दुहराने वाला व्यक्ति अपने अन्दर ज्यादा दुर्भाग्य, बुराई व चिन्ताओं के बीज बोता है। कुछ लोग बार-बार अन्य लोगों की अहसानफरामोशी की शिकायत करते हैं, और इस प्रकार

अपने स्वयं के लिए व्यर्थ का सिरदर्द व हृदय की तकलीफों को आमंत्रित करते हैं। उनका जीवन एक अन्तहीन जाल में उलझ जाता है जो कड़वाहट भरी शिकायतों, भयानक नाराजगी व स्वयं पर दया करती आहों से बना होता है।

(16) घृणा, ईर्ष्या व दुश्मनी—दुश्मनी, ईर्ष्या को उत्पन्न करने की जगह है, ईर्ष्यालु व्यक्ति निरन्तर हृदय की जलन और क्षय करने वाली चिन्ता की बीमारी का शिकार हो जाता है। डेल कार्नेगी ने टिप्पणी की है—'जब हम हमारे दुश्मन से घृणा करते हैं तो हम अपने दुश्मन को शक्ति प्रदान करते हैं और उसे हमारी नींद, भूख, रक्तचाप, स्वास्थ्य और हमारी खुशियों पर विजय पाने की शक्ति प्रदान कर देते हैं। हमारे दुश्मन खुशी से नाच उठेंगे यदि उन्हें यह मालूम हो जाए कि वे हमें चिन्तित कर रहे हैं, कि वे हमारे पर चिन्ता के कोड़े लगा रहे हैं, इस प्रकार वे हमसे बदला चुका रहे हैं।' हमारी घृणा उन्हें चोट नहीं पहुँचाती बल्कि हमारी घृणा उलट कर हमीं को नुकसान करती है और हमारे दिन और रातों में नारकीय उथल-पुथल मचा देती है।

दिमागी भटकाव इसकी-उसकी चिन्ता या दिमाग में तुच्छ चिन्ताओं के विचारों की भीड़ और ईर्ष्या आदि दिमागीय आदत ठीक वैसी है जैसे हमारी दिमागी भण्डार में से एक छिद्र की तरह है जहाँ से निरन्तर संचित शक्ति बाहर बह रही है और सफलताओं के अवसर को कम कर रही है।

एक बेकाबू मानसिक अवस्था एक कमजोरी की स्वीकारोक्ति है। एक व्यक्ति स्वयं पर जो काबू नहीं पा सकता वह दूसरों को काबू करने के योग्य नहीं होता।

एक व्यक्ति जो घृणा से भरा हुआ है तथा ईर्ष्या से विदीर्ण है, उस व्यक्ति का दिमाग एक दिमागी गन्दी बस्ती है जो कि एक वास्तविक झुग्गी-झोंपड़ी वाली बस्तियों से भी ज्यादा खराब है।

(17) गलत जगह पर सहानुभूति—जिस तरह से हर एक वस्तु जो सही जगह पर नहीं रखी है, उसी तरह गलत जगह पर सहानुभूति भी एक बुराई है। ज्यादा चिन्तित व्यक्ति के नजदीकी सम्बन्धी उसको तसल्ली देने में ज्यादा रुचि रखते हैं और उसकी भलाई के लिए इतना अधिक प्रयास करते हैं कि वे निरन्तर उसको याद दिलवाते हैं उसकी कठिनाइयों को, जिन्हें वह खुद भुला देता है। यह दोस्तों और सम्बन्धियों द्वारा व्यर्थ की गई अत्यधिक चिन्ता एक चिन्ता सम्बन्धी बातों का वातावरण तैयार कर देती है। चिन्ता एक छूत की बीमारी है, वह सहानुभूति जताने वाले व्यक्ति से चिन्ता के कीटाणुओं को उस व्यक्ति में स्थानान्तरित कर देती है जिसके प्रति वो सहानुभूति जताते हैं। एक चिन्तायुक्त व्यक्ति के भाग्य पर जो दया जताने आते हैं, वे आमतौर से उस व्यक्ति को चिन्ता के गड्ढे में और गहरा धकेल देते हैं।

(18) अज्ञानता—चिन्ता एक छुपा हुआ भय है और भय अज्ञानतावश उत्पन्न होता है। स्वामी रामतीर्थ के अनुसार 'वास्तविकता में अज्ञानता ही तमाम ईर्ष्या और भय का कारण है।' डॉ. हरबर्ट ई हॉकिंज के अनुसार, 'दिमागी उलझन चिन्ताओं का मुख्य कारण है।' हम उन चीजों से डरते हैं जिन्हें हम समझ नहीं पाते, समझ की कमी और अपने आप पर काबू की कमी हालात में भय उत्पन्न कर देती है।

(19) बिना कारण के कारण (तुच्छ मामलों में)—छोटी और तुच्छ चीजें जिनका कोई ज्यादा मतलब नहीं होता, वे व्यक्ति को पागलपन तक ले जाती है और आधे से ज्यादा हृदयाघात जगत् में इसी कारण से होते हैं। हम जीवन में बड़े विनाशों का सामना कर लेते हैं परन्तु छोटे विनाश के आगे घुटने टेक देते हैं और हमारे गर्व को थोड़ी-भी चोट हमें चकनाचूर कर डालती है। जैसे जंगल का विशाल वृक्ष जिसे वायु सुखा नहीं सकी और धूप जला नहीं सकी, उसे छोटे क्षुद्र कीड़े खा जाते हैं। ठीक इसी प्रकार एक दानवीय शरीर वाले व्यक्ति के हृदय में भी अगर भय भर दे तो उसे चिन्ता रूपी कीट खा जाता है।

(20) आदत की ताकत (आदत से लाचार)—चिंता एक सीखी हुई भावनात्मक आदत है। चिन्ता किसी भी कारण से शुरू हो सकती है परन्तु एक बार आदत बन जाए तो आदत की ताकत स्वयं एक ताकतवर व्यक्तिगत कारण हो जाता है जो कि और अधिक नयी चिंता उत्पन्न करती है। एक आदतन चिन्तित व्यक्ति ज्यादा खराब है, बनिस्बत एक नई-नई अवस्था में चिन्तित व्यक्ति के, क्योंकि वह ज्यादा चिन्तित होता है, जिसका कारण किसी सही चिन्ता के कारण की जगह उसके अन्दर से उत्पन्न दबाव होता है।

चिन्ता निवारण के उपाय (इलाज)—किसी बीमारी के लक्षण और परीक्षण के बाद इलाज का नम्बर आता है। चिन्ता का इलाज हम इस तरह वर्णन कर सकते हैं कि वह बहुत से साधन जिससे चिन्ता के कारण को समूल नष्ट किया जा सके या हटाये जा सके—

(1) जीवन में रुचि उत्पन्न करना—ध्यान को बनाए रखने का सबसे बढ़िया साधन है रुचि उत्पन्न किए रखना और रुचि एवं ध्यान से कार्य करने की इच्छा उत्पन्न होती है। कार्य ही जीवन को महत्त्व प्रदान करता है अतः जीवन का अंतिम विश्लेषण उसे उपयोगी ढंग से जीने में है, वह तब तक है जब तक उसमें हमारी रुचि है। उबाऊपन, एकरसता, थकावट और हताशा इसको दूर भगाने का सबसे अच्छा तरीका जीवन के प्रति नयी रुचि पैदा करना है।

(क) जीवन के प्रति प्रसन्नचित्त दृष्टिकोण—चिन्ता को भगाने का एक

सुनहरा नियम है कि जीवन के प्रति एक प्रसन्नता भरा व उल्लासपूर्ण दृष्टिकोण उत्पन्न करना। भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण उद्घोष करते हैं—

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥ 2/65

अर्थात् प्रसन्नता तमाम दरिद्रताओं का अन्त करती है और एक प्रसन्नचित्त दिमाग आसानी से सन्तुलित बुद्धि प्राप्त करता है।

श्रीकृष्ण और कार्लायल एक जैसी घोषणा करते हैं—'तमाम कार्य ही पूजा है।' यहाँ तक कि सबसे निम्नतम धंधा एक प्रसन्नता से भर देने वाला अनुभव बन सकता है, बनिस्बत किसी भगवान् की पूजा के। यह सिर्फ इसके पीछे एक दिमागी दृष्टिकोण में परिवर्तन करके हो सकता है। कुरुक्षेत्र के युद्ध में भगवान् कृष्ण का मुस्कराता हुआ चेहरा हमें प्रेरित करता है कि हम जीवन के कुरुक्षेत्र में एक दैवीय मुस्कान से भरपूर चेहरा लिए हुए जिएं।

(ब) जीवन के संगीत को बजाना—

हां, हमारी यात्रा लम्बी और दुःख भरी है।
जिसकी आत्मा थक गई वह गाना गाये।
जो हृदय से भीरु है वह भी गीत गाये॥—(टैगोर)

स्वयं बलिदान करने वाले गीत गाकर मौत का उत्सव मनाते हैं और वो तोपों के सामने या फांसी के फन्दे के सामने भी प्रसन्नचित्त गीत गुनगुनाते हैं। जीवन अपनी धीमी या कठोर लय में एक संगीत है और उस समूहगान में सभी को अपना हिस्सा बंटाना चाहिए। जीवन के मधुर संगीत को एक शोकगीत में नहीं बदलने देना चाहिए। स्वामी रामतीर्थ कहते हैं, 'समय से बाहर जीने वाले की उचित सजा है कि उसे वह लय में जिए।'

किसी सुन्दर कविता की कुछ पंक्तियाँ गुनगुनाओ या किसी गीत के टुकड़े को गाओ तो तमाम चिन्ता, उबाऊपन और हीन मनःस्थिति दूर भाग जाएगी।

(ख) जीवन के साथ तालमेल—जीवन का दूसरा नाम है तालमेल। पूरी जीवन रूपी सड़क पर तालमेल की आवश्यकता है। जब हम दुनिया को अपने अनुसार बदलने की कोशिश करते हैं तब हमें भी अपने आपको दुनिया के अनुरूप बनाना चाहिए। एक अच्छा, तालमेल युक्त जीवन हमेशा शांति बनाए रखता है और तमाम दिशाओं को रोशन करता है एवं प्रसन्नता की किरणें बिखेरता है।

(2) असफलता-सफलता की सीढ़ी है—असफलता कोई भविष्य नहीं है, कभी मत सोचो कि एक बार असफल हुए तो हमेशा असफल होंगे। हमें

असफलताओं को एक खिलाड़ी की भावना के रूप में लेना चाहिए, कभी भी इनसे अपने आपको कुचला-दबा हुआ महसूस नहीं होने देना चाहिए। हमें उत्सुक होना चाहिए और अधिक संघर्ष करने के लिए और कठिनाइयों का सामना करना चाहिए और अधिक श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिए। यहाँ तक कि नेपोलियन ने जितने महत्त्वपूर्ण युद्ध लड़े उनमें एक-तिहाई में उसकी हार हुई। युद्ध हारे जा सकते हैं परन्तु युद्ध करना निरन्तर कायम रखना चाहिए।

(अ) जीवन के नुकसान से लाभ पाना—विश्व के अधिकतर महान् व्यक्तित्व महान् हो गए क्योंकि उन्होंने अपने जीवन के साहसिक कारनामे बहुत कठिन परिस्थितियों में उत्पन्न किए, जिससे उन्हें और ज्यादा प्रयास करने का जोश आया और ज्यादा श्रेष्ठ प्रयास किया। मिल्टन का अन्धापन, पिथोवंश का बहरापन, हेलेन केलर का अन्धापन और बहरापन। डार्विन की अपंगता, टालस्टाय का दुःख भरा घरेलू जीवन, प्रेमचन्द की दरिद्रता, लिंकन की गरीबी और तुलसीदास का शैशवावस्था में अनाथ होना, ये तमाम विरोधी हालात उनके लिए सहायक सिद्ध हुए और उन महान् लोगों पर अनन्त शान और अमर प्रसिद्धि की बरसात हुई, अतः जीवन के नुकसान के ऊपर रोने के बजाए किसी को उसमें से भी लाभ पाने का प्रयास करना चाहिए और इस प्रकार चिन्तारूपी भेड़िये को स्वयं से दूर करना चाहिए।

(3) अपनी कमियों में संतुष्टि एवं उसका उच्चता में रूपान्तरण—महान् शंकराचार्य ने कहा है—

को वा दरिद्रो हि विशाल तृष्णः।
श्रीमांश्च को यस्य समस्ततोषः।।

अर्थात् गरीब कौन?—जिसकी अनन्त इच्छाएं हैं। और कौन है धनी?—वह जो पूर्ण संतुष्ट है। स्वामी रामतीर्थ ने कहा है—'वास्तविक गरीबी धन की कमी के कारण नहीं अपितु अत्यधिक लालच या न पूर्ण होने वाली जरूरत के कारण है' और आगे वे कहते हैं 'जीवन इतना पवित्र है कि इसे धन इकट्ठा करने में या छोटी तुच्छ चिन्ताओं में नहीं गंवाना चाहिए। जितनी अधिक आप कमी महसूस करेंगे उतनी अधिक चिन्ता बढ़ेगी।' अतः चिन्ताओं का इलाज आवश्यकताओं की आग, कामवासना और लालच को भड़काने में नहीं है परन्तु अपनी आवश्यकताओं का रूपान्तरण करके इनका मालिक बनने में है, न कि इनका गुलाम बनने में। अगर कोई व्यक्ति जितना ईश्वर ने उसको दिया उसी को महत्त्वपूर्ण माने, जो नहीं दिया उसका विचार न करे तो वह संतुष्ट रहेगा और चिन्ताओं से मुक्त रहेगा। डेल कार्नेगी, हेरोल्ड एबटगी की एक कहानी बतलाता है

जो इसलिए चिन्तित था क्योंकि उसके पास पहनने को जूते नहीं हैं परन्तु वह ईश्वर का इतना आभारी हो गया जब उसने एक ईश्वर के प्रति कृतज्ञ मुस्कराता चेहरा उस व्यक्ति का देखा जिसके पैर नहीं थे। एबटगी कहता है कि 'मैं चिन्तित था क्योंकि मेरे पास जूते नहीं थे तब तक जब तक कि सड़क पर मैंने उस व्यक्ति को नहीं देखा जिसके पास पैर नहीं थे।'

अध्यात्मिक रूप से कहा जाए तो वह व्यक्ति जो तमाम कामनाओं से ऊपर उठ गया है, जो अच्छाइयों को उसी तरह बिखेरता है जैसे फूल अपनी खुशबू बिखेरता है या तारा अपना प्रकाश फैलाता है। स्वामी शिवानन्द के शब्दों में, 'सन्तोष ही स्वर्ग के इन्द्र का नन्दन-कानन है और शान्ति ही कामधेनु है जो तमाम इच्छाएं पूर्ण करती है।'

(4) विषम परिस्थितियों का सामना—केवल वही सर्वोत्तम प्राप्त करने लायक है जो अति विषम परिस्थितियों का सामना करने को तैयार है। अति विषम परिस्थिति भयभीत व्यक्ति को निगल जाती है परन्तु उस व्यक्ति की छाया से दूर भाग जाती है जो उसका डट कर सामना करने को तैयार है। लिन ह्यूतेंग ने सही कहा है—'मन की सच्ची शांति तभी आती है जब व्यक्ति अति-विषम परिस्थिति को स्वीकार करता है।' जीवन हर एक के लिए खतरनाक प्रयोग है, अतः यह खतरों के आगे, वास्तविक या काल्पनिक आंसू बहाने के लिए नहीं है। मार्डन कहता है, 'जब आप अति-विषम परिस्थिति को एक अनोखी मानसिक अवस्था के साथ स्वीकार कर लेते हैं तो आप अति-विषम परिस्थिति को सुधारने का प्रयास करते हैं। तब आप पाएंगे कि तमाम बाधाएं आशीर्वाद में बदल जाती हैं।' बिच्छू नाम का पौधा ठीक वैसे ही जैसा बिच्छू नामक पौधे के तमाम डंक भोथरे हो जाते हैं जब हम उसे मजबूती से पकड़ लेते हैं, इसी प्रकार विषम परिस्थितियों का अधिकतम जहर समाप्त हो जाता है जब हम उसका बहादुरी से सामना करते हैं।

(अ) अवश्यंभावी से समझौता—मनुष्य अपने प्रयासों से दुनिया का चेहरा बदल सकता है परन्तु कुछ वस्तुएँ हैं जो उसके सामर्थ्य से बाहर हैं। मनुष्य को अपनी सीमा जाननी चाहिए और अवश्यंभावी से समझौता कर लेना चाहिए। उसे ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए कि चीजें ज्यादा विषम नहीं हुईं। विलियम जेम्स बुद्धिमत्तापूर्ण सलाह देता है—'जो कुछ घटित हो चुका है उसे स्वीकार कर लेना किसी भी दुर्भाग्य के नतीजों पर काबू कर लेने का प्रथम चरण है।' अगर हम किसी अकथनीय के घटित होने पर कड़वाहट और चिन्ता से भर जाएं तो हम इस अकथनीय को परिवर्तित करने लायक नहीं रहेंगे तथा इसकी जगह हम खुद विषम को बढ़ाने के लिए परिवर्तित हो जाएँगे। ईश्वर इच्छा के प्रति समर्पित होकर हम जीवन के पथरीले रास्ते पर झटकों और धक्कों को झेल लेना सीख जाएंगे।

(ब) भाग्य के प्रति समर्पण—अगर हमारे भाग्य में तकलीफ है, हमें इसका मुस्कान के साथ स्वागत करना चाहिए बजाए भौंहे सिकोड़ने के। यदि हम अपने भाग्य लेख में से एक या आधी लाइन को परिवर्तित या खारिज न कर सके। आंसू बहाकर भी, तो आंसू बहाने का क्या फायदा और अपने जीवन को नारकीय बनाने का क्या फायदा? अगर कोई भाग्य है तो इसके बारे में चिन्ता करने का कोई फायदा नहीं क्योंकि वह तो घटित होगा। और यदि भाग्य नाम की कोई वस्तु है ही नहीं तो उसके बारे में सोचने का कोई फायदा नहीं क्योंकि कुछ भी पूर्व-निर्धारित नहीं है।

(5) तनावरहित—तनावरहित होना वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति पूर्णतया शारीरिक व मानसिक आराम में होता है जो कि अपने आप सुझाई गई स्थिति से उत्पन्न है। उद्वेलित मन एक बीमार मन है। तनाव मुक्ति से एक व्यक्ति अपने अत्यधिक कार्य से थकी हुई मांसपेशियों, थके हुए स्नायुतंत्र, थका मस्तिष्क और चिंतित मन को आराम प्रदान करता है। इससे आन्तरिक मानसिक तनाव दूर होता और पूरे तन्त्र में नयी ऊर्जा का संचार होता है और एक शान्त मन दुनिया के तमाम तनावों से मुक्त रहता है। परिणामतः तमाम चिन्ताओं से मुक्त रहता है। मानसिक तनाव मुक्त होना शारीरिक तनावमुक्ति से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। भगवद्गीता में यही उपदेश है कि तनावमुक्त मन से तमाम कर्म करने चाहिए।

'कहां गया वह जीवन जिसको जीने में हम खो बैठे?
कहां गई वह समझ जिसे हम ज्ञान के बीच डुबो बैठे?
कहां गया वह ज्ञान कि जो सूचना से हमने धो डाला?'

—टी.एस. इलियट

× × ×

'हम अब तक बहुत रो चुके हैं। अतः और क्रन्दन नहीं। अब अपने पैरों पर खड़े हों और मनुष्य बनें।'

—स्वामी विवेकानन्द

चिन्ता के दुष्प्रभाव

चिन्ता इतनी दुःखदाई होती है कि इसके दुष्प्रभावों को शब्दों में बांधना या वर्णन करना असंभव-सा है। हिन्दी भाषा के शिखर कवि जयशंकर प्रसाद ने चिन्ता के कुप्रभावों को इस प्रकार गिनाया है।

'इस ग्रह-कक्षा की हलचल! री तरल गरल की लघु लहरी, जरा अमर जीवन की, और न कुछ सुनने वाली बहरी।'

ओ, नक्षत्रो

ओ, भयंकर जहरीली लहर

ओ अमर जीवन की भी वृद्धावस्था

ओ, मूक-बधिर, दुष्ट डायन।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मैथ्यू एन चैपल ने चिन्ता से उत्पन्न प्रभावों को इस प्रकार बताया है।

(1) चिन्ता करने वाला व्यक्ति अपने आप को दुःखी; हारा हुआ अनुभव करता है। विशेष रूप से सिर, पेट में अजीब हलचल महसूस करता है।

(2) वह हर समय संसार में भयभीत-सा रहता है। किसी अप्रिय घटना के डर से ग्रसित रहता है।

(3) ऐसा व्यक्ति स्वयं और दूसरों में भरोसा नहीं करता। उसे असफलता ही दिखती है—हर वस्तु उसे अस्तित्वहीन एवं गौण लगती है।

(4) वह अत्यधिक संवेदनशील, अन्तर्मुखी रहता है। मित्रों एवं परिवार के अन्य सदस्यों के कार्यों को संदेह की नजर से देखता है। वह धीरे-धीरे आत्मग्लानि से भर जाता है, जीवन को एक दुःखद प्रसंग बना देता है।

(5) वह प्रायः अशांत रहता है। छोटी-छोटी बातों से उद्विग्न हो जाता है।

(6) अधिक चिन्ता करने वाला व्यक्ति दिन में भी सपने देखता है, दुःखद जाल बुनता रहता है। वह इस मकड़ी के जाल से बाहर आने की इच्छा तो रखता है लेकिन बाहर नहीं आ पाता।

चिन्ताजनक दुःखदाई प्रभाव तो अनेक हैं—तथापि इन्हें मुख्यतया पांच श्रेणी में डाल सकते हैं—

क. यह मानसिक शांति का क्षय करती है।

ख. यह ऊर्जा का ह्रास करती है।

ग. अत्यधिक चिन्ता कई रोगों को जन्म देती है।

घ. चिन्ता व्यक्तित्व का विनाश करती है।

ङ. यह एक मानसिक आत्महत्या के समान है।

मानसिक शान्ति का क्षय

अत्यधिक चिन्ता एक लुटेरे से भी अधिक भयंकर होती है। चिन्ता करने वाले व्यक्ति का चित्त भय और असुरक्षा की भावना से दहकता रहता है। उसके अंदर में हलचल और हृदय में घबराहट-सी होती है। श्वास गर्म और तीव्र चलती है। हाथ-पांव भारी एवं निष्क्रिय से लगते हैं। चिन्ता अत्यन्त बलशाली व्यक्ति को कुछ समय के लिये कमजोर और शक्तिहीन बना देती है। अतीव चिन्ता के समय वह शरीर में झटके एवं बार-बार पसीने का अनुभव करता है। ऐसा व्यक्ति मानसिक अवसाद से घिरा रहता है, भीड़-भाड़ से डरता है और अकेला रहना पसन्द करता है, पर वह अकेलेपन से डरता भी है।

चिड़चिड़ापन

ऐसा व्यक्ति मानसिक शांति खो देता है। छोटी-छोटी बातों पर तुनक जाता है—झगड़ पड़ता है। कभी-कभी वह भयंकर रूप भी धारण कर लेता है। इस समय वह मानव न होकर दानव या पशु जैसा व्यवहार भी कर सकता है। इन चिन्तामय क्षणों में मस्तिष्क में एक भयानक विष-सा पैदा होता है जो धीरे-धीरे सारे स्नायु तंत्र में फैल जाता है। एक दुःसह्य शिर पीड़ा हो जाती है जो काफी समय तक रहती है। इसी के प्रभाव में अधिक चिन्ता करने वाला व्यक्ति कभी-कभी आत्महत्या भी कर बैठता है। ऐसा चिड़चिड़ापन चिंता का कारण एवं प्रभाव भी बन जाता है। सतत परिश्रम, सकारात्मक सोच ही प्राणी को इस कुचक्र से उबार सकते हैं।

बेचैनी

अत्यधिक चिंतित मन, चिड़चिड़ा हो जाता है, ऐसा व्यक्ति बेचैन-सा रहता है। क्रोध, आन्तरिक आवेग आते रहते हैं। चिन्ता मानसिक शांति की शत्रु है। जब व्यक्ति पहले से ही निर्बल होता है चिन्ता उसे और दबाती है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मार्डेन के अनुसार चिन्ता हमारे कान में कहती है—'आप स्वस्थ नहीं हो सकते हो, बिलकुल असंभव।'

थकावट

यह बेचैनी का ही दूसरा रूप है। चिन्ता से व्यक्ति थका-सा रहता है। अधिक चिन्ता करने वाला प्राणी रात भर सोने के बाद जब सुबह उठता है तो भी थका-सा, शक्तिहीन अनुभव करता है।

चिन्ता एवं तनाव का कुचक्र

पहले तो कुछ मानसिक तनाव चिन्ता का कारण बनता है, फिर चिन्ता और तनाव को पैदा करती है। इस प्रकार तनाव और चिन्ता का कुचक्र चलता रहता है, दोनों एक-दूसरे को पैदा करते हैं और बढ़ाते रहते हैं। चिन्तित व्यक्ति इससे बाहर आने में असहाय सा हो जाता है।

अनिद्रा

अधिक चिंता करने वाला व्यक्ति बेचैन, थका-हारा मीठी नींद नहीं ले पाता है। चिन्ता से अनिद्रा होती है। क्योंकि चिन्ता करते-करते उसके दिमाग में अधिक रक्त का संचरण रहता है जिससे नींद दूर भाग जाती है। इसलिये अनिद्रा से छुटकारा पाने का सरल उपाय छोटी-छोटी बातों पर चिन्ता करना बंद कर दें। सीधी सी बात है अधिक चिन्ता करने से अधिक दिमागी कसरत। रक्त संचरण जो मीठी-सुखदाई नींद को दूर भगाता है।

घर में अशांति

अधिक चिन्ता करने वाला बेचैन व्यक्ति सुखद, मीठी नींद न आने के कारण चिड़चिड़ा-सा रहता है। घर के अन्य सदस्यों के लिये कलह का कारण बन जाता है। पूरे घर की सुख-शांति, चैन गायब से हो जाते हैं।

अशुभ स्वप्न

अधिक चिन्ता करने वाले की काल्पनिक परेशानियाँ उसकी नींद को हर लेती है और स्वप्नों में उसे तंग करती हैं। उसकी अपनी कमजोरियाँ उसके स्वप्न में भूत-प्रेत बन कर आती है। उसे त्रास देती है। इस प्रकार के व्यक्ति को दिन में या रात में शान्ति नहीं मिलती है।

शक्ति (ऊर्जा) का ह्रास—चिन्ता मनुष्य की ऊर्जा ह्रास का सबसे भयंकर कारण है। मनुष्य की शक्ति का ह्रास हो जाता है वह ऊर्जाहीन ठूंठ रह जाता है। सारी शक्ति नकारात्मक और आत्मघाती विचारों से धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है। चिन्ता प्रगति के पथ पर सबसे बड़ा विघ्न होता है।

आकांक्षाओं और ऊर्जा का घातक

चिन्ता मनुष्य की ऊर्जा को समाप्त करती है सद्प्रयासों को क्षीण और प्रेरणाशक्ति को कुंद करती है।

चिन्ता जीवनी शक्ति पर ग्रहण

जार्ज वार्टन जेम्स लिखते हैं—चिन्ता हमारे पुरुषत्व, स्त्रीत्व और उच्च अभिलाषाओं को समाप्त कर देती है। जीवन के वास्तविक सार का हरण कर हमें नीरस, खोखला, सारहीन और निराश बना देती है। यह जीवन में एक भयावह काला स्वप्न है जो जीवन के अच्छे गुणों का ह्रास कर उसे निस्तेज और अर्थहीन बना देता है। चिन्ता जीवन को अंधकारमय और विकलांग सा बना देती है। यह व्यक्ति को डरपोक और बौना बना देती है। मनुष्य अधिक अपराध, असफलताओं और आत्मघाती विचारों से घिरा रहता है।

मानसिक अवसाद—अत्यधिक चिन्ता पूर्ण विनाश का राजमार्ग है। मनुष्य की कार्यक्षमता, उत्साह आदि बहुत घट जाते हैं। रक्त ठंडा हो जाता है। स्नायु निःशक्त हो जाते हैं तथा मानसिकता एवं दृष्टि बहुत ही दुर्बल हो जाती हैं। वह हारा-सा, सताया-सा अनुभव करता है। प्रसिद्ध साहित्यकार रशॅकिन का कहना है, If the heart sinks, the boat sinks मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।

महंगा सौदा—कई अत्यधिक चिन्तित व्यक्ति चिन्ता को एक खेल समझ कर इससे घटिया, तुच्छ खुशी का अनुभव पाते हैं। यह बहुत ही महंगा सौदा है। इसकी कीमत रोग, दवाओं, चिकित्सकों के बिल, उत्पादकता का ह्रास और सामाजिक अशान्ति के रूप में चुकानी पड़ती है। चिन्ता ऐसे व्यक्ति की पीठ पर डायन-सी चिपकी रहती है, वह उसे तब तक नहीं छोड़ती जब तक जीवन रस (अमृत) समाप्त नहीं होता।

रोगों का उत्पादक (जन्मदाता)

जगद्‌गुरु शंकराचार्य ने ठीक ही कहा है—

को वा ज्वरः प्राणभृतां हि चिन्ता
जीवित व्यक्ति की सबसे भयंकर व्यथा क्या है।
चिन्ता....चिन्ता....चिन्ता

जयशंकर प्रसाद जी ने चिन्ता को सब व्याधियों का निर्देशक बताया है।

अरी व्याधि की सूत्र धारिणी !
अरी आधि मधुमय अभिषाप !
हृदय गगन में धूमकेतु सी,
पुण्य सृष्टि में सुंदर पाप !

स्नायुतन्त्र भंग—william James प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक का कहना है कि प्रभु हमें माफ कर सकते हैं लेकिन नर्वस सिस्टम (स्नायुतन्त्र) हमारी भूलों को कभी क्षमा नहीं करता। अधिक चिन्ता करने से हम अपना स्नायुतन्त्र खराब कर देते हैं

और मनुष्य केवल स्फूर्तिहीन, पुतला बन के रह जाता है। स्नायुतन्त्र की गड़बड़ी केवल व्यर्थ चिन्ता करने से होती है।

हृदय रोग—यह रोग पश्चिम में बड़ा घातक रोग है। दूसरे विश्वयुद्ध में लगभग तीन लाख व्यक्तियों की मृत्यु हुई। इसी काल में लगभग 20 लाख व्यक्तियों को हृदय रोग हुआ जिनमें से लगभग 1 लाख तो मृत्यु को प्राप्त हो गये। इसका मुख्य कारण भी अधिक चिन्ता करना है।

पाचनतन्त्र दोष—हमारा पाचनतन्त्र भय और चिन्ता से दुष्प्रभावित होता है। किसी अप्रिय दुर्घटना का समाचार पाते ही हमारा मुख सूख जाता है गला खिंच जाता है और पाचनतंत्र का कार्य फेल हो जाता है। अधिक चिन्ता करने से भूख कम लगती है जिससे आहिस्ता-आहिस्ता कब्ज हो जाती है और अन्य रोग भी पैदा हो जाते हैं।

पेट के घाव

डॉ जोजोफ मॉनटेन का कहना है, 'जो आप खा रहे हैं उससे पेट के घाव नहीं होते, बल्कि जो आपको भीतर-भीतर खा रहा है उसी से पेट में घाव होते हैं। चिन्ता, भय और क्रोध हमारे एडरिनल ग्रन्थियाँ को उत्तेजित करते हैं जिससे उदर में घाव होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

मस्तिष्क क्षय—चिन्ता, क्रोध और ईर्ष्या मनुष्य की कार्यकुशलता और योग्यता को नष्ट कर देते हैं। हमारी शारीरिक और मानसिक शक्ति क्षीण हो जाती है जिसका दुष्प्रभाव हमारे मस्तिष्क पर पड़ता है। मनुष्य मानसिक अवसाद में पड़ जाता है।

क्षयरोग एवं कैंसर—अधिक चिन्ता करने वाला व्यक्ति अपने रोग के बारे में ही सोचता रहता है। उसका मन अपने रोग पर ही केन्द्रित रहता है जिससे शरीर के प्रभावित अंग पर अधिक मात्रा में रक्त का प्रभाव जाता है। चिन्ता से क्षय रोग के कीटाणु भी तीव्र गति से बढ़ते हैं।

थाइराईड—अधिक चिन्ता से यह ग्रन्थि जिसका हमारे शारीरिक और मानसिक विकास में बहुत योगदान होता है, एकदम क्षीण और अस्थिर हो जाती हैं। जो शरीर और मन के लिए बड़ी घातक है। व्यक्ति कभी-कभी आत्महत्या का विचार भी बना लेता है।

मधुमेह—अधिक चिंता करने वाला मन कई रोगों का घर होता है। मधुमेह और गुर्दे का रोग भी इसी प्रकार शुरू होता है और बढ़ता जाता हैं। Dr. Harold Havein का मानना है कि विश्व में मुख्य व्यावसायिक संस्थानों के संचालकों

और प्रबंधकों में से बहुतों को तीन लाइफस्टाइल रोग होते हैं—हृदय रोग, मधुमेह या गुर्दे के रोग।

पीड़ा—अधिक चिंता करने वाले व्यक्ति को अक्सर हृदय में भयंकर पीड़ा का अनुभव होता रहता है। यह पीड़ा भावनात्मक असंतुलन और मनोवेग के कारण ही होती है।

दन्त क्षय व अन्य कष्ट—अमरीकी डेन्टल एसोसिएशन के डॉ. विलियम का कहना है कि चिन्ता, भय और अप्रिय संवेदनाएं शरीर में कैल्शियम बैलेन्स में गड़बड़ी पैदा करती है और इससे दन्त क्षय होता है। अधिक चिन्ता करने वाला व्यक्ति सिर दर्द, पेट दर्द या दन्त पीड़ा में शरण खोजता है। इससे उसे कुछ मानसिक शान्ति सी मिलती है।

व्यक्तित्व का विनाश—अधिक चिन्ता करने वाले व्यक्ति के चेहरे से उसकी मानसिक स्थिति का आभास हो जाता है।

चेहरे में विकार—मनुष्य का चेहरा उसकी मानसिक स्थिति का द्योतक होता है। मन में चिन्ता की आग और डाह, वैर-ईर्ष्या, क्रोध आदि बाहर चेहरे पर भी साफ झलकते हैं। मनुष्य दांत पीस लेता है और धीरे-धीरे उसके केश श्वेत हो जाते हैं और चेहरे का रंग भी बदल जाता है।

मानसिक आत्मघात—चिन्ता आत्महत्या से भी अधिक भयंकर होती है। आत्महत्या से तो मृत्यु बहुत शीघ्र आ जाती है किन्तु चिन्ता मनुष्य को तिल-तिल करके मारती है। मनुष्य का शरीर और मन भीतर ही भीतर आग के अंगारों की तरह सुलगते रहते हैं। हर नकारात्मक विचार मनुष्य का शत्रु और द्रोही है जो उसे मानसिक आत्महत्या की ओर ले जाता है। मानसिक आत्महत्या बहुत ही दुःखपूर्ण और हानिकारक होती है क्योंकि यह मनुष्य को घोर पतन के मार्ग पर ले जाती है। यह सब मनुष्य के सर्वोत्तम वर्षों को बिल्कुल व्यर्थ बना देते हैं।

आन्तरिक कलह—दुःखी मन का कष्ट शारीरिक कष्टों से कहीं अधिक भयंकर होता है। चिन्ता मानव का नैसर्गिक स्वभाव नहीं है। हम गलत मान्यताओं और नकारात्मक सोच के कारण यह घातक मनोरोग अपना लेते हैं और दुःखी होते रहते हैं। हम शिव-संकल्प कर इस बुरी आदत को छोड़ सकते हैं।

Dale carnegic कहते हैं कि डाक्टरों के आंकड़े यह बताते हैं कि 5% अमरीकन दिमागी तौर पर बीमार होने के कारण अपने जीवन के शेष भाग को ऐसी संस्था में गुजारेंगे। दूसरे विश्वयुद्ध के लिये फौज द्वारा बुलाये गये अमरीकन युवाओं में से तकरीबन 16% इसलिये अस्वीकार कर दिये गये क्योंकि वे मानसिक तौर पर बीमार थे।

उत्सुक्त एवं संतापन्न व्यक्ति जो दुनिया के कटु सत्य का सामना नहीं कर सका, वह अपने वातावरण से सम्बन्ध विच्छेद करके अपने ऐकान्तिक, अव्यावहारिक एवं अपने ही स्वप्नलोक में रहता है और वह अपनी चिन्ताओं की समस्याओं का समाधान करने का प्रयास करता है।

जब निर्दयी चीनियों द्वारा युद्धबंदियों को यातना देनी होती तो वे कैदी के हाथ-पाँव बांधकर पानी के भरे थैले के नीचे डाल देते जिससे बूँद-बूँद पानी टपकता रहता, इससे उन्हें मस्तिष्क पर हथौड़े का प्रहार लगता जिससे वह उन्मादी हो जाता। इस विधि को स्पेन और जर्मनी द्वारा कैदियों पर भी अपनाया गया। Dale carnegic के अनुसार चिन्ता पानी की इन बूँदों की तरह प्रहार करती है और इस तरह चिन्ता से उन्मादी बन जाता है।

मानव-जाति का गला घोंटना

चिन्ता इतनी अस्वाभाविक और क्षति पहुँचाती है कि अगर आदिमानव चिन्ताग्रस्त होता तो इस धरती पर मानव-जाति समाप्त हो गई होती। चिंतित आदिमानव का कोई शेष नहीं मिलता।

'जिन्दगी ऐसे सरकस का रूप ले रही है जिसका न कोई ढांचा दिखाई देता है न कोई लय और न कोई ताल। मनुष्य के भीतर बसने वाले ईश्वरीय रूप की उपेक्षा करने से आदमी बीमार हो गया है, उसकी आत्मा रुग्ण हो गई है।' प्रकृति इतनी पालतू तो बनाई नहीं जा सकती कि वह पग-पग पर मनुष्य की आज्ञा में चले। जब तक पूर्णता के दर्शन नहीं होते—जब तक सनातन की झांकी नहीं मिलती है तब तक मन की शान्ति बहुत दूर की आशा रहेगी, सुरक्षा की भावना सुखों की जननी है और यह भावना मनुष्य द्वारा प्रकृति पर विजय पाने से आने वाली नहीं है। इसके लिए हमें वस्तुओं पर नहीं स्वयं अपने आप पर स्वामित्व पाना होगा।'

—डा. राधाकृष्णन्

चिन्ताओं से मुक्ति पाएं

जीना भी एक कला है

सबसे बड़ी कला, क्योंकि अन्य सब कलाएं इसी कला पर आश्रित हैं 'सबसे महान् कलाकार वह है जो जीवन को अत्यन्त सुन्दर ढंग से जीता है।' महात्मा गांधी के इस कथन में कितना गहरा सत्य छिपा है। कोई चित्रकार यद्यपि एक सुन्दर चित्र बनाता है और उसका अपना जीवन कुरूप एवं दुःखी है, या कोई संगीतकार सुरीला गीत गाता है पर उसके जीवन में आन्तरिक संगीत है ही नहीं—ऐसे कलाकार कला के साथ न्याय नहीं कर पाते। सुखमय जीवन एक सुन्दर पुष्प की तरह होता है जो हर तरफ अपनी सुन्दरता एवं सुगंधि बिखेरता है।

चिन्ता एक दुःखद सत्य

जीवन रूपी पुष्प को चिन्ता कलुषित कर देती है, यह जीवन का अत्यन्त दुःखमय सोपान है—

चिन्ता चिता द्वयोर्मध्ये चिन्ता एव गरीयसी।
चिता दहति निर्जीवम, चिन्ता दहति जीवितम।।

जलती हुई चिता से भी चिन्ता अधिक भयंकर है। चिता तो केवल मृत को जलाती है किन्तु चिन्ता तो जीवित व्यक्ति को भी जलाती रहती है।

हिन्दी के प्रख्यात कवि जयशंकर प्रसाद माथे पर चिन्ता की लकीर को जीवन वन में घूमती हुई नागिन की तरह मानते हैं—

ओ चिन्ता की पहली रेखा, अरी विश्व वन की व्याली।
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण, प्रथम कंप सी मतवाली।।

चिन्ता क्या है

चिन्ता अपने आप को सताना है, स्वयं को मानसिक रूप से सताना है, आन्दोलित करना है—मानसिक अशांति को आह्वान है। आक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार चिन्ता किसी व्यक्ति को पूरे शरीर पर घाव देकर, दांतों से काटकर झकझोरते

रहने के समान है। जिस प्रकार एक भूखा भेड़िया किसी भेड़ या बकरी के नन्हे मेमने को तड़पा-तड़पा कर मारता है। ओ. एस. मैन्डन के अनुसार चिन्ता शब्द की उत्पत्ति एक ऐसी ध्वनि से हुई है जो एक निरीह पशु के मुंह से तब निकलती है जब वह किसी बड़े क्रूर पशु द्वारा बुरी तरह गला घोंटने से मर रहा होता है।

चिन्ता का अभिप्राय—शारीरिक एवं मानसिक संताप, पल-पल तड़पना और भयंकर अंतर्दाह है।

चिन्ता की परिभाषा ऑक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार, 'चिन्ता मन की वह स्थिति है जो जीवन के उतार-चढ़ाव, क्षोभ या अकेलेपन से उत्पन्न होती है।

चिन्ता की परिभाषा—जॉन कैनेडी के अनुसार 'चिन्ता मन में उथल-पुथल है जो स्वयं को ठीक प्रकार समझा नहीं पाता।' स्वामी शिवानन्द बहुत सुन्दर ढंग से कहते हैं, 'चिन्ता मन की झील में एक आत्मघाती की तरह है इसका आरम्भ मूर्खता और अन्त पश्चात्ताप से होता है'। मैक डोनल्ड नेडल के अनुसार, 'चिन्ता मन की ऐसी थका देने वाली स्थिति है जब मनुष्य वर्तमान और भविष्य काल दोनों को इकट्ठा जीना चाहता है।' मनोविज्ञान शब्दकोश के अनुसार 'चिन्ता एक उत्तेजना है जिसमें अत्यधिक अवसाद या खुशी के कारण असन्तोष होता है।' विख्यात मनोवैज्ञानिक मैथ्यू एनू चेपल के अनुसार 'चिन्ता कुछ दुःखदायी विचारों का साथ है।' सारांश में चिन्ता काल्पनिक भय या दुःखदायी घटनाओं से सम्बन्धित उत्तेजना और मानसिक जटिल सभ्यता का अभिशाप है। मैथ्यू एन चैपल के अनुसार 'चिन्ता मानव मस्तिष्क का दुराचारी Perverted उपयोग है जो हमने धीरे-धीरे आधुनिक सभ्यता से ग्रहण किया है। चिन्ता करना मनुष्य का नैसर्गिक स्वभाव नहीं है यह तो उसने आधुनिक सभ्यता के दौर में सीखा है। आज का मानव कई सामाजिक और आर्थिक शक्तियों से घिरा है जिसके फलस्वरूप वह स्वतन्त्र रूप से कोई भी कार्य सोच या कर नहीं सकता। स्वेच्छा से वह चल फिर नहीं सकता, वस्त्र पहनना या भोजन नहीं कर सकता। हर कार्य में उसे सामाजिक मानदण्डों का ध्यान रखना पड़ता है। आज का मानव कई प्रकार से परतंत्रता से घिरा रहता है, अपने भविष्य और भाग्य को स्वयं ढाल नहीं सकता।

मन को काटने वाला आरा—जॉन कैनेडी के अनुसार—एक चिन्तित व्यक्ति का मस्तिष्क एक आरे की तरह आगे-पीछे चलता रहता है। मन हर समय किसी कठिन समस्या को हल करने में लगा रहता है जबकि वास्तव में कुछ भी नहीं करता। इस प्रकार चिन्ता करना असली काम करने का केवल एक दिखावा है। ऐसा व्यक्ति निरन्तर चिन्ता करने से कुछ सन्तोष पाता है किन्तु ऐसा सन्तोष बहुत हानिकारक है। यह व्यक्ति को अकर्मण्य बना देती है।

कल्पना का दुरुपयोग—कल्पना-शक्ति तो जीवन को अधिक उपयोगी और सुन्दर बनाने के लिये प्रभु की देन है। सभी कला और काव्य केवल उचित कल्पना से पनपता, बढ़ता है। किन्तु चिन्ता दुष्कल्पना को बढ़ाती है। मानव नकारात्मक विचारों के बहाव में काल्पनिक भय और अवसाद में डूबा रहता है। ऐसे व्यक्ति इसी कल्पना में सुख खोजते हैं जैसे शराबी व्यक्ति मदिरा में सुख ढूंढ़ता है।

अत्यधिक भय—प्रसिद्ध साहित्यकार वर्डस्वर्थ के अनुसार—'चिंता दिवास्वप्नों के रूप में उभरती है। फिर ऐसा भय और चिन्ता को पैदा करता है। इस प्रकार के कमजोर लोग अपने भय को बढ़ा कर चिंता के ताने-बाने बुन लेते हैं और व्यर्थ में दुःख झेलते रहते हैं। वीर व्यक्ति तो वास्तविक युद्ध में भी नहीं घबराते। पर, कायर युद्ध की भयानक कल्पनाओं से ही मृतप्राय हो जाते हैं। शेक्सपियर ने ठीक ही कहा है—कायर लोग मृत्यु से पूर्व भी कई बार मर जाते हैं। ऐसा व्यक्ति भय को बढ़ा-चढ़ा देता है जिससे चिन्ता गहरी हो जाती है। वह अकाल, दुर्घटना या तीसरे विश्वयुद्ध के काल्पनिक भय से घिरा रहता है। छोटी-छोटी बातों को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर देखता है।

चिन्ता एवं वार्तालाप—जॉन कैनेडी के अनुसार जब हम किसी विषय के बारे में सोचते हैं या बातचीत करते हैं तो तटस्थ भाव से वार्तालाप करते हैं। वार्तालाप प्रायः कुछ लोगों में होता है चिन्ता एकांत में होती है। जब हम कुछ मित्रों से चिन्ता के बारे में बात करते हैं ऐसा वार्तालाप व्यक्तिगत चिन्ता से कम हानिकर होता है। ऐसा वार्तालाप संयम से होना चाहिए। अन्यथा चिन्ता का जीवाणु शीघ्र फैलता है एवं व्यक्तिगत चिन्ता से अधिक भयंकर हो सकता है।

चिन्ता एवं ध्यान—मनुष्य को समस्या से संवेदनशील होना चाहिये किन्तु चिन्तित नहीं। हमें सावधान रहना चाहिये। न तो लापरवाह और न ही अत्यधिक चिंतित हो। समस्या को सावधानीपूर्वक समझना चाहिये और उसका उचित समाधान निकालना चाहिये। चिन्ता के कारण हम समस्या को और गंभीर, और बढ़ा देते हैं। हम भय और चिन्ता के जाल में फंसते जाते हैं। चिन्ता के कारण छोटी समस्या भी बड़ी, दुष्कर एवं भयावह लगती है। चिन्ता भविष्य मे होने वाले खतरे या मानसिक दुर्घटना की प्रक्रिया बन जाती है। बार-बार चिन्ता करने से स्नायु-तंत्र में रोग पैदा हो जाते हैं।

चिन्ता से सन्तोष का आभास

वर्डस्वर्थ का कहना है कि चिन्ता मनुष्य को किसी प्रकार का सन्तोष प्रदान करती है। कई व्यक्ति चिन्ता करने का स्वभाव एक मानसिक क्रीड़ा के रूप में अपना लेते हैं। कई बार माता अपने बाहर गए हुए पुत्र के विषय में बहुत चिन्ता

करती रहती है और फिर उसके घर लौटने को उत्सव की भांति मनाती है। वह इस प्रकार के काल्पनिक संकट से ही सुख-लाभ पाती रहती है।

चिन्ता का स्वभाव—हम स्वयं जिम्मेदार

चिन्ता करना जन्मजात स्वभाव नहीं होता। हमने स्वयं इसे पाला-पोसा होता है—बार-बार अभ्यास करके। वह इस गलत आदत को बिना इरादे ग्रहण कर लेता है। उसे पता भी नहीं चलता। फिर इस गलत स्वभाव को बार-बार अभ्यास कर पक्का कर लेता है। हम स्वयं इसके लिए जिम्मेदार हैं। कोई अन्य नहीं। हम पक्का इरादा कर संकल्प से इसे धीरे-धीरे छोड़ भी सकते हैं।

प्रभु नाम से रोग-मुक्ति

परमेश्वर तों भुल्लयां ब्यापन सबै रोग।
छिन में कड़वे हो गये जेते माया भोग।
सर्व रोग का औषध नाम। हरि का नाम जपत निष्काम।

—गुरु नानक देव

Disease is to be dis-at-ease with God—Swami Rama Tirtha 'ईश्वर के साथ सामंजस्य टूट जाना ही रोग है।'

—स्वामी रामतीर्थ

The beginning and end of everything wrong with us is that we have foregotten God.

—Ralph Waldo Emerson

हमारे समस्त क्लेशों का प्रथम कारण एवं अंतिम कारण यही है कि हम ईश्वर को भूल गये हैं।

—रेल्फ वाल्डो इमर्सन

ईश्वर प्रत्येक व्यक्ति में है, किन्तु प्रत्येक (व्यक्ति) ईश्वर में नहीं है और इसलिये वह दुःखी है।

—श्री रामकृष्ण परमहंस

निर्धन देश, समस्याग्रस्त समाज और आडम्बरयुक्त पूजा महोत्सव

किसी समय भारत सोने की चिड़िया कहलाता था। किन्तु लगभग 1300 वर्षों की लम्बी पराधीनता, विदेशी आक्रान्ताओं की भयंकर लूट एवं भारतीयों के जीवन में घुस जाने वाली तमोगुणी अकर्मण्यता तथा विवेकहीन फ़िजूलखर्ची के कारण आज खंडित भारत सोने की चिड़िया के स्थान पर मिट्टी की टूटी हुई चिड़िया बन गया है। संसार के धनी देशों की तालिका में (संसार के 150 देशों की सूची में) जहाँ अमेरिका प्रथम स्थान पर आता है वहाँ भारत उक्त तालिका में नीचे से लगभग दसवें स्थान पर आता होगा। आज देश में साठ प्रतिशत से अधिक लोग निर्धनता की रेखा से भी नीचे का जीवन जी रहे हैं। इसका अर्थ यह है कि उन्हें सिर ढकने को झोंपड़ा, तन ढकने को चीथड़ा और पेट भरने को टुकड़ा तक भी उपलब्ध नहीं है।

देश के करोड़ों वनवासियों की दशा बड़ी दयनीय है। लगभग 5 करोड़ वनवासी बीहड़ जंगलों में, दुरूह गिरि-पर्वतों में, नागरिक सभ्यता से युगों दूर कीचड़ एवं धूल भरी पर्णकुटियों के अस्त-व्यस्त ग्रामों में, नगरवासियों द्वारा शोषित, शिक्षा से वंचित, अभाव से पीड़ित, रोग-संत्रस्त, पत्तों की लंगोटी लगाए पुरुष तथा वस्त्राभाव में नग्नवक्षा नारियाँ, अधभूखे, अधनंगे, क्रन्दन करते उपेक्षित बच्चे—आज के वनवासी जीवन का यह दृश्य कितना अश्रुप्रेरक है! यह करुण दृश्य तब और भी भयंकर बन जाता है जब इन जनगण उपेक्षित एवं सरकारी अनुदानों से वंचित-दुःखी, भोले-भाले लोगों की विवशता का शोषण कर विदेशी पादरी मुट्ठी भर अन्न के लोभ से आटे के पैकेट और सोयाबीन तेल के प्रलोभन से उनकी देशनिष्ठा एवं धर्मनिष्ठा लूट कर इन भारतमाता के पुत्रों को भारत का ही शत्रु बना देते हैं। नागालैंड, मिजोरम एवं मेघालय की भीषण स्थिति एवं छोटानागपुर की भयंकर गतिविधि किसी भी देशभक्त नागरिक की नींद हराम करने वाली है।

दस वर्ष पूर्व 'दैनिक सर्चलाइट' पटना में समाचार प्रकाशित हुआ था कि छोटानागपुर में प्रतिदिन साढ़े तीन सौ व्यक्ति धर्मान्तरण द्वारा ईसाई बनाए जा रहे हैं। इस हिसाब से आजकल दैनिक धर्मान्तरण की संख्या पांच सौ या छः सौ से कम नहीं होगी। जिस देश में प्रतिदिन सहस्त्रों लोगों का धर्मान्तरण द्वारा राष्ट्रान्तरण कर उनके मन में देशद्रोह के बीज बोए जा रहे हैं, उस देश का भविष्य कितना चिन्ताजनक होगा?

देश के करोड़ों हरिजनों की दशा भी चिन्ताजनक है। हजारों वर्षों से समाज द्वारा

उपेक्षित रहने के कारण उनके मन में भी हीनभावना की ग्रन्थि पैठ गई है। कहीं-कहीं राजनीतिक स्वार्थों के लिए वर्गसंघर्ष को भड़का कर हरिजनों पर अत्याचार कराए जा रहे हैं। कहीं प्रतिक्रिया में हरिजनों को उत्तेजित कर बड़े अशोभन कृत्य करवाए जा रहे हैं। एक तो पहले ही युगों की निर्धनता, फिर हीनभावना ग्रन्थि, फिर समाज एवं सरकार की उपेक्षा, फिर दुष्ट प्रेरित वर्गसंघर्ष और तिस पर भी कम्यूनिस्टों एवं क्रिस्तानों द्वारा अपने दल के स्वार्थ अथवा पन्थ के स्वार्थ के लिए निर्धन हरिजनों का शोषण—यह परिस्थिति प्रत्येक देशभक्त नागरिक के लिए बहुत बड़ी चुनौती है।

गुजरात में मोरवी की बाढ़ में सहस्रों नागरिक डूब गए तथा पूरा नगर ध्वस्त हो कर एक प्रेतनगर बन गया है। वहाँ के लाखों नागरिक, नर-नारी, बच्चे गृहविहीन तथा आश्रयविहीन, आहत एवं रोगी—सब भारत के करोड़ों देशवासियों की ओर सहायता की याचनाभरी दृष्टि से ताक रहे थे, राजस्थान में अजमेर की बाढ़ ने भी हजारों लोगों को विपन्न एवं विस्थापित कर दिया।

देश में जहाँ अतिवृष्टि से कहीं-कहीं प्रलयंकारी बाढ़ आ गई, वहाँ देश के अधिकांश भाग में इस दशाब्दी के भयंकरतम सूखे से देश में भुखमरी का भयानक दैत्य सामने मुँहबाये खड़ा है। इस सूखे एवं अकाल का भी अनुचित लाभ उठा कर विदेशी पादरी अन्न के प्रलोभन से देश की श्रद्धा पर डाका डालते हैं। जो अकाल भारत के लिये अभिशाप बन कर आता है वही विदेशी पादरियों के भारत-द्वेषी कार्यों के लिये सबसे अनुकूल समय होने के कारण उनके लिये वरदान बन जाता है।

नारी-जाति की असुरक्षा व अवमानना

नारी-जाति अपने आप में एक बहुत बड़ी समस्या से ग्रस्त है। किन्तु उसमें भी विधवाओं एवं असहाय नारियों की समस्या सबसे भयंकर है। वे असहाय माँ-बहिनें एवं बेटियाँ उचित सहायता के लिए हमारी ओर याचनाभरी दृष्टि से लोकलाज की मूक वाणी में कुछ कह रही हैं। दुर्भाग्य से रांची एवं छोटानागपुर में भी कोई नारी-निकेतन या विधवा आश्रम नहीं है। विधर्मी विदेशी प्रचारक विधवाओं की असहायता का भी अनुचित लाभ उठाकर महिला कल्याण के नाम पर देश की पुत्रियों के ईमान पर डाका डालते हैं। व्यक्तियों के धर्मान्तरण से विदेशी मत की सरल गणितीय वृद्धि होती है किन्तु महिलाओं के धर्मान्तरण से भावी परिवारों के धर्मान्तरण की सम्भावना के कारण ज्यामितिक गुणनशील चक्रवृद्धि होती है।

रोगी सेवा का अभाव

देश में करोड़ों रोगी हैं जो अर्थाभाव, साधनाभाव, औषधि अभाव तथा परिचर्याभाव के कारण जीवन और मृत्यु के बीच में झूल रहे हैं। उनकी विवशता का भी अनुचित लाभ उठाने हेतु विदेशी पादरियों ने अस्पतालों का जाल फैला रखा है। वे तन का उपचार करते हुए मन की श्रद्धाओं पर ऐसा अत्याचार करते हैं कि गांधीजी

की शब्दावली में कहना पड़ता है—'The cure is worse than the disease— अर्थात् ऐसा इलाज रोग से भी अधिक भयंकर है।' यदि विदेशी सात समुद्र पार से आकर अपने पंथ प्रसार हेतु हमारे रुग्ण बन्धुओं को अपने जाल में फंसाने के लिये अस्पतालों का बड़ा जाल फैला सकते हैं तो क्या हम भारतीय स्वयं अपने देश बान्धवों के स्वास्थ्य कल्याण एवं औषधि उपचार हेतु छोटानागपुर में उत्तम स्तर के कुछ निःशुल्क चिकित्सालय स्थापित नहीं कर सकते?

शिक्षा का अभाव

शिक्षा ज्ञान का चक्षु है। इसके बिना राष्ट्र अन्धा-सा रहता है। दुर्भाग्य से हमारे इस विशाल देश में 75 प्रतिशत से अधिक लोग अभी तक अनपढ़ हैं। इस क्षेत्र में भी हमारी अकर्मण्यता एवं सरकार की उपेक्षा तथा जनसाधारण के अज्ञान का पूरा लाभ भारत-द्वेषी विदेशी मिशन उठा रहे हैं। बालशिक्षा, उच्चशिक्षा एवं प्रौढ़शिक्षा—तीनों के माध्यम से वे भारतीयों को विदेशी संस्कार देने का व्यापक अभियान चलाये हुए हैं। क्या मिशन के स्तर का अथवा उससे ऊँचे स्तर का एक-एक आदर्श विद्यालय छोटानागपुर के सभी बड़े नगरों में स्थापित करना हमारे लिये असम्भव है?

भुखमरी की समस्या

देश में भिखारी समस्या भी बड़ी विकट है। लगभग 56 लाख तो साधु वेशधारी भिक्षुक हैं। उनमें से अधिकांश पेट भरने के लिये ही साधु बने हुए हैं, साधना करने के लिये नहीं। साधुओं के अतिरिक्त भी लाखों निर्धन भिखमंगे हैं जो सड़क किनारे पटरी पर सो जाते हैं। पैसा-पैसा मांगकर पेट पालते हैं और चिथड़ों से तन ढकते हैं। आंधी, धूप और वर्षा में उनके पास सिर ढकने का स्थान भी नहीं। क्या उनके लिये हम एक रैन बसेरा तक भी नहीं बना सकते?

बच्चे देश की हरी पौध है। वे ही कल के नागरिक होंगे। देश का भविष्य उन्हीं की मुट्ठी में है। वर्तमान वर्ष अन्तरराष्ट्रीय बाल वर्ष भी है। दुर्भाग्य से देश में करोड़ों अनाथ बच्चे हैं जो माता-पिता तथा अभिभावक के अभाव में अपने नन्हे नेत्रों में दयायाची अश्रुकण भरकर हमारी ओर ताक रहे हैं। दुर्भाग्य से रांची एवं छोटानागपुर में कोई भी उत्तम स्तर का अनाथालय नहीं है और हमारी इस अकर्मण्यता का पूरा लाभ विदेशी पादरी उठा लेते हैं तथा अनाथालयों में शैशव से ही विदेशी संस्कार देकर भारतमाता के लाडलों को धीरे-धीरे पूर्णतया देशद्रोही बना देते हैं। मध्यप्रदेश के कुछ स्थानों पर भील जाति के वनवासियों को विदेशी पादरी दस-दस रुपया उधार के बदले उनके नन्हे शिशुओं को जमानत के रूप में बन्धक रख लेते हैं और इस प्रकार सैकड़ों बन्धक रखे हुए बच्चों को विदेशी संस्कार देकर तथा गो मांस खिलाकर पूर्णतया विधर्मी बना लिया जाता है। जिन भीलों ने महाराणा प्रताप के लिये प्राण उत्सर्ग किये, जिस भीलनी की कुटिया पर भगवान् राम ने जूठे बेर खाये उनकी संतानें आज

भेड़-बकरी की तरह बंधक रखकर विधर्मी एवं देशद्रोही बन जाये तो इससे बड़ा दुःख और क्या हो सकता है!

सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि एक निर्धन देश के नागरिक होते हुए वनवासियों, हरिजनों, बाढ़ग्रस्तों, सूखाग्रस्तों, अभावग्रस्तों, रोगग्रस्तों, अज्ञान-ग्रस्तों, विधवाओं, अनाथों—सबके हाहाकार की घोर उपेक्षा कर हम दुर्गा-पूजा, दशहरा, दीवाली के पर्वों पर अरबों रुपया केवल पूजा के बाह्य आडम्बर, साज-सज्जा, तड़क-भड़क, बाहरी चकाचक, क्षुद्र प्रतिस्पर्धा एवं कुछ इने-गिने दिनों की शानशौकत पर स्वाहा कर डालते हैं, जिसका सामाजिक लाभ शून्य ही प्राप्त होता है। राँची में ही सैकड़ों स्थानों पर बड़े-बड़े, विशाल मूर्ति पूजा मंडप लगाये गये हैं।

श्रीदुर्गा : संगठन की महाशक्ति

दुर्गा माता तो वास्तव में संगठन की देवी है। सभी देवताओं की सामूहिक शक्ति से महाशक्ति दुर्गा का अवतार हुआ था। किन्तु आज दुर्गा पूजा के नाम पर एक ही मुहल्ले में एक ही दीवार के दायें और बायें मात्र दस गज की दूरी पर अलग-अलग दुर्गा बिठाने वाले आज दुर्गा को संगठन की देवी के स्थान पर विघटन की देवी भर बनाने की कुचेष्टा कर रहे हैं। फिर एक-एक पूजा पर पचास-पचास हजार रुपया चार-छः दिन में फूंक कर बड़े तालाब में विसर्जित कर दिया जायेगा। क्या एक निर्धन, भयंकर समस्याग्रस्त एवं विदेशी एवं विधर्मियों के देशद्रोही कुचक्रों से घिरे हुए देश की ऐसी भयंकर विवेकशून्य फिजूल खर्ची को, आत्म प्रवंचना को वनवासी या हरिजन क्षमा करेंगे, क्या बाढ़ग्रस्त एवं सूखा पीड़ित नर-नारी क्षमा करेंगे? क्या रोगी एवं भिखारी, क्या विधवायें एवं अनाथ बच्चे क्षमा करेंगे? क्या इतिहास क्षमा करेगा? क्या भारतमाता अथवा भगवती दुर्गा माता क्षमा करेंगी?

मेरी हार्दिक विनती है कि इस वर्ष सभी दुर्गापूजा समितियों को वनवासी व हरिजन कल्याण, बाढ व सूखा कल्याण, रोगी व भिक्षुक कल्याण, अनाथ एवं विधवा कल्याण कार्यों के लिये अपने अनुमानित व्यय का कम से कम 10 प्रतिशत बचाकर दान करना चाहिये और भविष्य में रांची, डोरंडा एवं धुर्वा में कुल मिलाकर 10 सार्वजनिक दुर्गापूजा महोत्सव करने चाहिये और बाह्याडम्बर का व्यय बचाकर जगन्माता, भारतमाता के अभावग्रस्त पुत्र-पुत्रियों के कल्याण हेतु समर्पित करना चाहिये। उन्हें अपने नगर एवं गाँव के इर्द-गिर्द चुनकर उन गाँवों में जाकर दुर्गापूजा आयोजन करना चाहिये जहाँ युगों से अभाव एवं निर्धनता के कारण कभी दुर्गापूजा नहीं हुई। समाज के एक निर्धन वर्ग को भुखमरी के महिषासुर से तथा धर्मान्तरण की दुर्गति से बचाना सच्ची दुर्गापूजा होगी। भारत की अपहृत संस्कृति रूपी सीता माता को सम्मान सहित पुनः प्रतिष्ठित करना तथा संस्कृति के शत्रु रावणासुर का कलेजा चीर डालना ही सच्चा विजयादशमी पर्व होगा। तभी सारे भारत के कोटि-कोटि नर-नारी को दुर्गापूजा, विजयादशमी की मंगल बधाइयाँ सार्थक होंगी।